आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

COMPARATIVE STUDY OF THE TRENDS OF MODERN HINDI AND MALAYALAM SHORT STORIES

THESIS SUBMITTED TO THE
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

K. N NEELAKANTAN NAMPOORI

Supervising Teacher
Dr. A. ARAVINDAKSHAN
Reader

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1989

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of work carried out by **K.N.NEELAKANTAN NAMPOORI** under my supervision for **Ph.D.** Degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. A.ARAVINDAKSHAN
Reader
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology
Cochin-682022

11th October 1989

विषय सूचि

पृष्ठ-संख्या

पुरोवाक्	..	i - ix
अध्याय : एक	..	1 - 98

हिन्दी और मलयालम के पूर्व-आधुनिक युग की कहानियाँ

कहानी का आदिरूप - कहानी का उद्भव : विभिन्न भारतीय भाषाओं में - हिन्दी कहानी का प्रारंभ - हिन्दी की पहली मौलिक कहानी - प्रारंभिक कहानियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ - मलयालम की आरंभिक कहानियाँ - प्रथम मौलिक कहानी - यथार्थवादी युग : हिन्दी कहानी - प्रेमचन्द और उनकी परंपरा - कहानी कला का विकास : यथार्थवाद के विभिन्न धरातल - प्रेमचन्द परंपरा के अन्य प्रमुख कहानीकार - विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक - चन्द्रधर शर्मा गुलेरी - सुदर्शन - भगवतीप्रसाद वाजपेयी - पाण्डेय बेचनशर्मा "उग्र" - प्रेमचन्द परंपरा : संक्षिप्त अवलोकन - यथार्थवादी युग : मलयालम कहानी - प्रगतिवादी साहित्यिक आन्दोलन की व्यापक पृष्ठभूमि - तकषी शिवशंकर पिल्लै - पी. केशवदेव - पोनकुन्नम वर्की - तुलनात्मक दिशाएँ - प्रेमचन्द-युग में व्यक्तिमुख धारा का प्रवर्तन - प्रसाद और उनकी परंपरा - वैक्कम मुहम्मद बशीर - प्रेमचन्दोत्तर युग की हिन्दी कहानी : सामान्य प्रवृत्तियाँ - यशपाल - राहुल सांकृत्यायन - उपेन्द्रनाथ अश्क - रांगेय राघव - तुलनात्मक दिशाएँ - मनोवैज्ञानिक यथार्थ की कहानियाँ - जैनेन्द्रकुमार - इलाचन्द्र जोशी - अज्ञेय - मलयालम कहानी का यथार्थोत्तर युग - एस. के.पोट्टेक्काट्टु और उरूब - ललिताम्बिका अन्तर्जनम - तुलनात्मक दिशाएँ ।

पृष्ठ-संख्या

अध्याय : दो .. 99 - 186

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में मानवीय संकट के विभिन्न आयाम

हिन्दी की नई कहानी - आधुनिक मलयालम कहानी - हिन्दी और मलयालम कहानी में संकटबोध का सीधा साक्षात्कार - तुलनात्मक दिशाएँ - संबन्धों का नया परिदृश्य - स्त्री पुरुष संबन्ध का नया सन्दर्भ - पारिवारिक संबन्ध का नया सन्दर्भ - संबन्धों का नया परिदृश्य : नई कहानी के सन्दर्भ में - स्त्री-पुरुष संबन्ध का नया सन्दर्भ : आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों के सन्दर्भ में - तुलनात्मक दिशाएँ - पारिवारिक संबन्ध का नया सन्दर्भ : आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों के सन्दर्भ में - तुलनात्मक दिशाएँ - मूल्यगत विडंबनाओं की कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ ।

अध्याय : तीन .. 187 - 277

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में सामाजिक यथार्थ की विभिन्न धाराएँ

कहानी और सामाजिक धारा - यथार्थवाद और यथार्थबोध-राजनीतिक यथार्थ की कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ - मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ की कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ पारिवारिक तनाव की कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ व्यंग्य-विद्रूपता के नए आयाम - सामाजिक व्यंग्य-कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ - राजनीतिक व्यंग्य-कहानियाँ - तुलनात्मक दिशाएँ - आँचलिक यथार्थ की कहानियाँ - विभाजन से संबन्धित कहानियाँ - फौजी जीवन यथार्थ की कहानियाँ

पृष्ठ-संख्या

अध्याय : चार .. 278 - 336

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों का अस्तित्ववादी सन्दर्भ

अस्तित्ववाद : सैद्धान्तिक विवेचन - अस्तित्ववाद के उदय केलिए उत्तरदायी परिस्थितियाँ - फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति - विश्व महायुद्ध - विज्ञान का बढता हुआ प्रभाव - पूर्ववर्ती दार्शनिक पद्धतियों का प्रभाव - अकेलापन और अस्मिता की खोज - तुलनात्मक दिशाएँ - विसंगति बोध - तुलनात्मक दिशाएँ - शून्यता बोध - तुलनात्मक दिशाएँ ।

अध्याय : पाँच .. 337 - 415

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों की शैल्पिक प्रवृत्तियाँ

शिल्प और कथ्य - कथानक का ह्रास - प्रथम पुरुष पात्र की परिकल्पना - आत्मालाप का आन्तरिक क्रम - सांकेतिकता - सांकेतिकता : कथाक्रम के समग्र विन्यास में - सांकेतिकता का आनुषंगिक प्रयोग - अमूर्त बिम्बों के संकेत - रूपात्मक प्रयोग - पात्र केन्द्रित कहानियाँ - प्रतिकात्मक कहानियाँ - समान्तर कहानी का शिल्प - फैंटसी - कहानी और भाषिक संरचना - भाषा की सपाटता से बिम्बात्मकता तक - भाषा की सूक्ष्मता से स्थूलता तक ।

उपसंहार .. 416 - 424

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि 425 - 443

पुरोवाक्

भारतीय भाषाओं में कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है । अपने प्रारंभकाल में ही कहानी ने अपनी इस लोकप्रियता को सिद्ध किया था । जीवन का कोई भी पक्ष कहानी केलिए अछूता नहीं रह गया । जीवन की इस निकटता ने कहानी को एक सार्थक रूप दे दिया था । युगानुरूपी रूप-वैविध्य के होते हुए भी जीवन की ऊष्मलता की पहचान कहानी की सब से बड़ी विशेषता सिद्ध हुई थी । इस दृष्टि से सभी भारतीय भाषाओं की कहानियाँ समान धारा के अन्तर्गत आ जायेंगी ।

हर एक भाषा की अपनी एक संस्कृति होती है । हर भाषा अपना एक रचनात्मक माहौल सृजित करती है । इस अर्थ में भारत की विभिन्न भाषाओं में लिखी जानेवाली कहानियाँ एक दूसरे से अलग हैं । कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें हम स्थानीय कहें या देशज जिनकी तुलना हम कतई नहीं कर पायेंगे । परन्तु जैसे उपरिवत् सूचित किया गया है कि इन विभिन्न भाषाओं की कहानियों में प्राप्त होनेवाली जीवनोन्मुखता और उसके विविध-रंगी रूप सदैव तुलना के योग्य हैं ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों की प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन है । ये दोनों भाषाएँ निकट की नहीं हैं । हिन्दी प्रदेश और केरल प्रदेश में काफी अन्तर है । लेकिन इन दोनोंभाषाओं के साहित्य में इतनी समानताएँ हैं जो सचमुच आश्चर्य का विषय है । दोनों भाषाओं में कहानी अत्यन्त लोकप्रिय विधा है । इन दोनों भाषाओं में ऐसे अनगिनत कहानीकार हैं जिन्होंने कहानी को एक सार्थक रचना के रूप में, आज के एक सशक्त माध्यम के रूप में देखा है । इन दोनों भाषाओं की कहानियों से मेरा परिचय अरसों पुराना है ।

समय समय पर इन दोनों में पायी जानेवाली समानता पर थोडा बहुत सोचने विचारने का मौका भी मुझे मिला है । इसी कारण से शोध के विषय के रूप में इन दोनोंभाषाओं की कहानियों के तुलनात्मक अध्ययन के कार्य को मैं ने स्वीकार किया है । इस अध्ययन के दौरान इन भाषाओं में प्राप्त कुछ असमान पक्षों से भी मेरा परिचय हो गया । लेकिन समान पक्षों की तुलना में असमान पक्ष उतने प्रमुख नहीं दिखायी पडे । समान स्थितियों तथा समान दृष्टियों ने मेरे इस कार्य को आगे बढाया है और उसे एक शोध प्रबन्ध के प्रारूप देने का कार्य भी किया है ।

हर कहानी अपने में स्वतन्त्र, संपूर्ण है । यह बात एक ही रचनाकार की अलग अलग रचनाओं केलिए भी संगत है । लेकिन बहुत सारी कहानियों की कोई न कोई प्रवृत्ति अवश्य होती है । दोनों भाषाओं की प्रमुख कहानियों की प्रवृत्तियों के आधार पर प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है ।

पहला अध्याय है, "हिन्दी और मलयालम के पूर्व-आधुनिक युग की कहानियाँ ।" अन्य चार अध्यायों की तुलना में इस अध्याय की अपनी विशेषता है । इस अध्याय में दोनों भाषाओं की प्रारंभयुगीन कहानियों से लेकर आधुनिक युग तक अर्थात सन् 1950 तक की कहानियों का अध्ययन समाविष्ट किया गया है । क्योंकि कहानी के ऐतिहासिक विकास से अवगत हुए बिना आधुनिक कहानी की वास्तविक मनोभूमि को पहचान पाना असंभव है । वैसे इन दोनों भाषाओं की कहानियों का इतिहास उतना सुदीर्घ नहीं है । अत: अध्याय के प्रारंभिक खंड में आरंभकालीन कहानियों के कथ्य तथा रूपात्मक स्थिति की, कहानियों के माध्यम से विश्लेषण करते हुए तुलना की गयी है । उसके पश्चात् दोनों भाषाओं के यथार्थवादी युग के आगमन और तत्कालीन परिस्थितियों पर विचार किया गया है । हिन्दी के इस युग में प्रेमचन्द का महत्व निर्विवाद है । प्रेमचन्द ने अपनी परंपरा चलाई, प्रेमचन्द के साथ हिन्दी कहानी पुष्ट हुई । मलयालम के इस युग में एक नहीं, बल्कि तीन ऐसे कहानीकार मिलते हैं जिनकी समग्र चेतना ने मलयालम की यथार्थवादी युग को

एक स्वस्थ रूप दे दिया है । जिन कहानियों में हम सामाजिक उन्मुखता का अनुभव करते हैं उन कहानियों के आधार पर ही यथार्थवादी युग निर्धारित होता है । प्रेमचन्द तथा उनके अनुसार लिखनेवाले कहानीकारों की तथा तकष़ी, देव और पोनकुन्नम वर्की की कहानियों की तुलना इस प्रकरण में की गयी है । इसी युग की व्यक्त्युन्मुखी धारा का जो विकास जिस प्रकार प्रसाद ने किया उसी के अनुरूप न सही, व्यक्तिजीवन के सन्दर्भ में जीवन को आँकने का जो प्रयास मलयालम में जिस प्रकार "कारूर" ने किया है उस विशिष्ट मनस्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है । पर इनकी कहानियों का वास्तविक धरातल अलग-अलग है । इसी युग के एक विशेष मलयालम कहानीकार पर विशेष ज़ोर देना पड़ा जो श्री वैक्कम मुहम्मद बशीर है । यद्यपि उनका ज़िक्र यथार्थवादी युग में ही होता है फिर भी उनकी कहानियों के अध्ययन से यही लगता है कि वे यथार्थवादी युग के कटघरे के बाहर हैं । जैसे छायावादी युग में निराला की स्थिति कुछ कुछ ऐसी है । यद्यपि मलयालम में किन्हीं कहानीकारों के आधार पर युग का वर्गीकरण नहीं किया गया है, इस कारण से कोई प्रेमचन्दोत्तर युग जैसा समानार्थी नामकरण उपलब्ध नहीं है । फिर भी यह अवश्य स्वीकारा जा सकता है कि मलयालम में यथार्थवादी युग का एक दूसरा दौर देखने को मिलता है । एस. के. पोट्टेक्काट्टु, उरूब, ललिताम्बिका अन्तर्जनम आदि की कहानियाँ प्रायः इस दूसरे दौर में विश्लेषित होती हैं ।

हिन्दी में जो प्रेमचन्दोत्तर युग है जिसकी दो धाराएँ हैं उन्हीं के साथ मलयालम के इस दूसरे दौर का तुलनात्मक अध्ययन हुआ है । इस प्रकरण में समानताओं की अपेक्षा असमानताएँ ज़्यादा थीं । उस ओर भी पर्याप्त संकेत किया गया है । इस प्रकार तीन खंडों में विभाजित इस अध्याय में हिन्दी और मलयालम कहानी का ऐतिहासिक विकास भी दिखाया गया है तथा तुलनात्मक दिशाओं को भी खोजा गया है । वस्तुतः यह अध्याय अन्य अध्यायों केलिए एक बृहत् पृष्ठभूमि के बराबर है ।

दूसरा अध्याय है, "आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में मानवीय संकट के विभिन्न आयाम" । हिन्दी और मलयालम में सन् 1950 के बाद आधुनिक कहानी की चर्चा होने लगी । साथ ही साथ आधुनिकता को परिभाषित करने का कार्य भी किया गया । इस काल में कहानी के बाह्य एवं अन्तरंग स्तर पर जो परिवर्तन लक्षित होते हैं वे दोनों भाषाओं में समान है । उस समय की लघु पत्रिकाओं में प्रकाशित टिप्पणियों से और कहानीकारों की प्रतिक्रियाओं से यह बात व्यक्त होती है । यह कहना अधिक संगत लगता है कि इन दोनों भाषाओं के कहानीकारों ने एक खास मानसिकता का सामना किया है । इस खास मानसिकता की अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं की कहानियों में हुई है । अतः इस अध्याय में जिस मानवीय संकट की चर्चा की गयी है वह आधुनिक युग का ही संकट है । इस अध्याय के तीन खंड हैं, यथा - "संकटबोध का सीधा साक्षात्कार", "संबन्धों का नया परिदृश्य" और "मूल्यगत विडंबनाओं की कहानियाँ" । प्रथम खंड में मानवीय संकट से सीधे साक्षात्कार करनेवाली दोनों भाषाओं की कहानियों की चर्चा की गई है । तदुपरान्त "तुलनात्मक दिशाएँ" के अन्तर्गत समान स्थितियों की तुलना की गई है । दूसरा खंड आधुनिक युग की ऐसी एक संकटजन्य स्थिति से संबन्धित है जिसे संबन्धों के नए परिदृश्य के अन्तर्गत देखा गया है । यह मात्र व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्धों में आया हुआ संकट ही नहीं बल्कि इसमें मूल्य-विघटन एवं मूल्य-संस्थापन के अनेक पक्ष भी खोजे जा सकते हैं । अतः इस खंड की कहानियों का अन्तरंग स्वर भी मानवीय संकट से संबन्धित है । तीसरा खंड मूल्य-विडंबना का है । हम जिस सच्चाई का सामना कर रहे हैं या जिस संघर्ष को झेल रहे हैं वह इस मूल्य-विडंबना का परिणाम ही है । तीनों खंडों पर अलग अलग ढंग से विचार करते हुए तुलनीय स्थितियों का सन्निवेश किया गया है ।

तीसरा अध्याय है, "आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में सामाजिक यथार्थ की विभिन्न धाराएँ" । यद्यपि दोनों भाषाओं में यथार्थवादी युग के साथ 'सामाजिक धारा' का समापन होता है फिर भी सामाजिक स्थितियाँ इन भाषाओं में लगातार कहानीकार केलिए प्रेरणा बनती रही हैं । आधुनिक युग में हिन्दी और

मलयालम में ऐसे अनेक कहानीकार मिलते हैं जिनकी कहानियों में आज की सामाजिक व्यवस्था के अनेक पहलू मिल जाते हैं । इतने पर भी इन कहानियों को यथार्थवादी सिद्ध नहीं किया जा सकता । इन्हें हम यथार्थबोध की या संश्लिष्ट यथार्थ की कहानियाँ बता सकते हैं । क्योंकि इनमें यथार्थ के उस गहनतम पक्ष को ढूँढा गया है । सामाजिक स्थितियाँ प्रमुख होते हुए भी उसके केन्द्र में एक जीवन्त मनुष्य मिलता है उसके सन्दर्भ में सामाजिक स्थितियाँ विश्लेषित हैं । इस अध्याय में कुल मिलाकर सात खंड हैं । यथा -

राजनीतिक यथार्थ की कहानियाँ
मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ की कहानियाँ
पारिवारिक तनाव की कहानियाँ
व्यंग्य-विद्रूपता के नए आयाम की कहानियाँ
आँचलिक यथार्थ की कहानियाँ
विभाजन से संबन्धित कहानियाँ
फौजी जीवन यथार्थ की कहानियाँ

अध्ययन की सुविधा केलिए ही इसप्रकार का वर्गीकरण किया गया है । इन सात खंडों में से चार खंडों में विवेचित कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । यहाँ भी वही रीति अपनायी गयी है । प्रत्येक खंड में दोनों भाषाओं की कहानियों का विश्लेषण, तदुपरान्त तुलनात्मक अध्ययन । शेष तीन खंड जो हैं, जिनका अपनी अपनी भाषा में ज़्यादा महत्व है, अलग अलग देखा गया है । इन खंडों की कहानियों की कोई तुलना नहीं की गई है ।

चौथा अध्याय है, "आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों का अस्तित्ववादी सन्दर्भ" । आधुनिक भारतीय कहानियों में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है । हिन्दी और मलयालम

कहानियों में यह प्रभाव स्पष्ट है । हिन्दी की तुलना में मलयालम में प्रभाव की मात्रा कुछ अधिक है । इसका कारण मलयालम के कहानीकारों का फ्रेंच, जर्मन, स्पैनिश जैसी भाषाओं से सीधा संबन्ध रहा है । लेकिन यह सूचित करना आवश्यक है कि जिन पश्चिमी रचनाओं में अस्तित्ववाद का जो स्वरूप मिलता है उसी प्रकार की भावस्थिति भारतीय कहानी की नहीं है । इस प्रसंग में यह उल्लेखित करना भी आवश्यक है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् की हमारी सामाजिक अवस्था कुछ कुछ मोहभंग की रही है । इन स्थितियों के दौरान व्यक्ति का अपना अस्तित्व, व्यक्ति का अपना मूल्य संकटग्रस्त रहा है । अतः इन दोनों का एक मिला-जुला प्रभाव हिन्दी और मलयालम कहानियों में देखने को मिलता है । प्रस्तुत अध्याय के तीन खंड हैं । यथा - "अकेलापन और अस्मिता की खोज", "विसंगति बोध", और "शून्यता बोध" । अध्याय की भूमिका के रूप में अस्तित्ववाद-दर्शन की अति संक्षिप्त सैद्धान्तिक चर्चा प्रस्तुत की गयी है । तदुपरान्त अस्तित्ववाद की मुख्य मानवीय स्थितियों के रूप में उपर्युक्त तीन प्रवृत्तियों को लक्षित किया गया है । इन तीनों खंडों में हिन्दी और मलयालम कहानियों की विवेचना तथा तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।

पाँचवाँ अध्याय है, "आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों की शैल्पिक प्रवृत्तियाँ" । कथ्यगत तुलना में प्राप्त तुलनात्मक दिशाओं की अपेक्षा हिन्दी और मलयालम कहानी के शिल्प- सन्दर्भ में अभूतपूर्व तुलना लक्षित होती है । यद्यपि अध्ययन की सुविधा केलिए शिल्प-संबन्धी बातों को अन्त में ही विश्लेषित किया गया है, फिर भी शिल्पगत नवीनताएँ कथ्य की संभावनाओं के ही प्रमाण है । आधुनिक युग में ऐसी अनेक कहानियाँ हैं जिनका विश्लेषण प्रायः शिल्प के किन्हीं पक्षों के आधार पर ही उठाया जा सकता है । कभी कभी दोनों भाषाओं में ऐसी भी कहानियाँ हमें मिल जाती हैं जिनका विश्लेषण भाषा के कोण से भी उठाया जा सकता है । अतः शिल्प कथ्य से भिन्न नहीं है । प्रस्तुत अध्याय में निम्न-सूचित शिल्प पक्षों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है । -

कथानक का ह्रास
प्रथम पुरुष पात्र की परिकल्पना
आत्मालाप का आन्तरिक क्रम
सांकेतिकता
रूपात्मक प्रयोग
कहानी और भाषिक संरचना

इस अध्याय से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि हिन्दी और मलयालम कहानी में जितने रूपगत परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं वे सब एक ओर रचना की आन्तरिक माँग है तो दूसरी तरफ रचना की समय-सापेक्षता की माँग भी है। इस अध्याय में दूसरे अध्यायों के समान अलग-अलग पक्षों के विश्लेषण के पश्चात् "तुलनात्मक दिशाएँ" उपशीर्षक के अन्तर्गत तुलना नहीं की गई है। क्योंकि अधिकतर समानताएँ ही इस अध्याय में लक्षित की गयी हैं।

उपसंहार के रूप में जो लघु अध्याय प्रस्तुत किया है उसके अन्तर्गत इन दो भिन्न प्रान्तीय भाषाओं की कहानियों की प्रवृत्तियों के आधार पर, उनकी तुलनात्मक स्थितियों के आधार पर यह देखने का प्रयास किया गया है कि इनमें भारतीयता का अंश किस मात्रा में उपलब्ध है। भारतीयता को एक सतही संकल्प के रूप में न देखकर सही मानवीय स्थिति के रूप में आँका गया है। इस लघु अध्याय में भारतीय जन-मानस की आकांक्षाओं और भारतीय जनजीवन के संघर्ष को भी रेखांकित किया गया है। अतुलनीय स्थितियों से संबन्धित कहानियाँ अपनी अपनी भाषाओं की विशिष्ट परिस्थितियों की उपज होते हुए भी उनका भी अपना एक भारतीय पक्ष है। जब एक ओर हिन्दी और मलयालम की कहानियाँ अपने रूपगत संभावनाओं की तरफ अग्रसर हैं तो दूसरी तरफ ये कहानियाँ हमारे समय का सही दस्तावेज बनकर प्रस्तुत होती हैं।

इस अध्ययन से संबन्धित कुछ ऐसी बातें हैं जिनका उल्लेख इस भूमिका में आवश्यक प्रतीत होता है । हिन्दी और मलयालम में कहानिकारों की संख्या हम अवश्य निर्णीत कर सकते हैं । लेकिन कहानियों की संख्या सीमातीत है । इस अध्ययन केलिए बहुत सारी चर्चित कहानियों को ही विवेचन के योग्य समझा गया है । हो सकता है, कुछ प्रतिनिधि रचनाएँ इस अध्ययन के बाहर भी रह गई हों ।

दूसरी बात अनुवाद से संबन्धित है । मलयालम कहानियों के प्रमुख प्रसंगों को उद्धृत करते समय अनुवाद करना ही पडता है । लेकिन हिन्दी के उन प्रसंगों के सन्दर्भों के साथ इन अनूदित सन्दर्भों को देखते समय थोडा-सा अटपटापन महसूस हो सकता है । इसका कारण यह है कि ऐसी बहुत सारी मलयालम कहानियों को अध्ययन केलिए चुना गया, जिनका अनुवाद वस्तुतः असंभव न सही, कठिन अवश्य है । अनुवाद कार्य की कमियों केलिए क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

प्रस्तुत शोधकार्य कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डा. ए. अरविन्दाक्षनजी के निर्देशन में संपन्न हुआ है । वे कहानी विधा के विशेष जानकार हैं । हिन्दी तथा मलयालम कहानी के क्षेत्र में उन्होंने बहुत-से कार्य किये हैं । उन्हीं के बहुमूल्य मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन से ही प्रस्तुत प्रबन्ध ने अपना वर्तमान स्वरूप प्राप्त कर लिया है । आदरणीय अरविन्दाक्षनजी के प्रति अनन्य श्रद्धा के साथ अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

विभागाध्यक्ष डा. रामन नायरजी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ । विभाग के आचार्य डा. पी. वी. विजयनजी और रामचन्द्रदेवजी के प्रति मेरे मन में आदर भावना है । उनके प्रोत्साहन का अपना मूल्य है । समय-समय पर प्राप्त उन सब की प्रेरणा केलिए हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा, श्रीमति कुञ्ञिक्कावुट्टि तंपुरान तथा सहायक श्री. अतीस के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ। वे मेरे इस प्रयत्न में निरन्तर साथ रहे हैं। इस शोध कार्य केलिए केरल साहित्य अकादमी के पुस्तकालय से भी मैं अनेक सहायक-ग्रन्थ और पुरानी पत्र-पत्रिकाएँ प्राप्त कर सका हूँ। अकादमी के अधिकारियों के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विनीत

के. एन. नीलकण्ठन नंबूतिरी

अध्याय : एक

हिन्दी और मलयालम के पूर्व-आधुनिक युग की कहानियाँ

कहानी का आदिरूप

भारत में कहानी की एक लंबी और समृद्ध परंपरा है । प्राचीन भारतीय वाङ्मय में - वेदों, उपनिषदों और पुराणों में - कथास्वरूप की कमी नहीं है । ऋग्वेद के यम-यमी, पुरूरवा-उर्वशी आदि के संवाद कथा के आदि रूप हैं । श्वेतकेतु और उद्दालक की कथा, गार्गी-याज्ञवल्क्य कथा, शौनक तथा अंगिरस की कथा, नचिकेत की कथा आदि औपनिषदिक कथाओं में प्रमुख हैं । वैदिक औपनिषदिक एवं पौराणिक काल के बाद नीति, प्रणय और भक्ति-परक कथाओं की परंपरा शुरू होती है जिनका आदि-स्रोत गुणाढ्य की बृहत्-कथा है । संस्कृत की इसी कथा-परंपरा का विकास दंडी के "दशकुमार चरित", बाणभट्ट की "कादंबरी", सुबन्धु की "वासवदत्ता" आदि से हुआ है । "पचंतन्त्र", "तन्त्राख्यायिका", "बृहत्-कथामंजरी", "कथा सरित्सागर", "हितोपदेश" जैसी रचनाएँ भी इसी कोटि में आनेवाली कृतियाँ हैं ।

उक्त संस्कृत कथा-परंपरा के अलावा पाली-प्राकृत-अपभ्रंश में भी कथा के प्राकृत रूप ढूँढे जा सकते हैं । आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में, "प्राकृत और अपभ्रंश में उन दिनों निश्चय ही पद्य में लिखा हुआ ऐसा साहित्य वर्तमान था जिन्हें कथा कहा जाता था । प्राकृत में लिखी कथाएँ पद्यबद्ध होती थीं, और गद्य में भी लिखी जाती थीं ।"[1] बौद्ध जातक कथाएँ, प्राकृत-अपभ्रंश के कथा-काव्य

---

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल (तृतीय संस्करण-1961) हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - पृ: 59.

आदि में प्राचीन भारतीय कथा के विभिन्न रूप उपलब्ध हैं ।

उक्त कथा-ग्रन्थों से संबन्धित सब से उल्लेखनीय बात यह है कि ये सब मूलतः नैतिक या धार्मिक ग्रन्थ थे । "वैदिक काल में कथाएँ अपने बीज-रूप में, देवताओं की स्तुति और यज्ञादि के मंत्रों के बीच में छिपी हुई थीं और उनका ध्येय विशुद्ध धार्मिक था ।"[1] इनके रचयिताओं का मुख्य उद्देश्य समाज की सांस्कृतिक और धार्मिक उन्नति ही था । इसीलिए उन्होंने अपनी कहानियों में ऐहिकता के साथ साथ अलौकिकता या आध्यात्मिकता का भी वर्णन किया है । लोगों को शिक्षा देने के उद्देश्य से लिखी हुई इन कथाओं में अधिकांश उपदेशात्मक भी थीं । जो हो कथा-समृद्धि की इस बृहत् परंपरा ने कथा के विभिन्न रूपों से हमारा परिचय कराया है । परन्तु प्रश्न यह रह जाता है कि क्या आधुनिक कहानी का विकास इस परंपरा से माना जा सकता है या नहीं ।

कहानी का उद्भव:विभिन्न भारतीय भाषाओं में

भारत में कथा-साहित्य की इतनी समृद्ध परंपरा के होते हुए भी एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का विकास उक्त प्राचीन परंपरा से मानना असंगत प्रतीत होता है । उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में, अन्य गद्य-साहित्य की विधाओं की तरह, पाश्चात्य साहित्य के संपर्क के फलस्वरूप भारत में आधुनिक कहानी का उद्भव हुआ ।[2] प्रस्तुत संपर्क का कार्य पहले बंगला साहित्य के सन्दर्भ में हुआ, बाद में बंगला के माध्यम से हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में हुआ । स. ही. वात्स्यायन अज्ञेय ने लिखा है - "हिन्दी में आधुनिक कहानी की सीधी परंपरा बीसवीं शती से पूर्व नहीं । प्राचीन कथा साहित्य से वह संबद्ध है

---

1. हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास (1967) - लक्ष्मीनारायण लाल
पृ: 31.

2. Indian Literature since Independence - (1973) - Introduction - K.R.Sreenivasa Iyengar (Ed.) - p.IX.

अवश्य, पर उसके रूप का विकास उस व्यापक पुनरुत्थान का पक्ष है जो उन्नीसवीं शती के अंतिम दिनों और बीसवीं शती के आरंभिक दशक में भारतीय जीवन के हर अंग को प्रभावित करने लगा । और मानना होगा कि इसे पाश्चात्य साहित्य से बहुत कुछ प्रेरणा मिली कुछ तो सीधे, कुछ बंगला से छनकर क्योंकि अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी के साथ कलकत्ता के प्राचीनतम परिचय के कारण विदेशी प्रभाव प्रायः सब से अधिक बंगला में प्रकट होता है ।"[1] साहित्य की नई-नई विधाओं के विकास की पृष्ठभूमि का सामाजिक आधार सुविदित ही है । अज्ञेय ने कहानी के विकास तथा प्रभाव-ग्रहण संबन्धी सामाजिक स्थिति को अवश्य रेखांकित किया है । इससे यही स्पष्ट होता है कि कहानी के विकास का वास्तविक संबन्ध पश्चिमी भाषा का संबन्ध ही है । प्राचीन कथा से उसका कोई संबन्ध नहीं है । इस प्रकरण में गद्य के विकास की व्यापक भूमिका पर भी ध्यान देना होगा । कहानी का विकास गद्य के विकास का एक अंश मात्र है ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंगला कहानी के युग-द्रष्टा और युग-स्रष्टा लेखक रहे हैं । रवि ठाकुर के समकालीन और बाद के बंगला कहानीकारों ने भारतीय समाज के उपेक्षित वर्गों को पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयत्न किया है । ताराशंकर बैनरजी, विभूति भूषण बैनरजी, मनिक बैनरजी जैसे कथाकार भारतीय कहानी-साहित्य के पथ प्रदर्शक लेखक माने जाते हैं । सभी भारतीय भाषाओं में इनका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित दिखाई पड़ता है । असमिया के लक्ष्मीकान्त बज़बरुआ, गुजराती के रामनभाई निलकान्त, तेलुगु के विश्वनाथ सत्यनारायण आदि को हैतॉर्न, एडगर एलन पॉ जैसे पाश्चात्य लेखकों के साथ साथ बंगला के उन युग-प्रवर्तक लेखकों से भी प्रेरणा मिली है । यह प्रेरणा लंबी अवधि तक बनी रही । प्रकारान्तर से भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं के कहानीकारों ने इस प्रेरणा को स्वीकारा भी है । प्रभाव चाहे बंगला से हो या अन्य पाश्चात्य भाषाओं से - अंग्रेज़ी के ज़रिए-कहानी एक स्वीकृत विधा बन गई जो बिलकुल अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ आगे विकसित होने लगी ।

---

1. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य (1967) - अज्ञेय - पृ: 103.

हिन्दी कहानी का प्रारंभ

हिन्दी कहानी के अपने स्वायत्त रूप प्राप्त होने के पहले का एक दौर है और उस दौर में प्राचीन रचनाओं के अनुकरण पर कहानीनुमा रचनाएँ प्रकाशित होती रही हैं । इन रचनाओं का उल्लेख भर करना पर्याप्त है क्योंकि उनका संबन्ध आधुनिक रचनाओं से बिलकुल नहीं है । 'बीरबल-अक्बर का उपहास,' 'ठग-लीला,' 'किस्सा गुलबकावली,' 'जवानी की कहानी' आदि इस दौर की रचनाएँ हैं । लल्लूलाल द्वारा अनूदित "सिंहासन बत्तीसी", 'बैताल पच्चीसी', जैसे कथा-संग्रह, इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' या 'उदयभानुचरित', सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान', राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज का सपना' जैसी कृतियाँ इसी प्राचीन परंपरा की अन्तिम कडियाँ मानी जा सकती हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की राय में, ये रचनाएँ "घटनाचक्र में रमानेवाली कथाओं की पुरानी पोथियाँ हैं ।"[1] वे इन्हें आधुनिक छोटी कहानी के अन्तर्गत मानने को तैयार नहीं हैं । दर असल आधुनिक कहानी एक निश्चित अर्थ का द्योतक शब्द है, उसका एक निश्चित स्वरूप और अवबोध है तथा वह शिल्प की दृष्टि से प्राचीन कहानी से एक दम भिन्न है । अतः रामचन्द्र शुक्ल का कथन सही है कि कथात्मकता के आधार पर उन पुरानी मन-बहलाव या नीति-प्रधान रचनाएँ आधुनिक कहानी के साथ मेल नहीं खाती । यह तथ्य इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें कहानी संबन्धी एक नई दृष्टि की पर्याप्त सूचनाएँ भी हैं ।

हिन्दी की पहली मौलिक कहानी

हिन्दी की पहली मौलिक कहानी के विषय में आलोचकों और पंडितों के बीच में मतभेद अवश्य हैं । इस विषय पर अधिक विवाद किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' §सन् 1900§, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास §1965§ - रामचन्द्र शुक्ल - पृ: 479.

समय' §सन् 1903§, गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', बंगमहिला की 'दुलाईवाली', माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' और चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' को लेकर है ।[1] रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी 'इन्दुमती' है । उन्होंने लिखा है - "यदि इन्दुमती किसी बंगला कहानी की छाया नहीं है तो हिन्दी की यही पहली मौलिक कहानी ठहरती है । इसके उपरान्त 'ग्यारह वर्ष का समय', फिर 'दुलाईवाली' का नंबर आता है ।"[2] देवीप्रसाद वर्मा की राय में 'इन्दुमती' में शेक्सपियर के टेम्पस्ट की छाप स्पष्ट है और इसीलिए वे उसे प्रथम मौलिक कहानी मानने को तैयार नहीं हैं । "इन्दुमती में शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' की छाप होने के कारण हम इसे मौलिक नहीं कह सकते । . . . यदि हम निष्पक्ष होकर तथ्यों पर शोध करें, तो सन् 1901 में 'छत्तीसगढ मित्र' मासिक में प्रकाशित 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी है ।"[3] धनंजय देवीप्रसाद के उपर्योक्त प्रस्ताव से सहमत है । उन्होंने लिखा है - "श्री. देवीप्रसाद वर्मा ने जिन तर्कों के आधार पर स्व. माधवराव सप्रे की कहानी, 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी कहा है, वे भले ही बहुत विश्वस्त न हो, लेकिन यह तय है कि सप्रेजी की उक्त कहानी को ही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी होने का गौरव दिया जा सकता है ।"[4] बच्चन सिंह किशोरी लाल गोस्वामी की लिखी हुई 'प्रणयिनी परिणय' को पहली कहानी का गौरव देते हैं । "मेरे विचार से हिन्दी की पहली कहानी 'प्रणयिनी परिणय' है जिसे किशोरीलाल गोस्वामी ने सन् 1887 में लिखा था ।"[5] किन्तु गोस्वामी ने स्वयं अपनी इस कृति को उपन्यास की संज्ञा दी है । राजेन्द्र यादव की राय में

---

1. इनके प्रकाशन-वर्ष काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' के अनुसार हैं ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - §1965§ - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - पृ: 481.
3. देवीप्रसाद वर्मा का लेख - सारिका, फरवरी 1968.
4. धनंजय का लेख - सारिका, मई 1968.
5. बच्चनसिंह का लेख - सारिका, मई 1968.

इस काल की कोई भी कहानी, कहानी होने की मांग पूरी नहीं करती है और इसीलिए हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की लिखी हुई 'उसने कहा था' है । "किशोरीलाल गोस्वामी की इन्दुमती (सन् 1900) पर 'टेम्पेस्ट' की छाप है और रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' और बंगमहिला की 'दुलाईवाली' अपनी मौलिकता के बावजूद कहानी होने की माँग पूरी नहीं करती । यों इन दिनों कहानियाँ तो बहुत निकली होंगी, लेकिन मैं समझता हूँ कि पहली मौलिक और कलापूर्ण कहानी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' है और उससे ही हिन्दी की आधुनिक कहानी का प्रारंभ मानते हैं ।"[1] कमलेश्वर अपने द्वारा संपादित 'पहली कहानी' नामक ग्रन्थ में यह स्पष्ट नहीं कहते हैं कि उपर्योक्त कहानियों में कौन सी कहानी पहली है । वे रामचन्द्र शुक्ल के प्रस्ताव का खंडन तो नहीं करते हैं, किन्तु उनका यह मत है कि माधवराव सप्रे की ये दो कहानियाँ - 'सुभाषित रत्न' और 'टोकरी भर मिट्टी' - शुक्ल जी के प्रतिपादन को पीछे छोड देती हैं । उन्होंने लिखा है - "देवीप्रसाद के मुताबिक माधवराव सप्रे की 'सुभाषित रत्न' हिन्दी की पहली कहानी है जो जनवरी सन् 1900 में छपी और दूसरी मौलिक कहानी भी माधवराव सप्रे की ही है - "एक टोकरी भर मिट्टी" जो सन् 1901 में छपी । यानी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस प्रतिपादन पर कि "इंदुमती" (सन् 1900 जनवरी के बाद), 'गुलबहार' (सन् 1902) 'प्लेग की चुडैल' (सन् 1902) 'ग्यारह वर्ष का समय' (सन् 1903) 'पण्डित और पण्डितानी' (सन् 1903) और 'दुलाईवाली' (सन् 1907) आदि में छपीं और हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी इन्हीं में से कोई मानी जा सकती है, पर माधवराव सप्रे की कहानियाँ एक बडा प्रश्न चिह्न लगा देती हैं - प्रश्न चिह्न ही नहीं, बल्कि आचार्य शुक्ल के प्रतिपादन को पीछे छोड देती है ।"[2]

---

1. कहानी : स्वरूप और संवेदना (द्वितीय संस्करण, 1977) - राजेन्द्र यादव - पृ: 13.
2. पहली कहानी (1985) - सं. कमलेश्वर - पृ: 19-20.

प्रारंभिक कहानियों की सामान्य प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कहानी के इस विशेष काल खण्ड को पूर्व-प्रेमचन्द युग भी कहा जाता है। इसका कारण यही है कि अधिकतर आलोचकों ने प्रेमचन्द के आधार पर हिन्दी कहानी साहित्य का वर्गीकरण किया है जो कि असंगत नहीं है। अतः प्रेमचन्द की कहानियों के पहले लिखित तमाम रचनाओं को मोटे तौर पर पूर्व-प्रेमचन्द युग में रखते हैं। इसका दूसरा कारण यह है कि प्रवृत्तिगत दृष्टि से भी वह अलग है। यहाँ इन प्रारंभिक कहानियों की प्रवृत्तियों पर विचार करना संगत प्रतीत होता है।

प्रारंभिक दौर की कहानियाँ पौराणिक आख्यानों या अतिरंजित कल्पना पर आधारित हैं। पूर्व-प्रेमचन्द युग की इन कहानियों में यथार्थ की अपेक्षा कल्पना की मात्रा अधिक है। मोटे तौर पर प्रस्तुत काल की कहानी मनोरंजन प्रधान थी। विवेच्य काल की बहुत सारी कहानियों में किसी नैतिक या धार्मिक आदर्शों की प्रतिष्ठा का आग्रह परिलक्षित होता है। सत्य, स्नेह, दया जैसे जीवन के सनातन तथा उदात्त मूल्यों की सार्थकता प्रमाणित करना तत्कालीन समय के कहानी - लेखकों का मुख्य उद्देश्य था। इसकेलिए वे कहानी में कोई अस्वाभाविक या अप्रत्याशित प्रसंगों की सृष्टि करते थे।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, किशोरीलाल गोस्वामी, माधव राव सप्रे, रामचन्द्र शुक्ल, बंग महिला आदि इस युग के प्रमुख कहानी-लेखक माने जाते हैं। इनमें कुछ एक लेखक कहानी को युग-बोध की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने में एक हद तक सफल हुए हैं। यह सत्य है, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि के द्वारा प्रवर्तित आध्यात्मिक और सामाजिक आन्दोलन, अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार, पाश्चात्य साहित्य से सीधा-संपर्क आदि ने कहानी - साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

---

1. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया (1965) - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ: 80.

तो भी कहानी अतिशय कल्पना और अतिरंजित बातों के जालों से पूर्णतः मुक्त नहीं हुई थी । किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी, 'इन्दुमती' और शुक्लजी की कहानी, 'ग्यारह वर्ष का समय' को उदाहृत कर हम इस बात की पुष्टि कर पाएँगे । किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' शीर्षक कहानी की इन्दुमती किसी घने जंगल में अपने बूढे पिता के साथ रहती है । वह जंगल के बाहर नहीं निकलती है और इसीलिए किसी दूसरे का मुख भी देख नहीं सकती । एकबार नदी के पानी में अपना प्रतिबिम्ब देखकर वह उसके प्रति मोहित हो जाती है । बाद में बात समझकर वह लज्जित होती है । एक दिन वह एक युवक को देखती है । वह पिता को छोडकर पहला ही पुरुष है जिसका वह साक्षात्कार करती है । उसे वह अपनी कुटी ले आती है । पिता नाराज़ होकर उस अज्ञात युवक की हत्या करने को तैयार होता है । तब इन्दुमती अपने पिता से यों कहती है - "इसमें युवक का कोई दोष नहीं है, उसे मैं ही कुटी पर ले आई हूँ । यदि इसमें कोई अपराध हुआ तो उसका दंड मुझे मिलना चाहिए ।"[1] पुत्री की यह प्रार्थना सुनकर पिता उस युवक को क्षमा देता है । अचानक कुछ लोग आकर उसे बन्दी बनाते हैं । बाद में यह जानकर कि वह युवक राजकुमार है, बूढा उसके साथ अपनी पुत्री की शादी करा देता है ।

प्रस्तुत सुखांत कथा-रचना में घटनाओं का आपसी मेल नहीं के बराबर है । यह सच है कि कहानी मात्र को एकदम यथार्थवादी होने की माँग सर्वथा स्पृहणीय नहीं है । वास्तविक जीवन-स्थितियों से जोडने की आवश्यकता नहीं है । परन्तु इस रचना की लक्ष्योन्मुखी दृष्टि ने इसके स्वतन्त्र स्वत्व को नष्ट किया है ।

---

1. "इन्दुमती" - किशोरीलाल गोस्वामी - कथाक्रम - (स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ) - (1978) - सं. देवेश ठाकुर - पृ: 82.

शुक्लजी की 'ग्यारह वर्ष का समय' की कथा इसप्रकार है - कहानी का प्रमुख पात्र और उसका मित्र किसी एक खंडहर में एक स्त्री से मिलते हैं। उस स्त्री की शादी वर्षों पहले उस गाँव में हुई थी। परन्तु बाढ के कारण उसका गाँव उजड गया था। उस बाढ के बाद वह अपने पति से भी बिछुड गयी थी। इसलिए वह उस खण्डहर में ग्यारह वर्षों से रहती आ रही थी। वह उन दोनों से कहती है - "मुझे यह निर्जन स्थान अपने पिता के कष्टागार से प्रियतर प्रतीत हुआ। यहीं मेरे पति के बाल्यावस्था के दिन व्यतीत हुए थे। यही स्थान मुझे प्रिय है। यहीं मैं अपने दुःखमय जीवन का शेष भाग उसी करुणालय जगदीश्वर की, जिसने मुझे इस अवस्था में डाला, आराधना में बिताऊँगी।"[1] उसकी सारी कथा सुनने के बाद प्रमुख पात्र का मित्र कहता है - "कदाचित तुम पूछोगी, कि इस समय अब वह कहाँ है। यह वही अभागा मनुष्य तुम्हारे सम्मुख बैठा है।"[2] कहानी में एक रहस्यात्मक तथ्य को अन्त तक ले जाने का कार्य ही कहानीकार कर रहा है जिससे कुतूहलता बढती है।

माधवराव सप्रे की "एक टोकरी भर मिट्टी" एक विधवा की गरीबी और उससे ज़मीन्दार साहब की स्वार्थलिप्सा की टकराहट की छोटी-सी कहानी है। कहानी का ज़मीन्दार अपने महल के पास रहनेवाली एक गरीब, अनाथ विधवा की झोंपडी को वहाँ से हटाने का प्रयास करता है। किसी न किसी प्रकार वह उसपर कब्जा कर लेता है और विधवा को वहाँ से निकाल देता है। - "जब से यह झोंपडी छूटी है तब से मेरी पोती ने खाना पीना छोड दिया है। मैं ने बहुत समझाया पर वह एक नहीं मानती। यही कहा करती है कि अपने घर चल, वहीं रोटी खाऊँगी। अब मैं ने यह सोचा कि इस झोंपडी में से एक टोकरी भर मिट्टी लेकर उसी का चुल्हा बनाकर रोटी पकाऊँगी। इससे भरोसा है कि वह रोटी खाने लगेगी। महाराज, कृपा करके आज्ञा दीजिए, तो इस

---

1. ग्यारह वर्ष का समय - रामचन्द्र शुक्ल - कथाक्रम (स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ) - सं. देवेश ठाकुर - पृ: 93.
2. वही - पृ: 95.

टोकरी में मिट्टी ले जाऊँ ।"[1] ज़मीन्दार आज्ञा देती है और वह बूढी टोकरी में मिट्टी भर देती है । विधवा के अनुरोध के अनुसार वह ज्योंही टोकरी को हाथ लगाकर ऊपर उठाने लगता, त्योंही देखता है कि वह काम उसकी शक्ति के बाहर है । तब विधवा यों कहती है - "महाराज, नाराज़ न हो, आप से तो एक टोकरी भर मिट्टी नहीं उठायी जाती और इस झोंपडी में तो हज़ारों टोकरियाँ मिट्टी पडी है । उसका भार आप जन्म भर क्यों कर उठा सकेंगे ? "[2] ज़मीन्दार धन के मद से गर्वित होकर अपना कर्त्तव्य भूल गया था । पर विधवा के उपर्योक्त कथन सुनते ही उनकी आँखें खुल गयीं । उन्होंने विधवा से क्षमा माँगी और उसकी झोंपडी वापस दे दी । देवीप्रसाद वर्मा के शब्दों में, "क्रूर मनुष्य में भी साधुता विद्यमान रहती है, इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को कथाकार ने स्वाभाविक गति से चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया है ।"[3]

पूर्व-आधुनिक युग के कहानीकार अपनी कहानियों में संयोगतत्व या आकस्मिकता लाना चाहते थे । "बंगमहिला" की दुलाईवाली शीर्षक कहानी में आकस्मिकता और कुतूहलता का समन्वय द्रष्टव्य है । इस कहानी के तीन प्रमुख पात्र हैं, वंशीधर, उसकी पत्नी जानकी देय और उसका दोस्त नवल किशोर । नवल किशोर ने वंशीधर को तार द्वारा यह जानकारी दी कि वह अपनी बहू के साथ आज कलकत्ते से इलाहाबाद आ रहा है, इसलिए वंशीधर को अपनी पत्नी के साथ लेकर आज ही जाना है । तार में यह भी कहा गया है कि वे लोग मुगलसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे । वंशीधर पत्नी संग मुगलसराय स्टेशन पहुँचता है ।

---

1. टोकरी भर मिट्टी - माधवराव सप्रे - पहली कहानी (1985) - सं. कमलेश्वर - पृ: 12.
2. वही ।
3. टोकरी भर मिट्टी - एक विवेचन - देवीप्रसाद वर्मा - पहली कहानी - सं. कमलेश्वर - पृ: 15.

गाडी आयी । गाडी में इधर उधर वह नवल को ढूँढने लगा । पर उसका पता नहीं था । वह उदास हुआ और गाडी में यों ही बैठ गया । बहुत-से लोग यात्री थे । पिछले कमरे में केवल एक स्त्री जो दुलाई ओढे अकेले बैठी थी । कभी कभी वह घूंघट के भीतर से एक आँख निकालकर वंशीधर की ओर ताक रही थी । गाडी इलहाबाद स्टेशन पर पहुँची । वंशीधर नवल के न आने पर घबरा हुआ था । स्टेशन पर उतरकर वह उस दुलाईवाली स्त्री से कुछ कहना चाहता था कि दुलाई से मुँह खोलकर नवल किशोर खिलखिला उठा । नवल ने कहा - "मिरजापुर नहीं, मैं तो कलकत्ते से, बल्कि मुगलसराय से तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ ।"[1] पूर्व प्रेमचन्द युगीन इन प्रतिनिधि कहानियों में लक्ष्योन्मुखी दृष्टि बराबर बनी रहती है । यह नीतिप्रधान हो सकती है, परंपरा प्रधान हो सकती है, मूल्य प्रधान हो सकती है । किशोरीलाल गोस्वामी और रामचन्द्र शुक्ल मनोरंजकता के एक अविच्छिन्न अंश को भी अपना लिया है - कुतूहलता को । कहानी के प्रारंभ से लेकर अन्त तक बनी रहनेवाली संदेहग्रस्तता इस कारण से कुतूहलता बनी रहती है । आगे क्या होगा या 'वही तो नहीं' वाली बात कहानी के वाचन का मुख्य घटक हो जाता है । वाचन की परिसमाप्ति रहस्य के खुलने के साथ होती है । लेकिन माधव राउ सप्रे की कहानी के अंतिम प्रकरण में यह रहस्यात्मकता है । मन-परिवर्तन वाली घटना उसकी गहराई नष्ट करते हुए भी मानवीयता का, रोमानी ही सही, अन्वेषण किया गया है ।

मलयालम की आरंभिक कहानियाँ

मलयालम भाषा का सुदृढ संबन्ध संस्कृत से होने से तथा संस्कृत की अपनी केरलीय परंपरा के होने के कारण मलयालम के पाठकों के हृदय में भी संस्कृत की विपुल वाङ्मय समृद्धि के प्रति निष्ठा है । लेकिन जैसे कि कहा गया है भारतीय

---

1. "दुलाईवाली" - बंगमहिला - कथाक्रम (स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ) - सं. देवेश ठाकुर - पृः 102.

भाषाओं में आधुनिक गद्य विधाओं के विकास में संस्कृत साहित्य का योगदान नहीं के बराबर है । केरल की विशेष परिस्थिति के कारण अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी तथा पुर्तगली भाषा के साथ उसका सीधा और गहरा संबन्ध स्थापित हो गया ।

मलयालम कहानी का लगभग सौ वर्षों का अपना इतिहास है । भलेही प्राचीन युग में मलयालम अपने रचनात्मक साहित्य के सन्दर्भ में पहले तमिल से और बाद में संस्कृत से अवश्य प्रभावित है, तो भी पिछले सौ वर्षों से वह अपने आप विकसित हो रहा है । कहानी, उपन्यास आदि इस अवधि में विकसित विधाएँ हैं । स्वतन्त्रता आन्दोलन और राष्ट्रीय नव-जागरण के दिनों में अंग्रेज़ी के माध्यम से पश्चिम साहित्य से परिचय प्राप्त करने का सुअवसर केरल के लेखकों को मिला है । प्रभाव स्वरूप स्वीकृत विधाएँ अल्प काल में ही अपना रूप बना सकीं है । मलयालम साहित्य, जो आरंभ से संस्कृत की रचना -पद्धतियों तथा पुराणों और अन्य क्लासिक कृतियों के सीमित दायरे में पडकर नीरस और निर्जीव बन चुका था उसे जीवन तथा उसके यथार्थ के बारे में विचार करने की प्रेरणा सब से पहले पश्चिम साहित्य से मिली । इस नयी प्रेरणा के फलस्वरूप मलयालम गद्य साहित्य, विशेषकर कहानी-साहित्य को बीसवीं शताब्दी के आरंभ से विस्तृत आयाम मिला है ।

प्रथम मौलिक कहानी

मलयालम साहित्य के इतिहासकारों में किसी ने भी अपनी भाषा की पहली कहानी के विषय में उतना विचार-विमर्श किया नहीं है । जिन दिनों मलयालम में मासिक-पत्रिकाओं का समारंभ हुआ, कहानियाँ लेखकों के नाम के बगैर ही छपी जाती थीं । उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर, जो मलयालम के प्रमुख कवि और साहित्य के प्रथम इतिहासकार हैं, इस विषय में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहते हैं - "कहानी-साहित्य के प्रारंभिक काल के सात विशिष्ट कहानीकार ये हैं -

§1§ वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन नायनार, §2§ ओड्डुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन §3§ आंबाडी नारायण पोतुवाल §4§ एम. आर. के. सी. §5§ एम. रामुण्णि नायर §स>जयन§ §6§ ई.वी. कृष्णपिल्लै §7§ के. सुकुमारन ।"[1] पी. के. परमेश्वरन नायर ने अपने ग्रन्थ, 'मलयालम साहित्य का इतिहास' में लिखा है - "ओड्डुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन, के. सुकुमारन, ई.वी. कृष्णपिल्लै आदि मलयालम कहानी के पथप्रदर्शक लेखक हैं ।"[2] 'भाषा §मलयालम§ गद्य साहित्य का इतिहास' के रचयिता, श्री.टी. एम. चुम्मार ने भी इस विषय पर गहराई से विचार-विमर्श नहीं किया है । उनका कथन है - "यह कहना आसान नहीं है कि मलयालम की पहली कहानी किसने लिखी है । किन्तु यों कहना ठीक होगा कि ओड्डुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन, एम.आर.के.सी, आम्बाडी नारायण पोतुवाल, सी. एस. गोपाल पनिक्कर, के. सुकुमारन, मूर्क्कोत्तु कुमारन आदि मलयालम के प्रमुख आरंभकालीन कहानीकार हैं ।"[3] एन. कृष्णपिल्लै के शब्दों में, "हमारे कहानी-साहित्य का उद्भव विद्याविनोदिनी, भाषापोषिणी, रसिकरंजिनी जैसी मासिक पत्रिकाओं के आर्विभाव के साथ हुआ है । अंग्रेज़ी कथा परंपरा ही उसका मुख्य प्रेरणा-स्रोत थी । वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन नायनार, ओड्डुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन, सी.एस.गोपाल पनिक्कर, आम्बाडी नारायण पोतुवाल, चेंकुलत्तु कुञ्ञिरामन मेनन आदि ने कहानी रूपी जिस साहित्यिक परंपरा का सूत्रपात किया है, उसे के. सुकुमारन और ई.वी. कृष्णपिल्लै ने ही समृद्ध कराया है ।"[4] आधुनिक

---

1. केरल साहित्य का इतिहास §खण्ड.V§ - §1965§ - उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर - पृ: 336.
2. मलयालम साहित्य का इतिहास §1969§ - पी. के. परमेश्वरन नायर - पृ: 144.
3. भाषा §मलयालम§ गद्य साहित्य का इतिहास §1969§ - टी. एम. चुम्मार - पृ: 167.
4. कैरली की कथा §1982§ - एन. कृष्णपिल्लै - पृ: 379.

मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक, सुकुमार अष़ीक्कोड्डु की दृष्टि में प्रथम मौलिक कहानी वेङ्ङयिल नायनार से लिखी हुई 'वासना विकृति' है ।[1] कमलेश्वर द्वारा संपादित पहली कहानी नामक ग्रन्थ में भी इसी को पहली मलयालम कहानी के रूप में स्वीकार किया गया है ।[2]

"वासनाविकृति" वेङ्ङयिल नायनार की पहली कहानी भी है । प्रस्तुत कहानी की कथा यों है – चोरी करते करते एक आदमी बहुत बडा अमीर बन जाता है । एक बार एक नंबूतिरी (केरल के ब्राह्मण) के घर से चोरी करते समय एक दुःखद घटना घटी । सुलाने की दवा ज़्यादा देने के कारण घरवाले की मृत्यु हो गई । नम्बूतिरी की हत्या करने का विचार उसका नहीं था । वहाँ से जो चीज़ें मिलीं वे सब उसने अपनी प्रेमिका को सौंप दीं । प्रेमिका ने उपहार-स्वरूप उन चीज़ों में से एक अंगूठी बनवाकर उसकी अंगुली पर डाल दी । पुलिस से बचने केलिए वह मद्रास चला गया । वहाँ पर एक व्यक्ति की जेब काटते समय वह अंगूठी उसकी जेब में गिर गयी । उसने पुलिस-स्टेशन जाकर शिकायत की । अविलंब चोर पकडा गया । इसके साथ अंगूठी के 'मालिक' की चोरी का रहस्य भी खुल गया । कहानी के प्रमुख पात्र का कहना है – "जब मुझे होश आया तो मेरे हाथों में हथकडियाँ पडी हुई थीं । मेरी जेब से डयरी भी निकाल ली गयी थी । वह मेज़ पर रखी थी । इस बेवकूफी की कमाई – छह महीने के कारावास और बारह कोडे – के बाद अब मैं बाहर आ गया हूँ ।"[3] इस एक कहानी के आधार पर मलयालम की समूची प्रारंभकालीन कहानियों पर एक निर्णय लेना असंगत है । लेकिन

---

1. It is now believed on the basis of extant evidence which can not be qualified as conclusive, that the first ever Malayalam Short-story was 'Vasanavikrithi', attributed to Kesari Kunhiraman Nayanar and published in the 'Vidyavinodini' of 1891.
   - Malayalam Short-stories : An anthology (1976) - Introduction Sukumar Azheekodu - p.IV.

2. पहली कहानी – सं. कमलेश्वर – पृः 213.
3. "वासनाविकृति" – केसरी नायनार की कृतियाँ (1987) – सं. के. गोपालकृष्णन, पृः 6 – अनुः वी. डी. कृष्णन नंबियार – पहली कहानी –(संः कमलेश्वर).

उस युग में लिखी हुई प्राय: सभी कहानियों का एक ऐसा ढाँचा ही वर्तमान है जिसको तोडने का कार्य किसी भी कहानीकार ने नहीं किया है । इन प्रारंभ-कालीन कहानियों की सामान्य प्रवृत्तियों पर विचार करना उचित लगता है ।

वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन नायनार के अलावा मलयालम के आरंभकालीन कहानीकारों में ओट्टुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन, एम. आर. के. सी., आम्बाडी नारायण पोतुवाल, मूर्कोत्तु कुमारन, ई. वी. कृष्णपिल्लै आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । मोटे तौर पर प्रस्तुत काल का कथा-साहित्य मनोरंजन प्रधान है । एम. अच्युतन ने लिखा है - "पुराने कथाकार अपनी कहानियों से लोगों को 'एन्टर्टेन' करनेवाले हैं । उनका लक्ष्य मनोरंजन ही था, जीवन की आलोचना या कोई उद्बोधन नहीं ।"[1] प्राय: इनकी कहानियों में जीवन यथार्थ का चित्रण अनुपलब्ध है । "यथार्थ जीवन से पलायन करने की प्रवृत्ति इन कथाओं की खूबी है । जिन्दगी की असलियत से ये कोसों दूर हैं ।"[2] कुतूहल प्रधान घटनाओं के सहारे कहानी को आगे बढाने की प्रवृत्ति सभी कहानीकारों में देखी जा सकती है । अत: वह निहित रहस्य ही कहानी का मूल है और अन्त में सभी रहस्यों का पर्दाफाश किया जाता है ।[3]

वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन नायनार की कहानी, 'द्वारका' एक स्वप्नाख्यान है । कहानी का नायक समुद्र में डूब जाता है और पौराणिक द्वारका में पहुँच जाता है । कहानी के अन्त में ही हम समझ सकते हैं कि समूची घटना एक स्वप्न का विवरण है ।

---

1. कहानी : कल और आज {1973} - एम. अच्युतन - पृ: 73.
2. पी. कृष्णन का लेख {मलयालम कहानी : कथ्य और शिल्प} - भाषा - दिसम्बर 1982 - पृ: 46.
3. The evolution of Malayalam Short story - M.Achuthan - Malayalam Literary Survey - January-March, 1979.

ओट्टुविल कुञ्ञिकृष्ण मेनन की बहुत सारी कहानियाँ प्रेम और साहस की हैं । 'कल्याणिक्कुट्टि', 'जानु', 'नारायणिक्कुट्टि' और 'केलुण्णि मूप्पिल नायर' उनकी चार प्रमुख कहानियाँ हैं । 'जानु' शीर्षक कहानी में प्रमुख पात्र, कुरुप्पु जानु नामक एक युवति को डाकुओं से बचाता है, पर जब वह उसे लेकर घर पहुँचता है, तब जानु का भाई, कुट्टिकृष्ण मेनन उसे डाकू समझकर उसपर बन्दूक चलाता है । चिकित्सा केलिए ले जाते समय डाकू उन्हें कहीं ले जाते हैं । जानु दुःखी होकर तपस्विनी की तरह जीवन बिताती है । इसी बीच कुट्टिकृष्ण मेनन की शादी कुरुप्पु की बहन के साथ होती है । वर्षों बाद कुरुप्पु और जानु का विवाह भी होता है । कहानीकार ने अपने ढंग से कहानी की घटनाओं को लक्ष्यपूर्ति के हेतु परिवर्तित किया है । अप्रत्याशित घटनाओं के घटने के बावजूद कहानी इच्छित स्थिति पर पहुँचती है ।

आम्बाडी नारायण पोतुवाल की कहानियों की सब से बडी खूबी संभवतः उनकी एकाग्रता और विविधता है । अपनी कहानियों को विश्वसनीय बनाने में पोतुवाल बडी मात्रा में सफल हुए हैं । व्यंग्य उनकी बहुसंख्यक कहानियों की अन्तर्धारा है । एम. आर. के. सी (सी. कुञ्ञिरामन मेनन) मुख्यतः एक ऐतिहासिक कथाकार हैं । 'उक्कंडनुण्णियुडे तरवाडु' (उक्कंडनुण्णि का खानदान), 'कालम पोया पोक्कु' (वक्त की करवट) जैसी कुछ एक सामाजिक कहानियाँ भी उन्होंने लिखी हैं । पर सामाजिक कहानियों की रचना में वे सफल नहीं हुए हैं । 'चंकरमकोत्तु कैमलुडे डयरी' (चंकरमकोत्तु कैमल की डयरी) शीर्षक उनकी ऐतिहासिक कहानी अपनी व्यंग्यात्मकता केलिए प्रसिद्ध है । लेकिन एम. पी. पॉल जैसे प्रसिद्ध आलोचक ने शिकायत की है कि एम. आर. के. सी. की कहानियों में एक सुदृढ कथा-गति नहीं है ।[1]

---

1. कहानी आन्दोलन - (1984) - एम. पी. पॉल - पृ: 68.

मलयालम के आरंभकालीन कहानीकारों में केवल मूर्क्कोत्तु कुमारन और ई. वी. कृष्णपिल्लै ही रोमान्टिक दुनिया से साधारण लोगों की दुनिया में आए हैं । इन दोनों में से, सामाजिक अनाचारों को विषय बनाकर सामाजिक प्रगति को लक्ष्य कर लिखनेवाला कहानीकार सिर्फ कुमारन ही थे । कुमारन के सन्दर्भ में यह सब से उल्लेखनीय बात है ।[1] उत्तर केरल के सामाजिक जीवन का चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है । उनकी पहली कहानी, 'कलिकाल वैभवम' (कलियुग का वैभव) जो सन् 1896 में प्रकाशित हुई है, समाज के परिवर्तित होनेवाले आदर्शों पर आधारित है । मूर्क्कोत्तु कुमारन कहानी के सामाजिक मूल्यों पर अधिक ध्यान देनेवाले कथाकार है । सिर्फ मनोरंजन केलिए लिखी जा रही कहानी को उन्होंने मनुष्य के अनुभवों और अनुभूतियों के प्रकाशन का माध्यम बनाया । 'ओरु पेरिया कुट्टि' (एक छोटा लडका) शीर्षक कहानी में एक छोटे अनाथ बालक का यथार्थ चित्रण हुआ है जिसे पुत्र-वियोग से पीडित अमीर दम्पति अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करते हैं । मलयालम के प्राचीन कवि और 'तुल्लल'[2] जैसी लोक-नृत्यकला के प्रणेता, कुंजन नंबियार और चंबूकारों के व्यंग्य साहित्य की श्रेष्ठ परंपरा का विकास वस्तुतः सञ्जयन (एम. आर. नायर) और ई. वी. कृष्ण पिल्लै से हुआ है । किन्तु ई॰ वी. का व्यंग्य अपने प्रहसनों या लेखों तक सीमित है, अपनी कहानियों में उन्होंने प्रेम जैसे भावों को प्रमुखता दी है । 'प्रेमदास्यम' (प्रेम की गुलामी), 'आ रात्रियिल' (उस रात में) और 'भारतियुडे उपदेशम' (भारती का उपदेश) ई. वी. की प्रमुख प्रेम कहानियाँ हैं । इनमें 'आ रात्रियिल' शीर्षक कहानी के चार खंड हैं । कहानी का प्रमुख पात्र, कुट्टिकृष्णन नायर यात्रा के बीच लक्ष्मिकुट्टि नामक युवति से परिचित होता है । वह उसके प्रति आकृष्ट भी होता है । पाँच महीने के बाद जब वह पुनः वहाँ आता, तब यह जानकर बहुत दुःखी होता है कि लक्ष्मिकुट्टि के परिवार के लोग वहाँ से कहीं चले जा चुके हैं । दो-तीन वर्षों के बाद वह कानून पढने केलिए मद्रास जाता है । वहाँ अपने मित्र, शंकुण्णि नायर के घर में रहता है । शंकुण्णि नायर का बहनोई, रामननायर

---

1. कहानी : कल और आज - एम. अच्युतन - पृ: 83.
2. "तुल्लल" - केरल की एक लोक - नृत्यकला

अपनी बेटी की शादी कुट्टिकृष्णन नायर के साथ कराना चाहता है । लेकिन वह उसी युवति के साथ विवाह करना चाहता है जिससे वर्षों पहले यात्रा के बीच परिचित हुआ था । तब रामननायर कहता है, वह युवति अपनी बेटी, लक्ष्मि-कुट्टि ही है । अन्त में उन दोनों का विवाह होता है । वस्तुत: यह एक लंबी कहानी है और इसमें अस्वाभाविकता का अंश बडी मात्रा में मौजूद है ।

प्रस्तुत काल के कहानीकारों में पलायनात्मकता की प्रवृत्ति सब से अधिक के. सुकुमारन की कहानियों में देखने को मिलती है । पर कथानक के निर्माण में मौलिकता, शिल्प विधान की कलात्मकता, व्यंग्य का अंश, प्रतिपादन का सौंदर्य - ये सब उनकी कहानियों की खूबियाँ हैं ।[1] सामान्यत: सुकुमारन की कहानियों की प्रवृत्ति यह रही है कि उसमें एक जटिल समस्या को निर्मित किया जाता है और अपनी बुद्धि से उस समस्या को सुलझा लिया जाता है । 'सुलोचना' 'ओरु पोडिक्कै' §एक तरकीब§ 'आरान्टे कुट्टि' §किसी का लडका§ 'आनुम एन्टे पेडियुम' §मैं और अपना भय§ जैसी उनकी कहानियाँ व्यंग्य से ओतप्रोत हैं ।

यथार्थवादी युग के पहले की हिन्दी कहानी को प्राय: पूर्व-प्रेमचन्द युग कहा जाता है जब कि मलयालम में उस युग को कहानी का आरंभकाल ही कहा जाता है । लेकिन दोनों भाषाओं की कहानी के इस युग में काफी समानताएँ देखने को मिलती हैं । यह दिलचस्प विषय है कि दोनों भाषाओं में पश्चिमी भाषाओं के संपर्क के कारण ही कहानी का विकास हो गया था । फिर भी दोनों भाषाओं के कहानीकारों ने कहानी को मनोरंजन केलिए लिखना बेहतर समझा था । कहानी और मनोरंजन प्राय: उस युग में पर्यायवाची शब्द हैं । मनोरंजन का भी निश्चित दायरा उस युग के कहानीकारों ने बनाया था । कहानी का आरंभ होते ही पाठकों का ध्यान कहानी में केन्द्रित हो जाए और ऐसी अप्रत्याशित घटनाओं, उन घटनाओं को नियन्त्रित करनेवाली कुतूहलता की

---

1. कथा साहित्य के अग्रदूत - वी. रमेश चन्द्रन - मातृभूमि साप्ताहिक - 23 मई 1976.

प्रवृत्तियाँ, इन दोनों के बीच बिना किसी आस्तित्व के साथ लक्ष्य की ओर बढनेवाले पात्रों के साथ कहानी का रूप-विन्यास संपन्न होता था । कुतूहलता की यह चरम अवस्था प्राय: सभी कहानियों में देखी जा सकती है । उसके अभाव में उस युग में कहानी बिलकुल ही फीकी समझी जाती थी । चरम अवस्था के पश्चात् ही कहानी का अन्त होता था ।

इस युग की कहानियों में मनोरंजन के साथ साथ आदर्शवादिता केलिए भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । कहानियों में आदर्श प्रेमी, आदर्श प्रेमिका, आदर्श पति, आदर्श पत्नी आदि पात्र मिल जाते हैं और कभी कभी कहानी का पूरा वृत्त इन आदर्श पात्रों के साथ संबन्धित भी होता था । मनोरंजन को आदर्श के साथ मिलाने के कारण इन रचनाओं में न स्वस्थ मनोरंजन की प्रवृत्ति है, न ऊँचे दर्जे की आदर्शवादिता । दोनों आरोपित-सा लगता है । इस सन्दर्भ में रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' तथा ई. वी. कृष्णपिल्लै की 'आ रात्रियिल' की आनुषंगिक तुलना करते हुए इस बात को और स्पष्ट किया जा सकता है । 'ग्यारह वर्ष का समय' में सन्यासिन बनकर जीनेवाली नायिका के सामने स्वयं उसका पति उपस्थित है । लेकिन वह भेद अन्त में ही खुल जाता है । 'आ रात्रियिल' नामक मलयालम कहानी में आदर्श प्रेमी अपनी उसी प्रेमिका के घर पर बैठकर शादी की बात चलते समय भी, पुरानी स्मृतियों में भटकता है । अन्त में ही यह रहस्य स्पष्ट होता है कि वह उसी लडकी के पिताजी से बात कर रहा है जिस लडकी से उसका प्रेम था । तथ्य को अन्त तक रहस्यात्मक बनाए रखने की प्रवृत्ति हल्का सा मनोरंजनात्मक अवश्य है । परन्तु साहित्यिक महत्व की दृष्टि से उसका कोई मूल्य नहीं है । हिन्दी कहानी की तुलना में मलयालम कहानियों में उस प्रारंभिक युग में भी व्यंग्य की प्रवृत्ति अधिक मात्रा में नज़र आती है । इसका श्रेय मलयालम का प्रथम व्यंग्यकार, ई॰ वी. कृष्ण पिल्लै को दिया जा सकता है । ई॰ वी॰ कृष्ण पिल्लै के अलावा के. सुकुमारन की कहानियों में भी व्यंग्य की तीव्र अन्तर्धारा है । प्रस्तुत युग की कहानियों के शिल्प में भी समानता देखने को मिलती है । घटना-विन्यास और चरित्रों का विकास एक जैसा ही दीख पडता है । घटनाओं और पात्रों का आपसी संबन्ध प्राय: शिथिल है । भाषा की दृष्टि से भी इस युग की कहानियाँ आरंभकालीन प्रतीति ही दे रही है ।

यथार्थवादी युग - हिन्दी कहानी

प्रेमचन्द और उनकी परंपरा

प्रेमचन्द के आगमन के साथ ही हिन्दी कहानी कल्पना-विलास से हटकर यथार्थबोध के नज़दीक आती है । प्रेमचन्द के साथ हिन्दी कहानी की यथार्थवादी पुष्ट परंपरा का आरंभ होता है । प्रेमचन्द ही हिन्दी के प्रथम कहानीकार हैं जिन्होंने साहित्य को जीवन के यथार्थ के रूप में स्वीकार किया था । रघुवर दयाल वार्ष्णेय के शब्दों में, "उन्होंने (प्रेमचन्द ने) कहानी को तिलस्मी, जासूसी और ऐयारी से निकालकर देश की समस्याओं के समाधान करने में लगा दिया । अतः कहानी कल्पना-लोक से निकलकर यथार्थ भूमि पर आ गई ।"[1] पुरानी और अपनी कहानी संबन्धी मान्यताओं की तुलना करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा - "पुरानी कथा कहानियाँ अपने घटना-वैचित्र्य के कारण मनोरंजक तो हैं, पर उनमें उस रस की कमी है जो शिक्षित रुचि साहित्य में खोजती है । हमारी साहित्यिक रुचि कुछ परिष्कृत हो गई है । . . . अब हम काल्पनिक चरित्रों को देखकर प्रसन्न नहीं होते । हम उन्हें यथार्थ काँटे पर तौलते हैं ।"[2] उनका विचार था, कला यथार्थ न होते हुए भी यथार्थ मालूम होनी चाहिए । प्रेमचन्द की उपर्योक्त घोषणा हिन्दी कहानी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है । उन्होंने मनोरंजन-तत्व को स्वीकार करते हुए उसके सस्तेपन को नकारा है । उनकी साहित्यिक मान्यता का एक मूल्यवान पक्ष भी इसमें निहित है । प्रेमचन्द ने विचित्र घटनाओंवाली कहानी को यथार्थ के तुले पर तौलने का निश्चय किया और इस दिशा में उनका कथा-अभियान शुरू होता है ।

---

1. हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान (1975) - रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पृ: 27.
2. साहित्य का उद्देश्य (1954) - प्रेमचन्द - पृ: 50.

प्रेमचन्द का रचनाकाल सन् 1915 से लेकर सन् 1936 तक है । इस अवधि में उन्होंने लगभग 300 कहानियों की रचना की है । अपनी रचनाओं से उन्होंने हिन्दी कहानी को एक विस्तृत आयाम प्रदान कर दिया । उनकी राय में, "कहानी जीवन से बहुत निकट आ गई है ।"[1] "कला कला केलिए" सिद्धान्त का उनकी दृष्टि में कोई महत्व नहीं था । प्रेमचन्द ने कला जीवन केलिए मानकर उसका मानदण्ड उपयोगितावाद निश्चित किया । उन्होंने स्पष्ट लिखा है – "मुझे यह कहने में हिचक नहीं है कि मैं और चीज़ों की तरह कला को भी उपयोगिता की तुले पर तौलता हूँ ।"[2] अमृतराय ने "कलम का सिपाही" में प्रेमचन्द का यह वाक्य उद्धृत किया है । "हमें यह जानकर सच्चा आनन्द हुआ कि हमारे सुशिक्षित और विचारशील युवकों में भी साहित्य में एक नयी स्फूर्ति और जागृति लाने की धुन, पैदा हो गयी है । लंदन में "दि इंडियन प्रोग्रसीव राइटर्स असोसियेशन" की इसी उद्देश्य से बुनियाद डाली गयी है, और उसने जो अपना मैनिफेस्टो भेजा है, उसे देखकर यह आशा होती है कि अगर यह सभा अपने इस नए मार्ग पर जमी रही तो साहित्य में नवयुग का उदय होगा ।"[3] लंदन की इस सभा के मैनिफेस्टो में साहित्यकार के सामाजिक दायित्व पर ज़ोर दिया गया था । प्रेमचन्द भी साहित्यकार के सामाजिक दायित्व पर विश्वास रखते थे । उनकी दृष्टि में साहित्य की सार्थकता जीवन की व्याख्या या आलोचना करने में होती है । सामाजिक सुधार के उद्देश्य से प्रेरित होकर ही उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है ।

प्रेमचन्द की अधिकतर कहानियों का मूल भाव कोई सामाजिक आदर्श है जिसकी स्थापना उन्होंने यथार्थ के स्थूल और सूक्ष्म धरातलों पर की है ।

---

1. साहित्य का उद्देश्य (1954) – प्रेमचन्द – पृ: 46.
2. कुछ विचार (1965) – प्रेमचन्द – पृ: 16.
3. "कलम का सिपाही" में अमृतराय द्वारा उद्धृत – कलम का सिपाही (1981) पृ: 572-573.

इसीलिए यद्यपि उनकी कहानियाँ यथार्थवादी हैं, कहानी का अन्त किसी सामाजिक आदर्श में होता है । रामदरश मिश्र का कथन सही है । "उनकी यात्रा यथार्थ की है और समापन आदर्श में है ।"[1] इसी को प्रेमचन्द ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कहा है । एक तरह उनकी कहानियों में इन दोनों का - आदर्शवाद और यथार्थवाद का - समन्वय हुआ है ।

कहानी कला का विकास : यथार्थवाद के विभिन्न धरातल

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, प्रेमचन्द की कहानियाँ लम्बे अरसे के अन्तर्गत लिखी गयी हैं (1915-1936) । कला की दृष्टि से या भावों और विचारों की प्रौढ़ता की दृष्टि से उनकी कहानियों को आलोचकों ने कई चरणों में विभाजित किया है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास के अनुसार कलात्मक विकास की दृष्टि से उनकी कहानियों के तीन चरण हैं । (1) प्रारंभिक काल (सन् 1918 तक की कहानियाँ) (2) विकास काल (सन् 1918 से लेकर सन् 1929 तक की कहानियाँ (3) उत्कर्ष काल (सन् 1929 से लेकर सन् 1936 तक की कहानियाँ) ।[2] परमानन्द श्रीवास्तव प्रेमचन्द की 1917 से 1920 तक की कहानियों को उनके रचनात्मक विकास का प्रथम चरण, 1920 से 1930 तक की कहानियों को दूसरा चरण और 1930 से 1936 तक की कहानियों को तीसरा चरण मानते हैं ।[3] किसी भी साहित्यकार के रचनाकाल में कलात्मक विकास की कई भूमियों का होना स्वाभाविक है । अतः उनकी कहानी के विकास के तीन चरण अवश्य माने जा सकते हैं । इन तीनों चरणों में उनकी कहानी कला का उत्तरोत्तर विकास दर्शनीय है तथा उनकी इतिहास-दृष्टि का गतिशील विकास भी ।

---

1. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान (1977) - रामदरश मिश्र - पृ: 7.
2. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (नवम भाग) - कहानी की कहानी - हिन्दी का प्राचीन कथा साहित्य - डा. वासुदेव सिंह - सं. सुधाकर पांडेय-पृ: 97.
3. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ: 95-97.

प्रेमचन्द की अधिकांश कहानियों में उत्तर भारत का सामाजिक जीवन पृष्ठभूमि के रूप में आता है । प्रारंभिक काल की उनकी कहानियों में भारतीय समाज के प्रायः सभी पात्रों और उनकी समस्याओं को उनके समाधान के साथ प्रस्तुत किया गया है । इन कहानियों का विषय राष्ट्रीय भावना और समाज सुधार है । भूल सुधार और हृदय-परिवर्तन ऐसी कहानियों में नया मोड देकर उन्हें सुखान्त बना देता है । "पंच परमेश्वर", 'नमक का दारोगा', 'बैंक का दीवाला', 'बडे घर की बेटी' जैसी कहानियों में यही प्रवृत्ति द्रष्टव्य है ।

प्रेमचन्द की आरंभकालीन कहानी, जैसे कि उपरिवत् सूचित है, विवरणात्मक और घटनाप्रधान है । स्थूल वर्णनों की भरमार भी देखी जा सकती है । उदाहरणार्थ 'पंच परमेश्वर' को ही लें - इस कहानी के जुम्मन शेख और अलगू चौधरी बचपन के दोस्त हैं । जुम्मन अपनी बूढी खाला की जायदाद अपने नाम लिखवा लेता है । कुछ दिनों तक वह उसे ठीक से खिलाता-पिलाता है, बाद में उपेक्षा करता है । खाला गाँव की पंचायत बुलाती है और अलगू चौधरी को सरपंच मानती है । इस मामले पर वह अपना फैसला सुनाता है - "जुम्मनशेख, पंचों ने इस मामले पर विचार किया । उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खाला जान को माहवार खर्च दिया जाए ।"[1] कहानी के दूसरे भाग में अलगू अपने बैल को गाँव के समझू साहू के हाथ एक महीने के करार पर उधार बेच देता है और उसे दिन-रात अपनी इक्का गाडी में जोता रहता है । कठिन प्रयत्न के कारण थोडे ही दिनों के बाद एक दिन वह मर जाता है। वह अलगू को उसका दाम भी नहीं देता है । तब पंचायत जुटती है । इसबार जुम्मन शेख सरपंच चुना जाता है । दोनों पक्षों के बाद वह अपना फैसला सुनाता है - "समझू को उचित है कि

---

1. "पंच परमेश्वर" - मानसरोवर (भाग:7) - (1965) - प्रेमचन्द - पृ: 157.

बैल का पूरा दाम दें । जिस वक्त उन्होंने बैल लिया, उसे कोई बीमारी न थी । अगर उसी समय दाम दे दिये जाते तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते । बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बड़ा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया ।"[1] कहानी का अन्त जुम्मन शेख और अलगू चौधरी के मिलन से होता है । जुम्मन अलगू का आलिंगन करते हुए कहता है - "भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की, तब से मैं तुम्हारा प्राण-घातक शत्रु बन गया था , पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त होता है, न दुश्मन । न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता । आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है ।"[2] सुनकर चौधरी रोने लगता है और दोनों के दिलों का मैल धुल जाता है । कहानी यद्यपि पूर्ण रूप से आदर्शवादी है, तो भी जीवन की वास्तविकता की भी कहानी है । वह मनुष्य जीवन की जटिलताओं के भीतर से निकलकर उसकी यथार्थ सीमाओं को स्पर्श करती है । "प्रेमचन्द अपने परिवेश के प्रति निरन्तर जागरूक रहनेवाले अत्यन्त संवेदनशील साहित्यकार थे । अतः जन-जागृति के महा अभियान में उन्होंने उन मूल्यों को नयी मर्यादा देने का सार्थक प्रयत्न किया जो ग्रामीण जनता के मन में गहरे प्रतिष्ठित थे और जिन्हें नए सन्दर्भ में नया विश्वास देकर जनता के कर्ममय जीवन-प्रवाह के साथ सरलता से जोड़ा जा सकता था ।"[3]

विकासकालीन कहानियाँ घटनाप्रधान होते हुए भी उनमें घटनाओं की उतनी स्थूलता दर्शित नहीं होती है । पात्रों के चरित्र विकास के प्रति प्रेमचन्द

---

1. "पंच परमेश्वर" - मानसरोवर (भाग:7) - प्रेमचन्द - पृ: 163.
2. वही - पृ: 163-164.
3. पंच परमेश्वर : भावात्मक मूल्यों की चरितार्थता - कथाकार प्रेमचन्द - (प्रथम संस्करण) - सं. रामदरश मिश्र और ज्ञानचन्द गुप्त - पृ: 154.

सजग भी दीखते हैं । 'वज्रपात', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'मुक्ति का मार्ग', 'माता का हृदय', 'शान्ति' जैसी इस दौर की कहानियों में कहानीकार आदर्श को आरोपित नहीं करना चाहता, उसे यथार्थ के भीतर से दिखाना चाहता है । "शान्ति" शीर्षक कहानी में शान्ति कहानी के किसी पात्र का नाम नहीं, बल्कि एक ऐसी सूक्ष्म मनोदशा है जो गोपा नामक स्त्री की व्यथा का ही रूप है । "मैं ऊपर जाकर लेटा, तो मेरे दिल का बोझ बहुत हल्का हो गया था, किन्तु रह रह कर यह सन्देह हो जाता था कि गोपा की यह शान्ति उसकी अपार व्यथा का ही रूप तो नहीं है ।"[1] कहानी में देवनाथ की मृत्यु के बाद गोपा बड़े कष्ट सहते हुए अपनी बेटी, सुनीता का पालन करती है और किसी बड़े घर के लड़के के साथ उसकी शादी करा देती है । किन्तु उसका दाम्पत्य अधिक दिन तक नहीं रहता । पति के घर से चले जाने के बाद वह माता के साथ भी रह नहीं सकती । अपनी आत्महत्या से जीवन की सारी यातनाओं से स्वयं मुक्त होती है । यह सोचकर गोपा को भी शान्ति की अनुभूति होती है कि अपनी बेटी ने स्वाभिमान के साथ अपना कर्त्तव्य निर्वाह किया है । उसकी यह अनुभूति और कहानी की यह परिणति मनोवैज्ञानिकता से युक्त है जो इस कहानी को प्रेमचन्द की आरंभकालीन कहानियों से भिन्न करती है ।

उत्कर्षकाल की कहानियों के रूप में उनकी अन्तिम कहानियाँ आती हैं जिनमें उनका दृष्टिकोण तथा कथा-संबन्धी दृष्टि सुदृढ है । उनमें सब से प्रमुख कहानी है, "कफन" जो भारतीय सन्दर्भ में अर्थमूलक यथार्थ के कई पहलुओं को एकसाथ उद्घाटित करती है । कहानी के घीसू और माधव बाप-बेटा है जो भूखे हैं । कठिन तथा विपरीत परिस्थितियों में जीने को अभिशप्त बने उन दोनों के कर्त्तव्यबोध का लोप हो जाता है । जब माधव की पत्नी, बुधिया घर के अन्दर

---

1. "शान्ति" - मानसरोवर - (1965) भाग-1 - पृ: 113.

प्रसव वेदना से कराह रही थी, तब वे उससे निश्चिन्त रहकर घर के बाहर बैठकर आलू खा रहे थे । वे एक दूसरे से घर के अन्दर जाकर उसकी दशा देख आने को कहते हैं । लेकिन दोनों में से एक भी नहीं उठता । दोनों डरते हैं कि देखने जाने पर दूसरा आलू खा जायेगा । बुधिया की मृत्यु होती है, उसकी मृत्यु के कारण कफन खरीदने केलिए उन्हें जो पैसे मिलते हैं उससे वे शराब पी रहे हैं । घीसू को इसपर सन्देह नहीं कि कफन खरीदने केलिए उन्हें फिर पैसा मिलेगा । उसका कथन है - "वही लोग देंगे जिन्होंने कि अबकी दिया ।"[1] वे दोनों आलसी हैं, कोई काम नहीं करते । उनका विचार है - जब काम करने पर भी भूखा ही मरना है तो काम क्यों किया जाय ? इसतरह वे दोनों काम करने की झूठी नैतिकता पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं । आचारों के खोखलेपन से वे अवगत हैं अवश्य, इसलिए कफन केलिए जुटाए रुपये वे शराब में उडा देते हैं । इसतरह इस कहानी की तनावपूर्ण स्थितियाँ एक ही साथ वेदना, व्यंग्य और अस्वीकार बोध पैदा करती हैं । यहाँ प्रेमचन्द का आक्रोश-केन्द्र सामाजिक व्यवस्था है । जीवन के अन्तिम दिनों में वे मार्क्सवाद के प्रति आकृष्ट हुए थे । उनका कथन है - "संसार में जितना अन्याय और अनाचार है, जितना द्वेष और मालिन्य है, जितनी मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गाँठ है । जब तक संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा, तब तक मानव समाज का उद्धार नहीं हो सकता ।"[2] जीवन दृष्टि का यह बदलाव उस समय लिखी गयी कहानियों में भी प्रतिफलित है ।

"पूस की रात" शीर्षक कहानी में प्रेमचन्द ने सामन्तीय प्रथा के दुष्प्रभावों का वर्णन किया है । उस दूषित प्रथा से मुक्त होने की इच्छा ही किसान हल्कू इसमें प्रकट करता है । इसमें समस्या का कोई समाधान नहीं, समस्या अपने

---

1. "कफन" - प्रेमचन्द - "कथाक्रम" (स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ) - पृ: 436.
2. प्रेमचन्द की सम्पादकीय टिप्पणी - "जागरण" - 27 फरवरी, 1933.

गहरे रूप में लाकर अन्त में छोड दी गयी है । यही नहीं, "इसमें मानवीय अनुभवों का एक अनुक्रम, वैचारिक दृष्टि विकास का अबाध रूप में मिलता है ।"[1]

इसप्रकार "कफन", "पूस की रात", जैसी कहानियों में प्रेमचन्द ने मनुष्य को उसके परिवेश में अन्वेषित करने का प्रयास किया है, जो कमलेश्वर की राय में, यथार्थ का तीसरा आयाम है । उन्होंने लिखा है - "पूस की रात", कफन , शतरंज के खिलाडी जैसी कहानियों में उनकी दृष्टि यथार्थ का तीसरा आयाम अन्वेषित करती है । यह तीसरा आयाम मनुष्य को उसके परिवेश "में" अन्वेषित करने का था ।"[2]

प्रेमचन्द परंपरा के अन्य प्रमुख कहानीकार

विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक

प्रेमचन्द के समकालीन और उनकी कहानी-चेतना से प्रभावित एक सशक्त कहानीकार हैं, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक । उनकी पहली कहानी, 'रक्षा-बन्धन' सन् 1913 में प्रकाशित हुई । भाई-बहन के पवित्र रिश्ते पर आधारित प्रस्तुत कहानी कलात्मक दृष्टि से तत्कालीन समय से बहुत आगे की कहानी है ।

उनकी एक दूसरी बहुचर्चित है कहानी, 'ताई'। कहानी की रामेश्वरी एक निःसन्तान स्त्री है । छोटे भाई के पुत्र, मनोहर के प्रति अपने पति का स्नेह उसके मन में काँटे की तरह खटकता है । पात्रों के हृदय-परिवर्तन से कहानियों को सुखान्त बनाने की प्रवृत्ति, जो कि प्रेमचन्द की बहुत सारी कहानियों में द्रष्टव्य है, प्रस्तुत कहानी में लक्षित होती है । पतंग उडाते समय जब मनोहर छत पर से गिर जाता है और उसकी टाँग टूट जाती है, ताई का हृदय इस करुण दृश्य से आन्दोलित हो उठता है । उसके हृदय के अन्तस्तल में सुषुप्त मातृत्व भावना जाग पडती है । समूची कहानी यथार्थ के कई धरातलों से गुज़रकर उसकी समाप्ति आदर्श में होती है ।

---

1. प्रेमचन्द : आज के सन्दर्भ में §1968§ - गंगाप्रसाद विमल - पृ: 107.
2. नई कहानी की भूमिका §1978§ - कमलेश्वर - पृ: 11.

प्रेमचन्द ने जिसप्रकार की पारिवारिक स्थितियों का वर्णन अपनी कहानियों में किया उसी लीक पर चलकर ही कौशिक ने अपनी कहानियों की रचना की है । आदर्शवाद की अन्तर्धारा कौशिक की कहानियों की मूल धारा भी है । वस्तुत: इन दोनों को ही प्रेमचन्द ने प्रश्रय दिया था । लेकिन कौशिक की तुलना में प्रेमचन्द में यह विशेषता भी है जो उनकी व्यापक सामाजिक दृष्टि है । प्रेमचन्द परंपरा के अन्य कहानीकारों में सामाजिक दृष्टि तो अवश्य मिलती है, परन्तु वह व्यापकता या वह गहराई नहीं मिलती जो प्रेमचन्द में मिलती है ।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियाँ प्रकाशित हैं – 'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का कांटा' और 'उसने कहा था' । पहली दो कहानियाँ संयोगों तथा आकस्मिकताओं पर आधारित प्रेम कहानियाँ हैं । इनमें उनकी अन्तिम कहानी, 'उसने कहा था', रचना शिल्प की दृष्टि से उस समय से बहुत आगे की कहानी है ।"[1] इसलिए इस कहानी का ऐतिहासिक महत्व भी है । इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में, "हिन्दी कहानी जब घुटनों के बल चलती थी तो यह पाँव के बल खड़ी होकर चलने लगी थी ।"[2] यह प्रशंसा इस कहानी केलिए सर्वथा सुयोग्य है । लेकिन अन्तिम विश्लेषण में यह कहानी बलिदान के आदर्श पर रची गई ही है ।

यह कहानी कई दृश्यों में विभाजित है । पहले दृश्य में अमृतसर की एक दूकान पर बारह वर्ष का एक लडका, लहनासिंह और आठ वर्ष की एक लडकी मिलते हैं, कुछ समय के बाद अलग हो जाते हैं । दूसरे दृश्य में वर्षों के बाद के एक युद्ध का चित्रण मिलता है । लहनासिंह तब तक एक जमादार बन जाता है और वह 'लडकी' उसकी सूबेदारनी है । युद्ध में अपनी सूबेदारनी के प्रति और बेटे को बचाने में

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास – (1973) – सं. डा. नगेन्द्र – पृ: 593.
2. हिन्दी कहानी : अपनी जबानी – (1968) – इन्द्रनाथ मदान – पृ: 82.

लहनासिंह को अपने प्राणों का भी त्याग करना पडता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार इस कहानी में यथार्थ तथा भावुकता का सुन्दर समन्वय हुआ है । "इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम-मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित है ।"[1] इस कहानी में निःस्वार्थ प्रेम, आत्मत्याग, बलिदान और वीरता के तत्व एक साथ जुडे हुए हैं जो कि एक रोमान्टिक संकल्प है । युद्ध और प्रेम के इस आपसी संबन्ध को व्यक्त करते हुए विजयमोहन सिंह ने यों लिखा है - "यहाँ युद्ध भी एक प्रेम है (भले ही देश प्रेम) और प्रेम भी एक युद्ध (अन्तर्द्वन्द्व के रूप में चलनेवाला युद्ध) । यहाँ शौर्य और स्नेह अथवा श्रृंगार का अपूर्व मिलन होता है ।"[2] हिन्दी के अधिकांश आलोचक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारंभ गुलेरी की इस कहानी से मानते हैं । क्योंकि आँचलिकता, यथार्थ परक वर्णन, पूर्व-दीप्त शिल्प (फ्लाश बाक टेक्निक), क्रियाशील संवादों का आरंभ जैसी बाद की हिन्दी कहानी में आनेवाली कई प्रवृत्तियों के स्रोत इसमें ढूँढे जा सकते हैं । इसीलिए इस कहानी से ही हिन्दी की आधुनिक कहानी का प्रारंभ माना गया है ।

सुदर्शन

सुदर्शन प्रेमचन्द की परंपरा में लिखनेवाले तथा उनके लगभग समकालीन कहानीकार हैं । इनका असली नाम बदरीनाथ है । इनकी कई कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं जो प्रेमचन्द के अनुसरण पर लिखी गई हैं । 'कवि की रात्री', 'हार की जीत' 'कमल की बेटी', 'संसार की सब से बडी कहानी' जैसी सामाजिक यथार्थ की कई कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं । इनमें 'हार की जीत' एक बहुचर्चित कहानी है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास (1962) - रामचन्द्र शुक्ल - पृ: 481.
2. आधुनिक कहानी का प्रस्थान बिन्दु - आज की कहानी (1983) - विजयमोहन सिंह - पृ: 14.

जिस घोडे को बाबा भारती अपने बेटे के समान प्रेम करता था उसी को उस इलाके का एक डाकू चुरा लेता है । अपने प्रिय घोडे को उसे सौंप देने को वह तैयार होता है, पर एक शर्त पर । उसने डाकू से अनुरोध किया - इस घटना को किसी दूसरे के सामने प्रकट न करना । क्योंकि "लोगों को इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास नहीं करेंगे ।"[1] बाबा के इन वाक्यों से डाकू का मनःपरिवर्तन होता है । वह उसे घोडा वापस कर देता है । बुरे स्वभाववाले पात्रों के हृदय परिवर्तन की यह प्रवृत्ति सुदर्शन की कई कहानियों में दृष्टिगत है ।

"प्रेमतरु" भी सुदर्शन की एक चर्चित कहानी है । निस्सन्तान होने के कारण जिस प्रकार एक छोटे से पौधे के प्रति एक दम्पति का प्रेम बढता है और उनकी पुत्र-कामनाओं के अनुरूप वह वृक्ष बडा होता है । निस्सन्तान दम्पति की मनोकामनाओं का सूक्ष्म वर्णन इस कहानी में सुदर्शन ने किया है । लेकिन एक कुटिल व्यक्ति द्वारा पेड कट जाता है तो कामनाओं का अन्त होता है और उसी पेड की टहनियों की चिता में वे दोनों जल जाते हैं । वस्तुतः यह कहानी आदर्श-वादी तो है । परन्तु मानसिक स्थिति का जो सूक्ष्म अंकन मनोवैज्ञानिक सूझ बूझ के साथ अभिव्यक्त होने के कारण सुदर्शन की यह कहानी इस विशेष कालखण्ड की प्रतिनिधि रचना के रूप में चर्चा करने योग्य ही है ।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

भगवतीप्रसाद वाजपेयी भी प्रेमचन्द की भाँति आदर्शोन्मुख यथार्थ-वादी कहानीकार है । उन्होंने अपनी कहानियों में समाज के शोषित और उपेक्षित वर्गों के प्रति सहानुभूति प्रकट की है । सामाजिक शोषण को विषय बनाकर लिखी गयी उनकी कहानियों में 'सम्बन्ध', 'रेशम के कपडे', 'आत्मघात', 'वैषम्य' आदि उल्लेखनीय हैं । उनकी कुछ कहानियों में व्यक्ति के मानसिक जगत का चित्रण करने का प्रयास किया गया है । परमानन्द श्रीवास्तव ने यों लिखा है - "वाजपेयी ने

---

1. "हार की जीत" - तीर्थयात्रा - (1961) - सुदर्शन - पृ: 96.

प्रेमचन्द की कहानी-कला सम्बन्धी विशेषताओं का प्रभाव ग्रहण करते हुए कहानी में मानसिक प्रवृत्तियों का अंकन करने का प्रयत्न किया है ।"[1] उनकी 'निंदिया लागी', 'मिठाईवाला', 'मैना', 'अंधेरी रात', 'इन्द्रजाल' जैसी कहानियों में मानव-मन की तरल भावुकता का अंकन हुआ है । 'मिठाईवाला' शीर्षक कहानी में मानव मन की सात्विक, पर त्यागमय भावना की एक सजीव तस्वीर खींची गयी है । कहानी का मुख्य पात्र गलियों में घूम-घूमकर फेरी लगानेवाला एक मिठाईवाला है । पहले वह उस इलाके का एक अमीर और प्रतिष्ठित व्यक्ति था जो अपनी पत्नी और बाल-बच्चों के साथ सुखमय जीवन बिताता था । किन्तु तकदीर उसके अनुकूल नहीं थी । उसकी पत्नी और बच्चों की मृत्यु हो गयी । मृत पत्नी और बच्चों केलिए उसके दिल में नैतिक कर्तव्य की भावना शेष रह गयी थी । इसलिए उसने अपने जीवन के शेष दिन त्याग, सेवा और वेदना की थपकी देकर काटने का निश्चय किया । "इस तरह के जीवन में कभी कभी अपने उन बच्चों की एक झलक-सी मिल जाती है । ऐसा जान पडता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं ।"[2]

भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानियों की आलोचना करते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं - क्या इनकी कहानियों को हम "मानवता के चीत्कार की कहानियाँ" कह सकते हैं? (यह उपशीर्षक पुस्तक के प्रारंभ में पाया जाता है ।) मेरी अपनी धारणा यह है कि इनमें व्यक्तिगत दुःखों का चित्रण होते हुए भी इन्हें मानवता का चीत्कार नहीं कहा जा सकता । अवश्य इन कहानियों में कुछ ऐसे आदर्शों का निरूपण है जिनमें त्याग और कष्ट सहन की भावना उभर कर सामने आई है । उदाहरण केलिए "अंधेरी रात" कहानी में वेश्या के जीवन की एक साधना प्रदर्शित की गई है और 'मैना' तथा 'हार जीत' और "ट्रेन पर" कहानियों में कुछ आदर्शों केलिए किए त्याग की झलक दिखाई गई है । किन्तु इस आदर्शवादी त्याग

---

1. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ: 107.
2. "मिठाईवाला" - भगवतीप्रसाद वाजपेयी - कथाक्रम (स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ) - सं. देवेश ठाकुर - पृ: 498.

केलिए मानवता का चीत्कार शब्द व्यवहार में नहीं लाया जा सकता"।[1] नन्ददुलारे वाजपेयी के इस विश्लेषण से एक तथ्य सामने उभर आता है और वह है कि भगवती-प्रसाद वाजपेयी की कहानियों की आदर्शपरकता । यह तथ्य उस युग की प्रवृत्ति है या उस युग का मूल लक्ष्य है ।

प्रेमचन्द-परंपरा में आनेवाले अन्य प्रमुख कहानीकारों में ज्वालादत्त शर्मा, विश्वंभरनाथ जिज्जा, जी. पी. श्रीवास्तव, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह आदि के नाम भी विशेष रूप से आते हैं । ज्वालादत्त शर्मा की कहानियों में भी प्रेमचन्द-युगीन हृदय परिवर्तन की प्रवृत्ति पायी जाती है । नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में, "कौशिक, सुदर्शन और ज्वालादत्त की कहानियाँ इस अर्थ में घटना प्रधान और भावात्मक या सुधारात्मक ही कही जा सकती हैं कि उनके भीतर लम्बे समय की योजना रहती है और पात्रों या चरित्रों का हृदय परिवर्तन ही कहानियों का परिणाम है ।"[2] राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह की कहानियों में प्रेमचन्द की कहानियों की, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है । उनकी कई एक कहानियाँ सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं । समाज के उच्च और निम्न दोनों वर्गों के पात्र उनकी कहानी में आए हैं । उनकी एक प्रमुख कहानी है, "कानों में कंगना" जो बडी व्यंग्यात्मक शैली में लिखी गयी है ।

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र"

पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" प्रेमचन्द युग के एक और प्रमुख कहानीकार हैं । वे मूलत: एक विद्रोही प्रकृति के लेखक हैं । उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा सामाजिक विषमताओं और मिथ्याडम्बरों पर खुलकर प्रहार किया है । राष्ट्रीय

---

1. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - (1970) - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ: 218-219.

2. आधुनिक साहित्य (1956) - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ: 248,

भावनाओं से ओतप्रोत कहानियाँ लिखनेवालों में उनका उत्कृष्ट स्थान है । उन्होंने जनता में राष्ट्रीय और आत्मोत्सर्ग की भावना जगाने के उद्देश्य से कई एक कहानियों की रचना की है । इसलिए नन्ददुलारे वाजपेयी इन्हें "हिन्दी के प्रमुख राजनीतिक कहानी लेखक"[1] मानते हैं । उनके 'पंजाब की महारानी' नामक संग्रह की अधिकांश कहानियों में इतिहास पृष्ठभूमि के रूप में आता है । 'पंजाब की महारानी' महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद, अंग्रेज़ों की कूटनीति और दमनचक्र के फलस्वरूप सिक्ख शक्ति के विघटन पर आधारित कहानी है । 'प्रस्ताव स्वीकार', 'गुरु का बाग', 'ऐसी होली खेलो, लाल', 'उसकी माँ', 'दिल्ली का दलाल' और 'बलात्कार' राष्ट्रीय और क्रान्ति की भूमिका पर लिखी हुई कहानियाँ हैं । 'ऐसी होली खेलो, लाल' में देवपुर नामक स्थान के रजपूतों द्वारा मातृभूमि की रक्षा केलिए किए गए बलिदान की कहानी है । कहानी पाँच वर्षीय बालक लालबहादुर सिंह को वृद्ध ठाकुर बघेलसिंह सुनाते हैं । बघेल सिंह के दादा के परदादा कृपालसिंह, युवक महासिंह उसकी प्रेयसी, पद्मा आदि कहानी के मुख्य पात्र हैं । रजपूतों और मुगलों के बीच घमासान लडाई होती है । युद्ध से पहली रात महासिंह पद्मा से अंतिम बार मिलने आता है । वह उसे जौहर का परामर्श देता है । परन्तु पद्मा कहती है कि वह विदेशी मुगल सेनापति के साथ होली खेलेगी । दूसरे दिन युद्ध-भूमि में वह एक तेजस्वी युवक को शत्रुओं को संहार करते हुए देखता है । वह उससे कहता - "धन्य वीर, तुम मेवाड के गौरव हो ।"[2] युवक योद्धा का उत्तर है - "मैं कोई अपरिचित योद्धा नहीं - तुम्हारी पद्मा हूँ ।"[3] दुर्ग के अन्दर राजपूत स्त्रियाँ अग्निकुण्ड में कूदकर जौहर करती है । महासिंह और पुरुष-वेश में उसकी प्रेयसी पद्मा वीरगति प्राप्त करते हैं । मुगल सैनिक युद्ध में पराजित होता है । किन्तु देवपुर के सभी सैनिक मारे जाते हैं और शेष रह जाती है श्मशान की शान्ति । "उग्रजी" अपनी इन कहानियों से देश के नव-युवकों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने का आह्वान देते हैं ।

---

1. आधुनिक साहित्य - (1974) - नन्ददुलारे वाजपेयी - पृ: 215.
2. ऐसी होली खेलो, लाल - (1964) - पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" - पृ: 135.
3. वही ।

प्रेमचन्द परंपरा : संक्षिप्त अवलोकन

सामाजिक कहानियाँ इस युग की देन कही जा सकती हैं। उसके अनेक कारण रहे होंगे। फिर सामाजिकता का गहराता अनुभव इस युग की रचनाओं की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

नैतिक मोह का अवसान इस युग में भी हुआ नहीं है। इस कारण से आदर्शवादिता का बोझ बना रहता है।

वैचारिक हस्तक्षेप कहानियों की कलात्मक महिमा को कम करता रहा है। यह आदर्शपरकता का दूसरा रूप है।

कहानी के रचना कौशल उत्तरोत्तर विकसित दीखता है।

यथार्थवादी युग - मलयालम कहानी

यही सच है कि वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन नायनार से लेकर ई.वी. कृष्णपिल्लै तक के कहानीकारों ने मलयालम में कहानी जैसी साहित्यिक विधा को प्रतिष्ठित किया है। कहानी के संबन्ध में जो अवबोध उन्हें पाश्चात्य साहित्य से मिला था उसके अनुसार व्यंग्य और आलोचनात्मक दृष्टि के बल पर तत्कालीन समय के सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों और मूल्यों को प्रतिफलित करनेवाली कहानियों की रचना उन्होंने की है। पर इनका प्रमुख लक्ष्य मनोरंजन ही था। जीवन की व्याख्या या आलोचना के रूप में मलयालम कहानी का प्रारंभ वी.टी. भट्टतिरिप्पाडु, एम. आर. भट्टतिरिप्पाडु, मुतिरिंकोडु भवत्रातन नंबूतिरी आदि की कहानियों से होता है। मलयालम उपन्यास के क्षेत्र में इस तरह के आलोचनात्मक यथार्थवाद का उदय सन्. 1889 में प्रकाशित ओ.चन्दुमेनन के 'इन्दुलेखा' से हुआ है। श्री. के. पी. अप्पन लिखते हैं - " अपनी कला के माध्यम से समाज की आलोचना करने की परिपाटी वी.टी.भट्टतिरिप्पाडु की कहानियों से शुरू होती है।"[1] इन तीनों कथाकरों ने, जो नंबूतिरी कुल (केरल ब्राह्मण) के थे, अपने

---

1. ग्यारह कहानियाँ (1976) - सं. जोन सामुवल - भूमिका - के.पी.अप्पन - पृ:8.

कुल की खास समस्याओं से जूझने का प्रयत्न किया । वे स्वयं सामाजिक कार्यकर्ता थे । अपनी रचनात्मकता में भी उन्होंने विद्रोही दृष्टि का परिचय दिया । नंबूतिरी जाति के लोगों के जीवन में व्याप्त अत्याचार एवं अनाचार को दूर करना ही उनका उद्देश्य था । अतः उनकी कहानियाँ ज़रूर ही परिवर्तन-कांक्षी थीं । परन्तु उनका दृष्टिकोण एकदम यथार्थवादी रहा है । अतः हम कह सकते हैं कि मलयालम यथार्थवादी कहानी का आरंभ इन तीन कहानीकारों की रचनाओं से होता है ।[1] अपने आदर्शों के प्रचार केलिए उन्होंने कहानी को एक माध्यम बनाया जो कि मलयालम कहानी के इतिहास में एक नयी प्रवृत्ति है । वी.टी.भट्टतिरिप्पाडु की 'अतिकठिनम' (अत्यन्त कठिन), 'एंकिल' (तो), एम.आर.भट्टतिरिप्पाडु की 'मरक्कुडक्कुल्लिले महानरकम' (मरक्कुडा[2] के भीतर का महानरक), मुत्तिरिंकोडु की 'आत्माहुति', 'मरणत्तिन्टे मटियिल' (मृत्यु की गोद में) जैसी कहानियाँ आदर्शवादी हैं । मुत्तिरिंकोडु के उपन्यास, 'अप्फन्टे मकल' (चाचा की बेटी) की भूमिका में ई.एम.एस. नंबूतिरिप्पाडु ने जो लिखा था वह उनकी कहानियों के सन्दर्भ में भी संगत है । "जहाँ भी एक आन्दोलन या परिवर्तन की आवश्यकता हो वे उसकेलिए डटकर खड़े रहते हैं, अपनी लेखनी चलाते हैं ।"[3]

प्रगतिवादी साहित्यिक आन्दोलन की व्यापक पृष्ठभूमि

सन् 1920 से सन् 1948 तक का समय भारत के राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल का समय है । अंग्रेज़ों के विरुद्ध जो संग्राम यहाँ चल रहा था

---

1. मलयालम कहानी और कारूर - एस.गुप्तन नायर - कारूर का कथा संसार - (1968) सं. समीक्षा - पृ: 48.
2. "मरक्कुडा" - नम्बूतिरी स्त्रियाँ बाहर निकलते समय दूसरों से अपने को छिपाने केलिए तमाल पत्र की बनी छतरी का प्रयोग करती थीं ।
3. 'चाचा की बेटी' और अन्य कृतियाँ - (1984) - मुत्तिरिंकोडु - भूमिका - ई.एम.एस. नंबूतिरिप्पाडु - पृ: 21.

वह समूचे भारत में फैल गया । यहाँ के राजनैतिक और सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों की व्याख्या पहली बार इस समय के कथा साहित्य में देखने को मिलती है । तत्कालीन समय के संघर्षमय जीवन का अंकन सभी भारतीय भाषाओं में होने लगा था । इसी तरह सन् 1930 के आसपास भारत में मार्क्सवाद का जो प्रचार हुआ उसका स्पष्ट प्रभाव भी प्रस्तुत काल के साहित्य में देखा जा सकता है । केरल के सन्दर्भ में वर्षों पहले से श्रीनारायण गुरु, चट्टम्बि स्वामी, अय्यनकाली जैसे सामाजिक क्रान्तिकारियों की विशेष भूमिका रही है । उन्होंने धार्मिक अनाचारों और अन्धविश्वासों पर खुलकर प्रहार किया था । नयी सामाजिक चेतना और प्रगतिशील संगठनों (संस्थाओं) की सृष्टि में इनका योगदान महत्वपूर्ण ही है । साहित्यकार के सामाजिक दायित्व से सचेत मलयालम के कुछ प्रगतिशील लेखकों से सन् 1937 में 'जीवत् साहित्य संघटना' (जनवादी साहित्यिक संगठन) की स्थापना हुई है । (इसके एक वर्ष पहले, यानी सन् 1936 में, लखनऊ में प्रेमचन्द के नेतृत्व में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई थी ।) यही 'जीवत् साहित्य संघटना' बाद में 'पुरोगमन साहित्य संघटना' (प्रगतिशील साहित्यिक संगठन) बन गयी ।[1] मलयालम में प्रगतिशील साहित्य के उद्भव के बारे में एम.पी.पाॅल ने यों लिखा है - "साहित्य का जीवन के साथ अटूट संबन्ध है, उसका सामाजिक जीवन पर व्यापक प्रभाव है और वह जीवन का प्रतिबिंब ही नहीं, उसका एक महत्वपूर्ण पहलू भी है । इन मान्यताओं से प्रगतिशील साहित्य का उदय हुआ ।"[2] प्रगतिशील लेखकों के कई आदर्श हैं -- कला कला केलिए नहीं, जीवन केलिए होती है और होनी चाहिए ।

---

1. प्रगतिशील साहित्यिक संगठन - एक सर्वेक्षण - सी. अच्युतमेनन का लेख - जनयुगम साप्ताहिक - मई 1, 1988.
2. साहित्य विचार - एम. पी. पाॅल (1979) - पृ: 105.

दूसरे शब्दों में, साहित्य सोद्देश्य होना चाहिए ।[1] श्री. ई. एम. एस. नम्बूतिरिप्पाडु के शब्दों में, "जीवत् साहित्य संघटना" (जनवादी साहित्यिक संगठन) के लेखकों के विचार में कला का उद्देश्य सामाजिक प्रगति है और सामाजिक प्रगति साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के खिलाफ होती है ।[2] मलयालम के प्रमुख पत्रकार और आलोचक, केसरी बालकृष्ण पिल्लै के आदर्शों से प्रेरणा पाकर साहित्यिक क्षेत्र में आए तकषी शिवशंकर पिल्लै, पी. केशवदेव, पोनकुन्नम वर्की जैसे बहुत से कथाकार प्रस्तुत काल की देन है ।[3] जीवन की व्याख्या या आलोचना के रूप में मलयालम कहानी का विकास वस्तुतः इनके काल में हुआ है । इनके आगमन से समाज के तथाकथित अछूते या अस्पृश्य लोगों को भी पहली बार साहित्य में स्थान मिला जो कि साहित्य के इतिहास में एक नया आन्दोलनात्मक कदम था । सिर्फ मलयालम ही नहीं, अधिकांश भारतीय भाषाओं के तत्कालीन समय का साहित्य इसका गवाह है ।[4]

---

1. (a) "The writers who joined the movement (Progressive Literary movement) believed that literature to be progressive should be give up its catering to the taste of the leisured class and should portrary the life of common man" - Modernity in Malayal K.M.George - Modernity and Contemporary Indian Literature (196 p.296.
   (b) Art should not remain an entertainment stuff for the minority, it must come down to the vast majority. Art is not for art's sake, it is for the sake of life. Literary creativi must become a purposeful act aimed at social progress - these were the messages of the progressive literary movement" - The evolution of Malayalam short story - M.Achuthan - Malayalam Literary Survey, Jan-Mar. 1979.

2. मार्क्सवाद और मलयालम साहित्य - (1974) - ई.एम.एस.नम्बूतिरिप्पाडु - पृ: 20.

3. चुनी हुई कहानियाँ - (1965) - तकषी शिवशंकर पिल्लै - भूमिका - जोसफ मुंडश्शेरी - पृ: 24.

4. Indian Literature since independence - Introduction: K.R. Srinivasa Iyengar (Ed.) (1973) - p. xxxiv-xxxv.

मलयालम कहानी का यथार्थवादी मोड़ तकषी, केशवदेव और पोनकुन्नम वर्की जैसे कहानीकारों में उसकी चरम अवस्था में है । मलयालम में सामाजिक कहानियों का एक भरा-पूरा दौर इन्हीं के माध्यम से शुरू होता है । अतः इन तीन कहानीकारों पर विशेष रूप से विचार करना आवश्यक है ।

तकषी शिवशंकर पिल्लै

"मलयालम की यथार्थवादी कहानी के प्रणेता"[1] तकषी शिवशंकर पिल्लै का साहित्यिक जीवन सन् 1930 में 'सरवीसस' नामक पत्र में प्रकाशित 'साधुक्कल' (गरीब) नामक कहानी से शुरू होता है ।[2] 'वेल्लप्पोक्कत्तिल' (बाढ में) शीर्षक कहानी से वे कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हो गए हैं । 'बाढ में' नामक कहानी अपने मालिक से छोड़े गए एक कुत्ते की करुण कहानी है । कुत्ते की कहानी के साथ साथ इसमें बाढ से ग्रसित 'कुट्टनाडु'[3] के एक साधारण गाँव की यथार्थ-कथा भी आ गयी है । अपने मालिक के प्रति उस कुत्ते का प्रेम, उसकी चेष्टाएँ, उसकी दयनीय भूँक आदि का एक मिला जुला प्रभाव कहानी की संवेदना को गहराता है । यह कहानी भावुक अवश्य है । परन्तु अपनी यथार्थवादिता के कारण भावुकता एकदम हावी नहीं है ।

उनकी 'दीर्घयात्रा' शीर्षक कहानी इस प्रकार है : एक बूढा और बूढी किसी अन्य देश से अपने बूढे बैल के साथ गाँव में आते हैं । उसी रात वह बैल मर जाता है । वे अतीव दुखी होते हैं । उन दोनों का वार्तालाप गाँववालों की समझ में आता नहीं था । गाँववालों में एक बूढा आदमी जो विदेशी बूढों के संवाद का तात्पर्य समझ सकता था । वह बूढा कहता है -

---

1. 'परमार्थंगल' (सच्ची बातें) - भूमिका - केसरी बालकृष्ण पिल्लै - केसरी की साहित्यिक आलोचनाएँ (1984) - पृ: 539.
2. यादों के किनारों पर - (तकषी की आत्मकथा) - (1985) - पृ:95
3. "कुट्टनाडु" - आलप्पुषा जिले की एक तहसील ।

"उसने कहा, इस तरह मैं भी एक दिन मर जाऊँगा । फिर तुझे कौन सहारा देगा? "
एक युवक ने पूछा - "तो उस बूढ़ी ने क्या किया? "
"मेरे भाग्य में ऐसा नहीं लिखा है । इस चेहरे को देखते देखते मैं मर जाऊँगी ।"
"क्यों काका, आपको उनकी भाषा आती है? "
"नहीं ।"
"फिर आप कैसे समझ गए? "
"अलावा इसके वे और क्या कहेंगे? "[1]

यह एक मानवीय अवस्था की कहानी है । उस को तकषी ने इस कहानी में पूरी आत्मीयता से चित्रित किया हैं ।

तकषी की बहुत सारी कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों की आलोचना करनेवाली हैं । ये कहानियाँ शोषण जैसी सामाजिक समस्याओं पर एक खुला आक्रमण है ।[2] 'चात्तन्टे कथा' (चात्तन की कथा), 'ओरु असाधारणा त्यागम' (एक असाधारण त्याग), 'कृषिक्कारन' (किसान), 'भागम' (बंटवारा), 'कल्याणियुडे कथा' (कल्याणि की कथा), 'पेण्मक्कल' (बेटियाँ) जैसी कहानियों में सामाजिक यथार्थ का नग्न चित्रण हुआ है । अपनी 'चुनी हुई कहानियाँ' की भूमिका में तकषी ने यह स्वीकार किया है - "मैं ने कहानी के विषय में केवल सामाजिक समस्याएँ चुन ली हैं । उनमें कुछ महत्वपूर्ण होंगी । किन्तु यह जरूर है कि मेरी सभी कहानियों के केन्द्र में कोई एक सामाजिक समस्या होगी ।"[3]

---

1. "दीर्घयात्रा" - चुनी हुई कहानियाँ (तकषी शिवशंकर पिल्लै) (1965) - पृ: 53.
2. "मेरे साहित्यिक जीवन में एक ऐसा समय था तब मैं सोचता था कि तत्कालीन सामाजिक स्थितियों के विरुद्ध, एक परिवर्तन केलिए आन्दोलन की आवश्यकता है ।" - एक गाँववाला - तकषी (ज्ञानपीठ पुरस्कार स्वीकार करते हुए प्रस्तुत किए भाषण से) - साहित्यलोकम - जुलाई-दिसम्बर - 1986 - पृ: 2.
3. चुनी हुई कहानियाँ - (तकषी) - भूमिका - तकषी - पृ: 18.

उनकी अधिकतर कहानियों का विषय "कुट्टनाटु" के गरीब किसानों का त्रासद जीवन है । गरीबों को कहानी में लाना उनकी यथार्थवादी दृष्टि का मूलभूत लक्ष्य है । "कृषिक्कारन" §किसान§ शीर्षक कहानी का केशवन नायर उनकी बहुसंख्यक कहानियों का प्रतिनिधि पात्र है । जिस भूमि में वह खेती करता था वह उससे छीन ली जाती है । तब वह दूसरों के खेतों में जाकर वहाँ घूम-फिरकर अपने हृदय के किसान को तृप्त करता है । "अब भी हर रोज़ केशवन नायर पहले की तरह खेत जाया करता है । अब वह स्वंय खेती नहीं करता है, किन्तु सुबह ही खेत जाना उसका स्वभाव-सा बन गया है । तीस-चालीस वर्षों से वह यही कर रहा है ।"[1] खेतों में जब कोई दोष दिखाई दें तो वह बडा दुःखी होता है । इसी तरह "कुट्टनाटु" के "पुलयों और परयों का"[2] यथार्थ जीवन तकषी की कहानियों में सजीव हो उठा है । इन कहानियों में रोमानी भावुकता का पुट तनिक भी नहीं है । उनमें सिर्फ जीवन का यथार्थ स्पन्दित हो उठा है ।

तकषी की कुछ एक कहानियाँ चरित्र प्रधान और मनोवैज्ञानिक हैं । फ्रोयड और एड्लर के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रभाव उनकी "चापल्यम" §चपलता§, 'अस्पतामवयस्सिल' §साठवीं उम्र में§ जैसी कहानियों में द्रष्टव्य है । 'चापल्यम' §चपलता§ शीर्षक कहानी की कमलम्मा एक नौजवान कॉलेज विद्यार्थी में वर्षों पहले मरे हुए अपने बेटे को तथा अपने प्रियतम को एक साथ देखती है । वात्सल्य और यौन-भावना का यह संघर्ष कहानी को एक नया आयाम प्रदान करता है जो कि मनोवैज्ञानिक तत्वों पर आधारित है ।

---

1. "कृषिक्कारन" §किसान§ - चुनी हुई कहानियाँ - तकषी §1965§ - पृ: 369.
2. "पुलय और परय" - केरल की दो अनुसूचित जातियाँ हैं ।

पी० केशवदेव

केशवदेव यथार्थवादी युग के एक अन्य प्रमुख कहानीकार हैं । मार्क्सवादी आलोचक के. दामोदरन ने लिखा है – "विद्रोहात्मक और संघर्षमय सामाजिक जीवन के अनुभवों को आत्मसात करके, नये युग की प्रवृत्तियों को मूर्त रूप देने का कार्य सब से पहले शंकरकुरुप्पु, चंड्डंबुषा कृष्णपिल्लै, तकषी और केशवदेव ने किया है ।"[1] तकषी में यथार्थवादी, प्रकृतवादी (नैचुरलिस्ट) और सामाजिक यथार्थवादी तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी का समन्वित रूप है तो केशवदेव में यथार्थवादी और सामाजिक यथार्थवादी का रूप है । अलावा इसके उनमें आदर्शवाद और रोमान्टिकता का समन्वय भी हुआ है । "कुट्टनाटु" के साधारण लोगों और किसानों का चित्रण जितनी आत्मीयता और समग्रता के साथ तकषी ने किया है, उतनी ही समग्रता से केशवदेव ने शहरी कारखानों के मजदूरों का चित्रण किया है । उनके ही साथ रहकर वे मार्क्स और लेनिन के आदर्शों का प्रचार भी करते थे । साहित्यिक प्रतिबद्धता से ही नहीं, सामाजिक प्रतिबद्धता से प्रेरित होकर देव ने कहानियाँ लिखी हैं ।[2] आर्थिक और धार्मिक ऊँच-नीच से ग्रसित संकीर्ण सामाजिक व्यवस्था का मानवीय मन पर जो असर पडता है उसकी गहराई को दिखाने केलिए ही उन्होंने लेखनी चलाई । रचना-संबन्धी अपनी मान्यताओं को व्यक्त करते हुए स्वयं देव ने लिखा है -"मैं एक सोद्देश्य साहित्यकार हूँ । मेरी कहानियों, उपन्यासों, नाटकों के उद्देश्य होते हैं । अपने समाज की गुलामी और अन्य समस्याओं का समाधान ढूँढना, जीवन-सुख को बढाकर दुःख को कम करना, इन सब से ऊपर मनुष्य में निहित मानवीयता को ऊपर उठाकर पाशविकता को पराजित करना ही मेरा उद्देश्य है ।"[3]

---

1. साहित्यिक आलोचना - (1982) - के. दामोदरन - पृ: 111.
2. Malayalam Short Stories - An Anthology - Introduction Sukumar Azheekodu - p.11-12.
3. उपन्यास: उपन्यासकार की दृष्टि में (1973) - पी. केशवदेव-पृ: 55-56

देव आदर्शवादी हैं । डा. के. राघवन पिल्लै के शब्दों में "उनका आदर्शवाद यथार्थवाद की सीमाओं का उल्लंघन करता है । अपने समकालीन कथाकारों में उन्होंने ही पात्रों को सब से अधिक आदर्शात्मक बना दिया है ।"[1] सामाजिक शोषण तथा अन्य अनाचारों और अत्याचारों पर उन्होंने खुलकर प्रहार किया है । उनका आक्रोश-केन्द्र वे सामाजिक स्थितियाँ हैं जिनकी अयाचित उपस्थिति की वजह से समाज के निचले तबके के लोग अनेक प्रकार के शोषण के शिकार बने हुए हैं । ऐसी कहानियों पर देव का प्रचारक उनके कलाकार पर हावी रहता है । "नर्स" शीर्षक कहानी की नर्स का कहना है - आज की सामाजिक व्यवस्था में कोई भी, विशेषकर स्त्रियाँ, मान के साथ रह नहीं सकती । आज का सामाजिक गठन एक ऐसा शोषण तंत्र है जो मानवीय आस्था को कुचल डालता है, सच्चाई की अवहेलना करता है और कपटता का पालन करता है । हर किसी को या तो उस तंत्र में फंसकर स्वयं मिटना होगा या उसका सामना करके उसे मिटाना होगा ।"[2] परिस्थिति वश वेश्या बनी लक्ष्मी का कथन है - "समाज - वह क्या है? एक कारखाना जो चोरों, व्यभिचारियों और अत्याचारियों की सृष्टि करता है । नैतिकता-वह क्या है? गुप्त अनैतिकता ही है ।"[3] इन दोनों कहानियों में पात्र की जबान बनकर कथाकार ही बातें करता है । ये प्रचारक देव के विचार हैं । अपने को एक प्रचारक मानने में उन्हें तनिक भी हिचक नहीं हैं । उन्होंने स्वयं स्वीकारा है - "साहित्य साहित्य केलिए" माननेवाले कुछ साहित्य-सेवी हैं । उनकी स्वीकृति और बधाईयाँ मैं नहीं चाहता हूँ । वे कहते होंगे, कि मैं एक प्रचारक हूँ । हाँ - मैं गर्व के साथ कहता हूँ कि मैं एक प्रचारक हूँ - प्रगति का प्रचारक ।"[4] उनकी 'प्रतिज्ञा', 'अयलक्कारी', (पडोसिन) 'कूलड्रिंग्स',

---

1. के. राघवनपिल्लै का लेख - भाषापोषिणी - अप्रैल-मई - 1984 - पृ: 73.
2. "नर्स" - चुनी हुई कहानियाँ - (1972) - केशवदेव - पृ: 148.
3. "वेश्यालयत्तिल" (वेश्यालय में) - चुनी हुई कहानियाँ (दूसरा भाग) - (1969) - केशवदेव - पृ: 33.
4. मैं क्यों लिखता हूँ? - केशवदेव : पच्चीस वर्ष पहले (1967) - पी. केशवदेव - पृ: 123-124.

"अच्छनुम भार्यपुम" §पिता और सौतेली माँ§, 'निक्षेपम'§जमा§, 'जीवितसमरम' §जीवन-संग्राम§, 'मरच्चीनी' §टैपियोका§ जैसी कहानियों में गरीबी, बेकारी आदि ज्वलन्त समस्याओं का चित्रण मिलता है । गरीब लोगों की भूख, आँसू, उनके मोह और मोहभंग इन सब को देव ने बडे ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है । "मरच्चीनी' §टैपियोका§ शीर्षक कहानी का विजयन एक अवर श्रेणी लिपिक है । शादी के छः महीने के बाद उसके सास-ससुर बहुत दूर से घर आए हैं । घर में मात्र उसकी पत्नी, राजम्मा है । पाँच बज गए है । उन्हें देने को घर में कुछ भी नहीं है । जब विजयन दफ्तर से आता है, वह दूकान से चाय लिवा ले आता है । किन्तु इसी बीच ससुर ने दूकान जाकर चाय पी थी । उसने बताया -

"मैं ने चाय पी है ।"

"बेटी ने पूछा - "कहाँ से पी' "

"जहाँ से यह चाय लिवा ले आयी हो ।"

सुनकर दोनों - विजयन और राजम्मा - स्तब्ध हो जाते हैं ।

सिवा कुछ गेहूँ के घर में कुछ भी नहीं है । विजयन अपने पडोसी, कुट्टन के अहाते से कुछ टैपियोका चुरा लेता है । चुरा लेते समय वह पकडा जाता है ।

"मैं ही हूँ, बचा दीजिए ।"

कुट्टन का सवाल :अरे आप ! आप तो एक सरकारी अफ्सर है' फिर भी' "

"जब वेतन मिलेगा, तब इसका दाम चुका दूँगा । अब क्या मैं इसे ले चलूँ' घर में दो मेहमान आए हैं ।"

"आपको यह लेकर जाना नहीं चाहिए । आप जाइए । मैं इसे वहाँ पहुँचा दूँगा ।"

कुछ ही क्षणों में टैपियोका लिए वह दरवाज़े पर आया -

"इसे आप ही लीजिए । पैसा-वैसा कुछ नहीं चाहिए ।"[1]

---

1. "मरच्चीनी" §टैपियोका§ - चुनीहुई कहानियाँ §दूसरा भाग§ - केशवदेव - पृ: 244-251.

गरीबी की मजबूरी को बिना किसी हेर-फेर के साथ केशवदेव ने चित्रित किया है। गरीबी की मजबूरी किस कदर मनुष्य को अनियंत्रित करता है, किस कदर वह अमानवीय हो सकता है उसका संकेत भी कहानी में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। देव की अधिकतर कहानियाँ इसी कोटि में आनेवाली हैं। कहीं उनमें विद्रोह का स्वर है तो कहीं शोषण और गरीबी की कारुणिकता है।

पोनकुन्नम वर्की

पोनकुन्नम वर्की की कहानियों का मुख्य विषय मध्य 'तिरुवितांकूर'[1] के साधारण गरीब किसानों के जीवन की समस्याएँ हैं। धर्म और ईश्वर के नाम पर पादरियों और अन्य धार्मिक व्यक्तियों द्वारा किए जानेवाले अनेक प्रकार के शोषण के और सर.सी.पी. रामस्वामी अय्यर[2] की दमन नीतियों के चित्र इन कहानियों में पूरी सजीवता के साथ आए हैं।

धर्म के नाम पर होनेवाली धोखेबाजी और शोषण का पर्दाफाश करते हुए वर्की ने कई एक कहानियाँ लिखी हैं। वी. रमेशचन्द्रन ने यों लिखा है - "अपने समाज की, विशेषकर पौरोहित्य की आलोचना करते समय वर्की का स्वर तीक्ष्ण बन जाता है। मलयालम साहित्य में पौरोहित्य को केन्द्र बनाकर पोञ्ञिक्करा राफी, अय्यनेत्तु, पेरुम्ना तोमस जैसे कई लेखकों ने लिखी है। लेकिन वर्की ही उसके परिणामों की अवहेलना करते हुए सब से पहले उस क्षेत्र में आए थे। यही नहीं, ऐसी धार्मिक संस्थाओं को वर्की से जितना आघात मिला उतना और किसी से नहीं मिला होगा।"[3] कृष्ण चैतन्या भी रमेशचन्द्रन के उपर्युक्त प्रस्ताव से सहमत हैं।[4] 'अन्तोणी नीयुमच्चनायोडा'[1] (अन्तोणी, क्या तुम भी पादरी

---

1. तिरुवितांकूर - प्राचीन केरल की दक्षिणी रियासत।
2. सर.सी.पी. रामस्वामी अय्यर - तिरुवितांकूर का एक स्वेच्छाचारी दिवान।
3. पोनकुन्नम वर्की की कहानियाँ (1969) - वी. रमेशचन्द्रन - पृ: 63.
4. A History of Malayalam Literature - (1971) - Krishna Chaitanya - p.333.

बन गए' §, 'पालेंकोडन' §केला§, 'नान्सेन्स' जैसी कहानियाँ इसी कोटी में आनेवाली हैं। पौरोहित्य के कई पहलुओं को 'अन्तोणी, नीयुम अच्चनायोडा' शीर्षक कहानी में एक साथ चित्रित किया गया है। उनकी बहुत सारी कहानियों के मूल में राजनैतिक और सामाजिक यथार्थ की अवधारणा है। केसरी बालकृष्ण पिल्लै के मतानुसार मलयालम में राजनैतिक कहानियों की रचना सब से पहले वर्की ने की है। प्रमुख कवि, आलोचक और संपादक एन.वी. कृष्णवारियर के शब्दों में, "वर्की का रचनाकार मुख्य रूप से एक गीतकार या दार्शनिक का नहीं, बल्कि समाज-सुधारक और राजनैतिक नेता का है। असाधारण व्यक्तित्व वाले चरित्रों के विश्लेषण में ही नहीं, अपने चारों ओर के अत्याचारों और भ्रष्टाचारों का पर्दाफाश करने में उनकी विशेष रुचि है।"[1] दिवान सी.पी. रामस्वामी अय्यर की दमन नीति के खिलाफ आवाज़ उठाने केलिए वर्की ने अपनी कहानियों को माध्यम बनाया है। 'मॉडल', 'मन्त्रिक्केट्टु' §मुहरे का बन्धन§ जैसी कहानियों में प्रचारक वर्की का रूप देखने को मिलता है। 'मॉडल' कहानी का सी.पी. फ्रानसीस सी.पी. अय्यर का प्रतिरूप ही है। कहानी का पप्पन दर्जी, फ्रानसीस के हाथ में एक कुर्ता सिलाने केलिए देता है। सिला हुआ कुर्ता उसे पसन्द नहीं आया। उसने कहा - "यह मुझे नहीं चाहिए। तू ही पहन लेना . . . यह पहनने पर मेरा दम घुट जाता है।" कुछ सोचने के बाद फ्रानसीस ने कहा - "तुम अंग्रेज़ मॉडल की बात करते हो। यह ठीक नहीं। तुम्हारे लिए 'अमेरिकन मॉडल' ही ठीक होगा"।

"मेरा मॉडल तय करनेवाला आखिर मैं हूँ या तुम?"

"वह तो मैं ही हूँ, तुम नहीं।"[2]

अन्त में एक दिन पप्पन अपना मनपसन्द कुर्ता चुन लेने दूकान गया।

---

1. पोनकुन्नम वर्की की चुनी हुई कहानियाँ §1968§ - भूमिका - एन.वी. कृष्णवारियर - पृ: 15.
2. "मॉडल" - चुनीहुई कहानियाँ - पोनकुन्नम वर्की - पृ: 62-63.

"पप्पन बेखबर था । उसे अपनी शक्ति पर पूरा विश्वास था । लोग जमा हो गए । पप्पन दूकान में घुस गया । फ्रानसीस ने अपना सिर झुकाया । उनके सेवक चौंक गए । अपना मनपसन्द कुर्ता पप्पन ने चुन लिया । लोगों ने ताली बजायी ।"[1] सी.पी. अय्यर के 'अमेरिकन मॉडल' शासन के विरुद्ध उस वक्त समूचे तिरुवितांकूर में आन्दोलन चल रहा था । इस कहानी का व्यंग्य उस तरफ संकेतिक है । स्वेच्छाचारी शासक आम लोगों से निष्कासित हो जाने का प्रतीकात्मक चित्रण इसमें हुआ है । साधारण लोगों की शक्ति पर वर्की का पूरा विश्वास था । इसी तरह उनकी "मन्त्रिक्केट्टु" के आशान पर भी सी.पी. रामस्वामी अय्यर की छाया पडी है । इस कहानी में भी जनता की विजय होती है और स्वेच्छाचारी शासक को वहाँ से हट जाना पडता है ।

किसानों के जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते समय वर्की की लेखनी अधिक सजीव हो उठती है । "शब्दिक्कुन्ना कलप्पा" {आवाज़ करती हल} शीर्षक कहानी का "आउसेप्पुचेट्टन" केरल का ही नहीं, शोषण और गरीबी से दबे हुए भारतीय किसान का प्रतिनिधि पात्र है जो अपने बैलों को पुत्र की तरह प्यार करता है । अपनी बेटी, कत्रि की शादी के समय दहेज देने केलिए उसको अपने प्यारे बैल को भी बेचना पडता है । उसके बाद उसका जीवन बहुत दुखद बन जाता है । एक वर्ष के बाद बेटी के प्रसव के अवसर पर उसे कुछ अधिक रुपये खर्च करने पडते हैं । कपडे और नव-जात शिशु को आभूषण खरीदने केलिए वह शहर जाता है । शहर में कसाई की दूकान में अपने प्यारे बैल को देखकर वह बहुत दुःखी होता है । कपडे और आभूषण खरीदने केलिए लाए रुपये से वह अपने बैल को खरीदकर घर ले जाता है । कपडे के बदले बैल को देखकर उसकी पत्नी, मरियम बिगड जाती है और बेटी दुःखी होकर रोती है । "अउसेप्पुचेट्टन अपनी चिबुक पर हाथ रखकर मौन बैठ रहा है ।

---

1. "मॉडल" - चुनीहुई कहानियाँ - पोनकुन्नम वर्की - पृ: 63.

मरियम उसपर गाली देती रही । कत्ति रोती रही है । अउसेप्पुचेट्टन का सारा शरीर पसीने से तर गया था।रोती हुई कत्ति ने कहा - "मैं ने यह कभी नहीं सोचा, बापु ।" आउसेप्पुचेट्टन ने भर आए गले के साथ यों बताया - "बिटिया, मेरेलिए यह भी तुझ जैसा है ।"[1] दूसरे दिन बैल के पैर के घाव पर लगाने केलिए जब वह दवा लाता है, तो वहीं उसकी लाश देखकर उसे बेहद दुःख होता है । उस समय ऊपर हल पर बैठी छिपकली चिक चिक कर रही थी । एन.वी.कृष्णवारियर का यह कथन सही ही है । - "मिट्टी और मनुष्य के तथा जानवर और मनुष्य के संबन्ध की एवं आर्थिकता पर अधिष्ठित नये मूल्यों और किसानों के जीवन के सनातन मूल्यों के द्वन्द्व की सुन्दर झांकी प्रस्तुत कहानी में मिलती हैं ।"[2] वे आगे लिखते हैं । - "भारत के सभी प्रदेशों के ग्रामीण किसान प्रायः समान होते हैं । उनकी आशा और निराशा, सुख और दुःख, भय और सन्देह - सभी प्रायः समान होते हैं । उत्तर भारत के किसानों के जीवन के चित्रण में प्रेमचन्द की जो क्षमता और अधिकार रहा है, वह हमारे पहाडी किसानों के चित्रण में वर्की को भी मिला है । गाँधीवादी विचारधारा के अनुरूप प्रेमचन्द के मन में ग्रामीण किसानों के बारे में जो आदर्श था, वह प्रगतिवादी वर्की की कहानियों में भी द्रष्टव्य है ।"[3] "ओराल कूडे" (एक और आदमी) शीर्षक कहानी के एत्तप्पान का यह कथन वर्की का जीवन-दर्शन भी है - "जी. हुज़ूर, मनुष्य तो अच्छा है, परिस्थितियाँ ही उसे शैतान बनाती हैं ।"[4] वर्की का यह जीवन दर्शन प्रेमचन्द के हृदय परिवर्तन के दर्शन से भी मिलता जुलता है । आलोचक रामदरश मिश्र के शब्दों में, "प्रेमचन्द के भीतर संस्कार रूप से

---

1. "शब्दिक्कुन्ना कलप्पा" (आवाज़ करती हल) - आवाज़ करती हल - (1962) - पोनकुन्नम वर्की - पृ: 149.
2. चुनी हुई कहानियाँ -(पोनकुन्नम वर्की) - (1968) - भूमिका - एन.वी.कृष्ण-वारियर - पृ: 19.
3. वही ।
4. "ओराल कूडे" (एक और आदमी) - चुनी हुई कहानियाँ - पोनकुन्नम वर्की - पृ: 297.

स्थित मानवीय मूल्यों को गाँधीवाद के रूप में एक मूर्त दर्शन प्राप्त हो गया । वह दर्शन है - मनुष्य मूलतः सदाशयी होता है किन्तु परिस्थितियों में पडकर बुरा बन जाता है । उन परिस्थितियों के फट जाने पर या किसी वजह से उन परिस्थितियों के बीच पडे व्यक्ति के विवेक के जाग जाने पर मनुष्य की मूलभूत सदाशयता ऊपर आ जाती है ।"[1]

तुलनात्मक दिशाएँ

सभी भारतीय भाषाओं का एक यथार्थवादी युग रहा है । प्रगतिवादी साहित्यिक आन्दोलन ने इस युग को अधिक विकसित किया है । हिन्दी और मलयालम में प्रगतिवादी आन्दोलन के पहले ही यथार्थवादी युग का आरंभ हो चुका है । अपने समाज में व्याप्त दुस्थितियों के विरोध में दोनों भाषाओं के रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलाई है । प्रगतिवादी आन्दोलन ने आगे चलकर इसकेलिए एक सुनिश्चित दिशा दी है ।

समाज की अर्थमूलक स्थितियों पर पहले-पहल यथार्थवादी कहानीकारों की दृष्टि पडी है । शोषण के दमन-चक्र का विरोध ही उन्होंने अधिक किया है । विरोध निचले वर्ग के लोगों की तरफ से दिखाना ही उनका उद्देश्य था । अतः इस युग की कहानी में समाज की निम्न श्रेणी के अधिकतर पात्र उभर कर आए हैं । यह ज़रूर है कि टाइप पात्रों का सृजन ज़्यादा हुआ है । दोनों भाषाओं के रचनाकारों ने ऐसे दर्जनों पात्रों का सृजन किया है ।

मलयालम और हिन्दी के इस युग के कहानीकारों ने किसानी जीवन को भी विषय के रूप में स्वीकार किया है । क्योंकि सामन्तीय व्यवस्था के प्रसार के कारण शोषण का सीधा असर किसानी जीवन पर पडता था । ज़मीन्दारी

---

1. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान - रामदरश मिश्र - पृ: 8-9.

प्रथा को ब्रिटीश सत्ता ने प्रोत्साहन दिया था । इसलिए दुहरे स्तर पर शोषण की चक्की में पिसनेवाले किसानों को तकषी, प्रेमचन्द, वर्की आदि ने चित्रित किया है ।

दलित वर्ग का उद्धार भी इनका लक्ष्य रहा है । अभिजात वर्ग के लोगों ने जिस प्रकार एक दलित वर्ग को निर्मित किया उसका अपना एक समाज-शास्त्र है । प्राय: इस युग के सभी यथार्थवादी कहानीकारों ने समाजशास्त्र के इस पहलू को अपनी रचनाओं की अन्तर्धारा के रूप में स्वीकार किया है ।

अपनी भूमिकाओं में, अन्य वक्तव्यों में, साहित्यिक मान्यताओं को व्यक्त करते समय दोनों भाषाओं के रचनाकारों ने अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का खुला परिचय दिया है । अत: उनकी कहानियाँ उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता की अभिव्यक्ति ही हैं ।

कहानी के कलापक्ष पर गौर करने की बात के प्रति वे उतने सचेत नहीं थे । इसलिए उनकी कहानियों का साहित्यिक पक्ष संपूर्ण नहीं है । कहीं अनावश्यक स्थूलता, पात्रों एवं स्थितियों की अनावश्यक काट-छाँट इनकी कहानियों को दोषपूर्ण बनाती है ।

वैचारिक हस्तक्षेप सर्वत्र विद्यमान है । दोनों भाषाओं के कहानीकारों की कुछ एक कहानियों में वैचारिक हस्तक्षेप की मात्रा कम है, लेकिन अपनी वैचारिकता को बलपूर्वक कहानी में प्रस्तुत करने का विचार इनका रहा है । इनकी साहित्यिक मान्यताओं में यह बात व्यक्त हुई है ।

प्रेमचन्द-युग में व्यक्त्युन्मुख धारा का प्रवर्तन

प्रसाद और उनकी परंपरा

जयशंकर प्रसाद प्रेमचन्द के समकालीन कहानीकार हैं । लेकिन उनकी कहानियाँ सामाजिक गतिविधियों से संबन्धित नहीं हैं । उनकी कहानियाँ वैयक्तिक हैं । प्रसाद हिन्दी कहानी में वैयक्तिक यथार्थवाद के प्रवर्तक माने जाते हैं । उनकी कहानियाँ व्यक्तिहित और व्यष्टि-सत्य से संबन्धित हैं । दूसरे शब्दों में कहानी में जो बोध झलकता है वह व्यक्ति-सत्य से अनुप्राणित है । प्रेमचन्द और प्रसाद के सृजनात्मक अवबोधों में स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है । प्रेमचन्द की कहानियों के मूल में समाज है तो प्रसाद की कहानियों के केन्द्र में व्यक्ति का मन है । प्रेमचन्द का विश्वास है, समाज के सुधार एवं विकास में व्यक्ति का आग्रह छिपा हुआ है । पर प्रसाद व्यक्ति विकास के आधार पर सामाजिक सत्यों तथा मान्यताओं को परखते हैं । इन्द्रनाथ मदान ने प्रेमचन्द की कहानी को समष्टिमूलक और प्रसाद की कहानी को व्यष्टिमूलक की संज्ञा दी है । "प्रेमचन्द यथार्थ को समष्टि-सत्य के धरातल पर आँकते हैं । यदि इनकी (प्रेमचन्द और प्रसाद की) कहानी को क्रमशः समष्टिमूलक तथा व्यष्टिमूलक की संज्ञा दी गई तो अधिक संगत मूल्यांकन जान पड़ता है ।"[1] प्रसाद की अधिकांश कहानियाँ भावात्मक हैं । प्रेमचन्द की तरह अपनी कहानियों में वस्तुजगत के यथार्थ का चित्रण वे प्रस्तुत नहीं करते ।

प्रसाद की कहानियाँ एक रोमान्टिक कवि की रचनाएँ हैं । दूसरे शब्दों में उनकी कहानियाँ छायावादी काव्य बोध से युक्त हैं । सब से पहले वे कवि हैं, बाद में नाटककार अन्त में कहानीकार । इनकी कहानियों में अपने कवि और नाटककार का रचनात्मक बोध स्पष्ट झलकता है । 'आकाशदीप', 'पुरस्कार'

---

1. कहानी की कहानी - इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी कहानी : पहचान और परख (1973) - सं. इन्द्रनाथ मदान - पृ: 11.

जैसी कहानियाँ नाटकीय स्थितियों से युक्त हैं । इसी तरह, कहानियों में प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण कवि प्रसाद का काम है । भारतीय संस्कृति और इतिहास के प्रति गहरी अनुरक्ति प्रसाद की एक भावग्रस्तता ﴾ऑब्सेशन﴿ बन चुकी है । उनकी कई ऐतिहासिक कहानियों में अपने गौरवमय अतीत का समूर्त चित्रण हुआ है । "ममता", 'सिकन्दर की शपथ', 'जहाँनारा,' 'अशोक', 'चित्तौर' जैसी कुछ कहानियाँ भारतीय इतिहास के नाटकीय मुहूर्तों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती हैं ।

"आकाशदीप" प्रसाद की एक बहुचर्चित कहानी है जिसमें उनकी कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हुई हैं । पूरी कहानी सात दृश्यों में बंटी हुई है । कहानी की शुरूआत नाटकीय संवादों से होती है । कहानी की चम्पा जिस बुद्धगुप्त से प्रेम करती है, वह उसके पिता का घातक सिद्ध होता है । जब चम्पा से बुद्धगुप्त यों कहता है, "मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चम्पा, वह एक दूसरे दस्यू के शस्त्र से मरे", तब उत्तर के रूप में वह कहती है - "यदि मैं इसका विश्वास नहीं कर सकती, बुद्धगुप्त ! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम इस निष्ठूरता में भी कितने महान होते ।"[1] कहानी में प्रेम का इतना भव्य संकल्प स्थापित किया गया है । लेकिन साथ ही साथ चम्पा का मानसिक संघर्ष भी इस कहानी में अंकित है । कहना यह बेहतर होगा कि "आकाशदीप" मानसिक संघर्ष की कहानी है । प्रेमभाव के साथ सन्देहग्रस्तता को रखते हुए प्रेम-भाव के आरोह-अवरोह को दिखाना भी प्रसाद का लक्ष्य दीखता है । इन सब के केन्द्र में चम्पा का मन है, चम्पा की एकाग्रता है और चम्पा की तन्मयता है । कुल मिलाकर चम्पा का व्यक्तिपक्ष इस कहानी में मुखरित है ।

प्रसाद की एक और चर्चित कहानी है "पुरस्कार" । देशप्रेम के मूल्य पर यह कहानी रची गई है । कहानीकार ने मधूलिका के चरित्र को सब से पहले स्वतंत्र, संपूर्ण दिखाया है । यह उनकी व्यक्त्युन्मुखी दृष्टि का परिचायक है ।

---

1. "आकाशदीप" - जयशंकर प्रसाद - कथाक्रम ﴾स्वाधीनता से पहले की कहानियाँ﴿ सं. देवेश ठाकुर - पृ: 329.

बाद में वही मधूलिका अरुण को {अपने प्रेमी} छोडकर - याने व्यक्ति को छोडकर - देश के हित में अपने आप को समर्पित करती है । लेकिन देश प्रेम को मूल्य के रूप में स्वीकार करते समय भी मधूलिका के व्यक्तिपक्ष को स्वायत्त रखने की चेष्टा प्रसाद की तरफ से हुई है । इसीलिए वह अन्त में पुरस्कार के रूप में मृत्युदंड माँगती है ।

"ममता" में ममता की मजबूरियाँ अनेक हैं । वह इस संघर्ष में है कि 'अपने द्वार पर आए हुए शरणार्थी केलिए शरण दे दूँ या नहीं' । अन्त में बलिदान का मूल्य-पक्ष विजयी होता है,अपना जीवन खतरे में डालकर वह शरणार्थी को स्थान देती है । पूरी कहानी में व्यक्ति की गरिमा दोहराई गई है । कहानी के अन्त में यह तथ्य और स्पष्ट होता है । वह शरणार्थी हुमायूँ था जो शेरशाह से पराजित होकर आया हुआ था । उस स्थान पर एक भव्य महल खडा किया जाता है । ममता की भूमिका का जिक्र तक वहाँ के शिलाफलक में मिलता नहीं है । समष्टि की तुलना में व्यष्टि की महत्ता को प्रसाद ने उक्त कहानी में दर्शाया है ।

इन तमाम कहानियों में प्रसाद के काव्यमयी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । भावुक, कल्पनाशील होते हुए भी व्यक्तिवाद की भावधारा का सुन्दर समन्वय इन कहानियों में हुआ है ।

मोटे तौर पर, प्रसाद का भावजगत प्रेम और सौन्दर्य का है, त्याग और आत्मसमर्पण का है । जीवन के कटु यथार्थ से वे मुँह मोडना चाहते हैं । इसका वास्तविक कारण यह है कि प्रसाद का कहानीकार छायावादी काव्यबोध से कभी मुक्त नहीं हो सका है ।

प्रसाद के रचनात्मक बोध से प्रभावित इस युग के कहानी-लेखकों में आचार्य चतुरसेन शास्त्री, विनोदशंकर व्यास, रायकृष्णदास आदि प्रमुख हैं ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की कहानियों के प्रमुख रूप से दो वर्ग होते हैं - सामाजिक और ऐतिहासिक । उनकी सामाजिक कहानियों में जीवन-यथार्थ का चित्रण मिलता है । भारतीय इतिहास के गौरवमय पहलुओं को उन्होंने अपनी ऐतिहासिक कहानियों के विषय के रूप में चुना है । ऐतिहासिक कहानियों की रचना में, प्रसाद की भाँति, इनका भी अवबोध रोमान्टिक है । परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में, "इतिहास का रोमान्टिक धरातल प्रसाद की भाँति ही इन्हें प्रिय रहा है और अधिकांश कहानियों की रचना इसी धरातल से हुई है ।"[1]

विनोदशंकर व्यास भी प्रसाद की कहानी-चेतना से प्रभावित कहानीकार हैं । इनकी अधिकांश कहानियाँ भावात्मक और काव्यात्मक हैं । ये रचनाएँ गद्यगीत या रेखाचित्र से भी मिलने जुलनेवाली हैं । इनकी बहुत सारी कहानियाँ प्रेम-प्रधान हैं । "कल्पनाओं का राजा" शीर्षक कहानी में नायक और नायिका की मानसिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण हुआ है । कहानियों की रचना में वे पूर्णतः न तो यथार्थवादी हैं, न आदर्शवादी ।

प्रसाद परंपरा के एक और कहानीकार, रायकृष्णदास की रचनाएँ कल्पना और भावना से ओतप्रोत हैं । सामाजिक, धार्मिक ऐतिहासिक और राजनीतिक विषयों को लेकर इन्होंने कई एक कहानियाँ लिखी हैं । किन्तु वे एक ऐतिहासिक और सामाजिक कहानीकार के रूप में विख्यात हुए हैं । "गेहुला", "अन्तःपुर का आरंभ" शीर्षक कहानियों में इतिहास और कल्पना का समन्वय है जो कि प्रसाद की कई कहानियों और नाटकों की प्रवृत्ति है ।

कुल मिलाकर प्रसाद परंपरा (व्यक्तिवादी परंपरा) की निम्नांकित प्रवृत्तियाँ रेखांकित की जा सकती हैं ।

---

1. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ: 108.

व्यक्ति की महिमा की प्रतिष्ठा ।
व्यक्ति के मानसिक संघर्ष का चित्रण ।
कल्पना या अति भावुकता के पूर्ण सन्दर्भ का चित्रण ।
सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण ।
काव्यात्मक भाषा का प्रयोग ।
नाटकीय क्षणों का प्रचुर प्रयोग ।

प्रकारान्तर से ये सारी प्रवृत्तियाँ इस परंपरा के अन्तर्गत आनेवाले सभी कहानीकारों की रचनाओं में उपलब्ध हैं । हिन्दी कहानी की यह एक नई प्रवृत्ति थी ।

यथार्थवादी मलयालम कहानी का नया आयाम

वैक्कम मुहम्मद बशीर

तकषी, केशवदेव और पोनकुन्नम वर्की के समान वैक्कम मुहम्मद बशीर भी यथार्थवादी कहानीकार हैं । पर उनकी कहानियों का यथार्थ अधिक सूक्ष्म और भावात्मक है । रचना-काल की दृष्टि से बशीर तकषी और वर्की के समकालीन हैं । पर कहानी की संवेदना की दृष्टि से उनकी कहानियाँ बहुत आगे की हैं । स्वतन्त्रता-आन्दोलन, विश्व महायुद्ध, गरीबी, भूख, बेरोज़गारी आदि का यथार्थ चित्रण, साथ ही साथ इन सब के कारण तडपनेवाले मनुष्य की उदासी को भी मुखरित किया गया है । कभी व्यंग्य या परिहास के सहारे, कभी "सिनिक" बनकर और कभी फैन्टसियों के द्वारा भावात्मक होकर वे सामाजिक और वैयक्तिक यथार्थ का चित्रण करते हैं । इस प्रकार बशीर तक आते आते मलयालम कहानी सामाजिकता के साथ साथ वैयक्तिकता की ओर भी उन्मुख होने का प्रमाण देती है । इसे यथार्थवादी कहानी का एक नया आयाम कहा जा सकता है ।

स्वतन्त्रता आन्दोलन के अपने अनुभवों के आधार पर लिखी गयी बशीर की आरंभकालीन कहानियों में "अम्मा", 'जयिलपुल्लियुडे चित्रम' §कैदी की तस्वीर§, 'भारतमाता', 'पोलीसुकारन्टे मकल' §पुलीस की बेटी§, 'कैविलङ्ङुकल' §हथकडियाँ§ आदि प्रमुख हैं । ये कहानियाँ गरीबी और भूख के अनुभवों से सम्बन्धित हैं । "जन्मदिन" में अपने मित्र का भोजन चुराकर खाने केलिए अभिशप्त कथानायक के अनुभवों का वर्णन मिलता है । चोरी, व्यभिचार और इस तरह की अन्य हीन वृत्तियों की ओर आकर्षित होनेवाले व्यक्तियों की समाज में निन्दा होती है । बल्कि उनकी परिस्थितियों के बारे में सोचकर सत्य समझने का कार्य समाज कभी नहीं करता । ऐसे लोगों के जीवन के आधार पर लिखी हुई "विड्ढिकलुटे स्वर्गम" §मूर्खों का स्वर्ग§, 'पावप्पेट्टवरुटे वेश्या' §गरीबों की वेश्या§, 'कल्लनोट्टु' §जाली नोट§ जैसी कहानियाँ इस सन्दर्भ में स्मरणीय हैं । 'विड्ढिकलुटे स्वर्गम' §मूर्खों का स्वर्ग§ का नायक वेश्या के घर की घोर गरीबी देखकर जीवन से विरक्त होकर, आत्मनिन्दा से वापस जाता है । भूख और यौन-भावनाओं का तीक्ष्ण चित्र खींचने में बशीर सिद्धहस्त कथाकार हैं ।

बशीर एक रोमान्टिक कहानीकार नहीं हैं । अनुभवों की अभिव्यक्ति में बशीर रोमान्टिक-सा लगते हैं, तो भी वे मूलत: रोमान्टिक नहीं हैं । उनका यथार्थ अधिक गहरा है । सामाजिक जीवन-यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिक जीवन यथार्थ पर उन्होंने ध्यान दिया है ।[1] एम. अच्युतन के मतानुसार, वे मानवतावादी व्यंग्यकार हैं ।[2] 'चट्टुकालो' §लंगडाती औरत§, 'पूवनपषम' §केला§,

---

1. A brief history of Malayalam Literature - New trends in short story - K.M. Tharakan - Malayalam Literary Survey, October-December 1979 - p.71.

2. कहानी : कल और आज - एम.अच्युतन §1973§ - पृ: 180.

'आयिषुकुट्टी' जैसी कहानियाँ व्यंग्य प्रधान होने की वजह से अधिक मार्मिक बन गयी हैं । बशीर का व्यंग्य चरित्रों के स्वभाव, वातावरण की सृष्टि, वार्तालाप या वर्णन में छिपकर रहता है । 'पूवनपष्म' में एक अपढ़, मज़दूर नेता, अब्दुलखादर, एक अमीर घराने की बी.ए. तक पढ़ी जमीला को रास्ते में रोककर उससे कहता है -

"मैं जमीला बीबी से प्यार करता हूँ ।"

"खुशी की बात है, फिर क्या हालें? "

"अगर जमीला मुझ से शादी न करे भी तो . . . "

"तो? "

"जमीला, मैं तुम्हारी हड्डी तोड दूँगा । जमीला, मेरी ज़िन्दगी बर्बाद न करो । मैं तुमसे प्यार करता हूँ, तेरे कपडों को प्यार करता हूँ, तेरे रास्ते को भी प्यार करता हूँ ।"[1]

बशीर की कई एक कहानियों में यथार्थ धरातल के साथ-साथ एक अयथार्थ या अति-यथार्थ धरातल भी खोजा गया है । यथार्थ के चित्रण केलिए "फैन्टसी' का प्रयोग मलयालम कहानी में सबसे पहले बशीर ने ही किया है । "निलावु काणुम्बोल' (जब चाँदनी दीखती है) , 'नील वेलिच्चम' (नीली रोशनी), 'निलावु 'निरञ्ञा पेरुवषियिल" (चाँदनी में डूबे रास्ते पर) जैसी कहानियों में फैन्टसी का सहारा लिया गया है । मनुष्य के स्वभाव और जीवन-यथार्थ को प्रकाशित करने केलिए ही कथाकार बशीर "असंभव" तथ्यों और परिस्थितियाँ को प्रस्तुत करते हैं । तकषी, केशवदेव और पोनकुन्नम वर्की की कहानियों का केवल एक धरातल होता है । पात्रों के बाहरी जीवन का यथार्थ उन्हें मुख्य है । प्रत्युत् बशीर ने उनके आन्तरिक जीवन को एक कला-अनुभव के रूप में बदला दिया है ।[2] अपने ही जीवन का कटु यथार्थ उन्हें एक 'सिनिक' बनाता है । 'विश्वविख्यातमाया मूक्कु' (विश्वविख्यात् नाक), 'भगवद्गीतयुम कुरे मुलकलुम' (भगवद्गीता और कुछ स्तन) जैसी कहानियाँ

---

1. 'पूवनपष्म' (केला) - मूर्खों का स्वर्ग (1975) - बशीर - पृ: 20.
2. आधुनिकता का मध्याह्न - नरेन्द्रप्रसाद (1984) - पृ: 46.

इस परिवर्तन को सूचित करती है । इस समय लिखी हुई व्यंग्य कहानियों में जीवन के तीक्ष्ण अनुभवों के साथ कुछ दार्शनिकता का पुट भी है । उनके तीक्ष्ण अनुभव एकाएक व्यंग्य और विरुद्धोक्ति (ह्यूमर और आइरनी) में परिवर्तित होते हैं । प्रेम, वेदना और घृणा को उन्होंने हँसी में बदल दिया है ।[1] इस हँसी में जीवन की निस्सारता और आत्मपीडा का भाव निहित है । 'नीलवेलिच्चम' (नीली रोशनी) शीर्षक कहानी का यह प्रसंग देखिए -

> वह पूछता है कि उसने उस फूल को क्या किया । रक्त नक्षत्र की तरह लाल रंगवाला वह फुल ।
> 'ओ ! वह फूल ''
> जल्दी ही उन्होंने कहा - 'यह जानने केलिए कि उसको बर्बाद कर डाला कि नहीं ।'
> "कर डाला तो '?"
> 'तो कुछ नहीं, वह मेरा हृदय था ।'[2]

"तो कुछ नहीं" में जीवन की निस्सारता और आत्मपीडा व्यंग्य का रूप धारण करता है । "कैवलिड्डुकल (हथकडियाँ) कहानी के पात्र का यह प्रस्ताव स्वयं बशीर की आत्माभिव्यक्ति भी है - "यह तो खुशी की बात है कि इस संसार में मेरा कोई भी नहीं ।"[3]

कारूर नीलकंठ पिल्लै

कारूर की कहानियों में सामाजिकता के तत्व अवश्य मिल जाते हैं लेकिन वैयक्तिक भावों को जिस सूक्ष्मता के साथ उन्होंने अपनी कहानियों में स्थान दिया है, जिस से यही लगता है कि कारूर अपने समकालीनों से भिन्न है । इस

---

1. बशीर की कहानियाँ (लेख) - जी.कुमारपिल्लै के चुने हुए लेख (1984) - पृ: 132.
2. "नीलवेलिच्चम" (नीली रोशनी)-गरीबों की वेश्या - (1985)- बशीर -पृ: 10.
3. 'कैविलड्डुकल' (हथकडियाँ) - संस्मरण (1972) - बशीर - पृ: 87.

अर्थ में कारूर बशीर के निकट हैं । सामाजिक और वैयक्तिक जीवन के सूक्ष्म और अनुभूत्यात्मक यथार्थ इन दोनों की कहानियों में अधिक गहराई में द्रष्टव्य है । प्रसिद्ध कवि-आलोचक, अय्यप्पपनिक्कर के मतानुसार कारूर में तकषी, देव आदि की अपेक्षा सामाजिक अवबोध के दर्शन होते हैं ।[1] तकषी और वर्की के समान कारूर ने भी गरीबी और शोषण को लेकर कहानियाँ लिखी हैं । बहुत कम वेतन से अपने तथा परिवार की रक्षा करने केलिए कठिन प्रयत्न करनेवाले साधारण अध्यापकों के शब्द-चित्र उन्होंने खींचे हैं । §स्वयं कारूर भी एक अध्यापक थे ।§ 'काल्च्चक्रम' §सवा कौडी§ 'पोतिच्चोरु' §पाथेय§, 'सार, वन्दनम§नमस्ते, सर§, 'अद्भुत-मनुष्यन्' §अद्भुत मानव§ जैसी कहानियों में गरीबी से ग्रस्त अध्यापकों के त्रासद जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है । पोतिच्चोरु §पाथेय§ शीर्षक कहानी का अध्यापक, जो बहुत कम वेतन से अपने घर का पालन करनेवाला है । एकदिन अपनी भूख मिटाने केलिए एक विद्यार्थी का खाना चुराकर खाता है । अपने अपराध को स्वीकार करते हुए स्कूल के मैनेजर के नाम लिखे पत्र में वह कहता है - "उसके अलावा मैं कुछ कर ही नहीं सकता था ।"[2] प्रस्तुत वाक्य पाठकों के दिल को झकझोर कर देता है । "सार वन्दनम" का एक अध्यापक अपनी धोती और कुर्ता धुला लाने केलिए क्लास के एक विद्यार्थी को भेज देता है । ठीक उसी समय स्कूल-इन्स्पेक्टर का आगमन होता है । दूसरे की धोती पहनकर वह अध्यापक बच जाता है । किन्तु अब भी उनके शिष्य उन्हें देखते समय कहते हैं - "सार, वन्दनम" §नमस्ते सर§ कहानी का व्यंग्य इसी विडंबना में है । इन कहानियों में अध्यापकों के जीवन की गरीबी का यथार्थ चित्रण हुआ है, तो भी इन्हें समस्याप्रधान कहानियों की श्रेणी में रखना समीचीन नहीं है । अध्यापक-जीवन से संबन्धित इन कहानियों में

---

1. कारूर की कला : सामाजिक अवबोध - अय्यप्पपणिक्कर के लेख - §1985§ - अय्यप्पपणिक्कर - पृ: 235.
2. "पोतिच्चोरु" §पाथेय§ - चुनी हुई कहानियाँ §दूसरा भाग§ - §1970§ - कारूर नीलकण्ठ पिल्लै - पृ: 70.

तीव्र तथा आत्मा को पीडित करनेवाले अनुभवों की अभिव्यक्ति हुई है। प्रसिद्ध कवि-आलोचक जी. कुमारपिल्लै ने कारूर की कहानियों के बारे में यों लिखा है - "कारूर की कहानियों में सतही ढंग की सामाजिक समस्याएँ बहुत कम होती हैं। उनकी कहानियों का मूल केन्द्र ये समस्याएँ नहीं है। समस्याओं से वे सजग हैं अवश्य ; किन्तु हर कलाकार की भाँति समस्याओं के मानवीय पक्ष पर वे अधिक ध्यान देते हैं।"[1] मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक, एन.कृष्णपिल्लै भी कुमारपिल्लै के इस प्रस्ताव से सहमत हैं - "अलंकरण रहित भाषा में कथा सुनाने, सामाजिक सुधारक का बाना पहनकर उपदेश दिए बिना मानवीय प्रेम की सूक्ष्म तन्त्रियाँ बजाने में कारूर सक्षम साहित्यकार हैं।"[2] कारूर के मानवतावादी अवबोध का साकार रूप है 'उतुप्पान्टे किणर' (उतुप्पान का कुआँ) का उतुप्पान। कठिन प्रयत्न करके अपने गाँव में एक कुआँ खोदनेवाला उतुप्पान स्वार्थियों और धोखेबाजों से भरे समाज में निन्दा और परिहास का पात्र बन जाता है। तथाकथित आधुनिक समाज कुए के स्थान पर "पाइप" को स्वीकार करता है। भोग-विलास पर अधिष्ठित आधुनिक जीवन में धर्म (सत्य) और अधिकार एक दूसरे से अलग है। उतुप्पान सत्य केलिए अकेले लड़ने का निश्चय करता है। किन्तु यह साबित करने में सरकार (अधिकार) सफल होती है कि उतुप्पान की नीति (न्याय) लोगों की नीति के खिलाफ है। लोगों के मतानुसार गाँव में "पाइप" के होने के कारण कुआँ फिजूल है और उसमें मच्छर पैदा होने की संभावना है। यहाँ व्यष्टि-सत्य और समष्टि-सत्य की टकराहट है। अन्त में, निराश होकर उतुप्पान अपने जीवन का अन्त उसी कुए में करता है। ". . . अपने द्वारा खोदे कुए में अपने ही हाथों से मिट्टी डालना-यही उस आत्महत्या का तर्क है। अपने पुत्र को बलिदान करनेवाले

---

1. चुनी हुई कहानियाँ (पहला भाग) (1964) - कारूर - भूमिका - जी. कुमारपिल्लै - पृ:18.
2. कारूर का कथा - शिल्प - एन.कृष्णपिल्लै - कारूर का कथा-संसार (1968) - सं. समीक्षा - पृ: 33.

एब्रहाम §बाइबिल का पात्र§ जैसे पौराणिक पात्रों के मिथकीय धरातल की याद दिलानेवाला सत्य इस कथा-संदर्भ में निहित है ।"[1]

आम लोगों के साधारण जीवन की घटनाओं को लेकर कारूर ने कहानियाँ लिखी हैं । इन्में घटनाओं की अपेक्षा पात्रों या चरित्रों की प्रमुखता है । अपने पिता की चिकित्सा केलिए कुत्सित मार्गों से धन कमाने केलिए वेश्या होनेवाली शोशाम्मा 'चेकुत्तान' §शैतान§ शीर्षक कहानी का उज्जवल पात्र है । 'पूवनपष़म' §केला§ की युवा विधवा, 'अन्तर्जनम' §ब्राह्मणस्त्री§ के मन में अपने पडोस के अप्पु के प्रति जो अव्यक्त प्रेम-भाव उत्पन्न होता है वह एक तरह से वात्सल्य और यौन-भावना का मिला-जुला भाव है । वह अप्पु में अपने मरे हुए पति और पुत्र, दोनों के दर्शन एकसाथ करती है । आचारों और अनाचारों के कटघरे में विफल जीवन के प्रतीक के रूप में रहनेवाली 'अन्तर्जनम' के अस्तित्व पर धीरे धीरे मृत्यु की छाया पडती है । इस कहानी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध उपन्यासकार-आलोचक पी. के. बालकृष्णन ने लिखा है - "किन्तु उसकी §अन्तर्जनम की§ इस कारुणिक स्थिति में भी एक सत्य बाकी रह जाता है । माँ के मन में यौन-भावनाएँ जागृत करने में बेटा सक्षम होता है । . . . माँ को बेटे के प्रति वात्सल्य की जो भावना है, वह पति से जुडी हुई यौन-भावनाओं का रूप धारण कर, एक अभागे त्रासद जीवन की अभिव्यक्ति देनेवाली प्रस्तुत कथा कुरूप और बीभत्स रति-भाव के आधार पर लिखी हुई है ।"[2]

मनोवैज्ञानिक तत्वों के आधार पर विश्लेषण करने योग्य एक और कहानी है, 'मरप्पावकल' §कठपुतलियाँ§ । कहानी की नलिनी कठपुतलियाँ बनाकर रोज़ी-रोटी कमानेवाली युवति है । सरकार की तरफ से जनगणना लेने केलिए आए "एन्यूमरेटर" के सवालों और उस युवति के उत्तरों से उसके जीवन से संबन्धित

---

1. सहोदरों केलिए - वी. पी. शिवकुमार का लेख - मलयालनाडु साप्ताहिक, अगस्त 1982.
2. कला और काम - पी. के. बालकृष्णन का लेख - मातृभूमि साप्ताहिक - 30 अप्रैल 1967.

कई सूचनाएँ हमें मिलती हैं । उन कठपुतलियों के भाव और रूप उसके अपने ही जीवनानुभवों की प्रतिक्रिया है । "वह कृष्ण की मूर्ति बना रही थी । लोग तो खरीद रहे थे । क्रमशः वेश श्रीकृष्ण का और भाव एक दूसरे श्रीकृष्ण का हो गया । दूसरा कृष्ण माने वह आदमी जिसे एक समय में वह कृष्ण मानती थी । यह बात सोचने पर मुझे गुस्सा आया करता था । कठपुतली उसकी ही भाँति हो जायेगी और मेरा सारा द्वेष उसके चेहरे पर होगा । फिर मैं ने वह काम छोड दिया । पुरुष मूर्तियों के स्थान पर देवी पार्वती की मूर्ति बनायी । . . . कभी कभी आइने पर देखकर पार्वती के समान एक एक भाव दिखाकर काम करती थी । . . . मुझे शरम आने लगी । मेरा रूप बनाकर बेचें तो . . . खरीदनेवाले भी मेरी निंदा करेंगे ।"[1] उस कलाकार युवति के इन वाक्यों से उसके अपने जीवन के कुछ त्रासद प्रसंग ही उभरते हैं । ये सब सुनकर जब वह अफसर वहाँ से जाने को तैयार होता है तो वह युवति, उपहार के स्वरूप अपनी एक मूर्ति- रौद्रभाव की एक प्रतिमा - उसे दे देती है । तब तक वह आदमी उस युवति का एक सुन्दर चित्र कागज़ पर खींच चुका था । अपने अन्तर्मन के कलाकार को पहचानने में सफल बने हुए उस आदमी पर बहुत सन्तुष्ट होकर नलिनी वह प्रतिमा उससे वापस खरीदकर तपस्या करनेवाली पार्वती की एक दूसरी प्रतिमा उसे दे देती हैं । लौटते समय उस आदमी के हृदय में वीणा-नाद प्रतिध्वनित होता है । इस प्रकार एक जीवन कथा के मार्मिक अंशों को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ कथाकार चरित्रों के अन्तर्मन की गहराइयों तक झाँकते हैं । "अपने पति की चिन्ता नलिनी में विरक्ति पैदा करती है । उससे मुक्त होने केलिए वह अपने अन्तर्मन तक देखती है । अकेले रहनेकेलिए वह शक्ति का संचय करती है । वे प्रतिमाएँ इसी जटिल मानसिकता को व्यक्त करनेवाली हैं ।"[2]

---

1. "मरप्पावकल" (कठपुतलियाँ) - कठपुतलियाँ (1963) - कारूर - पृ: 15-16.
2. कठपुतलियाँ : एक अध्ययन - के. एस नारायण पिल्लै - कारूर का कथासंसार - सं. समीक्षा - पृ: 64.

बशीर और कारूर की कहानियाँ जीवन-यथार्थ के एकायामी रूप को व्यक्त करनेवाली रचनाएँ भर नहीं हैं । उनके पात्र, टाइप पात्रों की कोटि में आनेवाले भी नहीं हैं । जीवनानुभवों की प्रासंगिकता के साथ व्यक्त करने की प्रवृत्ति इन दोनों में बलवत्ती है । अतः आधुनिकता का पहला दौर हम इनकी कहानियों में से प्राप्त कर सकते हैं । यहाँ आधुनिकता जीवन मात्र की गहराई में महसूस करने को लेकर है । कहानी की स्थितियों और भाषा के विशेष क्रम के सन्निवेश से आधुनिकता का एहसास हमें प्राप्त होता है ।

वैक्कम मुहम्मद बशीर और कारूर नीलकण्ठ पिल्लै मलयालम के ऐसे कहानीकार हैं जिनकी अलग पहचान है । उनकी कहानियों की तुलना सामान्यतः अन्य भाषा कहानीकारों से संभव नहीं । लेकिन कथ्य के मूल स्रोत को देखते हुए हम यह बता सकते हैं कि वे यथार्थवादी धारा के अन्तर्गत आते हैं । लेकिन यथार्थ की संश्लिष्टता की पहचान उन्हें सामान्य यथार्थवादी बना छोडती नहीं है ।

वैसे कारूर की कहानियों में जीवन की संश्लिष्टता के बावजूद एक खास प्रकार की मुलायमियत है । जब कि बशीर तीव्र अनुभवों और प्रतिक्रियाओं के कहानीकार हैं । इसलिए यथार्थवादी युग के होते हुए भी वे आधुनिक युग के हैं । आधुनिक युग के अनेकानेक युवा कहानीकारों ने अपने को बशीर के ऋणी माना है । यही इसका प्रमाण है ।

उपर्युक्त दो कहानीकारों की रचनाओं से प्रसाद की कहानियों की कोई तुलना नहीं है । प्रेमचन्द के समान युग-स्रष्टा न होने पर भी प्रसाद की कहानियों की अपनी पहचान है । उनकी कहानियों का वह ऐतिहासिक परिवेश या वह सांस्कृतिक वातावरण, व्यक्तिबद्ध मूल्यग्राही दृष्टिकोण किसी दूसरे कहानीकार में नहीं है । इस अर्थ में वे भी हिन्दी के अकेले कहानीकार हैं ।

प्रेमचन्दोत्तर युग की हिन्दी कहानी

सामान्य प्रवृत्तियाँ

यह पहले संकेत किया जा चुका है कि प्रेमचन्द युग की हिन्दी कहानी स्पष्ट रूप से दो धाराओं से विकसित हुई है । उनमें एक तो स्वयं प्रेमचन्द द्वारा प्रवर्तित समाजोन्मुख यथार्थवादी कहानियों की धारा है और दूसरी जयशंकर प्रसाद द्वारा प्रवर्तित व्यक्त्युन्मुख यथार्थवादी धारा । इन दोनों धाराओं की प्रवृत्तियों की तुलना करते हुए प्रसिद्ध आलोचक, इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है - "प्रेमचन्द की कहानी - कला के मूल में समाज-मंगल की भावना है, समष्टि-सत्य की धारणा है, सामाजिक उद्देश्य की प्रेरणा है और प्रसाद का कहानी-साहित्य व्यक्ति-हित, व्यष्टि-सत्य तथा वैयक्तिक विकास के उद्देश्य से प्रेरित है ।"[1] प्रेमचन्द-युग में यह अन्तर स्पष्ट था, किन्तु प्रेमचन्दोत्तर युग में उतना स्पष्ट नहीं है । प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रायः सभी कहानीकारों के अलग अलग व्यक्तित्व हैं । इसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि "प्रेमचन्दोत्तर आधुनिक कहानी में न तो समस्याएँ और प्रवृत्तियाँ इतनी स्पष्ट और जटिलता-रहित हैं जितनी प्रेमचन्द युग में थी ।"[2] इस प्रकार प्रेमचन्दोत्तर कहानी-लेखक अलग अलग रचनात्मक व्यक्तित्व के होने पर भी रचना-संबन्धी अवबोध और रचना की मूल-संवेदना के आधार पर प्रस्तुत काल में भी यह अन्तर सामान्य रूप से दृष्टिगत है । प्रेमचन्दोत्तर काल के कुछ एक कहानीकारों की रचनाओं के मूल में समष्टिमूलक चेतना है तो दूसरे कुछ कहानीकारों में व्यष्टि-मूलक या भाव-मूलक चेतना । इसका अर्थ है पहली धारा के कहानीकारों का सृजनात्मक बोध सामाजिकता की ओर और दूसरी धारा के कहानीकारों का, वैयक्तिकता की ओर अधिक उन्मुख दीख पडता है । इनमें पहली

---

1. कहानी की कहानी - हिन्दी कहानी : पहचान और परख - इन्द्रनानाथ मदान - पृ: 10.
2. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - पृ: 151.

धारा के कहानीकारों में यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि और दूसरी में जैनेन्द्रकुमार, इलाचन्द्र जोशी और "अज्ञेय" आदि प्रमुख हैं ।

यशपाल

प्रेमचन्दोत्तर युग की समाजोन्मुख यथार्थवादी धारा के कहानीकारों में यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । शोषण और पीडा से ग्रस्त आम लोगों के प्रति प्रेमचन्द के मन में जो सहानुभूति थी वही यशपाल की कहानियों में मार्क्सवादी विचारधारा के आधार पर प्रस्तुत हुई । यह पहले सूचित किया जा चुका है कि अपने रचनाकाल के अन्तिम सोपान तक आते आते स्वयं प्रेमचन्द भी मार्क्सवाद के करीब पहुँच चुके थे । बुर्जुआ व्यवस्था के विरुद्ध अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए सन् 1936 सितंबर में उनके द्वारा लिखित लेख "महाजनी सभ्यता" इसका स्पष्ट प्रमाण है । लेकिन प्रेमचन्द के अधिकांश पात्र सत्ता या व्यवस्था के विरुद्ध अपनी आवाज़ नहीं उठाते । "प्रेमचन्द की कहानियों में सामाजिक क्रान्ति की चिनगारी थी, किन्तु भस्मावृत थी । यशपाल में आकर यह भस्मावृत चिनगारी भस्म से अनावृत होकर प्रकट हो जाती है ।"[1] सामाजिकता की ओर उन्मुख होकर लिखने की वजह से उनकी कहानियों में हमारे सामाजिक, राजनैतिक, नैतिक या सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है । मधुरेश का कथन है - "सामाजिक असंगतियों और अर्थहीन रूढ मान्यताओं का विरोध और नए समाज की रचना का संकल्प ही उनकी सब से बडी शक्ति है । इस सामाजिक प्रयोजन ने ही उसकी कहानियों की रचना प्रक्रिया को एक निश्चित ढाँचा और किसी हद तक एकांगी भी दिया है ।"[2] सच्चे अर्थ में वे एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं । किसी भी प्रतिबद्ध साहित्यकार की तरह कृति का विचार या विषय तो

---

1. हिन्दी कथा दृष्टि - आज़ादी के पहले और बाद में {लेख} - जानकी प्रसाद शर्मा - साक्षात्कार - मार्च-मई 1978.
2. आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया - {1971} मधुरेश - पृ:3.

उन्हें मुख्य रहा । अपनी कहानियों की रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कहा है – "मेरे लिए विषय मुख्य रहता है । पात्र उसके अनुकूल गढ़ लेता हूँ । पात्र को लेकर कहानी बनाने का यत्न मैं नहीं करता, ऐसा करने से मेरे विचार में रचना कहानी के बजाय शब्द-चित्र बन जाती है ।"[1]

यशपाल कहानी को एक सामाजिक वस्तु मानते हैं । "चित्र का शीर्षक" कहानी-संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा है "कहानीकार की कहानी सुनाने की इच्छा का स्रोत पाठकों या श्रोताओं से सामाजिक सम्बन्ध के आवश्यकतानुकूल काल्पनिक चित्रों द्वारा अनुभूति के और विचारों के आदान-प्रदान का अवसर पाना है । . . . यदि कहानी से रस मिलने और कहानी की इच्छा के सम्बन्ध में मन्तव्य को अंशत: भी स्वीकार किया जा सकता है तो कहानी मूलत: एक सामाजिक वस्तु हो जाती है ।"[2] इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में, "वह §यशपाल§ खुले तौर पर और खुलकर साहित्य के उद्देश्य को स्वान्तःसुखाय न मानकर परहिताय मानते हैं ।"[3] यही नहीं वे कला और प्रचार में किसी तरह का विरोध नहीं पाते । उनका कथन है – "विचार-शून्यता और प्रचार-शून्यता मूलत: और फलत: एक ही बात है ।"[4] मार्क्सवादी विचारधारा के प्रचारक, यशपाल ने वर्ग-संघर्ष को विषय बनाकर कई कहानियाँ लिखी हैं । इन सभी कहानियों की रचना-प्रक्रिया प्राय: समान है – पहले परस्पर विरोधी विचारों और आदर्शों के दो पात्र चुन लिए जाते हैं, उनमें जिसे आदर्श की स्थापना करनी होगी, उसे आदर्श का वाहक, बना लिया जाता है । 'कोकला डकैत', 'पाँव तले की डाल', 'पाप की कीचड़', 'सत्य का द्वन्द्व'- जैसी कहानियों में यही प्रवृत्ति पायी जाती है ।

---

1. मैं कहानी कैसे लिखता हूँ' - कहानी वार्षिकांक, 1955 - यशपाल, पृ: 390.
2. चित्र का शीर्षक - भूमिका - यशपाल - पृ: 6-7.
3. हिन्दी कहानी : अपनी जबानी - §1968§ - इन्द्रनाथ मदान - पृ: 22.
4. "धर्मयुद्ध" - §1961§ - भूमिका - यशपाल - पृ: 5.

देश की सामाजिक, राष्ट्रीय, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं को लेकर यशपाल ने कई कहानियों की रचना की है । 'कर्मफल', 'अभिशप्त', 'फूल की चोरी', 'चार आने', 'आदमी का बच्चा' जैसी कहानियों में इस तरह की समस्याओं को उद्घाटित किया गया है । 'आदमी का बच्चा' शीर्षक कहानी का बगा साहब कुत्तिये के पिल्लों को गर्म पानी में डुबाकर मरवा देता है । उसका बर्ताव मनुष्यों के प्रति भी कम कठोर नहीं है । उसकी बेटी, डौली के मन में मनुष्य और कुत्तिये के बच्चे में कोई अन्तर नहीं है । पडोस के माली के घर से बच्चों की रूलाई सुनने पर निष्कलंक डौली पूछती है - "मामा, माली के बच्चों को मेहतर से गरम पानी में डुबा दो तो फिर नहीं रोएगा ।"[1] डौली का यह कथन निष्कलंक होने पर भी बग्गा साहब जैसे समाज के ऊँचे लोगों के अमानवीय व्यवहारों पर क्रूर व्यंग्य करनेवाला है ।

समाज के परंपरागत मूल्यों और रूढियों पर व्यंग्य के माध्यम से उन्होंने प्रहार किया है । धर्म और पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध उनके मन में जो आक्रोश और विद्रोह है, वह 'मनु की लगाम', 'धर्मरक्षा', 'ज्ञानदान', 'प्रतिष्ठा का बोझ', 'दूसरी नाक', 'पर्दा' जैसी कहानियों में स्पष्ट है । इनमें 'पर्दा' एक प्रतीकात्मक व्यंग्य कहानी है जिस में एक खानदानी मुस्लिम परिवार के वैभव का ह्रास दिखाया गया है । कहानी का पर्दा वस्तुतः मध्यवर्गीय समाज के परंपरागत मान और झूठी प्रतिष्ठा का प्रतीक है । कहानी का चौधरी पीरबख्श अपने इलाके के एक साहूकार, बबर अली खाँ से कुछ रूपये कर्ज लेता है और उसे चुकाने में असमर्थ होता है । इस कारण से उसे खान से गालियाँ भी खानी पडती हैं । अपने गाँव में चौधरी की जो इज्जत है उसका आधार घर के दरवाज़े पर लटका पर्दा ही है । अपने रूपये वापस खरीदने केलिए आए बाबर अली खाँ से वह पर्दा हटाया जाता है । जब सहसा पर्दा हटाया जाता है तब घर के अन्तर अपने शरीर के एक-तिहाई अंग ढकने में असमर्थ अर्द्ध-नग्न लडकियाँ और स्त्रियाँ दिखाई पडती हैं ।

---

1. आदमी का बच्चा - अभिशप्त - (1962) - यशपाल - पृ: 80.

मध्यवर्ग के अधिकांश लोग अपने अभावों और अन्य समस्याओं को दूसरे से छिपाकर जीवन बिताते हैं । लेकिन जब एकबार अपने जीवन का वह कृत्रिम आवरण, वह पर्दा, हटाया जाता है तो फिर वह आच्छादन का कार्य कर नहीं सकता । दूसरे प्रकार की व्यंग्य कहानियाँ भी यशपाल ने लिखी हैं । "कुत्ते की पूँछ" शीर्षक कहानी में ऊँचे-वर्ग के लोगों के झूठे दिखावे का इतना खुला चित्रण किया गया है कि वह आज भी हमारे समाज की सच्चाई ही है । एक संभ्रान्त महिला जिस जोश के साथ एक गरीब लडके को अपने घर पालने लगती है और अन्त में विवश होकर उसे छोड देती है तो दर्शक बने पति की हँसी फूट पडती है । यह हँसी खुद यशपाल की है जो उन्होंने हमारे समाज के ऊँचे वर्ग के लोगों पर हँसी है । उसी प्रकार "एक राज़" नामक कहानी में निम्नवर्ग के लोगों के प्रति आर्द्रता के होते हुए भी उसे दिखा न पाने की विवशता पर उन्होंने व्यंग्य किया है । इन सभी कहानियों में वर्गगत समाज का चित्रण ही उन्होंने किया है । इसका मुलाधार उनकी मार्क्सवादी दृष्टि ही है ।

राहुल सांकृत्यायन

मार्क्सवादी विचारधारा के प्रवक्ता, राहुल सांकृत्यायन एक प्रतिबद्ध साहित्यकार हैं । कलाकार या साहित्यकार के सामाजिक दायित्व से सजग होकर लिखनेवाले राहुलजी ने साहित्य को सामाजिक वस्तु के रूप में स्वीकारा है । इसलिए प्रत्येक सामाजिक वस्तु की भाँति साहित्य का भी अपना उद्देश्य है । दूसरे शब्दों में उनकी कहानियाँ सोद्देश्य हैं । अपने "बहुरंगी मधुपुरी" संग्रह की भूमिका में उन्होंने लिखा - "समकालीन चित्रण होते, यदि पाठकों को इससे मनोरंजन के साथ साथ कुछ और लाभ भी हुआ, तो मुझे इससे सन्तोष होगा ।"[1] अपना

---

1. बहुरंगी मधुपुरी (1954) - दो शब्द (भूमिका) - राहुल सांकृत्यायन

जीवन-दर्शन और साहित्य संबन्धी-मान्यताएँ उनकी कहानियों में मुखरित हैं। उनके "सतमी के बच्चे" संग्रह की सारी कहानियों में प्राचीन भारत की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। "रेखा भगत", 'मंगलसिंह', 'सफदर', 'सुमेर' आदि कहानियों में अमीरों की और साम्राज्यवादी शोषण - वृत्तियों की कटु आलोचना की गयी है। "सुमेर" कहानी का सुमेर एक हरिजन युवक है जो महात्मागाँधी की हरिजन-संबन्धी नीति का विरोधी है। उसका कथन है - "गाँधीजी का हमारे साथ प्रेम इसलिए है कि हम हिन्दुओं से निकल न जायें। पूना में आमरण अनशन इसीलिए किया था कि हिन्दुओं से अलग अपनी सत्ता न कायम कर लें। हिन्दुओं को हज़ार वर्षों से सस्त दासों की ज़रूरत थी, और हमारी जाति ने उसकी पूर्ति की। पहले हमें दास ही कहा जाता था, अब गाँधीजी "हरिजन" कहकर हमारा उद्धार करने की बात करते हैं। शायद हिन्दुओं के बाद हरि ही हमारा सब से बडा दुश्मन रहा है।"[1] वह गाँधीवादियों को पूँजीपतियों का दलाल समझता है। उसका विश्वास है कि भारत के शोषकों का अन्त होने से ही हरिजनों की स्थिति सुधरेगी। उसके शब्दों में, "गरीबों की कमाई पर मोटे होनेवालों का भारत में नामो-निशान यदि न रहे, तभी हमारी समस्या हल हो सकती है।"[2] जापानी फासिस्टों को वह साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों की अपेक्षा अधिक शोषक समझता है। इसलिए पहले वह जापानी फासिस्टों का अन्त देखना चाहता है, बाद में अंग्रेज़ों से आज़ाद होना। इस चिन्तन से, द्वितीय विश्वयुद्ध में वह अंग्रेज़ों की ओर से युद्ध करता है। युद्ध में जापानी सेना को बडी क्षति पहुँचाता हुआ वह वीरगति प्राप्त करता है। राहुलजी जानते थे कि मानव-विकास का पथ प्रशस्त करनेवाला एक ही मार्ग है - साम्यवाद। उनकी कहानियों में भारत तथा विश्व की समस्याओं के एकमात्र समाधान के रूप में साम्यवाद को चित्रित किया गया है।

---

1. "सुमेर" - राहुल सांकृत्यायन - कथाक्रम (स्वाधीनता से पहले) - सं. देवेश ठाकुर - पृ: 627.
2. वही।

मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित अन्य प्रमुख कहानीकारों में अमृतराय, नागार्जुन, भैरवप्रसाद गुप्त आदि प्रमुख हैं । इनमें अमृतराय का नाम विशेषोल्लेखनीय है । उनकी कहानियों में समाज की विसंगतियों का अनावरण हुआ है । मध्यवर्गीय जीवन के आर्थिक अभावों और कृत्रिम बाह्याडंबरों के बीच का द्वन्द्व मनोवैज्ञानिक धरातल पर उनमें प्रस्तुत किया गया है । उनकी एक चर्चित कहानी है "सावनी समां" जिसमें अवसाद, संघर्ष, घुटन से युक्त निम्न मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

प्रेमचन्दोत्तर युग में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर लिखनेवालों ने मूलत: सामाजिक स्थितियों पर ही कहानियाँ लिखीं । अत: उनकी कहानियों के केन्द्र में मनुष्य रहा करता था । लेकिन साहित्य के लिए वैचारिक स्थितियों का सहारा प्राय: दोष साबित होता है । इसलिए धीरे धीरे यथार्थवादी विचारधारा का यह गहरा प्रभाव मिट जाता है और कहानी सामाजिक स्थितियों की संश्लिष्टता को स्थापित करने की ओर अग्रसर होती है ।

उपेन्द्रनाथ अश्क

सामाजिक दायित्व से प्रेरित होकर लिखनेवाले कहानीकारों में यशपाल के बाद उपेन्द्रनाथ अश्क का नाम सब से महत्वपूर्ण है । वे प्रेमचन्द परंपरा के आधुनिक कहानीकार हैं । उनकी आरंभकालीन कहानियाँ प्रेमचन्दीय परंपरा के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की हैं । बाद में उन्होंने आदर्शवाद को छोड दिया, और वे अपनी कहानियों में जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने लगे । उनका कथा-संसार मध्यवर्गीय जीवन का है । उनकी कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन समग्रता के साथ उभर कर आया है । इस समग्रता की सृष्टि में मनोवैज्ञानिकता का एहसास अनिवार्य है । उनकी कहानियों में चरित्रों के सामाजिक जीवन की ही नहीं, उनके व्यक्तिगत

जीवन-उनका चिन्तन, मनोवृत्तियाँ, मानसिक कार्य कलाप – की भी अभिव्यक्ति हुई है । इसप्रकार अश्क की कहानियों में सामाजिकता और मनोवैज्ञानिकता का समन्वय है । इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में, "अश्क की कहानियों में प्राय: यथार्थ का चित्रण है, जीवन-वास्तव की अभिव्यक्ति है, सामाजिक मान्यताओं का विवेचन है , परन्तु यथार्थ आदि को स्थापित करनेवाली जीवन-दृष्टि व्यक्ति-मूलक है और सामाजिक मान्यताओं को परखने की कसौटी व्यक्ति-सत्य की है ।"[1] वे मार्क्सवाद से प्रभावित है अवश्य, किन्तु यशपाल की भाँति वे इस विचारधारा का प्रचारक नहीं हैं । इन दोनों की कहानी-चेतना की तुलना करते हुए रामदरश मिश्र ने लिखा है – "जहाँ यशपाल का प्रेरणा-बिन्दु कोई विचार है वहाँ अश्क का प्रेरणा-बिन्दु जीवन का कोई जीवंत यथार्थ । लगता है अश्क जहाँ अपने आरंभ से चलकर अंतिम बिन्दु तक आते हैं वहाँ यशपाल पहले अंतिम बिन्दु से आरंभ बिन्दु तक पहुँचते हैं फिर वहाँ से अंतिम बिन्दु पर लौटते हैं ।"[2] इसी तरह अश्क की कहानियों की मनोवैज्ञानिक पद्धति जोशी की मनोविश्लेषणात्मकता से भिन्न है । जोशी में सोद्देश्य मनोवैज्ञानिक चिन्तन प्रत्यक्ष रूप से लक्षित होता है । अश्क ने जिस मनोवैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया है, उसमें अनुभूति और मनोविज्ञान का समन्वय या सामंजस्य है । परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में, "अश्क न तो यशपाल की तरह जीवन के कटु सत्य को "उठा" लेते हैं, और न इलाचन्द्र जोशी की भाँति मनोविज्ञान का उपयोग रुग्ण तथा क्षयी चरित्रों की सृष्टि के रूप में करते हैं ।"[3]

अश्क की कहानियों में मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न आयामों का उद्घाटन हुआ है । उनकी "पिंजरा" एक मध्यवर्गीय युवति की कहानी है जो

---

1. हिन्दी कहानी : पहचान और परख – इन्द्रनाथ मदान – पृ: 22.
2. हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान – रामदरश मिश्र – पृ: 50.
3. हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया – परमानन्द श्रीवास्तव – पृ: 174.

अपने परिवार की झूठी इज्जत और कृत्रिम बाह्याडंबरों को बनाए रखने केलिए पिंजरे में बन्द चिड़िये के समान जीवन बिताती है । कहानी की नायिका, शान्ति का पति, लाला दीनदयाल लान्डरी में काम करता है । उसके पडोस में रहनेवाली एक गरीब लडकी है गोमती जिसके साथ शान्ति का परिचय होता है । यह परिचय धीरे धीरे बढकर उन दोनों के बीच में आत्मीय मित्रता पैदा होती है । जब एक दिन शान्ति का पति और लडका बीमार हो जाते हैं तब गोमती उन दोनों की सेवा करती है । थोडे ही दिनों के बाद शान्ति और उसका परिवार उस गाँव को छोडकर कहीं चले जाते हैं ।

अब दीनदयाल लांडरीवाले धन्धे करनेवाला नहीं, वह लाहौर की प्रसिद्ध फर्म "दीनदयाल एण्ड सन्स" का मालिक है । केवल दस साल में ही यह सारा परिवर्तन हो गया है । लम्बी अवधि के बाद जब एक दिन गोमती उसे मिलने आती, तब शान्ति उसका स्वागत-सत्कार करती है । इस पर नाराज़ होकर दीनदयाल अपनी पत्नी से कहता - "तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड और गंवार औरत को लेकर तुम बैठी रहीं, तुम्हें मेरी इज्जत का भी ख्याल नहीं ।"[1] पति का यह कथन सुनकर वह बिलकुल दुःखी हो जाती है । उसने गोमती को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया था । लेकिन पति का यह कथन सुनकर वह अपने इस विचार को छोड देती है । वह नौकर से यों कहती है - "तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महीने तक वापस न लौटेंगी ।"[2] वह स्वेच्छा से ऐसा नहीं करती, पर अपने पति की इच्छा के अनुसार उसे ऐसा करना पडता है । उस घर में उसकी स्थिति एक पिंजरे में बन्द चिड़िये से बेहतर नहीं । गोमती के नाम लिखे पत्र में उसने यह स्पष्ट किया है - "तुम्हारी बहन अब बडी बन गई है । बडे आदमी की बीवी हैं । बडे आदमियों की बीवियाँ अब उसकी बहनें हैं । पिंजरे में बन्द पक्षी को कब आज्ञा होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करनेवाले अपने हमजोलियों से मिले?"[3] अश्क की "डाची", 'कंकडा का तेली' जैसी कहानियों में

---

1. पिंजरा - अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ (1960) - पृ: 83.

2. वहीं - पृ: 84.

3. वहीं ।

आर्थिक अभावों से ग्रस्त निम्नमध्यवर्गीय जीवन का चित्रण हुआ है । 'काले साहब' 'आज्ञाकारी' आदि कहानियों में भी मध्यवर्गीय जीवन की झूठी नैतिकता और खोखले अहंकार की अभिव्यक्ति हुई है । 'नासूर' और 'अंकुर' आधुनिक जीवन के टूटे हुए यौन-संबन्धों और उसकी व्यथाओं की कहानियाँ हैं । इन सारी कहानियों में उनका सामाजिक अवबोध स्पष्ट परिलक्षित हुआ है ।

रांगेय राघव

रांगेय राघव मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित एक और उल्लेखनीय कथाकार हैं । उनकी कहानियाँ सामाजिक या राजनीतिक श्रेणी में आती हैं । किन्तु इन सब में उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रकट हुआ है । उनकी 'तबेले का धुँधलका', 'पंच परमेश्वर' जैसी कहानियाँ राजनीतिक - सामाजिक भ्रष्टाचारों पर तीखा व्यंग्य करती हैं । 'गदल' उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है जिसमें विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए जीनेवाली गदल नाम की एक स्त्री की जिजीविषा उद्घाटित हुई है । अपने पूरे परिवार और जवान लडकों को छोडकर पैंतालीस वर्षीय विधवा गदल उस गाँव के एक पैंतीस वर्षीय विधुर, लौहरा मौनी के साथ रहना आरंभ कर देती है । उसके इस व्यवहार पर सारे घरवाले चकित हो जाते हैं । उनकी दृष्टि में उसने परिवार को अपमानित किया है । लेकिन घरवालों की बातों को गदल कभी मानती नहीं । वह अपने देवर डोडी से कहती - "अब कुनबे की नाक पर चोट पडी तो सोचा, तब न सोचा जब तेरी गदल को बहुओं ने आँखें तरेरकर देखा । अरे कौन किसकी परवाह करता है ।"[1] वस्तुत: डोडी ने गदल से आन्तरिक लगाव महसूस किया है । डर के कारण उसने इस रहस्य को किसी से भी नहीं बताया , गदल से भी । गदल के चले जाने के बाद एक दिन भी जीवित रहना उसकेलिए असंभव होता है । कठिन हृदय की पीडा के कारण वह उसी रात मर जाता है । अपने

---

1. "गदल" - कथाक्रम - {स्वाधीनता के बाद} - सं. देवेश ठाकुर - पृ: 467.

देवर की मृत्यु की खबर पाकर गदल दौड आती है । उसका नया पति मौनी इसपर बहुत नाराज़ होता है । गदल अपने देवर के क्रिया-कर्म को ॒परबन्ध॒ बडे धूमधाम से कराने का निश्चय कर लेती है । वह कहती है - "वह मरते वक्त मेरा नाम लेता गया है न, तो उसका परबन्ध मैं ही करूँगी ।"[1] लेकिन लडाई के समय होने की वजह से सरकारी कानून उसके अनुकूल नहीं थे । लेकिन वह कानून से डरनेवाली नहीं थी । वह किसी न किसी प्रकार क्रिया क्रम कराने का यत्न करती है । उसकेलिए वह दारोगा को रिश्वत भी देती है । पर उसका नया पति, मौनी बडे दारोगा को यह खबर देता है कि वहाँ परबन्ध धूमधाम से चल रहा है । इसलिए परबन्ध को रोकने केलिए दारोगा को वहाँ आना ही पडता है । पुलिस को देखकर सारे अतिथि भयभीत होते हैं । पुलिस गदल से भीड छाँट देने को कहती है । किन्तु वह उसकेलिए तैयार नहीं होती । वह कहती है - "कानून राज का कल का है, मगर बिरादरी का कानून सदा का है, हमें राज नहीं लेना है, बिरादरी से काम है ।"[2] तुरन्त ही अन्धकार में गोलियाँ चलने लगती हैं । एक गोली उसके ॒गदल के॒ पेट में लगती है । वह दारोगा से यों कहती है - "कारज हो गया, दारोगाजी । आत्मा को शान्ति मिल गई ।"[3] जब दारोगा उससे पूछता कि वे कौन है वह कहती है - "जो एकदिन अकेला न रह सका, उसी की . . ."[4] वह इस वाक्य की पूर्ति कर नहीं सकती है । इस प्रकार कहानी में बहुत कम शब्दों से राजस्थान के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है । कहानी गदल के परुष व्यक्तित्व के नीचे बहती कोमल स्नेहधारा का संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करती है । मधुरेश ने ठीक ही लिखा है - "प्रेमचन्द के बाद गाँव की जिन्दगी को लेकर ऐसी कहानियाँ

---

1. गदल - रांगेय राघव - कथाक्रम ॒स्वाधीनता के बाद॒ - सं. देवेश ठाकुर - पृ:474.
2. वही - पृ: 476.
3. वही - पृ: 477.
4. वही ।

बहुत नहीं लिखी गई हैं । . . . कहानी के बहुत छोटे-से चित्र में ही गाँव का यथार्थ परिवेश, रीति-रिवाज और आचार-व्यवहार का जो सांकेतिक चित्रण हुआ है वह कहानी के प्रभाव को कई गुना बढाता है . . . व्यक्ति और परिवेश का ऐसा सीधा और प्रत्यक्ष सम्पर्क गाँव के जीवन पर कहानी लिखनेवाले अधिकांश कहानीकारों के पास नहीं था । यही कारण है कि "गदल" उन और बहुत-सी कहानियों से एकदम अलग बन पडी है ।"[1]

तुलनात्मक दिशाएँ

प्रेमचन्द युग को यथार्थवादी मान लेने के कारण प्राय: दूसरी भाषाओं के यथार्थवादी युग के कहानीकारों के साथ ही उनकी तुलना होती है । हिन्दी में प्रेमचन्द और प्रसाद के बाद के युग को प्रेमचन्दोत्तर युग इसलिए बताया गया है कि मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक यथार्थ की नई प्रवृत्ति प्रेमचन्द युग की तुलना में परवर्ती युग की एक नई प्रवृत्ति थी । साथ ही ऐसी कहानियों की शिल्प-परक संश्लिष्टता भी विशेष उल्लेखनीय थी । अत: युग-सापेक्ष परिवर्तन का संकेत वहाँ आवश्यक हो गया था । लेकिन इसी प्रेमचन्दोत्तर युग के यशपाल, सांकृत्यायन, रांगेय राघव जैसे मार्क्सवादी कहानीकारों को हम प्रेमचन्द-युगीन मानसिकता से एकदम अलग करके देख नहीं सकते । अन्तर सिर्फ इतना है कि प्रेमचन्द की सुधारवादी दृष्टि तथा गाँधीवादी मानसिकता से ये कहानीकार अलग रहे । बहुत सारी कहानियों में उन्होंने इस विचारधारा का विरोध भी किया है । लेकिन मोटे तौर प्रेमचन्द का जो प्रगतिशील दृष्टिकोण था, या प्रेमचन्द की गहरी सामाजिक समझबूझ तथा इतिहास-बोध प्रेमचन्दोत्तर युग के इन कहानीकारों में भी प्राप्त है । इसका यह मतलब नहीं है कि ये भी प्रेमचन्द युग के ठहरते हैं । इसका मतलब सिर्फ इतना है प्रेमचन्द युग की सामाजिक धारा का जो परवर्ती दौर रहा है, ये उसी के अन्तर्गत आनेवाले कहानीकार हैं ।

---

1. आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया - (1971) - मधुरेश - पृ: 20-21.

जहाँ तक मलयालम कहानी की बात है, काल-गणना की दृष्टि से वह काफी व्यापक है । अतः इस युग के केशवदेव, पोनकुन्नम वर्की या तकषी को काल के एक सीमित खण्ड के सन्दर्भ में विवेचित करना समीचीन नहीं है । अर्थात् मलयालम कहानी के यथार्थवादी युग के परवर्ती लेखकों के साथ इनका तथा इनकी कहानीयों का संबन्ध रहा है । हिन्दी की तुलना में मलयालम में यह प्रवृत्ति इसलिए अधिक प्रकट है कि प्रेमचन्द की मृत्यु 1936 में ही हो चुकी थी और प्रेमचन्द जैसी एक प्रतिभा (यथार्थवादी लेखक के रूप में) का आगमन पुनः नहीं हुआ । जबकि मलयालम के सभी यथार्थवादी कहानीकार करीब पच्चास, पचपन तक ज़ोरों तक रचनारत थे । अतः तुलनात्मक अध्ययन के अवसर पर प्रेमचन्दोत्तर युग के यशपाल, रांगेय राघव तथा सांकृत्यायन की तुलना पुनः मलयालम के यथार्थवादी युग के तकषी या खास तौर पर वर्की या केशवदेव के साथ संभव है । इसका मुख्य कारण यही है कि केशवदेव तथा वर्की जाने-माने मार्क्सवादी कहानीकार ही थे ।

केशवदेव और यशपाल की साहित्यिक मान्यताओं में (अपनी कहानियों के बारे में कथित) काफी समानताएँ हैं । उनकी कहानियों के सामान्य विश्लेषण के दौरान उनकी मान्यताओं पर प्रकाश डाला गया है । वे दोनों साहित्य से बढ़कर स्वयं समाज की केन्द्रीय अवस्थाओं से जुड़े हुए लेखक थे । प्रचार-वादिता पर अडिग विश्वास होने के बावजूद उनकी रचनाओं की अपनी विशेषताएँ भी रही हैं । यह बात यशपाल और वर्की के सन्दर्भ में भी संगत है ।

केशवदेव की "नर्स" कहानी की स्त्री तथा रांगेयराघव की "गदल" की स्त्री में इतनी समानता है कि ये दोनों एक ही दृष्टि की अभिव्यक्ति है भले ही परिवेश अलग-अलग हो । तप्त नारी-मन जिस प्रकार प्रोज्ज्वलित होता है, शोषण तंत्र के खिलाफ किस प्रकार आवाज़ बुलन्द करती है, यह विशेष द्रष्टव्य है । उसी प्रकार वर्की की कहानी 'आवाज़ करती हल' तथा यशपाल की कहानी, 'पर्दा' में मध्यवर्गीय जीवन की पर्दहीन कठिनाइयों का दृश्य सामने आता है । "हल की आवाज़" अन्ततः किसानी आस्था की कहानी है । फिर भी उसमें ऐसे एक ईसाई परिवार की मजबूरी का चित्र भी मिल जाता है जो "पर्दा" के दृश्य से मिलता जुलता है ।

निष्कर्ष के रूप में यह बताया जा सकता है कि प्रेमचन्दोत्तर युग के मार्क्सवादी कथाकारों तथा मलयालम के यथार्थवादी (मार्क्सवादी भी) कहानीकारों की रचनाओं की तुलना आसान है । इसका कारण यही है कि उनकी प्रेरणा, कथा-दृष्टि, तथा जीवन-परिवेश एक जैसा रहा है । दोनों भाषाओं के ये कहानीकार मार्क्सवादी होने के कारण इनका वैचारिक साम्य अधिकाधिक स्पष्ट है ।

मनोवैज्ञानिक यथार्थ की कहानियाँ

समाजवादी-मार्क्सवादी-कहानी के समानान्तर हिन्दी कहानी में मनोवैज्ञानिक यथार्थ की कहानी भी रची जाने लगी । इस युग में मनोविज्ञान का प्रभाव साहित्य पर बहुत ही गहरा था । वह एक नई प्रवृत्ति के रूप में प्रकट होने लगी । मात्र मनोविज्ञान के प्रभाव के कारण ही नहीं अपितु बुनियादी स्तर पर हिन्दी के तीन कहानीकार व्यक्तिवादी रहे हैं । इस कारण से व्यक्त्युन्मुखता उनकी मूलभूत दृष्टि है , जबकि उनमें जो मनोवैज्ञानिक प्रभाव देखने को मिलता है वह आनुषंगिक ही रहा है । मनोविज्ञान के प्रभाव की मात्रा भी अलग-अलग रही है ।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार प्रेमचन्द्रोत्तर युग की व्यक्त्युन्मुख धारा के कहानीकार हैं । यद्यपि व्यष्टि-सत्य या व्यष्टि-हित की जीवन-दृष्टि जैनेन्द्र को प्रसाद से विरासत के रूप में मिली थी, तो भी उनकी कहानियों के व्यष्टि-सत्य या व्यष्टि-यथार्थ का चित्रण प्रसाद की कहानियों की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म, जटिल और मनोवैज्ञानिक धरातल पर हुआ है । इसी तरह प्रसाद का रोमान्टिक काव्यबोध इनपर हावी नहीं है । इस दृष्टि से जैनेन्द्र ने हिन्दी कहानी में अपने लिए एक नयी दिशा की खोज करने का सफल प्रयास किया है । उनकी कहानियों में जीवन-यथार्थ का चित्रण मनोवैज्ञानिक स्तर पर हुआ है जो कि उनकी कहानियों की उपलब्धि है ।[1]

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डा. नगेन्द्र - पृ: 593.

जैनेन्द्र की प्राय: समस्त कहानियाँ दर्शन-समन्वित मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की आख्यायिकाएँ हैं ।[1] व्यक्तिवादिता, मनोवैज्ञानिकता, दार्शनिकता, विश्लेषणवाद, यौनवाद तथा प्रतीकात्मकता उनके कथा साहित्य की मूल-वृत्तियाँ हैं । अपनी "खेल", "अपना अपना भाग्य", "बाहुबलि", "नीलम देश की राजकन्या", दो चिडियाँ", "पाजेब", "एक रात", "पत्नी", "निराकरण", "जाह्नवी" जैसी कहानियों में उनहोंने व्यक्ति के आन्तरिक प्रश्नों, शंकाओं तथा गुत्थियों का अंकन किया है ।

"पत्नी", "निराकरण" जैसी कहानियों में पति-पत्नी के संबन्धों और अनुभूतियों का मनोवैज्ञानिक धरातल अनावृत हुआ है । "पत्नी" में एक अत्यन्त गार्हिक वातावरण में मध्यवर्गीय अपढ या मामूली पढी-लिखी पत्नी का सहज चित्रण है । कहानी की सुनन्दा अपने चूल्हे-चौके, चून की प्याली, घर-गृहस्थी की दुनिया में रहती है । उसका पति, कालिन्दीचरण पढा लिखा राजनीतिज्ञ और राष्ट्र सेवी है । सुनन्दा यह नहीं जानती कि स्वतन्त्रता क्या है, किन्तु वह जानती है कि स्वतन्त्रता अच्छी बात है, क्योंकि देश की स्वतन्त्रता के लिए काम करने वाले उसके पति का मित्रों में बडा सम्मान है । घर में वह अकेली है और पति उसके प्रति उदासीन है, और इससे उसका जीवन बिलकुल उदास बन जाता है । उसकी यह उदासीनता या उपेक्षित होने की अनुभूति कभी कभी पति के गौरव बोध से टकराती है । एकदिन कालिन्दीचरण के इस कथन पर, "खाना बन सकें तो कहो, नहीं तो इतने में ही काम चला लेंगे"[2] सुनन्दा मौन धारण कर लेती है । उस समय की उसकी कुंठित मन: स्थिति का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए कहानीकार लिखते हैं - "सुनन्दा के जी में ऐसा हुआ कि हाथ की बटलोई को

---

1. §क§ अज्ञेय का कथा साहित्य §1966§ - ओमकुमार - पृ: 127.

   §ख§ आज की कहानी : विचार और प्रतिक्रिया §1971§ - मधुरेश - पृ: 5.

2. "पत्नी" - जैनेन्द्र की कहानियाँ §आठवाँ भाग§ - §1964§ - पृ: 182.

ज़ोर से फेंक दे । किसी का गुस्सा सहने केलिए वह नहीं है । उसे तनिक भी सुध न रही कि अभी बैठे इन्हीं अपने पति के बारे में कैसी प्रीति और भलाई की बातें सोच रही थी । इस वक्त भीतर ही भीतर गुस्से से घुटकर रह गई ।"[1] अपनी पत्नी के इस मौन को पति सह नहीं सकता । वह नाराज़ होकर जल्दी ही जल्दी ही अपने मित्रों के साथ कहीं जाता है । इसप्रकार संकेतों और सूचनाओं द्वारा कई सामाजिक विसंगतियों का अंकन किया है । 'निराकरण' शीर्षक कहानी में पति-पत्नी के पारस्परिक मन मुटाव से दोनों की स्थिति संघर्षपूर्ण हो जाती है । पति की मानसिक अवस्था इन पंक्तियों से स्पष्ट है । - "पर उन्हें भीतर एकाएक बहुत ही सूनापन मालूम हुआ, जैसे सब है पर उनसे दूर है । वह एक है एकाकी है और अलग । उलझने तक का नाता जैसे अब कहीं नहीं रह गए हैं ।"[2] कहानी में स्थूल कथानक नहीं है । समूची कहानी एक भावमय चित्र या जीवन का सहज प्रस्तुतीकरण है

बालकों की मनोवृत्तियों के आधार पर जैनेन्द्र ने कहानियों की रचना की है । उनकी "चोर", 'आत्मशिक्षण' जैसी कहानियाँ बाल मनोविज्ञान के आधार पर विश्लेषण करने योग्य हैं । 'चोर'कहानी के प्रद्युम्न के मन में चोर के प्रति जिज्ञासा, भय, आतंक और उद्वेग होता है । एकदिन अपने साथी, दिलीप के मुँह से चोर का विवरण सुनकर वह उसे देखने केलिए भागता है । देख आने पर वह बहुत चिन्तित हो उठता है क्योंकि चोर किसी भी दृष्टि से दूसरों से भिन्न नहीं पडता । लोग उससे इतना डरता क्यों है - यह बात वह बालक समझ नहीं पाता है । कहानी में प्रद्युम्न की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है । "रत्नप्रभा" नामक कहानी में यौन कुंठा का मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है रत्नप्रभा के आचरण को सूक्ष्मता के साथ चित्रित करते हुए यौन पीडा से त्रस्त नारी-मन का चित्रण किया गया है । ऐसी कहानियों के माध्यम से व्यक्ति-मन की गहराईयों को झांकना ही जैनेन्द्र कुमार का उद्देश्य रहा है । प्रेमचन्द के बाद की

---

1. "पत्नी" - जैनेन्द्र की कहानियाँ (आठवाँ भाग) - (1964) - पृ: 182.
2. "निराकरण" - वही - पृ: 150.

हिन्दी कहानी की यह एक नई दिशा थी । 'दृष्टिकोण', 'एक रात' जैसी कहानियों में भी मनोवैज्ञानिकता का गहराता एहसास हमें मिलता है । जैनेन्द्र के रचनाबोध की मूल समस्या व्यक्ति की मुक्ति की है, एकाकीपन से मुक्ति पाने की है । इस समस्या को उन्होंने प्रेम तथा विवाह के माध्यम से उठाया है । इस कारण से व्यक्ति की मुक्ति की समस्या उनकी प्राय: सभी कहानियों में अन्तर्धारा बन जाती है । राजेन्द्र यादव ने ठीक ही लिखा है – "उनका नायक व्यक्ति ही, और प्राय: मैं का प्रतिरूप । . . . ये कहानियाँ चेखव की इस युक्ति की याद दिलाती है – कहानी का न कोई अन्त होता है, न प्रारंभ , वह जीवन का एक फाँक है ।"[1] जैनेन्द्र की कहानियों ने हिन्दी कहानी में एक नए शिल्प का परिचय कराया । जटिल अनुभवों केलिए जटिल संकेतों से युक्त कहानी की रचना जैनेन्द्र के साथ शुरू हुई ।

इलाचन्द्र जोशी

सही मायने में इलाचन्द्र जोशी मनोवैज्ञानिक कहानीकार हैं जिन्होंने फ्रायड और अन्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों के आधार पर कहानियों की रचना की है । मुख्य रूप से दो प्रकार की कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं – मध्यवर्ग की रूढी, कुंठा, संत्रास आदि का विश्लेषण करनेवाली और व्यक्ति के अहं की विवेचना करनेवाली । 'चरणों की दासी', 'परिकल्पना', 'रोगी', 'परित्यक्ता', 'होली' आदि कहानियाँ प्रथम कोटि की हैं और 'डायरी के नीरस पृष्ट' जैसी कहानियों दूसरे प्रकार की । इन दोनों प्रकारों की कहानियों की मूल संवेदना मनोवैज्ञानिक है । राजेन्द्र यादव उनकी कहानियों का एक ही धरातल मानने को तैयार हैं – वह है मनोवैज्ञानिक । उनका कथन है – उनके पात्रों की समस्या न सामाजिक है, न वैचारिक । . . . वह तो किसी मनोवैज्ञानिक ग्रंथि से ग्रस्त-त्रस्त होने की समस्या है ।"[2] जोशी अपनी कहानियों में मनोविज्ञान का प्रयोग सैद्धान्तिक स्तर

---

1. कहानी : स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव – पृ: 28.
2. वही – पृ: 32.

पर किया है, न कि जैनेन्द्र की भाँति व्यावहारिक स्तर पर । "चिट्ठी-पत्र" शीर्षक कहानी में प्रमीला के चरित्र में एडलर की हीनता-ग्रन्थि तथा 'रियाक्शन-फार्मेशन' नामक मनोग्रंथियों का प्रतिपादन हुआ है । अपनी कहानियों में मनोवैज्ञानिक तत्वों की प्रधानता के बारे में स्वयं जोशी ने लिखा है - "इस मनोवैज्ञानिक तत्व की प्रधानता का मूल कारण युग-जीवन की जटिलता है । युग-जीवन ज्यों-ज्यों जटिल से जटिलतर होता चला गया, त्यों त्यों कथाकारों ने सहज ही यह महसूस किया कि उस जीवन से संबन्धित पात्रों के जीवन के यथार्थ चित्रण केलिए एकमात्र उपाय यही है कि मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की विधि को अपनी रचना-प्रक्रिया में विशेष रूप से अपनाए गए, तभी पाठक के आगे युग का आइना सही परिप्रेक्ष्य में उतर सकेंगे ।"[1] अपने पात्रों की मनोवैज्ञानिकता पर से पर्दा उठाते हुए जोशी ने लिखा है -"साधारण से साधारण और सरल से सरल व्यक्ति के मन का रहस्य जब विश्लेषित और उद्घाटित हो जाता है तब वह सरल व्यक्ति, सहज ही एक ऐसा असाधारण पात्र लगने लगता है कि जैसे किसी पौराणिक कथा का असामान्य पात्र हो ।"[2]

जोशी की कहानियों की रचना-दृष्टि को तथा उनके वक्तव्यों से यह स्पष्ट ही होता है कि उनकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक प्रभाव से किंचित भी मुक्त नहीं है । हमें इस तथ्य को स्वीकार करना ही होगा जिस ओर जोशी ने संकेत किया है कि साधारण से लगनेवाले व्यक्ति में भी असाधारणत्व है । यह असाधारणत्व उसके मानसिक स्तर से संबन्धित है । मनुष्य स्वयं जटिल है । यही एक दृष्टि उन्होंने अनेक कहानियों में व्यक्त की है । परन्तु एक व्यापक परिवेश-जन्य सन्दर्भ जुटा पाने में जोशी की कहानियाँ सफल नहीं निकली हैं ।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ - इलाचन्द्र जोशी - (1978) - भूमिका - इलाचन्द्र जोशी
2. मैं ने अपनी रचनाओं में मनोविज्ञान को क्यों और कैसे अपनाया? - इलाचन्द्र जोशी - सारिका - 16 मार्च 1982.

अज्ञेय

अज्ञेय प्रेमचन्दोत्तर युग के समर्थ कहानीकार हैं । उनकी कुछ कहानियों में मनोविज्ञान का प्रभाव पड़ा है । इस कारण से उन्हें भी जैनेन्द्र और जोशी के साथ देखे जाने लगा । लेकिन अज्ञेय की बहुत सारी ऐसी कहानियाँ हैं जिनमें सामाजिक विषमता का चित्रण है, अनुभवों की संश्लिष्टता का परिचय है । लेकिन उनके कहानीकार का विकास एक आत्मकेन्द्रित रचनाकार के रूप में ही हुआ है ।

अज्ञेय का कहानीकार यथार्थ के व्यक्त्युन्मुख धरातलों को पार करते हुए आत्मनिष्ठ एवं आत्मकेन्द्रित बन गया है । इस तरह आत्मनिष्ठ या व्यक्तिवादी हो जाने का प्रमुख कारण यह है कि अज्ञेय मूलत: एक कवि हैं । ओम प्रभाकर ने यों लिखा है - "अज्ञेय की प्राय: समस्त कहानियों में व्यक्ति-चरित्र ही प्रमुख रूपेण चित्रित है । इसका एकमात्र प्रमुख कारण यह है कि वे मूलत: कवि की दृष्टि रखते हैं , किसी समाजालोचक, सुधारक की वृत्तियाँ उनमें नहीं है ।"[1] लक्ष्मीनारायण लाल भी ओमप्रभाकर के उपर्योक्त प्रस्ताव से सहमत हैं ।[2]

अज्ञेय के कहानी-साहित्य में वैविध्य है । उनकी "रोज" जैसी कहानी ऊब और अकेलेपन के संश्लिष्ट अनुभव से संबन्धित है और 'शरणदाता', 'बदला', 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई' जैसी कहानियों में देश के विभाजन से जुड़े हुए दंगे फसादों की और उससे घायल हुए मानव-मन की कथाएँ हैं । 'कड़ियाँ', 'पुलिस की सीटी', 'छाया', 'विपथगा' आदि कहानियों में क्रान्तिकारियों के व्यक्तित्व के अव्याख्येय पहलुओं का अंकन हुआ है । और 'लेटरबक्स',' हजामत का साबुन' जैसी कहानियों में व्यक्ति की असहायता और जिजीविषा का चित्रण हुआ है । विषय की दृष्टि से इन कहानियों में इतना वैविध्य होने पर भी इन सब में अज्ञेय की आत्मनिष्ठ आन्तरिकता लक्षित होती है ।"[3]

---

1. अज्ञेय का कथा साहित्य (1966) - ओम प्रभाकर - पृ: 134.
2. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास (1967) - लक्ष्मीनारायण लाल - पृ: 238.
3. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान - (1977) - रामदरश मिश्र - पृ: 36.

"मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई" नामक कहानी वस्तुतः एक व्यंग्य कहानी है । इसमें अज्ञेय की अहंग्रस्तता का सवाल नहीं उठता । यह विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखी हुई कहानी है । विभाजन केलिए धर्म का जो सहारा प्राप्त था उसे पर्दाफाश करने का कार्य उनकी इस कहानी में हुआ है । "लेटरवक्स" में विभाजन से संबन्धित त्रासद घटनाओं का उल्लेख है ।

अज्ञेय की एक चर्चित कहानी है "रोज़" । यह "कफन" के बाद की चर्चित कहानी है । आधुनिकता के सन्दर्भ में इसका उल्लेख होता है ।[1] कहानी की मालती आधुनिक समाज की, नई परिस्थितियों में जीनेवाली युवति है जिसके सारे व्यवहारों, संबन्धों और संवेदनाओं में एक तरह की यान्त्रिकता, उदासीनता, और एकरसता व्याप्त है । उसकी मानसिक एकरसता या टूटन की अभिव्यक्ति किन्हीं सिद्धान्तों के सहारे नहीं हुई है, वह उस गार्हिक वातावरण के कुछ सन्दर्भों से सहज भाव से स्थापित है । वह युवति दिन में प्रायः उस घर में अकेली है । बच्चे का रोना, उसे संभलना, पानी का देर से आना, बर्तन माँजना, खाना बनाना- इन सब गार्हिक सन्दर्भों से वह युवति तादात्म्य प्राप्त कर चुकी है । हर रोज़ दुहराए जानेवाले इन सन्दर्भों से भरे एकरस जीवन को उसने अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया है । "मैं ने सुना, मालती एक बिलकुल अनैच्छिक, अनुभूतिहीन, नीरस, यंत्रवत् - वह भी थके हुए यंत्र के से स्वर में कह रही है - "चार बज गए ।" मानो इस अनैच्छिक समय गिनने-गिनने में ही उसका मशीन-तुल्य जीवन बीतता तो, वैसे ही जैसे मोटर का स्पीडोमीटर यंत्रवत् फासला नापता जाता है, और यंत्रवत् विश्रान्त स्वर में कहता है (किससे ?) कि मैं ने अपने अमित शून्य पथ का इतना अंश तय कर लिया . . . ।"[2] कहानी का कोई विशेष अथ या इति नहीं है, समूची कहानी एक भाव या मूड की अभिव्यक्ति देती है । जब उस युवति का बच्चा पलंग से नीचे गिर पडता है और चिल्ला चिल्ला कर रोने लगता है, तब मालती

---

1. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - (1973) - इन्द्रनाथ मदान - पृः 76.
2. "रोज़" - विपथगा - (1982) - अज्ञेय - पृः 88.

उसे लेने केलिए हाथ बढाते हुए कहती है - "इसकी चोटें लगती ही रहती हैं, रोज़ ही गिर पडता है ।"[1] अपने बच्चे का गिरना भी उसकेलिए सिर्फ रोज़ की बात है । अपने परिवेश ने ही उस माँ के भावुक हृदय को जडवत् बना दिया है । सुरेन्द्र तिवारी का कथन सही लगता है - "गैंग्रीन" {रोज़} की साधारण रोज़मर्रा की स्थितियाँ हमें उतना नहीं कचोटती, पर दिन भर अपने काम में लगी पत्नी जब ऊबकर कहती है, 'तीन बज गए', तब की पीडा और उसकी ऊब रोज़ रोज़ के एक तरह के जीवन संबन्धी स्त्री की मानसिकता हमें कचोटती है ।"[2]

सन् 1931 से 1934 तक अज्ञेय बराबर जेल में रहे और इन वर्षों के अन्तराल लिखी गयी अधिकांश कहानियों का मूल स्वर क्रान्ति का है । 'हरीति,' 'अकलंक', 'एक घंटे में', छाया , 'विपथगा' जैसी कहानियाँ इसी पहलू को उद्घाटित करती हैं । परन्तु ये कहानियाँ भावुक और आदर्शवादी अधिक हैं जो प्रसाद की कहानियों की याद दिलाती हैं ।

मोटे तौर पर अज्ञेय की कहानी-चेतना के मूल में बौद्धिकता और गहन जीवन-बोध विद्यमान है । राजेन्द्र यादव की राय में, "उनकी कहानियों का विकास, प्रौढतर मस्तिष्क की - जीवन को अधिक से अधिक गहराई से जानते, समझते और अभिव्यक्ति देते जाने की प्रक्रिया का लेखा है ।"[3] अज्ञेय के कथा - साहित्य का विश्लेषण करते हुए ओम प्रभाकर ने लिखा है - "अज्ञेय अपने संपूर्ण कथा कृतित्व के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकता, यथार्थवादिता, दार्शनिकता, स्वस्थ संवेदनशील, अद्भुत शैली-शिल्प तथा आदर्श भाषा - शैली आदि विशिष्टताओं से युक्त होकर हिन्दी कथा-साहित्य के एक अत्यन्त सफल एवं सच्चे प्रतिनिधि कहानीकार हैं ।"[4]

---

1. "रोज़" - विपथगा - {1982} - अज्ञेय - पृ: 93.
2. प्रकृति और फ्रायड के बीच अज्ञेय की कहानी - सुरेन्द्र तिवारी का लेख - आजकल - सितम्बर 1982.
3. कहानी : स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - पृ: 31.
4. अज्ञेय का कथा साहित्य - ओमप्रभाकर - पृ: 151.

अनुभवों को उसकी जटिलता में पहचानने का कार्य प्रेमचन्दोत्तर युग में मुख्य रूप से इन तीन कहानिकारों के माध्यम से हुआ । इसलिए आधुनिक कहानी की चर्चा के दौरान इनकी कम से कम श्रेष्ठ कहानियों का परामर्श होता है जैसे अज्ञेय की 'रोज़', 'पठार का धीरज' या 'हीलीबोन की बतखें' और जैनेन्द्रकुमार की 'पत्नी', 'जाह्नवी' आदि कहानियाँ । इसके अलावा इन्हीं की कुछ कहानियों ने भाषिक संवेदना का पहला परिचय हिन्दी में करवाया था । यह एक नई दिशा थी ।

मलयालम कहानी का यथार्थोत्तर युग

एस. के. पोट्टेक्काट्टु और उरूब

मलयालम का यथार्थवादी युग किसी कहानीकार के नाम के आधार पर अभिहित नहीं है । इसलिए प्रेमचन्दोत्तर युग जैसा कोई सुविधाजनक नामकरण मलयालम कहानी में संभव नहीं है । यथार्थवादी युग का पहला दौर तकषी और कारूर की परंपरा से समाप्त होता है । उसका दूसरा दौर उरूब जैसे कहानीकारों से होता है । इसे सुविधा के लिए यथार्थोत्तर कहा गया है । यथार्थोत्तर युग से यह अर्थ निकालना काफी होगा कि प्रारंभिक यथार्थवादियों की तुलना में इस युग के कहानीकार अधिक सचेत और सौन्दर्यवादी हैं । प्रगतिशीलता को इन्होंने अलग ढंग से लिया है । समाजविहीन दृष्टि उन्होंने कभी नहीं अपनायी । परन्तु उसे गहराई में पहचानने का कार्य इन्होंने किया है । मनोवैज्ञानिकता का प्रभाव भी इनमें देखा जा सकता है । अतः यथार्थवादी युग में गिने जाने के बावजूद युगीन प्रवृत्तियों के उल्लंघन करनेवाले बशीर और कारूर के साथ ही इस युग के उरूब और पोट्टक्काट्टु की कहानियों का अधिक संबन्ध हो सकता है ।

मलयालम कहानी - साहित्य में कारूर और बशीर द्वारा प्रवर्तित व्यक्त्युन्मुख यथार्थवाद की जो परंपरा है उसका सहज और समग्र विकास एस. के. पोट्टेक्काट्टु और उरूब (पी. सी. कुट्टिकृष्णन) में हुआ है । एक खास अर्थ में दोनों व्यक्तिवादी हैं । उनके समूचे साहित्य में ऐसे पात्र विरले ही मिलते हैं जो किसी वर्ग के प्रतिनिधि हों या किसी सामाजिक अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले हों । ऐसी समानताओं के बावजूद इन दोनों की रचना-प्रक्रिया में अन्तर है और इनके अलग-अलग रचनात्मक व्यक्तित्व भी हैं ।

एस. के. पोट्टेक्काट्टु अपनी कहानियों में जीवन-यथार्थ को रोमान्टिक परिवेश में प्रस्तुत करते हैं । इसका यह अर्थ नहीं कि वे मूलतः एक रोमान्टिक कथाकार हैं । उनका रचनाकार यथार्थ से मुँह मोडकर किसी वायवीय जगत में विचरण करनेवाला नहीं है । जीवन-यथार्थ को ठीक उसी रूप में नहीं, वे उसे आदर्शात्मक और भावात्मक रंगों में चित्रित करना चाहते हैं । दूसरे शब्दों में, उनकी कहानियों में यथार्थवाद और रोमानी भावुकता का सुन्दर समन्वय हुआ है । एस. गुप्तन नायर सरीखे आलोचक इसी को "रोमान्टिक रियलिजम (स्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद) कहते हैं ।[1] उनकी "पुल्लिमान' (हिरण) 'सन्दर्शनम' (सन्दर्शन), 'प्रतिमा', 'निशागन्धी' जैसी कहानियों में यही प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । "पुल्लिमान" के शिकारी युवक, देवयृयन का संपर्क पार्वती नामक एक विधवा-स्त्री की सुप्त यौन-भावनाओं का स्पर्श करता है और दोनों आपस में प्रेम करने लगते हैं । थोडे दिनों के बाद पार्वती की छोटी बहन, सीतम्मा के आगमन से देवयृयन उसकी ओर आकृष्ट होता है । पार्वती का जीवन फिर दुखग्रस्त बन जाता है । देवयृयन की ओर से अपनी उपेक्षा का वह बदला लेती है, अपनी आत्महत्या से । कहानी के आरंभ में देवयृयन पार्वती को एक हिरण समझकर गलती से गोली चला देता है । गोली खाकर उसकी उँगली कट जाती है और चोट से खून बहने लगता है । कहानी की पार्वती अपने जीवन की उस अविस्मरणीय घटना के बारे में यों सोचती है - "जीवन में कितनी ही अप्रत्याशित और आकस्मिक

---

1. एस. के. पोट्टेक्काट्टु की कहानियाँ (तीसरा खण्ड) - (1981) - भूमिका - एस. गुप्तन नायर - पृ: V

घटनाएँ होती हैं । जीवन तो एक ऐसा उपन्यास है जिसका अन्तिम भाग हमारे लिए सदा अज्ञात रहता है ।"[1] आलोचक, के.पी. शंकरन ने लिखा है – "उपर्युक्त घटना का अयथार्थ धरातल और पार्वती का यह कथन कहानीकार की रचना और जीवन-सम्बन्धी अवबोध से जुडा हुआ है ।"[2] कुटकु {दक्षिण कर्णाटक} की पृष्ठभूमि में लिखी हुई प्रस्तुत कहानी का रोमान्टिक परिवेश कहानी के सन्दर्भ और प्रकृति के अनुकूल है ।

पोट्टेक्काट्टु यात्रा को आत्मसमर्पण मानते हैं । "उनके संदर्भ में सबसे ध्यान देने की बात शायद यह है कि वे मलयालम के अप्रतिम यात्रा-साहित्यकार हैं । यह जो यात्रा – उनके अनुभव और चैतन्य-ही उनकी कथा और कविता के प्रेरणा-स्रोत रहे हैं ।"[3] उनके कथा – साहित्य में वैविध्य के दर्शन होते हैं । केरल के गाँवों से लेकर दक्षिण आफ्रिका के भयावह जंगलों तक को उन्होंने अपनी कहानियों की पृष्ठभूमि बनायी है । आफ्रिका की ट्रैजडी की कथा, 'कुलद्रोही', क्लियोपाट्रा की याद में एक आल नाइट रेस्तराँ की पृष्ठभूमि में लिखी सशक्त कहानी, 'क्लियोपाट्रा का मोती', नैरोबी में वर्ण-भेद के खिलाफ लडकर आखिर अपने ही अंग्रेज़ भाइयों के हाथों शहीद होनेवाली साली की कथा, 'क्वहेरी' आदि उल्लेखनीय हैं ।

पोट्टेक्काट्टु ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करनेवाली कुछ एक कहानियों की भी रचना की है । 'पाट्टुकारी' {गायिका}, 'वेश्ययुटे कत्तु' {वेश्या का पत्र}, 'इन्स्पेक्शन', 'ओट्टकम' {ऊँट}, 'भ्रान्तन नाया' {पागल कुत्ता} आदि ऐसी कुछ कहानियाँ हैं । 'भ्रान्तन नाया' कहानी में गरीबी और शोषण से ग्रस्त कीरन के त्रासद जीवन का चित्रण हुआ है ।

---

1. "पुल्लिमान" – {हिरण} एस.के.पोट्टेक्काट्टु की कहानियाँ – {1978} पृ: 552.
2. के.पी. शंकरन का लेख – मातृभूमि साप्ताहिक, अक्तूबर 30 – नवंबर 5, 1983 – पृ: 7.
3. संचारिणी दीपशिखा – सुकुमार अषीक्कोटु – मातृभूमि साप्ताहिक – दिसंबर – 11-17, {1983} पृ:6.

कीरन की पत्नी आसन्न प्रसवा थी, लेकिन उसके हाथ में एक भी कौडी नहीं । उसके पडोस के केलु के लडके को पागल कुत्ते ने काटा । उसे अस्पताल में भर्ती कराने केलिए पंच के अधिकारी की सर्टिफिकेट की आवश्यकता थी । अधिकारी ने सर्टिफिकेट दी कि उसके लडके को आज पागल कुत्ते ने काटा है । केलु का कथन है - "लगता है हर रोज़ दस रुपये मिलेंगे । इसी से सुई लगानी होगी ।"[1] कीरन के मन में पागल कुत्ते और दस रुपये की तस्वीर झिलमिलाने लगा । अगले दिन उसने अपने छोटे बच्चे चात्तन के पैर पर काट डाला और अधिकारी से सर्टिफिकेट प्राप्त कर उसे अस्पताल ले गया । ग्यारह इंजक्शन के बाद लडके का शरीर फूलने लगा । वह पीला पड गया । "अगले दिन कीरन ने देखा कि चात्तन बेहोश होकर चारपाई पर पडा हुआ है । उस में सिर्फ एक खौफनाक कराह ही बची थी । कुछ देर के बाद उसकी सांस भी रुक गई । कीरन ने खौफनाक स्वर में अपनी 'चेरुमी'[2] को पुकारा । लेकिन वहाँ अभी अभी जन्म बच्चे की आवाज़ ही जवाब में सुनाई पडी । कीरन पागल की तरह झोंपडी से बाहर निकला और तेज़ी से दौडने लगा ।"[3]

इस कहानी में गरीबी का दर्दनाक चित्रण हुआ है । प्रस्तुत कहानी हमें यह सोचने केलिए बाध्य करती है कि जीवन का तीक्ष्ण यथार्थ मनुष्य को क्यों अनैतिक बनाता है? प्रेमचन्द की "कफन" से इस कहानी की तुलना करते समय हिन्दी कहानीकार, शानी भी यही प्रश्न पूछते हैं - "क्या गरीबी आदमी को इस हद तक बेहिस कर सकती है कि वह आदमी ही न रह जाय? 'पागलकुत्ता' यह सवाल ही नहीं करती, एक दहशत पैदा करनेवाली सचाई के रूबरू हमें धकेलती है - उस सचाई के सामने जिसे प्रेमचन्द की कहानी "कफन" ने भी रखा था और जो आज भी उतनी ही सच्ची और प्रासंगिक है ।"[4]

---

1. "भ्रान्तन नाया"- (पागल कुत्ता) - पोट्टेक्काट्टु की श्रेष्ठ कहानियाँ - (1981) पृ: 3-4.
2. "चेरुमी" - पत्नी
3. "भ्रान्तन नाया" - (पागल कुत्ता) - पोट्टेक्काट्टु की श्रेष्ठ कहानियाँ - पृ:7.
4. पोट्टेक्काट्टु की श्रेष्ठ कहानियाँ - भूमिका - शानी ।

स्त्रियों की मनोवृत्तियों का विश्लेषण करनेवाली कुछ एक कहानियाँ पोट्टेक्काट्टु ने लिखी हैं । "स्त्री" में उनका सौन्दर्योपासक कवि रोमान्टिक प्रेम के और भग्न प्रणय के विषाद का शब्द-चित्र खींचता है । "स्त्री" की भार्गवी, "पुल्लिमान" [हरिण] की पार्वती, विजयम की विलासिनी - ये सब पोट्टेक्काट्टु साहित्य के उज्वल चरित्र बने हैं ।

यह पहले ही संकेतित किया जा चुका है कि पोट्टेक्काट्टु मलयालम के सर्वश्रेष्ठ यात्रा - साहित्यकार हैं । देश-विदेश के भ्रमण से उन्हें काफी अनुभव हासिल हुए हैं । अपने इस व्यापक अनुभव ने उनके मन में जिस जीवन-दर्शन का बीज अंकुरित हुआ उसके केन्द्र में मनुष्य है । उनकी समूची कहानियों में जीवन के स्पर्श और गन्ध है । उनका यह आदर्श है कि जीवन जीने केलिए है और हमें रास्ते के कांटों और पत्थरों को हटाकर अग्रसर होना है ।[1] इसी जीवन - दृष्टि के कारण उन्होंने विशेष वर्ग का या दल केलिए नहीं, अभिव्यक्ति केलिए कहानियाँ लिखी हैं ।

मलयालम कहानी की व्यक्त्युन्मुख धारा "उरूब" [पी.सी. कुट्टिकृष्णन] में पूर्ण रूप से विकसित हुई है । साहित्य-सृजन में उनका ऐसा कोई लक्ष्य या उद्देश्य नहीं था जो साहित्य से परे है । उनका यह आदर्श था कि साहित्यकार को समाज-सुधारक या प्रचारक की भूमिका निभाने की ज़रूरत नहीं है । वह केवल तथ्यों को प्रस्तुत करता है । इसी आदर्श से उरूब ने अपनी कहानियों में सामाजिक समस्याओं के अंकन के बदले व्यक्ति-मन की जटिलताओं को प्रस्तुत किया है । व्यक्ति-मन को वे अपने अहं का प्रतिरूप मानते हैं । इसलिए उनकी कहानियों में उनके अहं की अभिव्यक्ति हुई है । उन्होंने लिखा है - "मैं अपने अहं प्रकाशित करता हूँ । सामाजिक यथार्थ का जो प्रभाव अपने मन पर पडता है उसको मैं

---

1. मनुष्यकथानुगायी कथाकर - पी. वत्सला - मातृभूमि साप्ताहिक - अगस्त 22-28, 1982 - पृ: 6.

अभिव्यक्त करता हूँ । सामाजिक प्रगति के उद्देश्य से मैं ने कुछ भी नहीं लिखा है ।"[1]

उरूब की अधिकतर कहानियाँ व्यक्ति-मन के विश्लेषण पर आधारित हैं । किन्तु वे अपनी कहानियों में किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को आरोपित करते नहीं हैं । जीवन की बाहरी समस्याओं से भी वे मुँह नहीं मोडते हैं । किन्तु बाहरी समस्याओं की अपेक्षा उनका झुकाव आन्तरिक समस्याओं की ओर अधिक है । चेतन और अवचेतन मन, उसकी सहज वासनाएँ, मूल्यबोध - आदि ने उन्हें आकृष्ट किया है । उनकी मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में "कुरिञ्ञिपूच्चा" (मासूम बिल्ली), 'अच्छन्टे मकन' (पिता का बेटा) , 'पोन्नम्मा', 'वेलक्कारियुटे मकन' (नौकरानी का बेटा), 'भर्त्तार्विन्टे रोगम' (पति की बीमारी), 'वेलिच्चत्तिनुम इरुट्टिनुम इडयिल' (रोशनी और अन्धियारी के बीच में) आदि उल्लेखनीय हैं । इनमें 'भर्त्तार्विन्टे रोगम' शीर्षक कहानी में मन के सूक्ष्म अन्तर्भावों का अनावरण हुआ है । कहानी के पति-पत्नी आपस में प्रेम करते हैं । पति बीमार है, इसलिए पत्नी रात-दिन उसके पास बैठकर उसकी सेवा शुश्रूषा करती है । जब पडोसिन उसे अपने घर आने का निमंत्रण देती है, वह कोई न कोई तरकीब बताकर उसे टाल देती है । किन्तु जब उसका पति भी उसे वहाँ जाने को कहता, तब वह उसके साथ जाती है । तब पति उसपर सन्देह करने लगता है । क्या वह वस्तुत: वहाँ जाना चाहती थी ' क्या वह उसकी सहमति के इन्तज़ार में थी ' - उसके मन में ऐसे कई सन्देह उठते हैं । इसतरह कहानी में उस पति के मानसिक विश्लेषण का चित्रण मिलता है । यद्यपि यह कहानी पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक तो नहीं है । लेकिन एक सहज जीवन स्थिति को मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ के साथ चित्रित किया गया है ।

---

1. "उरूब" की चुनी हुई कहानियाँ (1982) की भूमिका में के. एम. तरकन के वक्तव्य से उद्धृत - पृ: xxx

उरूब की कहानियों का मुख्य विषय पारिवारिक जीवन की छोटी छोटी घटनाएँ हैं। सुख और दुःख, राग और द्वेष, आशा और निराशा - इन सब का चित्रण व्यंग्य और सहानुभूति के साथ वे करते हैं। मूलतः वे एक मानवतावादी और सौन्दर्यवादी कथाकार हैं। कुट्टिकृष्णन के कथा-संसार में प्रेम, सहानुभूति और व्यंग्यात्मकता से सिक्त मानविकता की अजस्र धारा वर्तमान है।"[1] अपनी इस जीवन-दृष्टि को व्यक्त करते हुए स्वयं उरूब ने लिखा है - 'अपराध के स्रोत को देखें तो अपराधी से भी सहानुभूति होती है। अपने इस दृष्टिकोण से मुझे ऐसा भान हुआ कि मनुष्य मूलतः अच्छा है। इन्हीं कारणों से अपराधों और दोषों के होते हुए भी मनुष्य मुझे सुन्दर लगता है।"[2] §इसी जीवन-दृष्टि से उन्होंने एक उपन्यास भी लिखा है जिसका नाम है, 'सुन्दरिकलुम सुन्दरनमारुम्' §सुन्दर नारी-पुरूष§

कला और जीवन संबन्धी प्राचीन भारत का जो आदर्श है वह उरूब के रचनात्मक व्यक्तित्व की मूल-प्रेरणा है। प्राचीन-भारतीय परंपरा का यही आदर्श था - 'अन्तः पूर्णो बहिः पूर्णः'। अर्थात् यदि अन्दर पूर्णता है तो बाहर भी पूर्णता होती है। इस आदर्श पर वे विश्वास रखते थे। इसीलिए उनका साहित्य समरसता का साहित्य बन गया।[3] कला और जीवन संबन्धी उनका जो अवबोध है वह "भगवान्टे अट्टहासम्" §भगवान का ठहाका§ शीर्षक कहानी में स्पष्ट हुआ है। महाभारत युद्ध हो रहा है। कर्ण ने भीम के बेटा, घटोत्कच का वध किया। सारे पांडव दुःखी और मौन हैं। उस समय उस नीरवता को भेदकर एक ठहाका गूंज उठता है। वह भगवान कृष्ण का ठहाका है।

---

1. कहानी : कल और आज - एम. अच्युतन - पृ:214-215.
2. मेरी कहानियाँ : उरूब - उरूब की चुनी हुई कहानियाँ - §1982§ - पृ: 378.
3. पी.सी.:जीवन में और साहित्य में - सुकुमार अषीक्कोट्टु - मातृभूमि साप्ताहिक - अगस्त-5-11, 1979.

अर्जुन कृष्ण से कहता है - "आप निर्दयी हैं । अपने सारे बन्धु-मित्रों को धोखा देकर हमें विजय नहीं चाहिए ।"

"अर्जुन", कृष्ण का स्वर गूँज रहा है, "युद्ध के आरंभ में मैं ने तुम से जो कुछ कहा, वे सब बेकार हो गया । घटोत्कच, अर्जुन और धर्मपुत्र - सब मुझे एक समान हैं । दुर्योधन भी मेरा बन्धु है. । तो भी मैं तुम्हारे पक्ष में रहा क्योंकि धर्म तुम्हारे पक्ष में था । एक धर्मयुद्ध चल रहा है । सब कुछ मैं उस धर्मयुद्ध में स्वाहा करूँगा । ज़रूरत पडे तो तुम्हें भी । (पौधे का) जड (मूल) मैं हूँ । तुम सिर्फ तना हो । धर्म की विजय पर मैं ठहाका मार रहा हूँ ।"[1]

सौन्दर्य जीवन का तना है, धर्म उसका मूल । उरूब ने अपनी कहानियों में इन दोनों को-मूल और तने यानी सौन्दर्य और धर्म-जोडा है ।

अपने समकालीन कहानीकारों की भाँति उरूब ने भी अपनी कुछ कहानियों में व्यंग्य का प्रयोग किया है । संवाद और वातावरण की सृष्टि में उसका व्यंग्य निहित है । 'गोपालन नायरुटे ताडी' (गोपालन नायर की दाढ़ी) 'पन्तयम' (होड) आदि उरूब की प्रसिद्ध व्यंग्य रचनाएँ हैं ।

उरूब मलयालम के यथार्थवादी युग के तीसरे और अन्तिम चरण के कथाकार माने जाते हैं । उरूब के बाद में आनेवाले टी. पद्मनाभन, माधविकुट्टी और एम॰ टी. वासुदेवन नायर की कहानियों से मलयालम में आधुनिक कहानी की शुरुआत होती है । इसीलिए सुकुमार अष़ीक्कोटु सरीखे आलोचक उरूब को संक्रान्तिकाल के कहानीकार मानते हैं ।[2]

---

1. 'भगवान्टे अट्टहासम्' (भगवान का ठहाका) - उरूब की चुनी हुई कहानियाँ (1982) - पृ: 375-76.

2. Malayalam Short Stories - An anthology, Introduction - Sukumar Azheekodu - p.12.

ललिताम्बिका अन्तर्जनम

पोनकुन्नम वर्की और केशवदेव के समान श्रीमती ललितांबिका अन्तर्जनम भी अपने आदर्शों के प्रचार केलिए कहानी को एक माध्यम बनाया है। नंबूतिरी समाज के अनाचारों और अन्धविश्वासों का पर्दाफाश करना और इस विशेष समाज के लोगों को, विशेषकर स्त्रियों को, बदलते परिवेश के अनुसार स्वयं बदलने का आह्वान देना उनके साहित्य सृजन का लक्ष्य और उद्देश्य था। साहित्यिक क्षेत्र में उनका आगमन एक कवयित्री के रूप में था। बाद में उन्होंने कहानी को अपने सही माध्यम के रूप में चुन लिया। उनके मतानुसार अपने आदर्शों और विश्वासों के प्रचार केलिए सब से अच्छा माध्यम कहानी है। उन्होंने लिखा - "भावों और विचारों को जुटाकर प्रस्तुत करने में कहानी ही अधिक सक्षम होती है, विशेषकर जिनका कलोपासना के साथ कुछ लक्ष्य या उद्देश्य भी हो।"[1]

विषय की दृष्टि से ललितांबिका अन्तर्जनम वी.टी.भट्टतिरिप्पाटु और एम.पी.भट्टतिरिप्पाटु की स्कूल में आती हैं। लेकिन वे उन दोनों की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी हैं। अपने समाज की स्त्रियों के बारे में लिखते वक्त उनका आक्रोश अधिक तीव्र हो जाता है। उनकी 'कुट्टसम्मतम' {पछतावा}, 'मूडुपडत्तिल' {पर्दे में} जैसी कहानियाँ एक जाति-विशेष की ही नहीं, समूचे समाज के पीडित नारीत्व की कहानियाँ हैं। मलयालम के कथाकार, आलोचक के. सुरेन्द्रन ने इन दोनों कहानियों को दृष्टि में रखते हुए ही अन्तर्जनम को पीडित मानवता की कवयित्री बताया है।[2] ये दोनों कहानियाँ अनमेल विवाह की

---

1. कथाकारों से कथाओं की ओर - ललिताबिंका अन्तर्जनम का लेख - "तिलकम" {मासिक पत्रिका} - अक्टूबर, 1962.
2. अन्तर्जनम का कथा - संसार - के. सुरेन्द्रन - अन्तर्जनम : एक अध्ययन {1969} सं. अन्तर्जनम षष्टिपूर्ति समारोह समिति - पृ: 79.

कहानियाँ हैं । इन दोनों में उनका प्रचारक उनके कलाकार पर हावी है । "मूटुपटत्तिल" (परदे में) की नायिका बीस वर्षीय पाप्पी है जिसकी शादी साठ वर्षीय बूढे के साथ होती हैं । जिस पुरुष से वह प्रेम करती थी उसके साथ शादी कराने केलिए उसके घरवाले पहले अनुकूल थे । लेकिन जब उसने अपनी चोटी कटवाई और देश के स्वतन्त्रता - आन्दोलन में भाग लेने लगा तब घरवालों ने पाप्पी केलिए एक दूसरे वर को - एक साठ वर्षीय बूढे आदमी को - ढूँढ निकाला । उसके चाचाजी का कथन है - "आजकल पांच सौ में मेरे सिवा कौन लडकी का ब्याह कराएगा ?"[1] इस प्रकार वह उस बूढे आदमी की चौथी पत्नी के रूप में ससुराल चली जाती है । अगर वह चाहती तो अपने बूढे पति को दबा सकती । और अपनी सौतों से बदला ले सकती । लेकिन उसने वह रास्ता नहीं चुना । उसने अपनी भावना की दुनिया में जीना चाहा । वह अपने पति के पास न गयी, न सेवा की, उससे कुछ बोलो नहीं । उसकी नज़र और सूरत से भी वह घृणा करती थी । घरवाले कानाफूसी कर रहे थे । "यह कैसी लडकी है ! बूढा हो या बद सूरत ! तो भी उसका पतिदेव तो है न ? इस जीवन का प्रत्यक्ष देवता । फिर वह उसे क्यों प्यार नहीं करती ? फूल नहीं चढाती ? उसे पाने की खुश-किस्मत पर ईर्ष्या न करती ? "[2] अन्त में तंग आकर वह अपने मायके चली जाती है । वहाँ जब अपने पुराने प्रेमी को देखा, उसका हृदय बिलकुल टूट जाता है । पाप्पी के चाचा की बेटी के साथ उसकी शादी हुई थी । और उसकेलिए उस समाज-सुधारक ने प्रायश्चित भी किया था । यह उससे सहा नहीं गया । वह अपने पति के घर वापस आयी । वहाँ आते समय वह बीमार थी । थोडे ही दिनों में उसकी मृत्यु हुई । कहानी की पाप्पी अपनी सारी व्यथाओं को मौन सहन कर लेती है ।

---

1. 'मूटुपटत्तिल' (परदे में) - चुनी हुई कहानियाँ " (1966) - ललितांबिका अन्तर्जनम - पृ: 60 - अनु: एन॰ ई. विश्वनाथ अय्यर - कथातरंगिणी - पृ: 117.
2. वही - पृ: 53 - वही - पृ: 108.

क्योंकि अपनी दीदी का यह आदर्श उसका भी आदर्श बन चुका है -"पुरुषों का हित ही कर्तव्य है । कहीं भी उसे अस्वीकार करने का उसके बारे में कुछ पूछने का अधिकार हमें नहीं है ।"[1] इसी आदर्श के कारण अपने समाज के अनाचारों के विरुद्ध वह कभी आवाज़ नहीं उठाती । किन्तु उसका यह मौन या सहन भी उसके आक्रोश या विद्रोह का एक तरीका है । किन्तु 'कुट्टसम्मतम' (पछतावा) जैसी कहानियों में यह आक्रोश अधिक तीव्र हो जाता है । यह कहानी समाज और धर्म की झूठी नैतिकता पर एक खुला हुआ आक्रमण है ।

आदर्शों के प्रचार केलिए लिखी हुई अन्तर्जनम की कहानियाँ केशवदेव और वर्की की कहानियों की अपेक्षा अधिक रोमान्टिक और काव्यात्मक है । डा. एम. लीलावती के शब्दों में, "यद्यपि वे (अन्तर्जनम) ऐसी यथार्थवादी कहानीकार के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुकी है जिन्होंने जीवन्त समस्याओं पर आधारित कहानियों की रचना की है, तो भी मेरी दृष्टि में वे एक रोमान्टिक कहानीकार हैं ।"[2]

अन्तर्जनम का विचार था कि जीवन के सभी क्षेत्रों में स्त्री पुरुष के साथ इज्जत प्राप्त करे । "इतु आशास्यमाणो" (क्या यह सही है?) शीर्षक कहानी की पात्नी अपने पति के आदर्शों से जूझते हुए समूचे पुरुष-समाज को चुनौती देती है ।

अन्तर्जनम की कहानियाँ जीवित दायरे के होते हुए भी उसका एक व्यापक सन्दर्भ है । उसके स्त्री-पात्र सामाजिक अनैतिकता के सामने प्रश्नचिह्नों के समान खड़े मिलते हैं ।

---

1. 'मूटुपटत्तिल'- चुनी हुई कहानियाँ - अन्तर्जनम - पृ:60 . अनु: विश्वनाथ अय्यर - कथातरंगिणी - पृ: 117.
2. पीड़ित जीवन की कथाकारी - एम. लीलावती का लेख - अन्तर्जनम - एक अध्ययन - सं. अन्तर्जनम षष्टिपूर्ति समारोह समिति - पृ: 44.

<u>तुलनात्मक दिशाएँ</u>

मलयालम कहानी की यथार्थोत्तर धारा के कहानीकारों - एस.के. पोट्टेक्काट्टु, उरूब - के साथ हिन्दी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ की धारा के कहानीकारों की तुलना प्रकटतः असंभव है । इसका मुख्य कारण इस दौर की हिन्दी कहानी में दृष्टिगत मनोवैज्ञानिकता है । मनोवैज्ञानिकता का जो गहरा प्रभाव हिन्दी कहानी में मिलता है, जिसकी वजह से हिन्दी कहानी में एक विशेष प्रवृत्ति का सूत्रपात जो हुआ, मलयालम कहानी में उसकी उतनी गुंजाइश नहीं रही । लेकिन इस दौर की मलयालम कहानी पूर्ण रूप से मनोविज्ञान के प्रभाव से मुक्त नहीं है ।

दोनों भाषाओं में समानता का सन्दर्भ उनमें उपलब्ध व्यक्त्युन्मुखी दृष्टि में खोजा जा सकता है । यथार्थवादी युग की सामाजिक स्थितियों के स्थान पर, मनुष्य की समाज सापेक्षता के स्थान पर आन्तरिक यथार्थ को, मनुष्य की व्यक्ति सापेक्षता को प्रमुखता मिलने लगी । व्यक्ति की यह खोज सामाजिक स्थितियों को तिरस्कृत करने का कोई उपक्रम नहीं बल्कि व्यक्ति के तिरस्कृत होने के विरुद्ध अपनाया गया एक दृष्टिकोण मात्र है । अतः इस दौर की कहानियों में व्यक्ति प्रमुख होने लगे । उरूब, एस.के. पोट्टक्काट्टु , अज्ञेय, जैनेन्द्र आदि सभी कहानीकारों की रचनाएँ व्यक्ति की अंतरंगता से संबन्धित है । इनकी श्रेष्ठ कहानियों से लेकर सामान्य कहानियों में भी व्यक्ति-मानस प्रमुख हो उठा है । व्यक्तिमानस को लगातार कुरेदने की प्रवृत्ति, उसके सूक्ष्मतम स्तरों को पहचानने का ढंग, इसके बहाने आन्तरिक यथार्थ की तमाम संश्लिष्टताओं को उभारने की कोशिश इनमें दृष्टिगोचर होती है । उरूब की कहानी "पति की बीमारी" और जैनेन्द्र की "दृष्टिदोष" नामक कहानियों की समानता इसी तरह के आधार पर आँकी जा सकती है । दोनों कहानियाँ समान गति से अग्रसर होती नहीं है । लेकिन दोनों में व्यक्ति-मानस के मंथन के विभिन्न स्तर प्राप्त होते हैं । अपनी पत्नी को उसकी सहेली के यहाँ जाने की अनुमति देनेवाले बीमार पति के मानसिक उथल-पुथल को कहानी में अंकित किया गया है । संदेहग्रस्त पति का मन भटकना शुरू करता है । यह भटकन सिर्फ उसके

मन की नहीं बल्कि उन दोनों के जीवन की भी है । उनके संबन्ध की आन्तरिक शिथिलता कहीं गुंफित नहीं है । क्योंकि बाह्य रूपेण वह संबन्ध इतना स्वस्थ और संपन्न है । लेकिन पत्नी के जाने के उपरान्त वह शिथिलता धीरे धीरे अनावृत होती है । प्रारंभ में स्फुरित स्वस्थता खोज ली लगने लगती है । तभी तो कहानी का पति अस्वस्थ नज़र आता है । जैनेन्द्रकुमार की 'दृष्टिदोष' शीर्षक कहानी उरूब की कहानी के निकट लगती है । 'दृष्टिदोष' की महिला, जो विवाहिता है अपने पुराने प्रेमी के साथ आई हुई है । उसकी आँखों में कोई गडबडी है । उसका पुराना प्रेमी आँखों की इलाज करनेवाला डाक्टर है । वैसे डाक्टर उससे कुछ खास पूछता नहीं है । पर वह महिला ही यह बताती चलती है कि उसका घरबार ठीक-ठाक चल रहा है, उसका पति के साथ अच्छा संबन्ध है, उसके बाल-बच्चे ठीक से हैं । इन बातों को दुहराने तिहराने की वजह से स्वयं उसके जीवन का आन्तरिक स्तर शिथिल-सा अनुभव होता है । जब वह यह कहती है कि डाक्टर को ऐसी गलतफहमी का शिकार नहीं होना चाहिए कि वह उसके निकट पुराने संबन्ध को ऊष्मल बनाने नहीं आई है तो शिथिलता का पूरा आभास मिलने लगता है । ये दोनों व्यक्ति-मानस के अनावरण की कहानियाँ हैं । ये व्यक्तिमानस के मंथन की भी कहानियाँ हैं ।

यह बताया जा चुका है कि इस दौर की मलयालम कहानी मनोवैज्ञानिक प्रभाव से पूरी तरह से ग्रस्त नहीं है जब कि प्रभाव से मुक्त भी नहीं है । लेकिन जिस हद तक इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्रकुमार की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता है उस हद तक मलयालम के किसी भी कहानीकार की कहानी में मनोवैज्ञानिकता नहीं है । फिर भी मनोवैज्ञानिक संकेत मलयालम कहानी में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है । एस.के.पोट्टेक्काट्टु की कहानी, "हिरण" में एक नारी की सुप्त यौन भावनाओं के जागने तथा कुंठित होने का कलात्मक चित्रण किया गया है । उस कहानी की पार्वति विधवा है, जब उसे देवय्यन नामक एक पुरुष का प्रेम प्राप्त होता तो वह अपनी वैधव्य स्थिति के बाहर आ जाती है और उसका मन प्रेम से भर जाता है ।

यहाँ प्रेम मात्र वायवी ही नहीं बल्कि शारीरिक भी है । लेकिन देवय्यन का आकर्षण पार्वति की बहन, सीतम्मा की तरफ हो जाता है तो वह इतनी निरालंब होती है और अपने लिए आत्महत्या का रास्ता ढूँढ लेती है । जंगल और झाडियों के बीच में छलांग मारकर जानेवाले हिरण के साथ उसकी तुलना इसीलिए हुई है कि उसका मानसिक जगत तब तक एक तरह से स्वस्थ था । देवय्यन उसपर गोली चलाता है और उसे चोंट पहुँचता है । यह घटना इस कहानी में एक प्रतीकात्मक विन्यास है । चोट उसके हृदय को लगी हुई है । उस चोट की वजह से वह तिलमिला उठती है ; उसकी यौनाकांक्षाएँ पल्लवित होती हैं । परन्तु वास्तविक चोट देवय्यन के आचरण के कारण उसे लगती है । तभी वह आत्महत्या कर लेती है । जैनेन्द्रकुमार की कहानी, "रत्नप्रभा" का मनोवैज्ञानिक संकेत भी "हिरण" नामक कहानी के समान है । रत्नप्रभा जो एक बडे व्यापारी की पत्नी बनकर सुविधाओं से युक्त घर पर आती है । लेकिन उसका मन कुंठित भी है । इस कहानी में उस कुंठाग्रस्त मन को जगानेवाला एक लडका है जो गन्दी किताबें बेच रहा था । रत्नप्रभा उसे घर ले आती है और सुधारने का कार्य करती रहती है । लेकिन उस लडके का संबन्ध जिस लडकी से था उसे वह रोक नहीं पा रही है । तब वह अनियंत्रित सी हो जाती है और मार-पीट शुरू करती है । इस घटना के माध्यम से जैनेंद्र ने रत्नप्रभा की यौनाकांक्षाओं का चित्रण किया है जो समय पाकर अपनी परिस्थिति के अनुरूप प्रकट होती है । लेकिन मलयालम कहानी में जो स्त्री आत्महत्या करती है वह भी यौन आकांक्षा के खंडित होने की उसकी प्रतिक्रिया मात्र है । हिन्दी कहानी में आत्महत्या का चित्रण न होते हुए भी कुंठाग्रस्त मन की तीव्र अभिव्यक्ति सांकेतिक है । इसी प्रकार अज्ञेय की "हीली बोन की बतखें " नामक कहानी में भी कुंठाग्रस्त मन की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई है ।

इस दौर की कहानियों में मनोवैज्ञानिकता के अलावा संश्लिष्ट सामाजिक स्थितियों का अंकन भी हुआ है । एस. के. पोट्टेक्काट्टु की कहानी "पगलकुत्ता" में जिस सामाजिक विडम्बना का स्वरूप हमें प्राप्त होता है उसी का एक दूसरा पहलू अज्ञेय की कहानी, "मुस्लिम-मुस्लिम भाई भाई" में मिलता है । लेकिन यह हमें स्वीकार करना होगा कि पहली कहानी में वह गरीबी की मजबूरी की विडंबना है तो दूसरी में धार्मिक अन्धेपन की विडंबना से संबन्धित है । अतः वस्तुगत तुलना इन दोनों कहानियों के बीच में संभव नहीं है । फिर भी इस युग की एक खास प्रवृत्ति के रूप में देखते हुए तुलना की जा सकती है ।

यथार्थोत्तर युग की कहानियों की कलात्मक पहचान की तुलना विविध सन्दर्भों में की जा सकती है । इस प्रकरण में उसकी विस्तृत तुलना वांछित नहीं है । इतने पर भी यह कहा जा सकता है दोनों भाषाओं में पहली बार कहानी में कलात्मकता का आभास प्राप्त होने लगा । साथ ही साथ कहानी की रूढ़ियों को तिरस्कृत करने का दृष्टिकोण भी इसी दौर में विकसित हुआ है ।

अध्याय : दो

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में मानवीय संकट के विभिन्न आयाम

हिन्दी की नई कहानी

प्रवृत्तिगत विश्लेषण के पहले हिन्दी और मलयालम की आधुनिक कहानी की प्रारंभिक अवस्था और मूल चेतना पर प्रकाश डालना उचित लग रहा है । ऐतिहासिक परिदृश्य का किंचित मात्रा में अनावरण ही यहाँ वांछित है ।

हिन्दी की नई कहानी पूर्ववर्ती कहानी का सहज और समग्र विकास है । कहानीकार हरिशंकर परसाई के शब्दों में, "हिन्दी में कहानी की एक पुष्ट और स्वस्थ परंपरा है और वर्तमान कहानी उसका एक विकसित रूप है ।"[1] यह कथन इसलिए सही है कि वे पूर्ववर्ती कहानियों की विशिष्टताओं और उपलब्धियों को भी मानते हैं और नई कहानी की उस विशिष्ट प्रासंगिकता को भी रेखांकित करते हैं । उपेन्द्रनाथ अश्क के मतानुसार स्वयं प्रेमचन्द की 'नशा,' 'बड़े भाई साहब', 'मनोवृत्ति', 'कफन' आदि कहानियों में नई कहानी के शिल्प का बीज-रूप वर्तमान है । "जहाँ शिल्प और वस्तुगत प्रयोगों का संबन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये प्रयोग निश्चित रूप से (बदलते हुए राजनैतिक और सामाजिक माहौल के कारण) प्रेमचन्द के यहाँ आरंभ हो गए थे और प्रेमचन्द की उपर्युक्त चारों कहानियाँ ('नशा', 'बड़े भाई साहब', 'मनोवृत्ति', और 'कफन') मेरे इस कथन का प्रमाण है । 'कफन' और 'बड़े भाई साहब' में पात्रों का चरित्र-चित्रण, कथा की कथानक-हीनता और यथार्थ की पकड़ आज की किसी भी नयी कहानी की उपलब्धि मानी जा सकती है ।

---

1. हरिशंकर परसाई का लेख - कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति (1973) - सं: देवीशंकर अवस्थी - पृ: 56.

. . . और यों प्रेमचन्द के ज़माने ही से नयी कहानी पुरानी कहानी के साथ साथ अपने नये शिल्प, शैली और दृष्टि को लिये हुए चलने लगी और यदि मैं कहूँ कि यह विकास अभी जारी है, नयी कहानी दो चार दिशाओं में ही नहीं, दसों दिशाओं में विकास कर रही है तो गलत न होगा ।"[1] प्रेमचन्द के महत्व को सभी आलोचकों ने स्वीकारा है । लेकिन उनकी तमाम रचनाओं में आधुनिक कहानी की वह विशिष्टता तो नहीं है जिसपर प्रायः ये आलोचक बल देते हैं । अश्क ने अपनी दृष्टि से चार कहानियों को चुना । इन्द्रनाथ मदान ने आधुनिकता के सन्दर्भ में 'पूस की रात' और 'कफन' को देखा है ।[2] स्वत्वबोध के सन्दर्भ में कमलेश्वर ने इन्हीं कहानियों को भी देखा है ।[3] इसी प्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग की अपनी विशिष्टताएँ हैं । यशपाल और अज्ञेय के महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकारा जा सकता है । धनंजय वर्मा का कथन है - "नई कहानी कोई प्रवृत्ति-विशेष या धाराविशेष नहीं है, वह आज की परिस्थितियों में §से§ उद्भूत मानवीय वास्तविकता की समग्र संवेदना, संचेतनता, और भावबोध की कहानी है ।"[4] दूसरे शब्दों में वह एक ऐतिहासिक सन्दर्भ की उपज है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सन् पचास के आसपास हिन्दी कहानी में जो परिवर्तन हो रहा था वह बुनियादी रहा, भलेही उसकी पूर्व-सूचनाएँ उसके पहले प्रकाशित कहानियों में निर्णीत रही हों । इसका एक प्रमुख कारण स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही है । स्वतन्त्रता-प्राप्ति और उससे जुडा हुआ देश-विभाजन और अन्य घटनाएँ जीवन-मूल्यों के अवबोध में बडा परिवर्तन लाने में सक्षम हुई हैं । इस नये

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क का लेख - नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 48-49.
2. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - §1973§ - इन्द्रनाथमदान - पृ: 74.
3. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 150.
4. धनंजय वर्मा का लेख - नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 188-189.

अवबोध ने साहित्यिक अवबोध में भी परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । 'नयी कहानी " अनुभूति के स्तर पर इस परिवर्तित सामाजिक जीवन की पहचान की कहानी है । नयी कहानी की खास विशेषता उसकी समग्रता है, परिवेश के साथ उसकी सहज संपृक्ति है, उसका जीवन्त एहसास है । स्वतंत्रता-प्राप्ति के दो-तीन वर्षों के बाद जनतंत्र कायम हो गया और साहित्य-रचना केलिए नया वातावरण मिला सन् "52, "53 की कहानियों में थोडी गतिशीलता और मोहभंग की भावना लक्षित होती है । मोहभंग की यह प्रवृत्ति बाद में परिवेशगत दृष्टिकोण के रूप में सामने आती है । मोहभंग और परिवेशगत दृष्टिकोण, दोनों ने जीवन-यथार्थ के अवबोध और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को एक हद तक बदल दिया है ।

सन् 1954 में 'कहानी' नामक मासिक पत्रिका का पुनः प्रकाशन हिन्दी कहानी के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना मानी जाती है । "सरस्वती प्रेस की 'कहानी' हिन्दी में इस दशक की कहानी की पहली साहित्यिक पत्रिका ही नहीं, बल्कि एक तरह से इस पूरी कहानी दशक की शुरुआत है ।"[1] 'कहानी' के अलावा 'कल्पना', 'हंस', 'प्रतीक' आदि पत्रिकाओं में भी कुछ नयी प्रतिभाएँ नये भावबोध की कहानियाँ प्रकाशित करने लगीं । इस अवसर पर यह भी सूचित किया जा सकता है कि 'प्रतीक' में सन् 1951 में शिवप्रसाद सिंह की कहानी, 'दादी माँ' प्रकाशित हुई जिसे नई कहानी की पहली कहानी के रूप में भी देखते हैं ।[2]

'कहानी': नववर्षांक - "56 में कई नये कहानीकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं । "हिन्दी कहानी में इस विशेषांक की जितनी व्यापक चर्चा हुई और जैसा सहर्ष स्वागत हुआ उससे कहानी के नवजागरण की नींव पड गयी । निस्सन्देह

---

1. कहानी : नयी कहानी {1982} - नामवर सिंह - पृ: 208.
2. बच्चनसिंह का लेख - आलोचना, जुलाई 1965 - पृ: 59.

इस विशेषांक की नई कहानियाँ परम्परागत कहानी के दायरे से सर्वथा मुक्त नहीं हैं, किन्तु इनसे एक नये समारंभ का आत्मसजग आभास अवश्य मिलता है ।"[1] अप्रैल "54 की 'कल्पना' में साहित्यधारा के अन्तर्गत चक्रधर ने यह सूचित किया है - "एक लम्बे समय के बाद छोटी कहानियाँ फिर से अपनी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करने लगी हैं । प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल को छोडकर सहसा पाठक हिन्दी कहानियों में किसी भी ऐसे स्थानों पर रुकने को बाध्य नहीं हुआ, वहाँ थमकर एक पीढी ऐसी मिली हो, जिसने छोटी कहानियों की वस्तु और शैली समृद्ध की हो । इधर लेखकों की एक ऐसी पाँत उठ खडी हुई है, जो अपनी जगह रुचि और सामाजिक संस्कार की विभिन्नता के साथ, पाठकों में अपने ढंग से पहुँच रही है ।"[2] नई कहानी की चर्चा करते समय, नामवर सिंह कहानी के सम्पादक, श्रीपत्राय के इन शब्दों के साथ अपनी सहमति प्रकट करते हैं । "युद्धोत्तर हिन्दी कहानी में जो गतिरोध उत्पन्न हो गया था, वह अब जैसे टूट चला है, और स्वस्थ प्रवृत्तियाँ बलशील हो चली हैं ।"[3] इसप्रकार गतिरोध को तोडकर आए नयी पीढी के कहानिकारों में कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्रयादव, निर्मल वर्मा, फणीश्वर नाथ रेणु , हरिशंकर परसाई , रामकुमार , अमरकान्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, उषाप्रियंवदा, मन्नू भण्डारी आदि प्रमुख हैं । हिन्दी कहानी में गतिशीलता लाने में स्वयं कहानीकारों की प्रतिक्रियाएँ भी सहायक रही हैं । आलोचकों के साथ कहानीकारों ने भी कहानी के संबन्ध में अपना मत प्रकट किया है । इन में से कुछ मतों का विश्लेषण करना इसलिए अनिवार्य लगता है कि उनमें आधुनिक युग की माँगों का पूरा सन्निवेश है । कमलेश्वर ने अपने ग्रंथ 'नई कहानी की भूमिका' में अपना मत यों प्रकट किया है "कहानियाँ नहीं बदली थीं,

---

1. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ: 213.
2. चक्रधर का लेख - कल्पना, अप्रैल - 1954.
3. नयी कहानी : और एक शुरुआत - नामवर सिंह - समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि - (1970) - सं. धनंजय - पृ: 45.

समय की माँग बदली थी, और समय ने ही अपनी थाती में से नये चुनाव किये थे। कथा साहित्य में इस बदलते "एम्फेसिस" {आग्रह} को नज़र-अन्दाज़ नहीं किया जा सकता। और यह बदला हुआ आग्रह ही वह बिन्दु है जहाँ से कहानी मोड लेती है - और वही मोड ही नयी कहानी के नाम से अभिहित किया गया।"[1] कमलेश्वर का ज़ोर उस आन्तरिक स्रोत पर है जिसने कहानी को बदला है। इसमें एक लेखक की सच्ची प्रतिक्रिया की प्रतीति भी है। मोहन राकेश के कथन में उस समय की गतिशीलता का संकेत है - "जहाँ परंपरागत अभिव्यक्ति की असमर्थताओं ने उन्हें उससे विच्छिन्न होकर चलने को मजबूर किया, वहाँ अपनी उपलब्धियों और अनुपलब्धियों से भी वे {नए कहानीकार} लगातार अपने को विच्छिन्न करते रहे है। इसलिए उनके कृतित्व के आधार उपलब्धियाँ नहीं, एक निरंतर प्रयोगशीलता रही है। मानसिकता के सामान्य धरातल पर रहते हुए भी इस पीढी के अधिकांश कहानीकार एक दूसरे से स्वतन्त्र तथा सर्वत्र निजी दृष्टि लेकर चले हैं और बिलकुल अलग अलग तरह से अभिव्यक्ति के प्रयोग करते रहे हैं।"[2] निर्मल वर्मा ने नयी कहानी के उस शोर-शराबे को पूर्णतया स्वीकार नहीं किया है क्योंकि उनके अनुसार कहानी में बदलाव और भी आवश्यक है। इसीलिए उन्होंने कहा कि हिन्दी कहानी अब भी चेखव के पीछे की कहानी है। तभी तो उन्होंने लिखा - "नयी कहानी अपने में ही एक विरोधाभास है। जिस हद तक वह कहानी है उस हद तक वह नयी नहीं है, जिस सीमा तक वह नयी है, उस सीमा तक वह कहानी नहीं है।"[3] निर्मल वर्मा का यह कथन नयी कहानी की उपलब्धियों को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं है। वस्तुतः नयी कहानी बदल रही थी। पचास और साठ के बीच में जैसे राकेश ने बताया है,

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - {1978} - पृ: 35-36.
2. नयी संभावनाओं की खोज - मोहन राकेश - हिन्दी कहानी:पहचान और परख - {1973} - सं. इन्द्रनाथ मदान - पृ: 35.
3. नयी कहानी - निर्मल वर्मा - वही - पृ: 63.

हर एक कहानीकार अपने ढंग से प्रयोग करते हुए नयी कहानी स्वरूप प्राप्त कर रही थी । राजेन्द्र यादव ने लिखा है - "जिसे हम नयी कहानी कहते हैं, वह नये मनुष्य के परिवर्तित परिवेश और अनुभूतियों का परिणाम तो है ही, इस परिणाम की अभिव्यक्ति ने शिल्प और शास्त्र की दृष्टि से भी उसे पुरानी कहानी से अलग कर दिया है ।"[1]

आधुनिक मलयालम कहानी

हिन्दी की "नयी कहानी" की चर्चा करते हुए रामदरश मिश्र ने लिखा है - "नयी कहानी की चेतना स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन के यथार्थ की चेतना है और यह चेतना कलाकारों के अनुभव से जुड़ी होने के कारण अनेक रूप और रंग धारण करती है । अर्थात् नयी कहानी की चेतना परिवेश से जुड़े हुए व्यक्ति-मन की चेतना है ।"[2] हिन्दी की नयी कहानी के ही नहीं अधिकांश भारतीय भाषाओं के संदर्भ में रामदरश मिश्र का यह कथन एक विशिष्ट अर्थ में संगत प्रतीत होता है । स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के सामाजिक विधान, परिवेशगत परिवर्तन, व्यक्ति जीवन में दर्शित नवीनताएँ आदि तमाम भारतीय भाषाओं की कहानियों की प्रमुख विषय वस्तु है । मलयालम कहानी भी उस अर्थ में भारतीय कहानी की उस विशिष्ट धारा का प्रमुख अंग है ।

हिन्दी में नयी कहानी के लिए आन्दोलीकृत स्वरूप प्राप्त है, भले ही उसका खण्डन हुआ हो । लेकिन मलयालम में उस प्रकार की कोई चर्चा उपलब्ध नहीं है । कालान्तर में नयी पीढ़ी की रचनाओं के लिए 'आधुनिक कहानी' की संज्ञा दी गयी है । लेकिन परिवर्तन उस युग की एक अनिवार्यता थी ।

---

1. प्रयोग और प्रक्रिया - राजेन्द्र यादव - हिन्दी कहानी : पहचान और परख - सं. इन्द्र नाथ मदान - पृ: 56.
2. नयी कहानी - हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान - (1977) - रामदरश मिश्र - पृ: 57.

ज़ोरदार चर्चाओं का अभाव तो मलयालम में अवश्य रहा है । लेकिन नयी पढी के रचनाकारों में नई संवेदना की सहज प्रतीति निरंतर प्राप्त होने लगी है । यही वह पीढी है जिसने मलयालम कहानी को आधुनिकता का संस्पर्श प्रदान किया है । इस पीढी के प्रमुख कहानीकार हैं - टी. पद्मनाभन, एम.टी. वासुदेवन नायर, माधविक्कुट्टि, {असली नाम कमलादास है} कोविलिन {असली नाम वी.वी.अय्यप्पन है} आदि।

आज़ादी के बाद भारतीय मानसिकता में व्याप्त उस मोहभंग से कोई भी रचनाकार मुक्त न हो सका है । मोटे तौर पर निरर्थकता की आकुलता उनकी कहानियों में एक अन्तर्धारा बन जाती है । अशान्त और अतृप्त मानसिकता उन्हें निरंतर कचोटती है । पुराने मूल्यों पर उनका विश्वास नहीं, वे नये मूल्यों की तलाश करते हैं । किन्तु उन नये मूल्यों की प्रतिष्ठापना उनका उद्देश्य नहीं है । नयी पीढी के इन कहानीकारों की रचनाओं में घटना तो मुख्य नहीं, उन घटनाओं से मन में होने वाले सूक्ष्म और जटिल भावों का माहौल प्रस्तुत करने में और पाठकों को महसूस कराने में वे ध्यान देते हैं । टी. पद्मनाभन और वासुदेवन नायर तक आते-आते मलयालम कहानी अधिक काव्यात्मक बन जाती है । किन्तु यह काव्यात्मः उरूब जैसे कहानीकारों की रचनाओं की काव्यात्मकता से भिन्न है । "पुराने कथाक की रचनाओं की काव्यात्मकता वर्णनाओं और कल्पनाओं तक सीमित है । इनकी {पद्मनाभन, वासुदेवन नायर आदि की} कहानियों में आत्मनिष्ठ यथार्थ का प्रस्तुतीकरण होने के कारण कहानी भावगीत के नज़दीक आती है ।"[2] मलयालम कहानी के नये दौर के इन रचनाकारों की आत्मनिष्ठता का अपना एक व्यापक परिवेश है । इस व्यापक परिवेश में अनेक टूटते - बिखरते लोगों की कहानियाँ हैं । यह तो अवश्य है कि इन में केरलीयता का बाह्य स्फुरण सर्वत्र विद्यमान है । लेकिन

---

1. आज का कहानी-साहित्य - टी.पद्मनाभन - कलाकौमुदी, 13 नवंबर, 1988 - पृ: 19-20.

2. कहानी : कल और आज - एम.अच्युतन - पृ: 281.

उसके मार्ग से ये इनसानी "समाज" की अन्तर्कथाएँ ही हैं ।

मलयालम कहानीकारों ने भी अपनी रचनाओं के बारे में गहराई से सोचा है । युग की माँग को मलयालम कहानीकारों ने व्यापक स्तर पर अपनाया है । टी. पद्मनाभन ने हमेशा अपने को उस पुरानी पीढी से अलग रखा है और कहानी के बारे में बताते समय उनकी प्रतिक्रिया भी वैसी ही है । "मेरे अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों में से अधिकांश अपनी कहानियों में घटनाओं पर अधिक ध्यान देते थे । उसमें या तो एक प्रमुख घटना, नहीं तो एक प्रमुख घटना तथा उससे जुडी हुई कई छोटी-मोटी अन्य कथाएँ होती थीं । उनकी कहानियों में 'प्लॉट" प्रमुख था । उनके लिए कहानी एक मूर्त वस्तु-एक तरह से एक लघु उपन्यास - थी जिसका आदि, मध्य और अंत होता था । . . . मलयालम कहानी में जिस ढंग को स्वीकार करके मैं ने कहानियाँ लिखी हैं उसका प्रवर्तन तब तक किसी ने भी नहीं किया था ।"[1] यह एक सच है कि मलयालम कहानी में टी.पद्मनाभन का अपना अलग स्थान है । उन्होंने कहानी को समग्रता प्रदान की है । पद्मनाभन के साथ एम.टी. वासुदेवन नायर का नाम लिया जाता है । वर्षों तक "मातृभूमि" जैसी साप्ताहिक के संपादक रहने के कारण उन्हें मलयालम कहानी को स्वरूपित करने का श्रेय भी दिया जा सकता है । उन्होंने अपनी कहानियों के बारे में यों लिखा है - "केवल प्रयोग के लिए मैं ने कुछ भी नहीं लिखा है । मैं रचना में कई सांकेतिक रीतियों का प्रयोग किया करता हूँ । ... मेरा उद्देश्य सिर्फ एक कहानी सुनाना मात्र नहीं, एक कहानी महसूस कराना है । ... बिना कथानक के कहानी की रचना संभव है । कहानी तो केवल एक सांकेतिक नाम है । एक अनुभूति, एक भाव, एक लहर, एक मार्मिक चित्र . . . कहानी में इन सबका (या इनमें किसी एक का) चित्रण होता है । एम.आर. के.सी की पीढी (मलयालम की प्रारंभिक पीढी) में कथा तो मुख्य थी ।

---

1. चुनी हुई कहानियाँ (टी.पद्मनाभन) - भूमिका (मैं क्यों लिखता हूँ ?) - टी. पद्मनाभन - (1980) - पृ: 14.

इसके बदले दूसरी पीढ़ी (तकषी, देव आदि की) ने मनुष्य को देखा । . . . पहले कहानी में मनुष्य का पेट ही उभर आता था । अब हृदय ही स्वयं बातें करता है ।"[1] एम.टी. वासुदेवन नायर की तुलना अवैज्ञानिक नहीं है । आधुनिक मलयालम कहानी में जो सूक्ष्मता दर्शित होती है उस ओर ही वासुदेवन नायर संकेत करते हैं ।

माधविक्कुट्टि आधुनिक मलयालम कहानी के प्रारंभिक दौर के प्रमुख कहानीकार हैं । इनकी रचनाओं में मलयालम कथादृष्टि का आमूल-चूल परिवर्तन होता है । "प्लॉट" के स्थान पर विचार को प्रमुखता देते समय माधविक्कुट्टि भावुकता के तमाम परिपार्श्वों को ही महत्व दे रही हैं ।[2] यहाँ विचार का संबन्ध वैचारिकता से नहीं है । विचार उस बौद्धिक तत्व से जूझकर मानवीय स्थितियों की सही अवस्थाओं की खोज कर लेता है ।

तुलनात्मक दृष्टि से दोनों भाषाओं की आधुनिक कहानी के प्रारंभिक दौर को विश्लेषित करते समय एक बात अवश्य सामने आती है । वह नए परिवेश से संबन्धित है । लेकिन परिवेश का अर्थ परिस्थितियों के बाह्य पक्ष से नहीं है । जीवन को समझने के रंग-ढंग में दोनों भाषाओं की कहानियों ने गहन भावबोध का परिचय दिया है । जीवन के सतहीपन के प्रति, स्वत्वबोध के अभाव के प्रति दोनों भाषाओं के कहानीकारों ने अपना असंतोष व्यक्त किया है ।

हिन्दी और मलयालम कहानी में संकटबोध का सीधा साक्षात्कार

पिछले युग की तुलना में आधुनिक युग अधिक जटिल है और संकीर्ण है । इसके कई कारण हैं । युद्धोत्तर विश्व ने सबसे पहले इस संकीर्णता का अनुभव किया । यह सही है कि हर देश की अपनी-अपनी समस्याएँ हैं, हर एक सामाजिक इकाई की अपनी समस्याएँ हैं । प्रश्न उठ सकता है कि क्या इन समस्याओं को वैश्विक संदर्भ दिया जा सकता है ? मनुष्य की मानवीय समस्याएँ अधिकतर मानवीय संकट से

---

1. कथाकार की शिल्पशाला -(1983) - एम.टी. वासुदेवन नायर - पृ: 24-27.
2. "तिलकम" - पत्रिका - (अक्तूबर-1962) - परिसंवाद - माधविक्कुट्टि - (कहानीकारों से कहानी की ओर)

संबन्धित हैं । इसके लिए यूरोपीय परिस्थितियों या तीसरी दुनिया के देशों की समस्याओं का विश्लेषण आवश्यक नहीं है । फिर भी आज जब देशों के बीच की दूरी मिट गयी है और जटिलता की व्यापकता का एहसास हो रहा है तो साहित्यिक अभिव्यक्ति में, कलात्मक अभिव्यंजनाओं में समानता लक्षित होती है । इस अर्थ में ही यह प्रस्ताव सही है कि आधुनिक युग अधिकाधिक जटिल है । भारतीय साहित्य का विश्लेषण करते समय आधुनिकता का एक व्यापक स्तर विचारणीय बन जाता है और भाषिक इकाइयों से जुड़ी हुई छोटी छोटी इकाइयों की जटिलताएँ भी प्रमुख हैं । छोटी-छोटी सामाजिक इकाइयों के मनुष्य की तमाम समस्याओं का अपना अलग परिवेश होता है । इसका विश्लेषण किया जाना चाहिए । समूचे विश्लेषण के केन्द्र में एक मनुष्य रहता है । यह मनुष्य बिलकुल ठोस है । उसकी असुविधा, असमंजस, असुरक्षित अवस्था, अकेलापन, आकुलता सबकुछ मानवीय संकट के छोटे-छोटे क्षण ही हैं । अतः संकट बोध अथवा "ह्यूमन क्राइसिस" तत्कालिक इकाइयों से ही अधिक संबद्ध है । हिन्दी के प्रमुख कहानीकार मोहन राकेश ने इस संबन्ध में जो लिखा है वह विचारणीय है - "उन लोगों ने {पश्चिम के दार्शनिकों और कथाकारों ने} अपने परिवेश में "ह्यूमन क्राइसिस" को भोगा है, और हमने अपने परिवेश में । और दोनों ने ही समय और परिवेश की छटपटाहट को अपने अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है ।"[1] इस अर्थ में ही कहानी में परिवेश का महत्व बढ़ गया है ।

जहाँ तक सूक्ष्मतम जटिल समस्याओं और तत्संबन्धित दार्शनिक प्रश्नों का संबन्ध है, पश्चिमी साहित्य ने उसे सीधे साक्षात्कृत किया है । यह तो हमें मानना पडेगा ही कि उतनी स्तरीय रचनाएँ हमारी भाषाओं में अधिक प्राप्त नहीं हैं । लेकिन इस संदर्भ में विचारणीय प्रश्न यह है कि इस प्रकार की जटिलताओं को

---

1. समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचर्चा - मोहन राकेश : सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - {1974} - पृ: 56.

चित्रित करते समय, वह हमारे परिवेश के लिए पूर्णतः उचित न लगने के कारण क्या उसे आयातित ही समझा जाएगा । उसे आयातित समझना ठीक नहीं है । क्योंकि इन प्रश्नों पर जब दार्शनिकों ने विचार किया तब उनके सामने मनुष्य की बुनियादी समस्याएँ ही थीं । इस बात पर मलयालम के एक प्रसिद्ध युवा आलोचक के.पी.अप्पन का मत यह है -- "सुदूर देशों के दर्शन और कला का प्रभाव हमारे आधुनिक लेखकों पर पडा है । मनुष्य की अस्तित्व-संबन्धी समस्याओं की विभाजक रेखाएँ नहीं हैं । वे देश और काल की सीमाओं से परे हैं ।"[1] लेकिन सभी इस बात से सहमत नहीं हैं । उदाहरणार्थ हिन्दी कहानी में "ह्यूमन क्राइसिस" पर हुई एक चर्चा में भाग लेते हुए कहानीकार राजेन्द्रयादव का कहना है – "हमने मानवीय संकट को केवल बौद्धिक स्तर पर भोगा है , चेतना के स्तर पर नहीं । . . . लेकिन उस समस्या को अपने नैतिक और आध्यात्मिक स्तर पर जीना हमारे लिए तब तक सर्वथा असंभव है, जब तक कि वह हमारे चेतनाबोध का हिस्सा न बन जाए । हमने "ह्यूमन क्राइसिस" को बौद्धिक स्तर पर भोगा है, चेतना के स्तर पर नहीं ।"[2] ह्यूमन क्राइसिस को दार्शनिकता से जोडकर देखने से ऐसी समस्या उत्पन्न होती है । मानवीय संकट का संबन्ध मात्र दार्शनिक समस्याओं से नहीं है । उसका वास्तविक संबन्ध मानवीय चेतना की शिथिलताओं से है । प्रश्न यह है कि क्या ऐसी शिथिलता को हमने सिर्फ बौद्धिक स्तर पर भोगा है? क्या वह हमारी चेतना से जुडा हुआ नहीं है?

प्रथमतः मानवीय संकट मानवीय स्थिति की निजता की तमाम समस्याओं से संबन्धित है । जहाँ तक भारतीय समस्याओं का संबन्ध है, विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति काफी कुछ बदली है । सामन्तयुगीन स्थितियों में मनुष्य का स्वर मुखरित नहीं था । अब समस्या सामन्ती युग की नहीं बल्कि

---

1. ग्यारह कहानियाँ (1976) - सं. जोन सामुवल - भूमिका - के.पी.अप्पन -पृ: 11.
2. समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचर्या - मोहन राकेश : सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - (1974) - पृ: 57.

सामन्तीय अवस्था की है जिससे आज के मनुष्य को जूझना है । पहले तो वह स्वीकृत थी । अब वह स्वीकृत नहीं, परन्तु अस्वीकृत भी नहीं है । वैसे वह स्वीकृत है । अतः आधुनिक युग में अनेक जटिल और तनाव पूर्ण मानवीय स्थितियों से जुडी रचनाएँ सामने आयीं । इनमें एकतानता के बदले वैविध्य है क्योंकि संकट बोध को सरलीकृत नहीं किया जा सकता है । मलयालम और हिन्दी कहानी में यह अवस्था कुछ प्रखर ही कहा जाएगा । कमलेश्वर का कथन सही लगता है - "नयी कहानी मनुष्य को उसके परिवेश में अन्वेषित करती है और मानव नियति और उसके संकट के द्वन्द्व की अभिव्यक्ति है ।"[1]

मानवीय संकट के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करनेवाली इस दौर की कुछ कहानियों का विश्लेषण इस सन्दर्भ में उचित प्रतीत होता है । जिन कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है, उनमें जीवन की समान गति का आभास नहीं मिलता है । अतः यह देखने का प्रयास किया गया है कि मानवीय संकट का वह कौन सा पक्ष इनमें उभरा हुआ है । दरअसल ये कहानियाँ जीवन की उन विडंबनाओं से संबन्धित हैं जिनका सामना हमें हर क्षण करना पडता है । इसलिए प्रथमतः किसी समस्या का एहसास ही होता है । परन्तु वह कोई समस्या न होकर एक ऐसा संकट है जिससे न मुँह मोडा जा सकता है, जूझने के बावजूद कोई समाधान प्राप्त नहीं होता है । जीवन का वह छोटा-सा प्रसंग लगातार गहराता रहता है और उसके ऊपर सतह की कारुणिकता, दयनीयता, अनेकानेक सहज स्थितियों के बावजूद संकट (क्राइसिस) का रूप धारण करता है, भले ही उस संकट का कोई समाजशास्त्रीय पक्ष हो या कोई दार्शनिक पक्ष । जीवन के इस गहन पक्ष से संबन्धित होने के कारण ये संकटबोध की कहानियाँ हैं ।

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 120.

मन्नू भंडारी की एक चर्चित रचना है 'अकेली'। इस कहानी में सोमा बुआ के उस अकेलेपन का चित्रण है जिसको उस अवस्था में हर किसी को झेलना ही तो पड़ता है। उस अर्थ में वह एक साधारण कहानी है। जीवन का एक लघुतम पक्ष इस कहानी में उभारा गया है। जीवन के इस लघुतम पक्ष में मानवीय संकट का किंचित स्पर्श भी अनुभव किया जा सकता है। मन्नू भंडारी ने इस कहानी के बारे में लिखते हुए कहा है कि इसमें उनका आत्मपक्ष भी है - "अकेली' की सोमा बुआ को बचपन में जाने कब से देखा था कि किसप्रकार घर से उपेक्षा पाकर वह अपने आपको दूसरों केलिए महत्वपूर्ण बनाने के भ्रम में हास्यास्पद बनाती जा रही थी। उनके अकेलेपन और दयनीयता ने मुझे उस समय केवल मानवीय संवेदना के धरातल पर ही आकर्षित किया था। उस समय कहानी सोमा बुआ की व्यथा को वाणी देने केलिए ही लिखी थी, पर बरसों बाद मुझे उसमें कहीं अपना अंश, अपनी व्यथा दीखने लगी तो कहानी अचानक ही मुझे बहुत प्रिय हो उठी।"[1] लेखिका का अपने कथापात्र के साथ ऐसा एक आत्मीय संबन्ध हो जाना स्वाभाविक परिणति मात्र है। लेकिन जब वे लिखती हैं कि उसमें अपना अंश दीखने लगा, संभवतः यह अंश उसका संकट बोध ही है जो सचमुच इस कहानी को साधारण स्तर से ऊपर उठाता है। सोमा बुआ की प्रतीक्षा में जो आतुरता है उसमें नासमझी के पक्ष के होते हुए भी सोमा बुआ के सन्दर्भ में दर्दनाक है। मानवीय संकट का वह पक्ष इस कहानी में उभरा है कि निर्मूल्य होते हुए जीवन की अर्थहीनता सोमा बुआ से निकलकर मानवीय स्थिति का अंतरंग पक्ष सी हो जाती है।

यही बात धर्मवीर भारती की कहानी, 'गुल्की बन्नो' में विवृत हुई है। निरन्तर टूटती बिखरती गुलकी यह समझती है कि उसके बाप का घर क्यों खरीदा लिया जा रहा है। उस लेन देन में छिपी हुई चोरी से वह परिचित है।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ (1975) - मन्नु भंडारी - भूमिका - मन्नुभंडारी -पृ:6.

वह घेघा बुआ से कहती है - "पाँच महीने का दस रुपया नहीं दिया बेशक, पर हमारे घर की घन्नी निकाल के बसन्तू के हाथ किसने बेचा? तुमने ! पच्छिम ओर का दरवाज़ा चिरवा के किसने जलवाया? तुमने । हम गरीब हैं । हमारा बाप नहीं है . . . तुमने, ड्राइवर चाचा ने, सब ने मिलके हमारा मकान उजाड़ा है । अब हमारी दूकान बहाय देव । देखेंगे हम भी ।"[1] लेकिन वह आश्वस्त है । टूटन के स्थान पर वह पति का सहयोग चाहती है, सामीप्य चाहती है । इसलिए पति के व्यवहार में अमानवीयता का परिचय पाकर भी वह नई दुल्हिन की तरह जाने को तैयार होती है । अपने पति के पैरों पर नमस्कार करते हुए वह रोने लगती है - "हाय, हमें काहे छोड़ दिया? तुम्हारे सिवा हमारा लोक-परलोक और कौन है? अरे, हमारे मरे पर कौन चुल्लू भर पानी चढाई . . . ।"[2]

'अकेली' में सोमा बुआ की टूटन अन्तिम है । 'गुलकी बन्नो' में गुल्की की टूटन अन्तिम कही नहीं जा सकती है , पर अन्तिम हो जायेगी । जीवन को सहेजने की इच्छा के बावजूद टूटते देखते हुए इन पात्रों को संकटग्रस्त पात्रों की श्रेणी में ही हम रख सकते हैं । बिखराव के बीच में भी ये खड़े मिलते हैं । बिखराव से बेखबर तो नहीं । जान-बूझकर वे उसे स्वीकार करते हैं ।

निर्मल वर्मा की कहानी, "परिन्दे" के केन्द्र में लतिका नामक एक युवति है जो अपने अतीत से मुक्त होने केलिए बेचैन है । अपने दिवंगत प्रेमी, गिरीश नेगी, के प्रति उसके मन में भावुक लगाव है और इसीलिए उसकी स्मृतियों के रहते वह किसी दूसरे व्यक्ति से शादी कर नहीं सकती । वह सोचती है - "हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों केलिए बीच के

---

1. गुल्की बन्नो - बन्द गली का आखिरी मकान (1969) - धर्मवीर भारती - पृ: 12.

2. वही - पृ: 17.

इस पहाडी स्टेशन पर बसेरा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे अजनबी, अनजाने देशों में उड जायेंगे ।"[1] लेकिन अकेली लतिका कहीं नहीं जाती । अपनी स्मृतियों के पिंजरे से उसे कभी मुक्ति नहीं मिलती है । वह डाक्टर मुखरजी से पूछती है - "डाक्टर, सब कुछ होने के बावजूद वह क्या कुछ है, जो हमें चलाया जाता है , हम रूकते हैं तो भी अपने बहाव में हमें घसीट लिये जाते हैं ।"[2] कहानी के अन्त में, लतिका जूली के नाम आए लिफाफेवाले पत्र को उसके तकिये के नीचे रख देती है और अपने अशान्त मन को तृप्त कराने का असफल प्रयत्न करती है । रघुवीर सिन्हा के मतानुसार, "यह अक्षमता अपने आप उबर पाने की, एक भावात्मक डोर में बाँधे रहने की, और एक जिद जैसी प्रतिबद्धता, सम्पर्कों में रहते हुए भी कटाव महसूस करते रहने की और एक अयाचित यातना में अपने आपको सालते रहने का "ट्रैजिक सुख" लतिका को नकारात्मक जिन्दगी में डाल देते हैं । जीवन के इस यथार्थ पर भी बहुत सूक्ष्म रूप से कहानीकार की दृष्टि गई है ।"[3] प्रश्न यह है कि वह यह ट्रैजिक सुख क्यों मोलती है ? उसका यह नकारात्मक सुख क्यों है ? वही तो उसकी नियति सी हो गई है । संकटबोध का यह पक्ष इस कहानी में अनेक आयामों से युक्त है । पहाडों के पीछे से उडकर आनेवाली परिन्दों को देखकर वह सोचती है - "क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं ? वह, डाक्टर मुकर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट, लेकिन कहाँ केलिए, हम कहाँ जायेंगे ? "[4] नामवरसिंह की राय में लतिका का यह "प्रश्न मामूली है लेकिन कहानी के माहौल में यह सिर्फ पक्षियों का या लतिका का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं रह जाता । जैसे इस प्रश्न से लतिका, डाक्टर मुकर्जी , मि. ह्यूबर्ट , सबका संबन्ध है । इन सब का और इनके अलावा भी और सब का । देखते देखते प्रेम की यह कहानी मानव - नियति की व्यापक कहानी बन जाती है ।"[5] दूसरे शब्दों में, कहानी

---

1. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ (तीसरा संस्करण - 1977) - पृ: 54.
2. वही - पृ: 59.
3. नए बदलते परिवेश की कहानियाँ - आधुनिक हिन्दी कहानी : समाज - शास्त्रीय दृष्टि (प्रथम संस्करण) - रघुवीर सिन्हा - पृ: 40.
4. परिन्दे - मेरी प्रिय कहानियाँ (तीसरा संस्करण) - पृ: 54.
5. कहानी : नयी कहानी - नामवरसिंह (तृ. सं) - पृ: 59.

में परिन्दे लतिका, डाक्टर मुकर्जी, ह्यूबर्ट जैसे उन टूटे हुए व्यक्तियों के प्रतीक हैं जो उस पहाडी स्थान पर आकर जमे हुए हैं । परिन्दे कुछ दिनों केलिए उस पहाडी स्थान पर बसेरा करने के बाद अनजान देशों में उड जायेंगे । पर ये तीनों, कहाँ जायेंगे? ये वहाँ एक साथ होते हुए भी अलग अलग रहने केलिए अभिशाप्त हैं ।

महानगरीय जीवन-सन्दर्भों में अपनी अस्मिता कीतलाश करनेवाले आधुनिक मानव का संकट कमलेश्वर की "खोई हुई दिशाएँ" में उभर आता है । कहानी का चन्दर इलाहाबाद से दिल्ली आता है । तीन वर्षों के बाद भी उसे उस नगर ने अपनाया नहीं है । वहाँ किसी को भी किसी की परवाह नहीं, सब लोग अपने बारे में सोचते हैं । अपनी पुरानी प्रेमिका, इन्द्रा के व्यवहारों में भी सिर्फ औपचारिकता देखकर वह शिथिल होता है । दिन भर की थकान के साथ, वह घर लौट आता है, रात को अपनी पत्नी, निर्मला को झकझोरकर वह उससे पूछता है - "मुझे पहचानती हो ? मुझे पहचानती हो निर्मला ? "[1] चन्दर का आकुल सवाल एक असुरक्षित आदमी का है । कहीं न पहुँचनेवाले आदमी का है । उसकी खोई-हुई दिशाओं ने उसे इतना असुरक्षित कर दिया है और अपने एकान्त में उसे लगता है कि वह एकदम अयाचित भी है । अपनी अयाचित अवस्था की मजबूरी से वह भीतर से वाकिफ है । इसलिए आधी रात के बाद उसका प्रश्न उसकी पत्नी से न होकर उसकी नियति से है । उसकी संकट-ग्रस्तता से है ।

कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" का जगपति अपनी पत्नी, चन्दा से बहुत प्यार करता है, लेकिन इन दोनों के बीच आता है कंपाउडंर बच्चनसिंह जो उन्हें कभी कभी आर्थिक सहायता दिया करता है । लेकिन अपने अभावों के कारण कर्ज चुकाने में जगपति असमर्थ होता है । उसके जीवन का सब से बडा संकट तब उपस्थित होता है जब बच्चनसिंह द्वारा चन्दा गर्भवती होती है । अपना आक्रोश और विद्रोह भी वह प्रकट कर नहीं सकता क्योंकि वह उसका कर्जदार है । समाज की

---

1. खोई हुई दिशाएँ - मेरी प्रिय कहानियाँ - (प्र. सं. 1972) - कमलेश्वर - पृ: 56.

दृष्टि में कलंकित चन्दा भाग जाती है और जगपति आत्महत्या कर लेता है । जगपति और चन्दा के असफल दाम्पत्य की कथा के समानान्तर कहानी में एक अनपत्य राजा और उसकी रानी की कथा भी है । राजा की कथा में जगपति के स्थान पर मन्त्रि है, पर उसके जीवन के अभावों के स्थान पर केवल संयोग मात्र है । यही नहीं, राजा होने के नाते सामाजिक कलंक उसे छूता नहीं, पर जगपति मनुष्य है, इसलिए वह कलंक की ज्वाला में जल जाता है । रानी के कलंक को छिपाने केलिए कुल-देवता है तो चन्दा के कलंक को ओढने केलिए ऐसी कोई शक्ति नहीं । "उसी रात जगपति अपना सारा कारबार त्याग अफीम और तेल पीकर मर गया । क्योंकि चन्दा के पास कोई दैवी-शक्ति नहीं थी और जगपति राजा नहीं, बच्चन सिंह कंपाउडंर का कर्जदार था ।"[1] लोक कहानी और वस्तुवादी कहानी एक दूसरे को काटकर ऐसा एक विडंबना-जन्य आरेखन प्रस्तुत करती है कि जगपति की आत्महत्या निरी आत्महत्या न बन जाती है । यहाँ मात्र गरीबी की भी समस्या नहीं है । उससे बढकर स्वीकार और अस्वीकार के संकट की नियति को झेलने की समस्या है ।

उषा प्रियंवदा की "वापसी" नौकरी से "रिटयर्ड" होकर घर आए गजाधर बाबू की कारुणिकता की कहानी है । गजाधर बाबु के मन में "रिटयरमेंट" के बाद अपने घरवालों के साथ सुख और चैन से रहने की बडी तमन्ना थी । लेकिन जब वह रिटयर होकर घर आता है, क्रमशः वह समझने लगता है, अपनी पत्नी, बेटी, बहू सभी की नज़र में वह एक अयाचित अतिथि है या अवांछनीय बोझ है । "गजाधर बाबु की पत्नी सीधे चौके में चली गई । बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाई और कनस्टरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा, "अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकल दे । उसमें चलने तक की जगह नहीं ।"[2] "बूढे आदमी है, अमर भुनभुनाया, चुपचाप पडे रहे, हर चीज़ में दखल क्यों देते हो ।"[3]

---

1. राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 38.
2. वापसी - मेरी प्रिय कहानियाँ - (प्र.सं. 1974) - उषाप्रियंवदा - पृ: 82.
3. वही - पृ: 81.

परिवार में अपने को बहुत 'मिसफिट' पाकर वह फिर किसी सेठ के यहाँ नौकरी करने केलिए वापस चला जाता है । कहानी में गजाधरबाबु की पीड़ा को आर्थिक और सामाजिक दोनों ही सन्दर्भों में उभारा गया है । उसके जीवन का सब से बड़ा संकट यही है कि अपने ही घर में कोई भी उसे समझता नहीं है । "उसका अस्तित्व घर में ऐसी असंगत लगी, जैसे कि सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई ।"[1] जीवन में आशा और निराशा का स्थान अवश्य है । गजाधर की संकटग्रस्तता उसके इन दोनों के बीच में पड़ने के कारण है ।

मोहन राकेश की "मलबे का मालिक" देश-विभाजन की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई एक कहानी है । अपनी ज़मीन से उखड़े हुए लोगों के मन में उस ज़मीन के प्रति जो लगाव होता है वह इस कहानी की मूल संवेदना है । इस लगाव के कारण विभाजन के सात साल बाद लाहौर से कुछ मुसलमान अमृतसर आते हैं । बूढ़ा गनी उनमें एक है । उसके मन में अपना पुराना मकान एकबार फिर देखने की तीव्र अभिलाषा होती है । लेकिन विभाजन से जुड़ी हुई सांप्रदायिक दंगों में उसकी दूकान पूर्णतः जल चुकी थी और बेटा, चिराग और उसके पत्नी-बच्चे मारे गये थे । मकान के मल्बे के पास जाकर वह रोता है और उस रक्खा पहलवान से वह प्रेम के साथ मिलता है । गनी यह नहीं समझता कि रक्खा ने ही उसके घरवालों की हत्या की थी । विभाजन से जुड़ी हुई दुर्घटना के माध्यम से लेखक मानवीय संकट के एक अनछुए पक्ष को प्रस्तुत करता है । कहानी में इसकी सूचना है - "असल में मल्बा न इसका है, न गनी का, मल्बा तो सरकारी मालकियत है ।"[2] वस्तुतः यह कहानी विभाजन से जुड़ी हुई रचना होने के कारण इसमें राजनीतिक समस्या का पक्ष अधिक प्रबल है । लेकिन अन्ततः इस कहानी के केन्द्र में एक मनुष्य है उसकी नियति पूरी तरह से संकटग्रस्तता है । राजनीतिक पक्ष की प्रमुखता और प्रासंगिकता को अपनाने के साथ-साथ मानवीय स्थिति के उस बिखराव को भी स्वीकार करता है । इस बिखरी

---

1. 'वापसी'-मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - पृ: 81.
2. 'मलबे का मालिक'- नये बादल - (पुं. सं. 1957) - मोहन राकेश - पृ: 53.

अवस्था का मूल्य भी कम नहीं है । "नई कहानी" की चर्चा करते समय कमलेश्वर ने यों लिखा - "आधुनिक कहानी मानव-यातना की अंध-गुफाओं में उतरकर उनकी एकांतिक पीडा का अन्वेषण करते हुए भी समय से निरपेक्षा नहीं है । उसमें तनाव समकालीन सन्दर्भों का है, पीडा व्यक्ति की है और सच्चाई है अपने समय की ।"[1] 'मलबे का मालिक' कहानी के सन्दर्भ में कमलेश्वर का यह मन्तव्य सही लगता है ।

भीष्म साहनी की "चीफ की दावत" में शामनाथ अपने "चीफ" को सन्तुष्ट कर नौकरी में पदोन्नति प्राप्त करना चाहता है । इसकेलिए वह दावत पर चीफ (साहब) को अपने घर बुला लाता है । लेकिन दावत के अवसर पर अपनी झूठी प्रतिष्ठा केलिए वह अपनी बूढी माँ को घर के किसी कोने में छिपा देता है । उसके विचार में साहब उन्हें देख लेंगे तो, दावत की सारी गरिमा नष्ट हो जायेगी । यही नहीं माँ में वह अपना ही पुराना यथार्थ देखता है, जिसे वह साहब से छिपाना चाहता । परन्तु संयोग से साहब की नज़र माँ पर पडती है । तो बेटा बहुत क्रुद्ध होता है । "देखो ही शामनाथ क्रुद्ध हो उठे । जी चाहा कि माँ को धक्का देकर उठा दें, और उन्हें कोठरी में धकेल दें, मगर ऐसा करना संभव न था, चीफ और बाकी मेहमान पास खडे थे ।"[2] लेकिन माँ को देखने से साहब बहुत सन्तुष्ट होता है जब वह यह समझता है कि साहब को सन्तुष्ट करने केलिए माँ एक अच्छा साधन है तो वह भी बहुत खुश होता है । अपने बेटे की पदोन्नति केलिए साहब के इच्छानुसार, फुलकारी बनाने को भी माँ तैयार होती है - "तो मैं बना दूँगी, बेटा, जैसे बन पडेगा, बना दूँगी ।"[3] अपनी झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने केलिए मध्यवर्गीय आदमी अपना मूल्य-बोध कितना खो बैठता है और इसलिए उसका वैयक्तिक जीवन कितना खोखला बन जाता है उसका सन्दर्भ इस कहानी से मिलता है । यह खोखलापन

---

1. हिन्दी कहानी : कहाँ से कहाँ तक - (एक परिसंवाद) - "आजकल" दिसंबर - 1969 - पृ: 4.
2. चीफ की दावत - पहला पाठ - (1986) - भीष्म साहनी - पृ: 14.
3. वही - पृ: 19.

मध्यवर्गीय जीवन की बहुत बड़ी संकट-ग्रस्तता है । कपिल तिवारी के शब्दों में, "मध्यवर्गीय जीवन के जिस यथार्थ को आज़ादी के बाद देश में विकसित होने का अवसर मिला, उसमें इस वर्ग के जीवन की आन्तरिक और बाह्य स्थिति बड़ी विसंगतियों, विचित्रताओं और अमानवीयता से लथपथ हो गयी । "चीफ की दावत" कहानी का मूल स्वर इसकी यही विडंबना उद्घाटित करता है ।"[1]

मोहन राकेश की "सुहागिनें" आधुनिक समाज की उन नारियों के जीवन-संकट की कहानी है जो पति का सुहाग माथे पर लिए व्यथित दाम्पत्य-जीवन बिताने को अभिशप्त है । समाज के उच्च या निम्न कहे जानेवाले, दोनों वर्गों की नारियाँ इस अभिशाप से मुक्त नहीं हैं । कहानी में दो नारियों का चित्रण हुआ है - उन में एक है मनोरमा, जो तथाकथित शिक्षित और संस्कृत, उच्च वर्ग की प्रतिनिधि है तो दूसरी है काशी, जो अभिशप्त निम्न वर्ग की नारी है । मनोरमा का पति, सुशील, अपने परिवार के अन्य सदस्यों के जीवन से अधिक चिन्तित है । पति के इच्छानुसार उसे अपने आपको एक दूसरे ढाँचे में ढालना पड़ता है । यहाँ तक कि उसे अपनी मातृत्व-भावना का दमन भी करना पड़ता है । "यह बात वह सुशील को लिख सकेगी कि अपने आप उसे बिलकुल खाली-खाली-सा लगता है, और वह अपने अभाव को भरने केलिए उससे कुछ चाहती है . . . वह कुछ जो उसके आसपास हंसता, रोता, और किलकारियाँ करता रहे ।"[2] मनोरमा की नौकरानी, काशी अपने पति, अजुध्या के बुरे व्यवहारों से तंग हो जाती है, पर सब कुछ वह बर्दाश्त कर लेती है । इस प्रकार मनोरमा और काशी, इन दोनों के जीवन में एक ही अभिशाप है, एक ही मानवीय संकट है जिससे उन दोनों को कभी मुक्ति नहीं मिलती ।

---

1. भारतीय जीवन की सुख-पीडा में शामिल होने का अनुभव - कपिल तिवारी - भीष्मसाहनी : व्यक्ति और रचना - संपादक - राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर - प्र. सं. 1982, पृ: 108.
2. "सुहागिनें" - एक और जिन्दगी - (प्रथम संस्करण 1961) - मोहन राकेश, पृ: 41.

नारी जीवन की सहज कामनाओं के अलग-अलग रूप इस कहानी में संकेतित हैं । यह दो वर्गों की नारीयों की समस्याएँ नहीं हैं बल्कि दो कामनाओं की वैरुद्ध-स्थिति की कहानियाँ हैं ।

फणीश्वरनाथ रेणु की "तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुल्फाम" के हिरामन और हीराबाई दोनों आपस में प्रेम करते हैं, किन्तु इनका प्रेम मुखर नहीं है । हिरामन विधुर है । उसकी दृष्टि में हीराबाई सामान्य बाजारू नर्तकी नहीं, बहुत ऊँची अप्राप्य चीज़ है । हीराबाई भी अपनी सीमा और नियति समझती है । वह एक नर्तकी है, नाचने केलिए वह अभिशाप्त है , किसी अच्छे किसान के साथ जीवन बिताना उसकी नियति नहीं । "हीराबाई ने समझ लिया - हिरामन सचमुच हीरा है ।"[1] विश्वनाथ त्रिपाठी के मतानुसार, "हीराबाई के व्यक्तित्व के दो पक्ष हैं । उसका सहज नारी - रूप जो हिरामन को आत्मीय बनाना चाहता है और उसके पेशे का §नर्तकी§ रूप जिसका आत्मीय वह बक्सा ढोनेवाला है"[2] §जो उसे हिरामन से दूर कर देता है ।§ लाचार होकर जब वह हिरामन से बिदा लेती है तब हिरामन को अपने मन में बडी रिक्तता महसूस होती है । इस प्रकार इन दोनों के जीवन में "स्वीकार की मनःस्थिति और अस्वीकार की नियति का द्वन्द्व"[3] वर्तमान है जो इनके जीवन में गहरा संकट पैदा करता है । कहानी में अन्तर्भुक्त महुआ घटवारिन की लोक-कथा मुख्य कथा को अर्थ का एक दूसरा व प्रतीकात्मक आयाम प्रदान करती है । "महुआ घटवारिन को सौदागर ने खरीद जो लिया है, गुरुजी ।"[4] यहाँ हीराबाई अपने को महुआ घटवारिन मानती है और अपनी लाचारी प्रकट करती है कि उसे पैसे केलिए §या जीने केलिए§ हिरामन से अलग होना पडता है । वस्तुतः

---

1. "तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम" - मेरी प्रिय कहानियाँ §1977§ - फणीश्वरनाथ रेणु - पृ: 27.
2. रेणु की कहानी : तीसरी कसम" - विश्वनाथ त्रिपाठी, आलोचना - वर्ष - 32, अंक-68, पृ: 24.
3. कुछ कहानीकार - हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान - §1977§ डा. रामदरश मिश्र, पृ: 120.
4. तीसरी कसम - मेरी प्रिय कहानियाँ - फणीश्वरनाथ रेणु - पृ: 53.

रेणु की यह चर्चित कहानी अपनी आँचलिक स्थितियों के कारण अधिक आस्वादनीय हो गई है । रेणु की विशेषता ही यही है कि आँचलिकता को वे बाह्य आवरण के रूप में चित्रित करते नहीं हैं । अतः प्रस्तुत कहानी में दोनों की विदाई में मानवीय विडंबना का पूरा संगुंफन भी है तथा आँचलिक-स्थितियों से बंधी हुई अनेक आचार-स्थितियाँ भी ।

"तीसरी कसम" की तुलना में एकदम भिन्न परिवेश और मानसिकता की कहानी है मुक्तिबोध की "क्लाड ईथरली" । यह कहानी एक "फान्टसी" है, इस "फन्टसी" के द्वारा आधुनिक जीवन की यथार्थ स्थितियाँ प्रस्तुत की गयी हैं । क्लाड ईथरली वह अमरीकी विमान-चालक है, जिसने हिरोशिमा पर बम डाला था । कथानायक (कहानी का "मैं") भारत के किसी अनजान शहर के पागलखाने में क्लाड ईथरली को देखता है । पागलखाने के समीप जिस आदमी से वह परिचित होता है उससे वह पूछता है - "तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है ? हम अमेरिका में ही रह रहे हैं? "[1] प्रश्न का उत्तर वह आदमी यों देता है - "भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमेरिका है । . . . तो मतलब यह है कि अगर उनकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका संकट हमारा संकट है - जैसा कि सिद्ध है - ज़रा पढ़ो अखबार, करो बातचीत अंग्रेज़ीदा फर्राटबाज लोगों से - तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमा पर बम गिरानेवाला विमानचालक क्यों नहीं हो सकता और यहाँ भी साम्राज्यवादी युद्धवादी क्यों नहीं हो सकता? मुख्तसर किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमेरिका ही है ।"[2] वह आदमी यह भी बताता है कि विमान चालक, क्लाड ईथरली बम से हिरोशिमा को बेस्तनाबूद बनाकर अमरीकी सरकार की निगाह में "वार हीरो" हो गया था, किन्तु वह अपनी कारगुज़ारी

---

1. "क्लाड ईथरली" - काठ का सपना (1967) - मुक्तिबोध - पृ: 9.
2. वही -पृ: 10-11.

देखने वहाँ ले जाया गया तो उस भयानक शहर को देखकर उसका दिल टुकडे टुकडे हो गया है । अपने आन्तरिक संघर्ष और बेचैनी की चरम सीमा में वह पागल हो जाता है और पागलखाने में डाला दिया जाता है । इस "फान्टसी" के द्वारा कहानीकार ने हमारे देश पर पडनेवाले साम्राज्यवादी संस्कृति के प्रभाव की ओर संकेत किया है कि "भारत के हर बडे नगर में एक अमेरिका है ।" कथानायक के साथी के शब्दों में, "क्लाड ईथरली अणुयुद्ध का विरोध करनेवाली आवाज़ का दूसरा नाम है । वह मानसिक रोगी नहीं, आध्यात्मिक अशान्ति का ज्वलन्त प्रतीक है ।"[1] वह अपनी बात को और भी स्पष्ट करता है - "क्लाड ईथरली हमारे यहाँ देह रूप में न रहे, लेकिन आत्मा की वैसी बेचैनी रखनेवाले लोग तो यहाँ रह ही सकते हैं । . . . मतलब यह है कि ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो पापाचार रूपी, शोषण रूपी डाकुओं को अपनी छाती पर बैठा समझते हैं ।"[2] उस व्यापक अन्याय का "अनुभव" करनेवाले किन्तु उसका विरोध करनेवाले लोगों के अन्तःकरण में व्यक्तिगत पापभावना रहती ही है, रहनी ही चाहिए । ईथरली में और उनमें यह बुनियादी एकता और अभेद है . . . इससे सिद्ध हुआ कि तुम सरीखे, सचेत, जागरूक संवेदनशील जन क्लाड ईथरली है ।"[3] मुक्तिबोध की राय में मनुष्य के यथार्थ संकट का मूलरूप व्यवस्था-जन्य है । अणुशक्ति के खतरे से सजग करनेवाली प्रस्तुत कहानी यह भी बताती है यह खतरा टल सकता है । विश्वंभर नाथ उपाध्याय के शब्दों में, "लोग यदि अपना दायित्व समझकर, खतरों केलिए जिम्मेदार शक्तियों से लडें तो विश्वयुद्ध भी हमेशा केलिए समाप्त हो सकता है, उसकेलिए अपनी सरकारों यानी व्यवस्था से लडना होगा

---

1. क्लाड ईथरली - काठ का सपना - मुक्तिबोध - पृ: 13.
2. वही - पृ: 15
3. वही - पृ: 13.
4. मुक्तिबोध की कहानियाँ - समकालीन सिद्धान्त और साहित्य - विश्वंभर नाथ उपाध्याय (1976) - पृ: 198.

इसप्रकार गहरे मानवीय संकट की अभिव्यक्ति देनेवाली इस कहानी का यथार्थ हिरोशिमा और विमान चालक क्लाड ईथरली के सन्दर्भ में ही नहीं, किसी भी देश में, किसी भी काल में संगत प्रतीत होता है । मोतीराम वर्मा ने लिखा है - "क्लाड ईथरली की मुक्तिबोधीय कल्पना किसी देश-विशेष के व्यक्ति-विशेष की दर्द भरी कहानी ही नहीं, वह हम सब की वास्तविक ज्वलन्त समस्या है ।"[1] मोतीराम वर्मा के इस वक्तव्य से आलोचक, मधुरेश भी सहमत है । विमान चालक, क्लाड ईथरली की उस तथाकथित सांसारिक असफलता का एकमात्र कारण यह है कि किसी न किसी धरातल पर वह अपने संघर्ष में सफल होता है । समाज की गलत व्यवस्था के प्रति ईथरली में जो गहरा असन्तोष और अस्वीकार भाव है वह किसी भी एक ईमानदार व्यक्ति के संकट और संघर्ष है ।[2] फैंटसीनुमा रचना होने के कारण ही नहीं बल्कि मुक्तिबोध की इस कहानी के अनेक अयाम हैं । युद्ध की विभीषिका और युद्ध का विरोध, युद्ध की साजिश तथा युद्ध की उपस्थिति, साम्राज्य-वाद का विकास तथा साम्राज्यवाद का विरोध आदि ने मिलकर इस कहानी को एक विराट संकट में परिणत करने का कार्य किया है । संकट की गहराई तभी पूर्ण होती है जब हम इस साम्राज्यवाद के बढ़ते प्रसार को अनुभव नहीं कर पा रहे हैं ।

जीवन की विडंबनाओं से संबन्धित कहानियों में संकट-बोध का कोई न कोई पक्ष तलाशा गया है । हिन्दी कहानी में ऐसी ढेर-सारी रचनाएँ हमें मिल जायेंगी, जिन में केन्द्रीय विषय के रूप में मनुष्य के उस द्वन्द्व को रखा गया है जो इस जीते जागते मनुष्य के जीवन का अभिन्न अंग है । कभी यह पक्ष सामाजिक संदर्भ में - "खोई हुई दिशाएँ", "चीफ की दावत" - कभी वैयक्तिक सन्दर्भों में मुखर उठता है । "अकेली" और "तीसरी कसम" के बीच की दूरी काफी लंबी है । इसी प्रकार "गुलकी बन्नो" और "खोई हुई दिशाएँ" के बीच की भी । लेकिन इस फासले को समाप्त करनेवाला पक्ष इन सब की संकटग्रस्तता ही है ।

---

1. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य - मोतीराम वर्मा (1973) - पृ: 58
2. निजी संघर्ष की प्रभावशाली अभिव्यक्ति - आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया - मधुरेश (1971) - पृ: 118-119.

हिन्दी की नई कहानी ने अगर जीवन की समग्रता का चित्रण किया है तो उसके पीछे यह कशमकश विद्यमान है । व्यक्तिजीवन की अदृश्य दीवारों से टकराते हुए अंधेरे में गिरफ्त होनेवाले लोग हमें इस दौर में मिले हैं । उसी प्रकार अनिश्चित सामाजिक स्थितियों के बीच अपनी वैरुद्ध-स्थितियों के साथ खड़े पात्र भी मिल जाते हैं । अपनी विविधता के बावजूद ये कहानियाँ इसलिए हमारे "आज" की हैं कि इनमें मानवीय संकट का एक सही क्षण कहीं स्पन्दित मिलता है ।

आधुनिक मलयालम कहानी के सन्दर्भ में मानवीय संकट के विभिन्न आयामों का अन्वेषण लगभग 1950 के बाद की कहानी से शुरू होता है । यह सूचित किया जा चुका है कि यथार्थवादी युग के बशीर और कारूर भी जीवन की विडंबनाओं की गहराई को पहचाने हुए कहानीकार थे । 1950 के बाद कहानी के क्षेत्र में आए टी. पद्मनाभन, एम. टी. वासुदेवन नायर, माधविक्कुट्टि, ओ. वी. विजयन आदि कहानीकारों ने अपनी कहानियों में नयी परिस्थितियों में जीनेवाले आधुनिक मनुष्य की अस्मिता की तलाश से संबन्धित प्रकरणों का चित्रण किया है । अपने पूर्ववर्ती कहानीकारों की भाँति मनुष्य को केवल सामाजिक इकाई के रूप में देखने केलिए वे तैयार नहीं थे । आधुनिक मनुष्य के जीवन की विडंबनाओं को और उसकी दार्शनिक समस्याओं को उन्होंने विषय बनाया है । नई परिस्थितियाँ, राष्ट्रीय और अन्तर्देशीय घटनाएँ, पश्चिम की कला और दर्शन का प्रभाव आदि ने मनुष्य को अपनी सत्ता या अस्तित्व के बारे में पुनर्विचार करने को बाध्य किया है । इस सजगता ने आधुनिक कहानीकारों की रचना-सम्बन्धी मान्यताओं को भी परिवर्तित किया है । आधुनिक युग के मानवीय संकट से संबन्धित अशान्त अवबोध नये कहानीकारों की मुख्य सृजनात्मक प्रेरणा है । मानवीय संकट के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करनेवाली इस दौर की कुछ एक मलयालम कहानियों का विवेचन करना उचित लगता है । जैसे उपरिवत् सूचित किया जा चुका है कि हिन्दी कहानी में संकटबोध का रूप बहुरंगी है । वही बात मलयालम कहानी केलिए भी प्रासंगिक है ।

टी. पद्मनाभन की "मखनसिंगिन्टे मरणम" {मखनसिंह की मृत्यु} शीर्षक कहानी में मानवीय संकट का एक आयाम उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है । देश के विभाजन के बाद के सांप्रदायिक दंगों में मखनसिंह नामक एक पंजाबी ड्राइवर की सारी संपत्ति नष्ट होती है । उसके जीवन की अन्तिम परीक्षा ही कहानी का विषय है । बनिहाल में जब एक माँ-बेटी दर्द भरी आँखों के साथ उसके सामने आ खडी होती है तब उसके मन में कई प्रकार के विचार उठते हैं । वह उनमें अपनी माँ और बीवी के रूप देखता है । उनके पास एक कौडी भी नहीं है, तो भी मखनसिंह उन दोनों को बस में यात्रा करने की अनुमति देता है । रास्ते में जब इन्स्पेक्टर से पकडी जाती है, वह उससे झगडा करता है । वह बेचैन होता है -

"मनुष्य की तडप यहाँ कोई भी समझ नहीं सकता । उसने इन्स्पेक्टर के पास जाकर कहा - आज दुपहर को ही उन्हें श्रीनगर पहुँचना है । वहाँ उस बूढी माँ का बेटा जो बीमार पडा है ।

इन्स्पेक्टर ने निन्दा के स्वर में पूछा - तो क्या?

मखनसिंह की आँखों से चिनगारियाँ उठीं - तो क्या? तो उन्हें गाडी में सफर करने की अनुमति देनी होगी । वे गरीब हैं । मेरे पास पैसा होता तो मैं उनकी मदद करता । अब मेरे पास पैसा नहीं ।"[1]

ज्योंहि गाडी एक सुरंग पार कर जाती है, मखनसिंह झटके से गाडी के दरवाज़े से बाहर गिर जाता है । मलयालम के एक प्रसिद्ध आलोचक, वी. राजकृष्णन ने इस कहानी के बारे में यों लिखा है - "देश विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखी कहानियों में "मखनसिंगिन्टे मरणम" मानवीय त्रासदी के एक अपूर्ण अनुभव की कहानी है ।"

---

1. "मखनसिंगिन्टे मरणम" {मखनसिंह की मृत्यु} - टी. पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ {1980} - पृ: 60.
2. पद्मनाभन का वैयक्तिक संसार - वी. राजकृष्णन - मातृभूमि साप्ताहिक - अक्टूबर 25-31, 1981 - पृ: 45.

विभाजन जैसी समस्या को राजनीतिक सन्दर्भ में भी विवेचित किया जा सकता है । लेकिन मखनसिंह की मृत्यु में निहित मानवीय त्रासदी एक युग की संकट-ग्रस्तता के साथ-साथ अनेक व्यक्तियों की संकट-ग्रस्तता भी है ।

पद्मनाभन की "साक्षी" शीर्षक कहानी का "वह" (कहानी का प्रमुख पात्र) एक बडे कारखाने की स्थापना के बाद अपने गाँव में लक्षित परिवर्तन का साक्षी भी है । गाँववाले अपने गाँव को छोडकर कहीं चले जाते हैं और उनके स्थान पर देश के विभिन्न कोनों से आए बडे बडे अफ्सर और इंजिनीयर रहते हैं । अपने गाँव के इस तथाकथित विकास में वह बेहद दुःखी होता है । उसे कहीं कुछ खो जाने का-सा अनुभव होता है । घर की तलाश की यह मानसिकता मनुष्य के साथ जन्मी हुई है । सडक की एक ओर बैठकर पत्थर तोडनेवाली गरीब स्त्री और उसके बेटे में वह अपने ही अतीत का यथार्थ देखता है । उसकी व्यथाएँ कोई समझता नहीं है । वह अपने परिचितों के बीच में भी एक अपरिचित-सा बन जाता है जो उसकी विडम्बना है । वह सोचता है - "माँ अब भी जीवित है । किन्तु वह माँ से बहुत दूर है । उम्र से ही नहीं . . . ।"[1] अपनी पत्नी को भी वह समझ नहीं पाता । - "आइने के सामने बैठकर दोपहर की नींद से फूले हुए अपने पलकों और गालों पर रंग डालनेवाली स्त्री को देखकर वह चकित हुआ - यह कौन है' अपनी पत्नी' ."[2]

वह साक्षी किस किस का है - परिवर्तित गाँव का, गाँव के नए वातावरण का या माँ की स्मृतियों का या अपरिचित-सा लगनेवाली उसकी पत्नी का । बाह्य यथार्थ की समृद्धि के बावजूद अन्दर से टूटते-बिखरते आदमी का चित्रण पद्मनाभन ने इस कहानी में किया है ।

---

1. "साक्षी" - टी॰ पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 255.
2. वही ।

एम. टी. वासुदेवन नायर की "बन्धनम" {बन्धन} शीर्षक कहानी में मानवीय संकट के एक दूसरे पक्ष का उद्घाटन हुआ है । कहानी का "वह" नगर का एक बडा अफ्सर है जिसके एक ओर पत्नी, भारती है तो दूसरी ओर प्रेमिका, मारगरेट डिसूसा है । अपनी सुशील और निष्कलंक पत्नी को गाँव में अकेले छोडकर निकटवर्ती शहर में प्रेमिका के साथ वह जीवन व्यतीत करता है । कठिन परिस्थितियों में पले हुए उस पात्र ने जीवन को एक चुनौती के रूप में स्वीकारा है । उसने सभी को धोखा दिया है - पत्नी को, प्रेमिका को, उस आदमी को जिसने उसकी पढाई के अवसर पर आर्थिक सहायता की है और उस आदमी की भोली लडकी को जो उसे प्यार करती थी । उसकी पत्नी, या प्रेमिका उसपर सन्देह नहीं करती । लेकिन शादी के सात वर्ष के बाद भी वह अपनी पत्नी से प्यार नहीं कर सकता है । वह सोचता है - "उसके दुबले शरीर को देखकर मेरे मन में सिर्फ हमदर्दी होती है । उसका शरीर देखने में विरूप तो नहीं है । किन्तु मैं उसपर सौन्दर्य का कोई अंश देख नहीं सकता । वह मेरे जीवन का एक अंश नहीं बन सका है । अब वह एक व्यथा या पीडा है ।"[1] लेकिन वह मारगरेट से छुटकारा पा नहीं सकता है । क्योंकि "भारती एक पीडा है तो मिस. डिसूसा एक आनन्द है ।"[2] वह {मारगरेट} नहीं जानती कि उसके घर का दरवाज़ा उसकेलिए कभी भी खोला नहीं जयेगा । हफ्तों के बाद जब वह अपने घर आता है, पत्नी के सहज प्रेम से वह विवश हो जाता है । अपने मुखौटे को वह दूर फेंकना चाहता है - "एकदिन इस मुखौटे को दूर फेंक देना होगा । मिस"डिसूसा से सच बताना है । उसके बाद भारती के पास आकर कहूँगा, भारती, मैं एक अच्छा आदमी नहीं हूँ जैसा कि तुम समझते हो । मैं ने तुम्हें कभी प्रेम ही नहीं किया है ।"[3] लेकिन वह अपना मुखौटा हटा नहीं सकता है ।

---

1. "बन्धनम" - {बन्धन} - एम. टी. की चुनी हुई कहानियाँ - एम. टी. वासुदेवन नायर - {1978} - पृ: 339.
2. वही - पृ: 340.
3. वही - पृ: 338.

वह दुविधा में है कि किसको स्वीकार करें और किसको अस्वीकार करे । वस्तुतः वह उनमें किसी को भी छोड नहीं सकता । दोनों के बीच का जीवन उसे बन्धन-सा लग रहा है । स्वीकार और अस्वीकार का यह एहसास उसके संकट को गहरा देता है ।

एम.टी.वासुदेवन नायर की एक अन्य कहानी है, "कुट्टियेडत्ति" (कुट्टि दीदी) । कहानी की कुट्टियेडत्ति एक ऐसे हिन्दू खानदान की कुरूप युवति है जिसमें अपनी इज्जत और प्रतिष्ठा ही जीवन की आधार-शिलाएँ हैं । कुरूप होने के ही कारण उसे जीवन में बेहद दुःख का अनुभव करना पडता है । जानु उसकी छोटी बहन है जो उसकी अपेक्षा अधिक खूबसूरत है । वह अपनी बडी बहन पर मज़ाक उडाया भी करती है । घर में कोई भी उसे प्यार नहीं करती है । कुरूप होने के ही कारण उसकी शादी भी नहीं होती । अन्त में वह यह निश्चय कर लेती है कि वह जीवन में कभी शादी नहीं करेगी । वह जानती है कि घर में अपने छोटे भाई, वासू, को छोडकर बाकी सब उससे घृणा करते हैं । वह वासू से पूछती है -

"वासू, तुम मुझे चाहते हो ?"
"हाँ"
यहाँ मुझे चाहनेवाला कोई भी नहीं ।"[1]

वासू सोचता है - "कुट्टिदीदी को चाहनेवाला कोई भी नहीं क्या? दादी माँ उसे गाली देती है । कभी कभार मारती भी है । माँ भी गाली देती है । जानु दीदी को उससे सख्त घृणा है । शायद इसलिए कि वह काली है । इसलिए कि उसके कान के पास एक मांसपिंड उग आया है ।"[2]

---

1. "कुट्टियोडत्ति" (कुट्टि दीदी) - एम.टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 144.

2. वही - पृ: 145.

इसप्रकार घर में घृणा और निन्दा का पात्र होते हुए भी, उस अभिशाप्त गार्हिक वातावरण के बाहर वह अपना एक अलग जीवन बना लेती है । विपरीत परिस्थितियों में भी उसके मन में जिजीविषा के स्फुलिंग बुझते नहीं । एक नयी जिन्दगी की तलाश करते हुए ही वह पडोस के "निम्न" जाति के अप्पुणी के साथ प्रेम-संबन्ध स्थापित करती है । जब घरवालों को इसका पता चलता है तो घर में तूफान मच जाता है । इस "अपराध" केलिए उसे अपनी माँ से मार खाना पडता है । घृणा और निन्दा का पात्र बनकर वह आत्महत्या से अपने त्रासद जीवन का अन्त करती है । प्रस्तुत कहानी मात्र एक निम्न-मध्यवर्गीय परिवार की युवती की त्रासदी की कहानी नहीं है । यह मुक्ति कामना की रचना है । परन्तु मुक्ति हासिल नहीं होती है । क्योंकि उसके घर के चारों ओर ऐसी दीवारें खडी हैं जिनका उल्लंघन वह नहीं कर सकती । फिर भी वह एकबार वह समर्थ हो जाती है । लेकिन वह उसकी सीमित समय की विजय थी । उन अनुल्लंघनीय दीवारों के बीचों बीच वह घुट घुट कर मर रही है इसलिए अन्त में आत्महत्या का शरण लेती है । आत्महत्या के साथ उसकी कहानी समाप्त होती है । पर वे अनुल्लंघनीय दीवारें जैसी की तैसी बनी हुई हैं । कहानी का संकट उन दीवारों की उपस्थिति से तीव्रतर होने लगता है ।

माधविक्कुट्टि की कहानियों में टूटे हुए स्त्रीत्व की दबी हुई सिसकियाँ मुखरित हैं । उनकी कहानी, 'तरिशुनिलम' (ऊसर भूमि) के शादी-शुदा स्त्री और पुरुष एक जमाने में आपस में प्रेम-बद्ध थे । वर्षों के बाद उन दोनों की मुलाकात होती है । वे एक दूसरे को भूल नहीं पाते हैं । इन दोनों केलिए प्रेम भी एक बन्धन बन जाता है । वह पुरुष कहा करता था - तुम्हें मुझे प्यार करना नहीं था । मुझे ऐसा लग रहा है कि अपने पैरों पर एक बेडी है ।"[1] इस कहानी की

---

1. "तरिशुनिलम" (ऊसर भूमि) - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ (1982) - पृ: 173.

स्त्री सिर्फ प्यार करना जानती है । माँ बनने में ही वह स्त्रीत्व की पूर्णता मानती है । इसलिए वह अपने प्रेमी से गर्भवती होना भी चाहती है । लेकिन उसकी ये कामनाएँ उसी रूप में रह जाती हैं । वह मृत्यु से अपनी अतृप्त कामनाओं की पूर्ति करना चाहती है । कलरकोडु वासुदेवन नायर के मतानुसार, इस कहानी में ऊसर-भूमि का प्रतीकात्मक अर्थ प्रमुख है । "स्त्रीत्व के भावात्मक और आध्यात्मिक संकट को ऊसर भूमि के प्रतीक में व्यंजित किया गया है । भग्न प्रेम, अकेलापन, आत्मनिन्दा और इस तरह के अन्य अनेक दुःख ।"[1] वे इस प्रतीक को माधविक्कुट्टि के कथ्य-संसार का केन्द्र-भाव भी मानते है । उनकी कहानियों के संबन्ध में बी. सरस्वती ने लिखा है - "स्त्री और पुरुष के बीच में जो आकर्षण है उसपर वे अधिक ध्यान देती हैं ।"[2] प्रेम केलिए तडपनेवाले इन पात्रों को जीवन में कहीं से भी वास्तविक प्रेम का तीव्र अनुभव नहीं मिलता । वही उनके जीवन का गहरा संकट है । प्रस्तुत कहानी में माधविक्कुट्टि ने प्रेम के अन्तर्दाह का चित्रण किया है । प्रेम के इस द्वन्द्व में एक ओर मूल्य-विघटन का स्वर है तो दूसरी ओर मानवीय प्रेम को घिनौना सिद्ध करने का षडयंत्र भी है । यह कहानी उसी की ऊसरता की कहानी है ।

माधविक्कुट्टि की 'स्वतन्त्रजीविकल' (स्वतन्त्र जीवी) अधेड उम्रवाले विवाहित आदमी और एक अविवाहिता युवति के अजीब प्रेम-संबन्ध की कहानी है । कहानी में वह आदमी अपनी प्रेमिका से मिलने केलिए बहुत दूर से आता है । युवति समझती है कि अपने बेचैन मन को उसकी सन्निकटता से ही शान्ति मिलती है । उसका मन उससे यों बता रहा है - "तुम्हारा आराम, तुम्हारी शान्ति, तुम्हारी मृत्यु - और कहीं से तुम्हें नहीं मिलेंगे ।"[3] किन्तु उसके साथ रहते समय भी उस युवति के मन में अपराध की भावना है - "मैं जिसे ज़्यादा चाहती हूँ उसके साथ बिताए क्षण भी मुझे यह क्यों याद दिलाता है कि मैं जो कुछ कर रही हूँ वे सब अनुचित है ।"[4] उस पुरुष केलिए प्रेम एक बन्धन है । उसकी अपनी पत्नी है,

---

1. ऊसर भूमि की कहानियाँ - कलरकोडु वासुदेवन नायर (1974) - पृ: 71.
2. माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - बी. सरस्वती - अन्वेषणम मासिका - वर्ष: 6, अंक: 1.
3. "स्वतन्त्रजीविकल" (स्वतन्त्रजीवी) - माधविक्कुट्टि कहानियाँ - पृ: 210.
4. वही - पृ: 210.

बच्चे हैं, और परिवार हैं । वह जीवन और प्रेम के व्यावहारिक पक्ष पर विश्वास करता है । लेकिन वह युवति अपने प्रेम-संबन्धों में, यहाँ तक कि अपने यौन-संबन्धों के प्रति भी एक खुला दृष्टिकोण अपनायी हुई है । इसलिए वह अपने उस संबन्ध का अन्त करना नहीं चाहती । वह सोचती है - "अन्तहीन कुछ होना चाहिए । यह मेरा विश्वास नहीं है कि सब का अन्त होता है ।"[1] . . . "एक स्त्री तभी स्त्री बनती है जब उसका एक प्रेमी हो । उसने सोचा, उसके स्त्रीत्व का अंगीकार करने केलिए, उसे अपने को किसी दूसरे में प्रतिबिंबित करने केलिए - एक पुरुष चाहिए । उसके शरीर की नर्मी, गन्ध आदि उसे और कौन समझायेगा ? "[2] अपने प्रेम-संबंन्ध में इतना स्वतन्त्र होने पर भी उसे कभी शान्ति नहीं मिलती है । वह कहती है - "मेरे मन में उस व्यक्ति के प्रति जो प्रेम और जो भक्ति है, वह ही युगों की हैं । पहले उसने {प्रेमी की} हड्डियों में एक प्रार्थना के समान चिपक कर उसको बढाया है । इसमें सन्देह की क्या बात है ? मेरे प्यार ने ही उसे पुरुष बनाया है, उसे सुन्दर बनाया है ।"[3] इसलिए के.पी. अप्पन का यह कथन सही लगता है - "भारतीय मिथॉलजी की जो अनश्वर प्रेमिका, राधा है उसका आदि-रूप विभिन्न रूपों में माधविक्कुट्टि की कहानियों में देखने को मिलता है । "गीतगोविन्द" की नायिका की जो विरह-वेदना है, वह माधविक्कुट्टि के रचनाकार की मुख्य भावग्रस्तता { ऑब्सेशन } है ।"[4] राधा का दार्शनिक संकट माधविक्कुट्टि की नायिकाओं का संकट भी है । अक्सर माधविक्कुट्टि ने प्रेम को एक तीव्र अनुभव के रूप में चित्रित किया है । इसलिए उनकी कहानियाँ प्रणय की गाथाएँ लगती हैं । प्रणय के अनेक राग-दीप्त क्षणों का उल्लेख उनकी कहानियों में मिलता है । इन सारी कहानियों में उन्होंने स्त्री-पात्रों को ही प्रस्तुत किया है । अनेक कहानियों में यौन-संबन्धों का,

---

1. "स्वतन्त्रजीविकल" {स्वतन्त्रजीवी} - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 211.
2. वही - पृ: 213.
3. वही - पृ: 210.
4. ग्यारह कहानियाँ - सं: जोन सामुवल - भूमिका - के.पी.अप्पन - पृ: 22.

यौन आकांक्षाओं का चित्रण भी उन्होंने किया है । प्रेमातुरता का यह क्षण आधुनिक जीवन-स्थितियों के बीचों बीच बिखर जाता है । वह टूटता दिखाई पडता है । उसे टूटने से बचाया नहीं जा सकता है । प्रेमातुरता के क्षण की टूटन की अनिवार्यता ही माधविक्कुट्टि की कहानी का संकटग्रस्त पहलू है ।

ओ. वी. विजयन आधुनिक मलयालम कहानी के सर्वाधिक सशक्त कहानीकार है । उनकी एक प्रसिद्ध कहानी का शीर्षक है, 'पारकल' ﴾शिलाएँ﴿ । यह कहानी युद्ध की विभीषिका से संबन्धित है । युद्ध की तमाम क्रूरताओं को यह कहानी उद्घाटित करती है । युद्ध मानवीयता के विरुद्ध लडी जानेवाली ऐसी एक कार्रवाई है जिसका विरोध विजयन ने उसमें निहित अर्थहीनता के माध्यम से उठाया है । विजयन प्रस्तुत कहानी में आणविक युद्ध की दूरव्यापी विभीषिका की ओर इशारा करते हैं । कहानी के पुरुष पात्र का नाम भारतीय व्यक्ति का है - मृगांगमोहन और स्त्रीपात्र का नाम तानवान जो चीनी वंशजा है । इस कहानी की पृष्ठभूमि में भारत-चीन युद्ध की आनुषंगिक पृष्ठभूमि भी है । लेकिन कहानीकार ने इसे व्यापकता देने के हेतु इन दोनों को प्रतीक पात्र बनाए हैं ।

एक अमानवीय आणविक युद्ध के बाद समूची मानवीय जीवन ध्वंसित होता है । संसार इतना सूना-सा होता है । ये दो-मृगांगमोहन और तानवान-दो वंशों के अंतिम व्यक्ति - बच जाते हैं । उनके सामने वीरानगी है, ऊसरता है । उनकेलिए अब राष्ट्र, संस्कृति, समाज सब कुछ स्मृति मात्र है । अब उनके सामने सृष्टि की समस्या है -

"मृगांग, आसमान पर अन्धियारी छाई हुई है । अब मैं एक कमज़ोर भाव महसूस करती हूँ । अपनी कोख के रुदन में मैं विलीन होती हूँ ।"

"इस पडाव को सिर्फ हमारे लिये ही यहाँ रख दिया गया है ।"

"किसने ? "

"ईश्वर ने ।"

"क्यों ? "

मृगांगमोहन ने उसके कंधे पर अपना हाथ रखते हुए कहा - "सृष्टि को जारी करने केलिए ।"

. . . .

"मैं अब अपने बच्चों के बारे में ही सोचती हूँ । इसको हम अब समाप्त करें ।"

"क्या ? " - मृगांग ने पूछा ।

"क्रूरता " , उसने बताया, "खोखली सृष्टि " ।

"ठीक है,हम समाप्त करें ।"[1]

वे दोनों निर्णय लेते हैं कि अब आगे की पीढी की ज़रूरत नहीं है । सदियों से जिस पीढी को संवारकर तैयार किया गया उसी को धूल के समान फूँकदेनेवाली अनैतिक सभ्यता के विरुद्ध, अमानवीय स्थिति के विरुद्ध किया गया यह सख्त निर्णय मानवीय संकट बोध को हूबहू प्रकट करता है ।

कहानी में इन पात्रों को जिस प्रकार चित्रित किया गया है, उसको देखते हुए हम यह भी बता सकते हैं कि ये दोनों शिलायुग के भी मनुष्य-प्रतीक हैं जिनके सामने स्वच्छ प्रकृति थी । उस स्वच्छ प्रकृति के साथ मनुष्य का सहज संबन्ध था । यह कोई भावात्मक परिकल्पना नहीं है । इसलिए मलयालम के कवि और आलोचक सच्चिदानन्दन ने लिखा - "इसमें प्रकृति और मनुष्य के आपसी रिश्तों का चिह्नहै ।"[2] प्रकृति को स्वयं मनुष्य ने ध्वंसित करना शुरू किया है । कहानी के एक प्रसंग में शिलाएँ यों कहती हैं - "जब तुमने अपने हाथ में हथियार लिया था, तभी हमारा प्रेम घृणित भी हुआ था ।[3] लेकिन यह भोजनान्वेषणधीरे धीरे प्रकृति और मानवीयता के

---

1. "पारकल" {शिलाएँ} - ओ.वी.विजयन - नवीन कथा {1977} - सं. एम.एम. बशीर - पृ: 204-206.
2. शिलाएँ : कुछ पादटिप्पणियाँ - सच्चिदानन्दन - वही - पृ: 81.
3. 'पारकल' {शिलाएँ} - नवीन कथा - वही - पृ: 196.

विरुद्ध का भीषण युद्ध बन गया । अब उन बचे हुए व्यक्तियों के सामने, उस ऊसरता को देखते हुए यह प्रश्न उठता है कि उस प्रेम को फिर से फलीभूत किया जाय या रोका जाय । वे उसे रोकने का निर्णय करते हैं ।

प्रस्तुत कहानी का रचना-पटल व्यापक भी है । फिर भी अन्ततः यह कहानी मानवीय संकट बोध को उसकी पूरी व्यापकता में पहचानने की कोशिश भी करती है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

आधुनिक कहानी ने युग-जीवन की ऐसी वास्तविकता का साक्षात्कार कराया है जिसके कारण कहानी मानवीय संकट का दस्तावेज बन गयी है । कहानी के बहिरंग स्तर पर अनेक सामान्य जीवन-स्थितियाँ प्राप्त होती हैं । उदाहरण केलिए मोहन राकेश की कहानी, 'मल्बे का मालिक' में विभाजन की त्रासदी, उनकी ही 'एक और जिन्दगी' में पति-पत्नी का बिछुडन या मन्नूभंडारी की कहानी, 'अकेली' में पति-पत्नी का मानसिक तनाव, कमलेश्वर की कहानी, 'खोई हुई दिशाएँ' में कहानी के मुख्य पात्र (चन्दर) की बेरोज़गारी और भटकन । इसी प्रकार मलयालम कहानी को उदाहृत करें तो पद्मनाभन की कहानी, 'मखनसिंगिन्टे मरणम' (मखनसिंह कीमृत्यु) में विभाजन की विभीषिका है तो एम. टी. वासुदेवन नायर की कहानी 'कुट्टियेडत्ति' (कुट्टिदीदी) में उस प्रमुख पात्र का चिडचिडा व्यवहार है । वासुदेवन नायर की कहानी, 'बन्धनम' (बन्धन) में पति-पत्नी के आपसी अलगाव की ओर संकेत है तो माधविक्कुट्टि की 'तरिशुनिलम' (ऊसर भूमि) में प्रेम का एक प्रबल दृश्य है । ये कुछ उदाहरण मात्र हैं । इनसे पता चलता ही है कि कहानीकारों ने जीवन की सहज और सामान्य स्थितियों का ही वर्णन किया है जिसके साथ हम बहुत जल्द तादात्म्य प्राप्त कर सकते हैं । परन्तु ये कहानियाँ इन सामान्य स्थितियों तक सीमित नहीं हैं । इनका संबन्ध जीवन की उन त्रासदपूर्ण स्थितियों से है जो इन रचनाओं के अनेकानेक सन्दर्भों में संकेतित है । मानवीय

संकट की स्थितियों को हम इसप्रकार परिभाषित कर सकते हैं, वह पूर्णता की खोज है, विकल्प केलिए उसमें स्थान नहीं है । व्यावहारिक दृष्टि के अभाव में लडखडाता हुआ एक जीवन-परिदृश्य उसमें हो सकता है । इन रचनाओं में ऐसा परोक्ष प्रश्न लगातार सिर उठाता रहता है कि निजता की अनुपस्थिति क्यों है । इस प्रश्न केलिए कहानीकार कोई उत्तर नहीं देता है और उत्तर वांछित भी नहीं है । मानवीय संकट की इन कहानियों में जीवन की निजता के साथ जूझते हुए पात्र ही मिलते हैं और उनका संघर्ष, चाहे उनका सन्दर्भ कुछ भी हो, काफी अर्थपूर्ण हो सकता है ।

जैसे ऊपर बताया गया है इन कहानियों में बहुत सारी सामान्य स्थितियाँ अभिव्यक्त हैं । उदाहरणार्थ पद्मनाभन की कहानी "मखनसिंगिन्टे मरणम" और मोहन राकेश की कहानी , 'मल्बे का मालिक' । इन दोनों कहानीकारों ने विभाजन की पृष्ठभूमि में अलग अलग कहानियाँ लिखी हैं । विभाजन ने मानवीय जीवन को जिस हद तक ध्वंसित किया है जिस हद तक राजनीतिक साजिश का बोझ सामान्य जनता के ऊपर डाल दिया है, वह सर्वविदित और सर्वस्वीकृत तथ्य है । कई परिवार उजड गए और कइयों की आकांक्षाएँ बिखर गयीं । टूटे हुए संबन्धों का लंबा सिलसिला ही विभाजन ने सृजित किया है । उसका और कोई योगदान नहीं है । इधर से उधर और उधर से इधर आने-जानेवाले सैकडों लोगों की कसक हमारे इतिहास का बहुत बडा कलंक है । इन वास्तविकताओं की ओर इन कहानियों में स्पष्ट संकेत के न होते हुए भी मखनसिंह और गनी यही सवाल पूछते नज़र आते हैं । मखनसिंह की स्मृतियों में मंडरानेवाले अनेक दृश्य मात्र उसकी मानवीयता का उदाहरण नहीं है, बल्कि उसकी खोज का परिणाम है । बिना टिकट लिए सफर करने आई औरत को रास्ते के बीच ही छोडते समय उसके सामने इतिहास का पूरा दृश्य उभरता है जिसमें ऐसे कई व्यक्तियों और स्वयं मखनसिंह के अपनों की कहानियाँ हैं । बस चलाता हुआ वह इन दृश्यों में गुम हो जाता है और जब उसे पता चलता है कि वह सफर खतरे से खाली नहीं है । अपने को मृत्यु के गर्त में डालता हुआ वह यात्रियों को बचाता है । उसमें जिस तपते हुए भूखंड की स्मृतियाँ संजोयी, जिसके प्रति उसमें

जितनी आत्मीयता है, वही आत्मीयता उसकी मृत्यु में भी निहित है । मखनसिंह की मृत्यु विभाजन के साथ जुडी हुई नर-हत्या की आत्मीयता की ओर का एक अर्थपूर्ण संकेत है । पद्मनाभन ने विभाजन के विस्तृत परिवेश को चित्रित किया है । लेकिन जिसप्रकार उन्होंने उसकी तमाम सूक्ष्मताओं को इकट्ठा किया है वे इस कहानी में मुख्य हैं । `मल्बे का मालिक' विभाजन की तमाम अर्थशून्यताओं को नकारनेवाली रचना है । राकेश ने उसे गनी के माध्यम से प्रस्तुत किया है । गनी का लौटना और अपने पुराने मकान की दयनीय अवस्था के सामने खडे होना, रक्खा पहलवान के साथ पूरा लगाव दिखाना आदि ऐसे कुछ दृश्य हैं जिनमें विभाजन की त्रासदी का पूरा माहौल प्राप्त होता है । इतिहास की घटनाएँ प्रायः व्यक्ति के जीवन को इस प्रकार ध्वंस करती हैं और कालान्तर में ही व्यक्ति इसे पहचान सकता है । बहुत वर्ष पहले जयशंकर प्रसादनेअपनी `ममता' नामक कहानी में इसका एक भावात्मक परिदृश्य प्रस्तुत किया था । उसमें आदर्श का स्वर अवश्य मुखरित है । लेकिन उसमें बडी वास्तविकता भी है जिसको उन्होंने सैद्धान्तीकृत नहीं किया है । `ममता' की तुलना में राकेश की `मल्बे का मालिक' वास्तविकता की भीषणता को बहुत ही सरल ढंग से प्रस्तुत करती है । इसीलिए यह रचना मानवीय संकट की कहानी है क्योंकि इसमें मनुष्य की अकिंचनता का पूरा एहसास है । वह अकिंचित होने के कारण बहुत कम ही टकरा पा रहा है । टकराने पर भी वह लडखडाकर गिर पडता है । गनी इसका उदाहरण है । मखनसिंह और गनी दोनों भोक्ता है । दोनों अकिंचन हैं । राजनीति के प्रलयंकर प्रवाह के सामने वे इतने निस्सहाय है और पद्मनाभन की कहानी में पात्र की मृत्यु में निस्सहायता समाप्त होती है और राकेश की कहानी में वापसी द्वारा ।

यद्यपि मुक्तिबोध नई कहानी की जोरदार चर्चा के अन्तर्गत चर्चित कहानीकार नहीं, हालांकि उनकी कहानियाँ विशेष रूप से चर्चा करने योग्य हैं । युद्ध की विडम्बना को लेकर लिखी गयी उनकी कहानी, ` क्लाड ईथरली ' उनकी कविताओं के समान अन्धेरी तहों की रचना है । `क्लाड ईथरली प्रतीक पात्र है

जिसने अणुबम बनाया था । बम विस्फोट के पश्चात् के अवसाद को जो अपनी करतूत का परिणाम है स्वयं अपना लेता है । कहानी में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ उठी हुई कई आवाज़ें हैं और स्वयं क्लाड ईथरली उसके विरुद्ध परिकल्पित प्रतीक पात्र है ।

ओ. वी. विजयन की कहानी, 'पारकल' {शिलाएँ} युद्ध की विभीषिका को दूसरे कोण से देखती है । मुक्तिबोध की कहानी के समान ही यह रचना भी आद्यन्त प्रतीकात्मक और फान्टसी है । युद्ध का भीषण असर जिसप्रकार समूची मानव-जाति पर पडता है और यह सीमा पार करने के बाद ऐसा प्रश्न उठता है, इसके आगे क्या है । यही सवाल प्रस्तुत कहानी कर रही है । अतः कहानी के मृगांगमोहन और तानवान का दृढ निश्चय, आगे की पीढी को न जन्म देने का, एक गहन मानवीय संकट का ही परिणाम है । यह कहानी बहु-आयामी है । भारत और चीन का आनुषंगिक परामर्श होते हुए भी युद्ध को सन्दर्भित करते हुए विसंगति के बोध को गहरानेवाली रचना भी है । क्लाड ईथरली की निराशा और मृगांग-मोहन के निश्चय में संकट बोध का धडकता हुआ सन्दर्भ है । "क्लॉड ईथरली' और 'शिलाएँ' की तुलना एक अन्य सन्दर्भ में भी संभव है । वह है युद्ध की नृशंसता के पीछे छिपी हुई साम्राज्यवादी दृष्टि का ही परिणाप है । 'क्लॉड ईथरली' में इस के स्पष्ट संकेत मिल जाते है जब शिलाएँ में उससे परोक्ष संकेत ही मिलते हैं ।

"तरिशुनिलम" {ऊसर भूमि} माधविक्कुट्टि की ऐसी एक रचना है जिसमें स्त्री की अत्यधिक कामना का अनुभूत्यात्मक अंकन हुआ है । कहानी की स्त्री, विवाहोपरान्त भी, अपने पूर्व-प्रेमी से मिलने आती है । खास मकसद के बिना वह आई है लेकिन अन्त में उसका खुल जाना कहानी की संवेदना के अनुकूल है । अपने पूर्व-प्रेमी से गर्भवती होने की इच्छा को वह नियन्त्रित नहीं कर पा रही है । यह कामना सामान्य दृष्टि से असहज और अनैतिक लगते हुए भी प्रेम के विशिष्ट सन्दर्भ में एकदम आत्मीय है । विवाह के पूर्व भूलनेवाली, यहाँ तक कि बस के टिकट केलिए पैसा लेने तक को भूलनेवाली कहानी का "वह" अब भी निराश होकर लौट रही है ।

क्यों कि प्रेम के व्यावहारिक पक्ष के सामने उसकी इच्छाओं की पूर्ति कतई हो नहीं सकती है । लेकिन तब भी वह बस के किराए केलिए पैसे माँगती है । वह बदली नहीं है । बदली है, बाहर से । उसका प्रेम, उसकी मानसिकता प्रेमाभिवांछा से तरस रही है । वह बदलना ही नहीं चाहती । इस संकेत में ये सब प्रकट हैं । पर वह अनुभव करती है कि उसकी प्रेमाभिवांछा विशिष्ट होते हुए भी उसका जीवन ऊसर भूमि के समान हो गया है । वहाँ कामनाओं का अंकुरण नहीं हो सकता है । एकदम कटा हुआ सा, एकदम बीरान-सा वह अनुभव करती है । अब वह सिर्फ लौट सकती है । ऐसा कोई संप्रेषण अब मुनासिब नहीं है । असंप्रेषण की दुविधा को झेलते हुए वह लौट जाती है ।

कमलेश्वर की कहानी, 'खोई हुई दिशाएँ' से इस कहानी की आंशिक तुलना की जा सकती है । अर्थात 'खोई हुई दिशाएँ' के एक विशिष्ट सन्दर्भ के साथ इस कहानी की तुलना हो सकती है । प्रस्तुत कहानी में चन्दर दर दर भटकता है । एक ओर उसकी बेरोज़गारी की समस्या है, दूसरी तरफ महानगर की तमाम विडम्बनाएँ हैं जो उसे कहीं मिलाती नहीं हैं, अलग ही करती हैं । इस कहानी का चन्दर भी 'ऊसर भूमि' की 'वह' से समान असंप्रेषण का बोझ सह रहा है । एक क्षण वह अनुभव करता है कि अपरिचय का वह माहौल उससे सहा नहीं जाएगा । इसलिए जब उसे इन्द्रा, जो उसकी पूर्व-प्रेमिका है, की याद हो आती है तो उसके यहाँ जाता है । इन्द्रा अब उसकी प्रेमिका नहीं है । वह शादी-शुदा औरत है । उसकी भी शादी हो गई है । लेकिन फिर परिचय के थोडे से क्षण प्राप्त करने केलिए वह इन्द्रा के यहाँ जाता है । उसका यह कतई लक्ष्य नहीं है कि इन्द्रा के साथ अपने प्रेम-भाव प्रकट करें । वह यही चाहता है अकेलेपन ने उसे एकदम फालतू कर दिया है । उसे आत्मीयता का थोडा सा वक्त चाहिए । सचमुच एक परिचित व्यक्ति की सन्निकटता केलिए उसका मन लालायित है । परन्तु बहुत ही जल्द चन्दर यह अनुभव कर लेता है कि इन्द्रा काफी बदल गई है । 'ऊसर भूमि' के समान ही इसमें भी सांकेतिक दृश्यांश है । इन्द्रा चाय लाती है । इन्द्रा को पहले मालूम था कि चन्दर एक चम्मच शक्कर ही लेता है । लेकिन फिर भी वह

पूछ लिया करती थी कि कितनी चम्मच डालें । मज़ाक में चन्दर कहा करता था कि तीन चम्मच । पर वह एक चम्मच शक्कर डालकर चाय दिया करती थी । चाय लेकर आई हुई इन्द्रा से चन्दर वही पुराना मज़ाक करता है । मज़ाक में ही उसने तीन चम्मच शक्कर डालने को कहा था । वह तुरन्त तीन चम्मच शक्कर डाल भी देती है । चन्दर कुछ कह पाने की स्थिति में नहीं है । वह चाय पीता है । उसे पीना पडा । चन्दर ने इधर भी जो बातें कहीं लेकिन उसमें वह आत्मीयता नहीं रही । बिलकुल ही अपरिचित व्यक्ति से मिलकर लौट आने का आभास उसे मिलता है । अतः उसका अकेलापन अधिक तीव्र होता है और हताश होकर वह लौट आता है । इन दोनों कहानियों में - 'ऊसर भूमि' और 'खोई हुई दिशाएँ' - विषयवस्तु की असमानता के बावजूद समानता है । असरता के अनुभव से पीडित होकर ही वह अपने प्रेमी से मिलने आती है । जीवन-कामनाओं की समाप्ति की असरता है । एक खास अजनबीपन की असरता है । 'खोई हुई दिशाएँ' में भी असरता है । वही भटकन है । चन्दर की दिशाएँ खोई हुई हैं । इसका पता उसे है भी और नहीं भी । वह कहीं भी जा सकता है, पर कहीं नहीं पहुँचता है । यह जीवन-स्थिति अजनबीपन की चरम अवस्था है । संकट-बोध की इस अवस्था का सन्दर्भ दोनों रचनाओं में है ।

जीवन-संकट का एक और पहलू एम.टी. वासुदेवन नायर की कहानी, 'बन्धनम' (बन्धन) में मिलता है । इस कहानी के पात्र को मालूम है कि वह अपनी पत्नी तथा बच्ची को धोखा दे रहा है । नियमित ढंग से पति के कर्तव्यों को निभाने की चेष्टा करने के बावजूद वह निभा नहीं पा रहा है । गर्भवती पत्नी जब उसे खाना परोसती है तो उसे प्रेम का अनुभव नहीं होता । वह तब भी झूठ बोलता है और झूठी तसल्ली देता है । यहाँ बन्धन अनबन का बन्धन नहीं, बन्धनहीनता का बन्धन है । बन्धन को बोझ समझनेवाला पति और झूठे बन्धन को सहेजनेवाला पति । इसलिए स्वयं उसे मालूम है वह जीवन के करीब नहीं है ।

'खोई हुई दिशाएँ' के अंतिम दृश्य में अपनी पत्नी से अपने बारे में पूछनेवाले चन्दर की परिणत अवस्था के रूप में बन्धनम पर विचार किया जा सकता है ।

उसी प्रकार कमलेश्वर की कहानी, 'तलाश' में माँ-बेटी की संबन्ध-शून्यता में आई अनात्मीयता का प्रतिफलन है पर इस कहानी में बेटी उसे तोड देती है । बन्धमम की विशेषता यही है कि वह तोडता नहीं । जारी ही रखता है । अतः उसकी भटकन और उसकी अनात्मीयता जीवन के संकटबोध को अधिक गहरा बना देती है ।

एम.टी. वासुदेवन नायर की कहानी, "कुट्टियेडत्ति" (कुट्टि दीदी) और धर्मवीर भारती की कहानी 'गुल्की बन्नो' के बीच समानता के कई सूत्र ढूँढे जा सकते हैं । "कुट्टियेडत्ति" ऐसी एक युवति की कहानी है जिसे अपनी कुरूपता का वहन करना पडता है और स्वयं अपनी बहिन और माँ से गालियाँ सुननी पडती है । वह सिर्फ यह सुनना चाहती है कि कोई उसे प्यार करता है । पर कोई नहीं । अतः अपनी कुरूपता के साथ वह सात्म्य प्राप्त कर लेती है और अपनी इच्छा के साथ रहने लगती है । दूसरों की दृष्टि में वह मनमानी करनेवाली है । किसी से भी बातें करनेवाली, किसी से भी झगडा मोल लेनेवाली । "कुट्टियेडत्ति" को प्यार करनेवाला उसका एकमात्र चचेरा भाई है । उसकी कुरूपता उस छोटे भाई केलिए कोई समस्या नहीं है । पर यही कुरूपता ही उसके विचार में अडचन है । प्रस्तुत कहानी में उस कुरूप युवति में इतनी जीवन-कामना है, जीवन को भरे-पूरे ढंग से जी लेने की इतनी आकांक्षा है कि एकबार उसे कोसनेवाले लोगों से ऊबकर वह एक ऐसे युवक से प्रेमपूर्ण व्यवहार करती है और उसका मन स्वस्थ भी होता है । यह कोई विद्रोहात्मक उपक्रम तो नहीं है । वह निम्न जाति का युवक है । पर अपने नन्हे भाई से उस युवक के बारे में बताते समय उसका यौवनयुक्त मन ही प्रकट होता है, जिसमें सपनों की कोई कमी नहीं है । परन्तु इस बात को लेकर झगडा ही नहीं मारपीट भी होती है । वह अपना अन्त आत्महत्या के द्वारा कर लेती है । "कुट्टियेडत्ति" विफल जीवन-कामनाओं की निराधार आकांक्षा की कहानी है । उस अर्थ में भारती की कहानी 'गुल्की बन्नो' के साथ तुलना संभव है । गुल्की भी कुरूप है । उसका अपना कोई नहीं । इसलिए उसे गालियाँ मिलती हैं गलीवालों की तरफ से । गली के छोटे छोटे बच्चे भी उसे गन्दी गाली देते हैं और उसे हर तरह से तंग करते हैं । तब भी वह अपनी जीविका किसी न किसी प्रकार चला लेती है । उसे सहारा देनेवाला एकमात्र व्यक्ति सत्ती है, जो उस गली में साबुन

बेचनेवाली है, जिसप्रकार वासुदेवन नायर की कहानी में कुट्टियेडत्ति का छोटा भाई है । जीवन भर निन्दा, परित्याग और अत्याचार सहनेवाली गुल्की और "कुट्टियेडत्ति" छोटे छोटे सहारे के साथ जीवन बिताने को तैयार हैं । स्नेह का अभाव उनके जीवन में है । असुविधाओं का दूसरा सवाल उनके सामने है ।

दोनों कहानियों में दो भिन्न प्रकार की घटनाओं का उल्लेख है जिनकी तुलना एकदम असंभव है । पर उसकी मूल-प्रेरणा, मूल हेतु एक ही है । "कुट्टियेडत्ति" से शादी करने केलिए कोई तैयार नहीं है । उसे मालूम है कि उसकी कुरूपता का एक प्रमुख कारण उसके कान के पास उग आया हुआ एक मांसपिंड है । उस मांसपिंड को वह अकेले ही काट लेती है । इस हरकत से वह मांसपिंड कट भी नहीं गया और खून से लथपथ वह बेहोश होती है । किसी न किसी प्रकार अपने जीवन केलिए एक सीधी धारा बना लेना । यह न आकांक्षा है, न यह अनियंत्रित इच्छा । यह एक कामना मात्र है । उसी प्रकार गुल्की भी यह जानती है कि उसके बाप का घर बिना किसी फायदे से बिक जायेगा । पर वह हाँ करती है ।उसका पति तो मिल जायेगा, अपने साथ एक और औरत को रखनेवाले पति के साथ वापस चली जाती है । घर की बिक्री का पैसा भी उसका पति लेता है । बस एक गुलाम बनकर गुल्की पति के साथ चली जाती है । जीवन-धारा की खोज में उसे गुलामी मिलती है और "कुट्टियेडत्ति" को मृत्यु । दोनों को मिलाने वाली कडी उन दोनों पात्रों की अदम्य जीवन-लालसा है । पर पग पग पर वे लडखडाती हैं और अलग अलग लगते हुए भी दोनों का अन्त भी समान है । गुलामी और मृत्यु का ऐसा फरक भी नहीं है ।

पद्मनाभन की "साक्षी" और मोहन राकेश की "अपरिचित" नामक कहानी में प्राप्त आन्तरिक विघटन तुलना के योग्य है । आन्तरिक विघटन किस हद तक व्यक्ति के जीवन को खोखला बना छोडता है, उसका ज्वलंत उदाहरण पद्मनाभन की 'साक्षी' नामक कहानी है । "अपरिचित" का वस्तुगत परिवेश 'साक्षी' से अलग होते हुए आन्तरिक विघटन का अच्छा खासा परिचय मिल ही जाता है । "साक्षी"

में अपनी पत्नी केलिए अपरिचित बने हुए पात्र हमारे सामने है । "अपरिचित" में अपरिचय शुरू ही नहीं हुआ है, वह उन दोनों के जीवन में व्याप्त हो चुका है । आन्तरिक विघटन से उद्भूत अपरिचय वस्तुत: संकटबोध का अभिन्न पहलू मात्र है ।

संकट-बोध की तीक्ष्णता का एहसास मानवीयता की पहचान की परिणति है । मनुष्य की निजता की खोज के दौरान कहानीकार ऐसे पात्रों या उनके जीवन प्रसंगों को उठा लेते हैं । यही नहीं, परिवेश समग्रता तक पहुँचने केलिए जीवन के इस बहुआयामी स्तर, जीवन के इस विविध-रंगी सन्दर्भों में संकटापन्न अवस्थाओं को पहचानने का कार्य ही कहानीकार करते हैं ।

संबन्धों का नया परिदृश्य

व्यक्ति-व्यक्ति का संबन्ध उसके साधारण सन्दर्भ से बढकर अर्थवान है । उसे सही ढंग से समझने के लिए प्राय: व्यक्ति-संबन्धों की सीमाओं के बाहर आना पडता है क्योंकि वह किन्हीं सामाजिक, सांस्कृतिक स्थितियों से जुडा हुआ रहता है । कभी कभी व्यक्ति-संबन्ध में व्यक्ति-मन का ही एक गहन स्तर प्राप्त होता है । इसलिए व्यक्ति-संबन्ध दो या अधिक व्यक्तियों का साधारण संबन्ध तक सीमित न होकर सामाजिक या सांस्कृतिक मूल्यवादी दृष्टि का परिचायक बनता है । अत: मूल्यों की टकराहट की प्रतिध्वनि संबन्धों में सुनाई पडती है । मूल्यों के परिवर्तन के अपने अनेक कारण हो सकते हैं । भारतीय सामाजिक स्थिति को सामने रखकर इसका विशद अध्ययन संभव है । फिलहाल उन सामाजिक परिवर्तनों का किंचित संकेत करना पर्याप्त है जिसका कहानी साहित्य के सन्दर्भ में क्या मूल्य हो सकता है ।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारतीय समाज में बुनियादी परिवर्तन तो हुए नहीं है । लेकिन बहिरंग स्तर पर सामाजिक जीवन का बहुत कुछ बदल गया । एक ओर हम यह देख सकते हैं कि रूढियाँ वैसी ही बनी हुई हैं, लेकिन रूढियों को तोडने का उपक्रम भी शुरू होने लगा है । शहरीकरण और औद्योगिकीकरण ने सामाजिक

जीवन को बदलने में सहायता की है । शहरीकरण की वजह से या औद्योगिकीकरण की वजह से एक नया समाज ही बनने लगा जो अपनी बुनियादी आस्थाओं को समेटते हुए भी नयी आकांक्षाओं के साथ विकसित होने लगा । खासकर मध्यवर्गीय जीवन का एक नया स्वरूप सामने आने लगा है । इस परिवर्तन का प्रभाव पारिवारिक जीवन पर पडता ही है । यह तो अवश्य है कि पुरानी सम्मिलित परिवार प्रथा तो टूट गई है । यह एकमात्र उदाहरण नहीं है । व्यक्ति की स्वाधीनता भी बढी और परिवार की पुरानी स्थितियाँ एकदम बदलने लगीं । एक ऐसा विरोधाभास पारिवारिक जीवन में दृष्टिगोचर होता है कि पुरानी आस्थाओं के साथ नई आस्थाओं को पालनेवाली नई पारिवारिक मानसिकता । इस कारण से संबन्धों का नया परिदृश्य स्पष्ट होने लगता है । इन परिवर्तनों ने समाज और परिवार के परंपरागत संबन्धों पर प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं जिनके कारण परिवार का परंपरागत संगठन टूट गया है तथा पारस्परिक संबन्धों में अलगाव, बिखराव और तनाव की स्थिति उत्पन्न हो गयी है । सविता जैन ने लिखा है - "स्वातन्त्र्योत्तर भारत एक नवीन परिवर्तित रूप में हमारे सामने आता है जहाँ एक ओर परंपरा से चले आ रहे संयुक्त परिवारों का विघटन हो रहा था और दूसरी ओर सामाजिक-पारिवारिक संबन्धों के परंपराबद्ध रूप में परिवर्तन आ रहा था । परंपरा से विच्छिन्न होकर तथा प्राचीन मानव-संबन्धों के मोह-पाश से मुक्त होकर आज का व्यक्ति अधिकाधिक आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है । यहाँ तक कि पिता-पुत्र, माँ-बेटी, पति-पत्नी या भाई-बहन जैसे निकटतम संबन्धों में भी जैसे एक अजनबीपन समाता जा रहा है । जो एक दूसरे को पास रहते हुए भी बहुत दूर कर देता है । स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था ।"[1] संबन्ध-विघटन की यह प्रवृत्ति प्रायः मध्यवर्गीय जीवन में सब से ज़्यादा हुई है । मध्यवर्गीय व्यक्ति को जीवन के सभी क्षेत्रों में समझौता करना पडता है । क्योंकि अपनी परंपराओं और

---

1. हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - §1970§ - सं. रामदरश मिश्र और नरेन्द्र मोहन - पृ: 120-121.

रूढियों की आड में वह अपनी झूठी प्रतिष्ठा और इज्जत के मोह से जकडा हुआ है। वह जिन्दगी से भाग जाना चाहता है, किन्तु वह भी नहीं कर सकता।[1] इसलिए परिवर्तित स्थितियों में उसका संबन्ध लगातार टूटता दिखाई देने लगा। यह समाज के आन्तरिक स्तर पर घटित अवस्था है इसलिए बाह्य अवस्था की स्थिरता के बावजूद आन्तरिक विघटन अनिवार्य हो गया था। यह विघटन संबन्धों के सभी स्तरों पर देखने को मिलता है।

स्त्री-पुरुष संबन्ध का नया सन्दर्भ

स्त्री-पुरुष संबन्ध का वास्तविक परिदृश्य हमारी नैतिक मान्यताओं का है। इसलिए उसका गहरा संबन्ध हमारी निजी आस्थाओं से है। नैतिक प्रतिमान हर युग में बदलते रहे हैं। जहाँ तक भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति का सवाल है परिवार की स्वीकार्य स्थितियों के बदलने के साथ साथ व्यक्ति की स्वाधीनता भी बढी। इसका प्रभाव हमारी नैतिक आस्थाओं पर पडा है। अतः स्त्री पुरुष संबन्धों के नए सन्दर्भों के बहाने नई स्थितियों पर हूबहू प्रकाश डाला जा सकता है।

आधुनिक नारी की दृष्टि में आए परिवर्तन हमारे सामाजिक सन्दर्भ में सामान्य नहीं है। प्राचीन काल की नारी अपने भाग्य पर भरोसा रखकर पति की सेवा में ही सारी जिन्दगी बिता देती थी। जिन्दगी भर वह किसी दूसरे का, या तो पिता का, या पति का, या पुत्र का गुलाम थी। किन्तु आधुनिक काल की नारी कई दृष्टियों से स्वतन्त्र है। आधुनिक शिक्षा और स्वावलंबिता ने उसे स्वतन्त्र बनाया है। अपने जीवन-साथी को चुनने में भी आधुनिक युवा पीढी स्वतन्त्र दीख पडती है। विवाह जैसी परंपरागत संस्थाओं पर सभी का विश्वास नहीं। आधुनिक शिक्षा-प्राप्त नारी को अपने परिवार का पालन करने केलिए और स्वयं अपनी जीविका कमाने केलिए घर से बहुत दूर जाना

---

1. सातवें दशक की हिन्दी कहानी का प्रस्थान बिन्दु - प्रह्लाद अग्रवाल - आधुनिक हिन्दी कहानी - §1978§ - सं. गंगाप्रसाद विमल - पृ: 78.

पडता है । पुरुषों के साथ नौकरी करनेवाली नारी की मानसिकता में धीरे धीरे व्यापक बदलाव आता है और इस प्रकार वह जीवन और चिन्तन के स्तर पर पुरुषों के समान ही स्वयं को प्रस्तुत करने लगती है ।[1] अपने "स्व" की खोज करनेवाले इन दोनों के व्यक्तित्वों के बीच टकराहट होना स्वाभाविक ही है । आजकल के प्रेम-संबन्धों में भी बडा परिवर्तन आया है । अब प्रेम का रूढ और नैतिक मूल्यों से कोई संबन्ध नहीं रह गया है । प्रेम अब नितान्त व्यक्तिगत अनुभव है । श्रीकान्तवर्मा ने यों लिखा है - "प्रेम अब भी जीवित शब्द है और उसे सुनते ही अब भी हमारी "धडकन में एक और ही धडकन सुनाई पड जाती है । अन्तर केवल इतना है कि अब वह भावुकता से भरा हुआ एक पीला, बीमार और एकांगी शब्द नहीं रहा, बल्कि वह एक भयानक मगर मनुष्य के सब से कीमती अनुभव के रूप में स्पष्ट होता जा रहा है । उसकी जटिलताएँ सामने आ रही हैं ।"[2] श्रीकान्त वर्मा के इस कथन में प्रेम का नया नैतिक प्रतिमान ही स्फुरित हो रहा है ।

पारिवारिक संबन्ध का नया सन्दर्भ

जिस प्रकार स्त्री पुरुष के संबन्धों का नया स्वरूप उभरने लगा और उसके कारण पारिवारिक जीवन तथा स्थितियाँ जिस कदर परिवर्तित होने लगीं उसी गंभीरता या गहराई में सही परिवार के अन्य सदस्यों के बीच के परिवर्तित संबन्ध पर भी विचार करना समीचीन होगा ।

---

1. Trends in Hindi Short Story - The changing social pattern - Mrs. Jagan K.Singh - Modern Hindi Short Story (1974) -p.229.
2. प्रेम कहानियों का बदला हुआ स्वरूप - श्रीकान्तवर्मा - नई कहानी : दशा, दिशा. संभावना - (प्रथम संस्करण, 1966) - सं. सुरेन्द्र - पृ: 229.

स्त्री-पुरुष संबन्ध,संबन्ध की आदिमता से युक्त है । इसलिए हम उसके नए सन्दर्भ में नए नैतिक प्रतिमान ढूँढते हैं । उसी प्रकार परिवार के अन्य सदस्यों के बीच संबन्धों की जो टकराहट दिखाई पडती है उसको भी इसी दृष्टि में देखना है । परिवार में आर्थिक स्थिति का गहरा प्रभाव है । मूल्य-विघटन के इस युग में अर्थ ने ऊँचा स्थान प्राप्त किया है और हर संबन्ध को अर्थ की दृष्टि में देखनेवाले के सामने संबन्ध का कोई मूल्य नहीं रह जाता । अतः बाप - बेटे, माँ - बेटी, भाई - भाई , भाई - बहन आदि के बीच के संबन्ध काफी विघटित दीखते हैं ।

संबंधों का नया परिदृश्य : नई कहानी के सन्दर्भ में

परिवार और संबन्धों की कहानियाँ हर युग में लिखी गई हैं । विघटन की किंचित स्थितियों की ओर प्रकाश डालनेवाली कहानियाँ प्रेमचन्द ने भी लिखी हैं । "शान्ति", बडे घर की बेटी , सुजान भगत आदि कहानियाँ इसके उदाहरण हैं । लेकिन प्रेमचन्द अपने आदर्शात्मक दृष्टिकोण के कारण उसका यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कर नहीं सके । प्रेमचन्द्रोत्तर कहानीकारों में खासकर जैनेन्द्र कुमार और अज्ञेय ने संबन्धों के नए धरातल को प्रस्तुत करने का कार्य किया है । जैनेन्द्र की कुछ कहानियों में मनोवैज्ञानिक उन्मुखता के होते हुए संबन्ध को एकदम नई दृष्टि से विश्लेषित करने का ढंग मिल जाता है । उदाहरणार्थ उनकी दृष्टिकोण , पत्नी , जाह्नवी , रत्नप्रभा जैसी कहानियाँ । उसी प्रकार अज्ञेय ने संबन्ध को एकदम नई दृष्टि से देखा है । उनकी 'रोज़' नामक कहानी का उल्लेख अवश्य करना होगा । उसमें जिसप्रकार विघटन को सूचित किया गया है, उसकी सूक्ष्मता नई कहानी के शिल्प सौष्ठव से बढकर है । अश्क , भगवतीचरण वर्मा जैसे कहानीकारों का मुख्य विषय भी पारिवारिक स्थितियाँ ही हैं ।

नए कहानीकारों ने ही अपनी कहानियों में सामाजिक और पारिवारिक संबन्धों का चित्रण तटस्थता के साथ किया है । गंगाप्रसाद विमल की राय में नई कहानी का मुख्य स्वर ही व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के आपसी संबन्धों का विश्लेषण करना है । "नई कहानी का मुख्य स्वर केवल "यथार्थ" को अभिव्यक्ति देना नहीं है, अपितु एक सिरे से व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के आपसी संबन्धों की छानबीन करना भी था ।"[1] नए कहानीकारों ने अपनी कहानियों में समाज और परिवार के बदलते संबन्ध का जो चित्रण किया है उसका स्वरूप पूर्ववर्ति कहानियों में चित्रित संबन्धों से भिन्न है । "राजेन्द्र यादव, निर्मलवर्मा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, कमलेश्वर, श्रीकान्तवर्मा आदि अनेक समकालीन कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबन्धों में होनेवाले इसी परिवर्तन का चित्रण किया है । चाहे वह संबन्ध पति-पत्नी का हो या प्रेमि-प्रेमिका का, उनका जो स्वरूप आज की कहानियों में देखने में आता है, वह पूर्ववर्ति कहानियों में चित्रित स्त्री-पुरुष के संबन्धों से नितान्त भिन्न है ।"[2] अतः विश्वंभरनाथ उपाध्याय का कहना असंगत नहीं है कि नई कहानी संबन्धों की कहानी है ।[3] कमलेश्वर ने भी इसी अर्थ में यह लिखा कि व्यक्ति और परिवेश के बीच के संबन्ध को समग्रता से चित्रित करना ही नई कहानी का लक्ष्य है ।[4] संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाहरी परिवर्तनों का जो प्रभाव पारिवारिक स्थितियों पर पडा, उससे मानसिक अवस्था में जो उथल-पुथल आ गया है नए कहानीकारों ने उसकी अंतरंगता में निहित नैतिक-संकट को विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया है । इसी कारण से अधिकतर नई कहानियाँ संबन्धों के नए परिदृश्य से युक्त जान पडती हैं ।

---

1. आधुनिकता की रचनात्मक भूमिका और साहित्यिक कृतियाँ - आधुनिकता : साहित्य के सन्दर्भ में (प्रथम संस्करण, 1978) - गंगाप्रसाद विमल - पृ: 217.
2. हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - (1970) - सं. रामदरश मिश्र और नरेन्द्र मोहन - पृ: 125.
3. समकालीन कहानी की भूमिका - (1977) - विश्वंभर नाथ उपाध्याय - पृ: 63.
4. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 28.

मोहन राकेश की "एक और जिन्दगी" नए सन्दर्भों में बदलते नारी-पुरुष या पति-पत्नी के संबन्धों और शिथिल हो रहे पुरातन मूल्यों की त्रासदी की कहानी है । कहानी का प्रमुख पात्र है प्रकाश जो अपनी मर्जी के अनुसार बीनु से शादी करता है । सामाजिक और मानसिक धरातल पर बराबरी के दर्जे के अन्तर्गत आनेवाले ये दोनों अपने अपने संसार में रहते हैं, दूसरों के बारे में सोच नहीं पाते । इन परिस्थितियों में दोनों के व्यक्तित्व के बीच टकराहट और जीवन में तनाव होना बिलकुल स्वाभाविक ही है । "बीना समझती थी कि इस तरह जान बूझ कर उसे फंसा दिया गया है । प्रकाश सोचता था कि अनजाने में ही उससे एक कसूर हो गया है ।"[1] बीना यह भी कहती है कि बच्चे पर प्रकाश का कोई अधिकार ही नहीं । - "आप अदालत में जाना चाहें, तो मुझे कोई एतराज नहीं है । जरूरत पडने पर मैं सुप्रीम कोर्ट तक आपसे लडूँगी । आपका बच्चे पर कोई हक नहीं है ।"[2] प्रकाश एक और जिन्दगी शुरू करने के उद्देश्य से निर्मला नामक दूसरी युवति से शादी करता है । किन्तु यह दूसरा संबन्ध भी पराजय सिद्ध होती है । अल्पशिक्षित, 'हिस्टिरिक' निर्मला अपने आपको विशिष्ट समझनेवाली है । वह प्रकाश से कहती है - "तुम बीना की तरह मुझे भी तलाक देना चाहते हो? किसी तीसरी को घर में लाना चाहते हो? मगर मैं बीना नहीं हूँ । वह सती स्त्री नहीं थी । मैं सती स्त्री हूँ । तुम मुझे छोडने की बात मनमें लाओगे, तो मैं इस घर को जलाकर भस्म कर दूँगी ।"[3] भारतीय नारी की बदलती हुई भूमिका को चित्रित करनेवाली इस कहानी की बीना एक आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती है । अपनी बुद्धि, और क्षमताओं के प्रति वह पूर्ण आत्मविश्वास रखती है । अपने व्यक्तित्व और अस्मिता को बनाए रखनेकेलिए सारे सम्बन्धों को तोड देने में वह हिचकती नहीं ।

---

1. "एक और जिन्दगी- वारिस - मोहन राकेश की समग्र कहानियाँ - 3 (पहला संस्करण, 1972) - पृ: 16.
2. वही - पृ: 17.
3. वही - पृ: 22.

मन्नू भंडारी की एक सशक्त कहानी है, 'यही सच है' जिसमें आधुनिक काल की प्रेमिका के बदलते रूप का चित्रण हुआ है । कहानी की दीपा अपने वर्तमान प्रेमी, संजय के साथ कानपुर में रहती है । उसका पहला प्रेमी, निशीथ कलकत्ते में है । अब निशीथ के प्रति उसके मन में विद्वेष और घृणा की भावना है और वह अपने अतीत को भूलकर संजय के प्रति पूर्णतः समर्पित है । वह उससे कहती है - "मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, बहुत-बहुत प्यार करती हूँ । विश्वास करो संजय, तुम्हारा - मेरा प्यार ही सच है, निशीथ का प्यार तो मात्र छल था, भ्रम था, झूठ था ।"[1] इन्टर्व्यू के सिलसिले में वह कलकत्ता जाती है और संयोग से निशीथ से मिलती है । निशीथ के लापरवाह जीवन केलिए वह अपने को जिम्मेदार समझती है और उसके प्रति दीपा के मन में सहानुभूति होती है । यह सहानुभूति धीरे धीरे प्रेम का रूप धारण करता है । अपने प्रथम प्रेम को वह सच्चा प्रेम मानती है । वह सोचती है - "प्रथम प्रेम ही सच्चा प्रेम होता है । बाद में किया हुआ प्रेम तो अपने को भूलने का प्रयास मात्र होता है ।"[2] थोड़े दिनों केबाद वह कानपुर वापस आती है, मन में निशीथ की मधुर स्मृतियों को लेकर । कानपुर आए वह उसके प्रेम-पत्र की प्रतीक्षा करती रहती है । किन्तु, प्रेम पत्र के स्थान पर जब उसका छोटा-सा औपचारिक पत्र मिलता है तो उसका हृदय व्यथित होता है । निशीथ के प्रति उसके मन में जो कोमल और भावुक कल्पनाएँ थीं, वे सब चूर चूर हो जाती हैं । संजय की उपस्थिति में, अतीत के भावुक क्षणों से मुक्त होकर वह महसूस करती है - "यह स्पर्श, यह सुख, यह क्षण ही सत्य है, वह सब झूठ था, मिथ्या था, भ्रम था ।"[3] इस कहानी की "दीपा" अपनी परंपरा में आनेवाली पुरानी कहानियों की प्रेमिकाओं से कई दृष्टियों से भिन्न है । इन्द्रनाथ मदान के मतानुसार,

---

1. "यही सच है" - मेरी प्रिय कहानियाँ- मन्नू भंडारी -{1975} - पृ: 74-75.
2. वही - पृ: 86.
3. वही - पृ: 90.

"मन्नु भंडारी ने पुराने प्रेम-त्रिकोण को नयी दृष्टि से उठाया है । . . . {दीपा केलिए} क्षण की अनुभूति ही सच है । इसका सम्बन्ध चाहे संजय से हो या निशीथ से । इस आधार पर यह अनुभूति चिरन्तन प्रेम की रोमान्टिक अनुभूति से भिन्न है ।"[1] पुरानी प्रेम-कहानियों की नायिकाओं की तरह दीपा में साहसहीनता नहीं है । अपना निर्णय वह स्वयं लेती है और उस निर्णय के अनिवार्य फल या अपनी नियति को भोगने केलिए वह तैयार होती है । दूसरे शब्दों में, प्यार के प्रति उसकी दृष्टि भी बहुत कुछ बदल गयी है । इस कहानी की विवेचना करते हुए नरेन्द्र मोहन ने ठीक ही लिखा है - प्रेम-संबन्धों का यह चित्रण यहाँ परिस्थिति-जन्य द्वन्द्व के आधार पर किया गया है जिससे प्रेम-संबन्धी परंपरागत "मिथ" टूटी है । प्रेम को एक शाश्वत धारणा के रूप में नहीं, परिस्थितियों की सापेक्षता से उत्पन्न हुए द्वन्द्व के रूप में ग्रहण किया गया है ।"[2] वस्तुतः "यही सच है" कहानी सच के सन्दर्भ में नारी को प्रतिष्ठित करने का एक रचनात्मक उपक्रम है ।

राजेन्द्र यादव की एक प्रसिद्ध कहानी है, "टूटना" । कहानी में किशोर और लीना प्रेम-विवाह करते हैं । लीना असिस्टन्ट इन्कमटैक्स कमीशनर की बेटी है और किशोर उसका ट्यूशन-मास्टर और बाद में एक "लेक्चरर" । जब लीना सहज भाव से तथाकथित "सभ्य" समाज के अनुरूप किशोर के आन्तरिक और बाह्य जीवन को बदलाने का प्रयास करती है, उसमें हीन भावना पैदा होती है । "हेयर-स्टाइल, मैचिंग सेन्स, हर चीज़ का चुनाव-सभी में कुछ ऐसी नफासत और आभिजात्य रहता कि लगता वह किशोर से बहुत दूर चली गयी है - अप्राप्य और दुर्लभ हो उठी है । उसे अपने-आप बहुत ही छोटा और अकिंचन महसूस होने लगता वह खुद ही मानो अनधिकारी, गैर और अजनबी बनकर उसे ठगा-सा देखता रह जाता ।"[3] कभी कभी

---

1. हिन्दी कहानी : एक नयी दृष्टि - इन्द्रनाथ मदान - {1978} - पृ: 145.
2. आधुनिकता के सन्दर्भ में हिन्दी कहानी - नरेन्द्र मोहन {प्रथं संस्करण 1982} नरेन्द्र मोहन - पृ: 34.
3. "टूटना" - एक दुनिया : समानान्तर {1974} - सं. राजेन्द्र यादव - पृ:313.

उसके मन में यह सन्देह भी उठता है – "सचमुच वह लीना के लायक नहीं है' कहाँ वह, और कहाँ लीना !"[1] क्रमशः उनका दाम्पत्य-जीवन इतना संकट-ग्रस्त बन जाता है कि एकदिन उनका संबन्ध पूर्णतः टूट जाता है मानो वे दोनों अलग होते हैं । लीना से अलग होने के बाद, रुपया कमाने के उद्देश्य से वह कहीं चला जाता है । कठिन प्रयत्न कर आठ वर्षों के अन्तर वह किसी "कंपनी का जनरल मैनेजर बन जाता है । इतने वर्षों के बाद एक दिन जब उसे लीना का एक पत्र मिलता है, अपने अतीत के बारे में सोचकर उसे अफसोस होता है । तभी वह समझता है कि लीना अपने और उसके पिता के बीच का एक पर्दा थी । उस पर्दे के हटते ही वह अपने के आपको दीक्षित साहब के रू-ब-रू खड़ा पाता है । वह सोचता है – "तो सच ही ताकत आजमाता दूसरा हाथ लीना का नहीं था' लीना तो सिर्फ मेज़ का एक तख्ता थी . . . वह दूसरा हाथ "उसका" (दीक्षित का) था ।"[2] स्वतन्त्रता के बाद की परिस्थितियों, और नारी के आत्मनिर्भर होने की स्थितियों ने उसके स्वरूप और मानसिक गठन को और पुरुष के साथ उसके संबन्धों को बदला है । प्रस्तुत कहानी की लीना में नारी का यह बदला हुआ रूप मिलता है । लेकिन अपनी हीन-भावना के कारण इस यथार्थ को समझने में किशोर असमर्थ होता है । इस सन्दर्भ में उनके सम्बन्ध का टूटना अनिवार्य ही है । इस कहानी के संबन्ध में स्वयं यादव ने लिखा है – "ऊपर से इस कहानी का नायक सोचता है कि वह बन रहा है, जबकि भीतर से टूटता जाता है । उतनी ही प्रतिहिंसा के साथ वह अपनी बाहरी धूमधाम को बनाता जाता है । इस तरीके से एक दिन जब उसका टूटना संपूर्ण होता है, तभी कहानी खत्म होती है ।"[3]

---

1. "टूटना" – एक दुनिया : समानान्तर (1974) – सं. राजेन्द्रयादव – पृ:314.
2. वही – पृ: 324.
3. आजकल – 14 अक्टूबर 1980.

कृष्ण बलदेव वैद की "त्रिकोण" प्रेम-संबंध के पारंपरिक त्रिकोण की कहानी नहीं है, पारंपरिक त्रिकोण अपना गणितीय मूल्य इसमें खो देता है । कहानी में एक व्यक्ति अपने करीबी दोस्त की पत्नी का बलात्कार करता है । किन्तु सच्चे अर्थ में वह एक बलात्कार नहीं है क्योंकि एक क्षण के पश्चात् वे दोनों समान भाव का अनुभव करते हैं । वह पुरुष सोचता है - "हमारे जिस्म एक-दूसरे को मथ रहे थे । वह कोई भी औरत हो सकती थी और मैं कोई भी मर्द । हम कहीं भी हो सकते थे । उस समय कोई भी आ सकता था, कुछ भी हो सकता था । हमारे जिस्म बागी हो चुके थे ।"[1] उस शारीरिक संबन्ध के बारे में उन तीनों की- पति, पत्नी और पति के दोस्त की - जो प्रतिक्रिया है उसके रूप में कहानी विन्यसित है । अपने अनैतिक संबन्ध पर न तो पत्नी न पति का दोस्त पश्चात्ताप करता है । इसलिए उनकी प्रतिक्रिया में भी कहीं भी कोई ओढी हुई अवस्था नहीं है । अपने पति के साथ के, या किसी भी पुरुष के साथ के संबन्ध के बारे में वह स्त्री कहती है - "मैं अपने संबन्धों की एकरसता की शिकायत नहीं कर रही । सभी संबन्ध कुछ समय बाद एकरस हो ही जाते हैं ।"[2] दूसरे पुरुष के साथ के उस शारीरिक संबन्ध पर उसे अपराध-भाव नहीं है । मैं किसी अपराध भाव से पीडित नहीं । जो हुआ ठीक ही हुआ और यह सोचकर कि मुझे बहुत इतमीनान मिलता है, बहुत अच्छा लगता है, एक ऐसी मुस्कुराहट मेरे होंठों पर खिल आती है, जो नितान्त मेरी अपनी है, जिसे मेरे पति ने न कभी देखा है, न देख पायेगा ।"[3] वह यह भी कहती है - मेरे पति को मुझपर विश्वास है ।"[4] पारंपरिक मूल्यों के विघटन का स्पष्ट स्वर उसके इसकथन में मुखरित है । सुखमय दाम्पत्य की अनदेखी स्थिति का विघटन ही नहीं, एक निरर्थक परंपरा का विघटन भी इसमें दर्शाया गया है । हम अपने

---

1. "त्रिकोण" - आलाप - (1986) - कृष्ण बलदेव वैद - पृ: 78.
2. वही - पृ: 79.
3. वही - पृ: 80.
4. वही - पृ: 79.

सामाजिक संकल्प के साथ जिन परंपराओं को ढोते चले जा रहे हैं उनमें निहित निरर्थकताओं को अनदेखा करने की आदत हमारे स्वत्व की विघटित अवस्था का द्योतक ही है । अपनी पत्नी और अपने दोस्त के शारीरिक संबन्ध को देखकर उस पति को हैरानी नहीं होती । वह सोचता है - "मैं कहना यह चाहता हूँ कि उन्हें देखकर मुझे हैरानी तक नहीं हुई थी, महसूस हुआ था कि जो हुआ, हो रहा है, ठीक ही तो है, कि वे दोनों मेरी इस प्रतिक्रिया को नहीं समझ पायेंगे और मैं कभी उन्हें शर्मिन्दा होने का अवसर नहीं दूँगा, इसलिए नहीं कि मैं उन्हें चोट नहीं पहुँचाना चाहता बल्कि इसलिए कि वे, और खास तौर पर मेरी पत्नी, मुझे जिन साँचों से मापना चाहेंगे मैं उनसे बडा हूँ, सो मैं खुश हूँ कि मैं कम से कम अपनी नज़र में उस तथाकथित कडी आजमाइश से बेदाग बच गया हूँ, कि मैं अनासक्त हूँ, हालाँकि मैं यह हिम्मत कभी भी नहीं कर पाऊँगा कि उन्हें यह बात समझा सकूँ, हिम्मत का सवाल नहीं, सवाल शायद अहं का ही है, साधारण अहं का नहीं, बल्कि उस उल्टे अहं का, जिसका सहारा मेरी खुशी को चाहिए ।"[1] इस प्रकार कहानी का हर कोण - हर व्यक्ति - संबन्ध के त्रिकोण में अनात्मिक संबन्ध झेलता दिखाई देता है । ये तीनों पात्र अनात्मीयता से अनात्मीयता की ओर बढते हैं । यह कहानी विघटित संबन्धों की सामान्य भूमिका पर उतरती नहीं है, प्रत्युत् इसमें स्त्री-पुरुष संबन्ध का एक निजी, मौलिक और आदिम रूप ढूँढने का उपक्रम हुआ है । अपने अपने लैंगिक जीवन में वे दोनों पति-पत्नी इतने स्वतन्त्र हैं कि एक दूसरे के रास्ते पर खडा होना नहीं चाहते । यह उनकी उदारता नहीं है । अपने अपने रहस्य दोनों एक दूसरे से नहीं बताते, न एक दूसरे का रहस्य जानने के डर से नहीं, बल्कि अपनी खुशी और अपने अस्तित्व केलिए अहं का जो भाव अनिवार्य है, उसको बनाए रखने केलिए । इसप्रकार कृष्णबलदेव वैद की यह कहानी स्वीकृत मान्यताओं और परंपरागत मूल्यों पर आघात करती है ।

---

1. "त्रिकोण" - आलाप - (1986) - कृष्ण बलदेव वैद - पृ: 81.

चाहे विघटित संबन्ध हो या संबन्धों के नए सन्दर्भों को पहचानने का उपक्रम हो इन कहानियों में संबन्धों का नया परिदृश्य ही हमें प्राप्त होता है । प्रश्न उठता है कि इन कहानियों में परिकल्पित नए सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में जीवन का कौन-सा पक्ष प्रमुख हो उठता है । यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है इनमें परंपरागत दृष्टि के बदले नई दृष्टि अपनाई गई है । लेकिन क्या ऐसी एक नई दृष्टि तक हम इन कहानियों को सीमित कर सकेंगे' दर असल इन कहानियों का सीधा लगाव उन सामाजिक स्थितियों से है जिनका संकेत भी कहानीकार देते चलते हैं । अतः व्यक्ति और परिवेश का सम्मिश्रण इनमें हुआ है । इस सम्मिश्रण के सन्दर्भ में पुनः व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्ध को देखा गया है । इसी प्रकरण में जीवन की संकट ग्रस्तता का परिचय होने लगता है ।

संबन्धों की नई सूचनाएँ बदलती हुई सामाजिक स्थितियों का संकेत भर ही नहीं कर रही हैं बल्कि वे संकटग्रस्त स्थिति का अवलोकन और विश्लेषण भी कर रही हैं । यह कहना बेहतर होगा कि उसमें संकटबोध की ही अवस्थिति है ।

जब इसी सन्दर्भ में हम मलयालम कहानी का विश्लेषण करते हैं तो पता चलता है कि मलयालम की विभिन्न कहानियों में संबन्धों के कई नए परिदृश्य मिल जाते हैं । कहीं उनमें टूटन है, तो कहीं उनमें शिथिलता या विघटन है । यह बिखराव आधुनिक जीवन का बिखराव ही है । यह आधुनिक जीवन की गतिहीनता है । पुराने और नए के बीच के द्वन्द्व से उत्पन्न विघटन की स्थितियाँ भी हैं जो सीधे संकट से साक्षात्कार कराती है ।

माधविक्कुट्टि ने नयी परिस्थितियों में सम्बन्धों की तलाश की बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं । स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की निरर्थकता से वे सजग हैं अवश्य उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा आधुनिक जीवन की भीषण विद्रूपता और बदलते हुए मानवीय सम्बन्धों का विश्लेषण किया है । एस.पी.रमेश ने ठीक ही लिखा है -

"संबन्धों की निरर्थकता-जन्य त्रासदी से हमारा परिचय कराते हुए, उसकी अंधियारी दुनियों की ओर हमें ये कहानियाँ ले जाती हैं ।"[1] स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के जितने भी आयाम उनकी कहानियों में मिलते हैं, अन्यत्र नहीं । उनमें भी अधिकांश पति-पत्नी और प्रेमि-प्रेमिका के सम्बन्धों की कहानियाँ हैं । उनकी कहानी "परुन्दुकल" (बाज) में पति-पत्नी के सम्बन्धों की टूटन की कहानी है । इस कहानी का पुरुष स्त्री से प्रेम विवाह करता है । "उनके जैसे प्रेम करनेवाले बहुत कम होंगे । कथाओं की प्रेमिकाओं की तरह, वह भी प्रेम केलिए माता-पिता के विरुद्ध आवाज़ उठाती थी ।"[2] वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने के बाद प्रेम की काल्पनिक और कोमल भावनाओं के स्थान पर सन्देह और विद्वेष की भावनाएँ उभर आने लगती हैं । धीरे धीरे वे दोनों अलग होने लगते हैं । उनके बीच की खाई बढकर एक दिन वे दोनों एक दूसरे से विदा लेते हैं । पति कहता है - "मैं जा रहा हूँ । इस घर में मुझे चैन नहीं मिलेगा ।"[3] इस प्रकार वे दोनों परिन्दे आसमान के अलग अलग कोने की ओर उड जाते हैं । वस्तुतः साहसिक और काल्पनिक भ्रम में पडकर ही उन्होंने शादी की है । जिस युवति को वह प्रेमिका के रूप में अप्राप्य और आदरणीय समझता था, उसे घर की सारे काम करनेवाली घरवाली के रूप में पाकर उसके मन की कोमल भावनाओं का अन्त होता है । यथार्थ से टकराने पर उनकी भावनाएँ चकनाचूर हो जाती है । आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी होने के कारण वे अपनी अपनी भावनाओं का वरण करने लगते हैं जहाँ वे स्वतंत्र हैं । विरुद्ध भावनाओं को मन में संजोना इस हालत में संभव भी नहीं । पति को नफरत करते हुए, घृण्य समझते हुए उसके साथ जीवन बिताने की पुरानी समझौतावादी दृष्टि भी उसकी नहीं । प्रस्तुत कहानी में भावनाओं का उदय और अस्त दो व्यक्तियों के - स्त्री-पुरुष-प्रेम के स्फुरण और प्रेम के अन्त का सूचक मात्र नहीं बल्कि ऐसी एक अवस्था त्रासद प्रसंग का सूचक है ।

---

1. माधविक्कुट्टि - "पक्षी की गन्ध" शीर्षक कहानी के सन्दर्भ में - एस.पी. रमेश नवीन कथा - सं० एम.एम० बशीर (1977) - पृ: 32.
2. "परुन्दुकल" (बाज) - "मतिलुकल" - (1967) - माधविक्कुट्टि - पृ: 49.
3. वही - पृ: 47.

माधविक्कुट्टि की "स्वतन्त्रजी विकल" §स्वतन्त्र जीवी§ स्त्री-पुरुष के बीच नये सम्बन्धों की तलाश की और उन सम्बन्धों के प्रति अधुनिक नारी की उभरती भूमिका की कहानी है । इस कहानी में एक अधेड उम्र का गृहस्थ आदमी सिर्फ अपनी प्रेमिका के साथ कुछ घण्टे खर्च करने केलिए बहुत दूर से आता है । नगर के हॉटल की तरफ चलते समय वह आदमी उससे कहता है - "आज केलिए हमारे नाम रहेंगे मिस्टर पार्थसारथी और मिस. पार्थसारथी । हमारे बीच का सम्बन्ध बाप और बेटी का है ।"[1] अपने प्रेमी का वह कृत्रिम नाम और काला चश्मा उस युवति को उतना अच्छा नहीं लगता । उसकी दृष्टि में उस आदमी का चश्मा अपनी परतन्त्रता का प्रतीक है । अपने समाज से डरनेवाला वह आदमी अपनी प्रेमिका के साथ खुली जगह पर चलने का साहस नहीं कर सकता । अपना व्यक्तित्व, अस्मिता और इयत्ता ही उसकेलिए सब से मुख्य हैं । उस सम्बन्ध की निरर्थकता से वह युवति सजग तो है । वह यह भी जानती है - "सारे प्रेम-सम्बन्धों के अन्त में मिथ्या-अभिमान की ही विजय होती है ।"[2] लेकिन वह सिर्फ प्यार करना जानती है । अपने प्रेमि के समक्ष अपने को पूर्णतः समर्पित करने में ही वह प्रेम की सार्थकता समझती है । उसका विचार है - "एक नारी अपनी पूर्णता चाहती है तो उसका एक प्रेमी होना चाहिए । अपने स्त्रीत्व को पहचानने केलिए एक पुरुष की ज़रूरत है । जिसप्रकार दर्पण में अपना प्रतिबिंब देखता है, उसी प्रकार अपना स्वरूप देखने केलिए नारी को एक पुरुष चाहिए । अपने शरीर की गन्ध, मुलयमियता §नरमी§, आकार ये सब उसे अपने प्रेमी के सिवा कौन समझा सकता है?"[3] नए सन्दर्भों के अनुरूप इस कहानी की नारी की नयी भूमिका है जिसका शादी पर भी विश्वास नहीं है । वह अपने प्रेमी से कहती - "मुझे मालूम हुआ कि क्यों आप मुझे चाहते हैं ।"

---

1. "स्वतन्त्रजी विकल" §स्वतन्त्र जीवी§ - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ §1982§ - पृ: 207.

2. वही - पृ: 208.

3. वही - पृ: 213.

"क्यों ? "

"मैं अपने भविष्य के बारे में सोचती नहीं, शादी पर मेरा विश्वास नहीं, पाप का बोध मुझे तनिक भी नहीं है ।"[1] एम.पी. राधाकृष्णन की राय में, "मनुष्य की यथार्थ अवस्था या सत्ता केलिए तडपनेवाले एक व्यक्ति का स्वर इस कहानी में गूँज उठता है ।"[2]

इस कहानी में एक अनूठा मौलिक संबन्ध खोजा गया है जो तनिक भी भावुक नहीं है । माधविक्कुट्टि की कहानियों में अक्सर प्राप्त होनेवाली स्त्री, भावुकता-विहीन ढंग से अपने को संस्थापित करती है । इस कहानी की युवति की मानसिकता में संकटग्रस्तता के लेश मात्र भी नहीं हैं। पर उसने जिस संबन्ध को अपने लिए चुन लिया उसको निभा पाने में कठिनाई है । यह कठिनाई धीरे धीरे विघटित होकर आखिरकार संकट-जन्य स्थिति का रूप धारण करती है ।

एम॰टी॰वासुदेवन नायर की कहानी 'वारिक्कुषि' (गड्ढा) अच्चवर्गीय पति-पत्नी के सम्बन्धों की टूटन की कहानी है । कहानी में निम्न मध्यवर्ग के शंकरनकुट्टि की शादी अमीर घराने की विधवा स्त्री, सुभद्रा से होती है । उसका पहला पति शादी के सात महीने के बाद मर चुका था । यह दूसरी शादी कई दृष्टियों से अनमेल सिद्ध होती है । आर्थिक और पारिवारिक दृष्टि से इन दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है । किन्तु सुभद्रा से शादी करने की वजह से शंकरनकुट्टि उसकी बडी जायदाद का स्वामी बन जाता है । लेकिन वह अपने को सुभद्रा के पति के रूप में देख नहीं पा रहा है । उसके प्रति मन में घृणा और विद्वेष उत्पन्न होने लगते हैं । उसकी दृष्टि में सुभद्रा के स्वर में आज्ञा या अधिकार का आभास है । गड्ढे में गिरे पडे हाथी को देखने जंगल की तरफ जाने केलिए जब वह

---

1. "स्वतन्त्रजीविकल" (स्वतन्त्र जीवि) - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ (1962) - पृ: 211.
2. "स्वतन्त्रजीवि" (लेख) - एम॰पी॰राधाकृष्णन - मातृभूमि साप्ताहिक - जनवरी-6, 1974 - पृ: 12.

तैयार होता है, तब सुभद्रा उससे कहती है - "जंगल से मुझे दोपहर के पहले पहुँच जाना । बडी दीदी के साथ स्टेशन जाना है । इसलिए हाथी को सबेरे ही गड्ढे से बाहर चढा लेना ।" सुनकर उसने कुछ नहीं कहा । भाग्यवश किसी ने नहीं सुना ।"[1] वह आगे कहती है - "दस बजे मैं माँ के साथ वहीं आ पहुँचूँगी । नौकरों से यह कहना है कि दस बजे के पूर्व ही हाथी को गड्ढे से बाहर निकाल लें ।"[2] यह कहीं न जुडनेवाला स्वर था, जिसने उन्हें अलग अलग छोरों पर ला खडा किया और ये छोर अलग हटते ही गए । एक साथ जीना उनकेलिए दूभर हो जाता है । गड्ढे से बाहर आए हाथी की मृत्यु कुछ ही क्षणों में होती है । सारा प्रयत्न बेकार हो जाने पर वहाँ एकत्रित सभी लोग चिन्तित होते हैं । किन्तु हाथी की मृत्यु पर शंकरनकुट्टि दुःखी नहीं । अपनी पत्नी के प्रति उसकी घृणा फूट पडती है - "हाथी का निधन हुआ, "कोट्टमला"[3] सुभद्रा के हाथी की मौत हो गई । उसे जोर से चिल्लाने की इच्छा हुई । सुभद्रा को यह नयी सूचना देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।"[4] इसी प्रतीकात्मक घटना के माध्यम से पति अपनी मुक्ति की घोषणा करने की इच्छा प्रकट करता है । यहाँ विघटन की चरम सीमा दर्शाई गई । अतः दोनों के बीच संप्रेषण एकदम बन्द-सा हो गया है । वे इतने अपरिचित-से हो गए हैं कि एक दूसरे के निकट आने की संभावना भी खत्म हो चुकी है ।

"बन्धनम" शीर्षक एम॰टी॰वासुदेवन नायर की कहानी का विश्लेषण इसके पूर्व के प्रकरण में मानवीय संकट के सीधे साक्षात्कार के सन्दर्भ में भी किया गया था । उक्त कहानी का विघटित संबन्ध के परिपार्श्व पर ही इस प्रकरण में प्रकाश डाला जा रहा है । कहानी का "वह" शहर के किसी दफ्तर का अफ्सर है ।

---

1. "वारिक्कुषि" (गड्ढा) - एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ - (1978) - पृ:417.
2. वही ।
3. कहानी के पात्र की ज़मीन्दारी का स्थानीय नाम ।
4. "वारिक्कुषि" - एम.टी॰की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 435-436.

अपनी पत्नी, भारती को गाँव में अकेली छोड़कर वह शहर में अपनी प्रेमिका मिस मार्गरेट डिसूसा के साथ रहता है । मार्गरेट को यह पता नहीं कि अपना प्रेमी एक गृहस्थ आदमी है । शहर की प्रेमिका के बारे में उसकी पत्नी भी नहीं जानती वस्तुतः वह इन दोनों को धोखा दे रहा है । अपने पति को ईश्वर-सम माननेवाली भारती की निष्कलंकता पर उसके मन में सहानुभूति है । किन्तु सहानुभूति और प्यार अलग अलग हैं । अपनी पत्नी को वह कभी भी प्यार कर नहीं सकता । "उसके दुबले पतले शरीर को देखकर उसके मन में सहानुभूति हुई है । . . . वह कुरूप नहीं थी । किन्तु वह उसपर सौन्दर्य देख नहीं सका । वह अपने जीवन का एक अंश बन नहीं सकी ।"[1] दो या तीन हफ्तों के बाद जब वह घर आता है तो उसके मन में अजनबी का भाव होता है । लेकिन पति-पत्नी के रिश्ते को वह पूर्ण रूप से तोड़ नहीं पा रहा है । एक क्षण उसे लगता है कि दोनों उसकेलिए बन्धन हैं । उसका मन अशान्त होता है । उसे लगता कि एक काली-कोली कोठरी से दूसरी काली कोठरी तक की यात्रा ही उसका जीवन है । उसका द्विधाग्रस्त मन संबन्धों को तोड़-फोड़कर कहीं गुम हो जाना चाहता है । लेकिन वह अनिच्छित रूप में सही पत्नी के साथ के संबन्ध को स्वीकार करता भी है । साथ ही मुक्ति भी चाहता है । संबन्ध-विघटन का यह परिदृश्य आज के जीवन के संकटबोध का एक अविच्छिन्न पहलू है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

स्त्री और पुरुष का संबन्ध हर युग की कहानी की विषयवस्तु रही है । युगीन मानसिकताओं के अनुरूप कहानीकारों ने स्त्री-पुरुष संबन्ध को प्रस्तुत किया है । यह भी सच है कि यदा-कदा एकाध कहानीकारों ने किंचित सन्दर्भों में युगीन मानसिकता का उल्लंघन भी किया है । मुख्य बात यह है कि स्त्री-पुरुष

---

1. "बन्धनम" (बन्धन) - एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 339.

संबन्ध कहानीकार केलिए एक चुनौती के रूप में --- है । इस विशिष्ट संबन्ध के आधार पर एक ओर व्यक्ति की आकांक्षाओं और सामाजिक निजता की पहचान में संभव है । यही एक कारण है जिसके फलस्वरूप कहानीकारों ने इस विशिष्ट संबन्ध को प्रमुखता दी थी । एक और कारण यह भी बताया जा सकता कि कहानीकार केलिए स्त्री-पुरुष संबन्ध की विशिष्ट स्थितियों को चित्रित करते समय या संबन्धों की महीन अवस्थाओं तथा नाजुक तन्तुओं का चित्रण करते समय अपनी कलात्मक क्षमता को अभिव्यक्त करने का अवसर भी मिल जाता है । आधुनिक युग के कथा साहित्य में स्त्री-पुरुष संबन्ध के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है । हिन्दी तथा मलयालम में इस प्रकार की असंख्य कहानियाँ मिल जाती हैं । यहाँ जिन कहानियों का विश्लेषण हुआ, उनका मुख्य पहलू संबन्ध का विघटन है । सवाल उठ सकता है कि विघटन एकदम अनिवार्य है या नहीं । इसका जवाब सिर्फ यह हो सकता है कि विघटन की अनिवार्यता से बढ़कर विघटन की उपस्थिति को पहचानना । इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि संबन्धों को देखने-महसूस करने का ढंग बदल गया है । इस बदलाव के कारण अविघटित अवस्था में भी विघटन के कुछ क्षण पहचाने जा सकते हैं । उदाहरण स्वरूप इस प्रकरण में चर्चित मलयालम कहानी "गड्ढा" में स्त्री-पुरुष संबन्ध को ऐसे एक बन्धन के रूप में देखा गया है जिसमें से समूचा अर्थ नष्ट हो गया । यहाँ विघटन त्रासदी के रूप में वर्तमान है । बाह्य रूप से इस कहानी की तुलना कृष्ण बलदेव वैद की कहानी त्रिकोण से असंभव लगते हुए भी आन्तरिक स्तर पर दोनों स्थितियाँ तुलनीय हैं । "त्रिकोण" में जिस प्रकार अपने संबन्धों को सुरक्षित रखते हुए भी कहानी के पात्र-पत्नी पति और उनके मित्र- दूसरे संबन्धों में तत्परता दिखाते हैं । कहानीकार ने शारीरिक संबन्ध के विभिन्न पहलुओं को दिखाकर उस तत्परता में निहित विघटनात्मक स्थिति को रेखांकित किया है । "गड्ढा" शीर्षक कहानी में एम० टी. वासुदेवन नायर ने अपने पुरुष पात्र की मानसिकता के अनुरूप अनेक सांकेतिक प्रतीक दिये हैं जो उस पात्र की स्वातंत्र्योच्छा से जुड़े हुए हैं । लेकिन इस कहानी

में भी वही संबन्ध बना रहता है जिसके बावजूद इस संबन्ध के बन्धन को तोडने की तत्परता दिखायी गयी है । इस सन्दर्भ में ही विघटन की अनिवार्यता महसूस की जा सकती है । इन दोनों कहानियों में संबन्ध की अयाचित अवस्था के प्रति एक विद्रोहात्मक रूख भी अपनाया गया है ।

राजेन्द्र यादव की कहानी, "टूटना" तथा मोहन राकेश की कहानी "एक और जिन्दगी" के साथ माधविक्कुट्टि की कहानी, "बाज" तथा एम.टी.वासुदेवन नायर की कहानी, "बन्धन " के संबन्ध-जन्य स्थितियाँ समान लगती हैं । इनमें टूटे हुए संबन्धों का सिलसिला देखा जा सकता है । परन्तु टूटने के उपरान्त भी कहीं जुड जाने की आकांक्षा भी विद्यमान है । जुड जाने की इच्छा इन कहानियों में तीव्र नहीं है, उसी प्रकार टूटने के पश्चात् की अवस्था को निस्संग होकर झेलने की मनःस्थिति भी नहीं है । पात्रों के इस मानसिक संघर्ष को इन चारों कहानीकारों ने अपने अपने ढंग से कहानी के विषय वस्तु के अनुरूप चित्रित तो किया है लेकिन स्वीकार और अस्वीकार की भावनाओं की कश्मकश में निहित जो मूल्यगत विघटन है वही इन कहानियों में मुख्य है । एक ओर वैवाहिक संबन्धों के टूटन से उत्पन्न शिथिल स्थितियों का आकलन है तो दूसरी ओर टूटन की अनिवार्यता से उत्पन्न शिथिलता भी । व्यक्ति, समाज, व्यक्तित्व, सामाजिक अपेक्षाएँ इन सब के बीच में जब मूल्यगत संघर्ष उत्पन्न होता है तो इसका एक व्यापक आयाम रहता है । वस्तुतः इन कहानीकारों ने प्रेम-संबन्धों और प्रेम के विघटन के माध्यम से इसी पर प्रकाश डाला है ।

पारिवारिक संबन्ध का नया सन्दर्भ : हिन्दी और मलयालम कहानी

उषा-प्रियंवदा की "वापसी" पारिवारिक बिखराव की कहानी है। पैंतीस साल की नौकरी के बाद "रिटर्यड" होकर घर आए गजाधर बाबू के मन में अपने परिवार के साथ सुख और चैन के साथ रहने की आशा थी । लेकिन उसके जीवन का कारुणिक पक्ष यह है कि वह सब कहीं "मिसफिट" हो पाता है । घरवालों के से कोई भी उसे अपना नहीं मान रहा है । अपनी पत्नी को भी वह अपरिचित-सा

देखता है । "गजाधर बाबू बैठते हुए पत्नी को देखते रह गए - यही थी क्या उनकी पत्नी जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुसकान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों केलिए नितान्त अपरिचिता है . . . गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेटकर छत की ओर देखने लगा ।"[1] निराश होकर थोडे ही दिनों में वह घर छोडकर वापस चला जाता है । उसके जाते ही पत्नी कमरे से चारपाई निकाल देने को कहती है । सभी - बेटे, बेटी तथा बहू - इतने खुश हो जाते हैं कि उन्हें ऐसा आराम मिल गया है कि ऐसा कभी उन्हें महसूस नहीं हुआ है । गजाधर बाबू की दूसरी वापसी ही वास्तविक वापसी रही है । पहली वापसी, जो नौकरी से थी, अपने एकान्त जीवन से थी, दूसरी वापसी की तुलनामें एकदम साधारण और महत्वहीन है । दूसरी वापसी इसलिए महत्वपूर्ण है कि उसमें गजाधर बाबु के जीवन का संकट-जन्य पक्ष उभरता है । वह इच्छित जीवन से पलायित होने की मजबूरी है । उसमें उसका स्वागत ऐसा एक एकान्त कर रहा है जिससे मुक्त होने की आकांक्षा ही उसने उन गुज़रे हुए वर्षों में पाल रखी थी । वह पुनः उस एकान्त के अंधेरे में गिरफ्त होता है । विघटित संबन्धों की मूल्यहीनता का यह अंधेर पक्ष भी है और जीवन की सब से बडी संकटग्रस्त स्थिति भी ।

उषा प्रियंवदा की "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" नये माहौल में भाई और बहन के बीच के संबन्ध की टूटन की एक सशक्त कहानी है । कहानी में सुबोध नामक एक युवक है जिसके जीवन में "ज़िन्दगी ने गुलाब के फूल दिये थे, लेकिन उसने स्वयं ही उन्हें ठुकरा दिया ।"[2] नौकरी, माँ और बहन का प्यार, शोभा नामक युवति से उसकी सगाई - ये सब उसके जीवन के गुलाब है । अपने अफ्सर की

---

1. वापसी - मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - (1974) - पृः 77.
2. ज़िन्दगी और गुलाब के फूल - मेरी प्रिय कहानियाँ - वही - पृः 128.

अपमानजनक बात सुनकर आत्मसम्मानार्थ वह नौकरी से इस्तीफा दे देता है । इस प्रकार वह बेकार हो जाता है किन्तु उसकी बहन, वृन्दा को नौकरी मिलती है । जब वह नौकरी करता था, घर में उसका अपना अधिकार और स्थान था । उसके बेकार होते ही बहन स्वयं कमाने लगती है और घर का सब कुछ उसकी मर्जी के अनुसार चलता है । धीरे धीरे सारे घरवालों की नज़र में, विशेषकर बहन की नज़र में, वह एक बोझ-सा बन जाता है । अपनी बहन उसकेलिए अपरिचित बन जाती है । "सब से अधिक आश्चर्य तो उसे वृन्दा पर था । अक्सर वह सोच उठता कि यह वही वृन्दा है, जो उसके आगे-पीछे घूमा करती थी, उसके सारे काम दौड दौडकर किया करती थी ।"[1] रामदरश मिश्र की राय में, "स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद, हमारे समाज में जो परिवर्तन होते हैं उसके केन्द्र में पारिवारिक परिवर्तन होते हैं और उन समस्त परिवर्तनों के मूल में प्रायः अर्थ ही है ।"[2] प्रस्तुत कहानी की धन कमानेवाली बहन का भाई के प्रति स्नेह-सम्बन्ध टूट जाता है । सुबोध समझता है कि संबन्धों के ऊपर सब से बडी जो चीज़ काम करती है, वह है संपत्ति, वही सम्बन्धों को बनाता है और वही बिगाडता है । कमलेश्वर की कहानी, "आसक्ति" भी इसी कोटि में आनेवाली या ऐसा भी कह सकते हैं कि ये दोनों एक जैसी रचनाएँ हैं । उसमें भी नौकरी करनेवाले मुँहताज बने भाई की मजबूरियों का चित्रण हुआ है ।

आज के परिवर्तित जीवन-सन्दर्भों में नए सम्बन्धों की तलाश अनिवार्य बन जाती है । कमलेश्वर की "तलाश" शीर्षक कहानी में आधुनिक समाज की एक युवा विधवा माँ और उसकी शिक्षिता युवा बेटी के शिथिल सम्बन्धों की कहानी है । कहानी की सुमी अपने से उन्नीस वर्ष बडी माँ के प्रति सखी-सहेली का-सा व्यवहार करती है । पिता के अभाव में उस बेटी के मन में माँ के प्रति

---

1. जिन्दगी और गुलाब के फूल - मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा (1974) पृ: 129.

2. नयी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम - हिन्दी कहानी : अन्तरंग पहचान - रामदरश मिश्र (1977) - पृ: 72.

कर्तव्य-बोध की भावना जाग उठती है । वह माँ के भावात्मक संम्बन्धों को अनैतिक मानते हुए भी उनमें वह स्वयं एक बाधा बनना नहीं चाहती । उसे देखते ही माँ को पापा की याद आती है । "और कभी-कभी ममी उसे देखकर ऐसे घबरा उठती थी, जैसे पापा आ गए हों । और वह ममी को देखकर ऐसे अकुला उठती थी, जैसे पापा चले गए हो । पर पापा थे कि न आते थे, न जाते थे . . . वह सिर्फ रुके हुए थे ।"[1] इसलिए पापा की स्मृतियों को माँ से दूर ले जाने केलिए और उनके भावात्मक सम्बन्धों में उन्मुक्तता देने के उद्देश्य से वह स्वयं उनसे अलग होती है । थोडे दिनों के बाद जब वह माँ से मिलने आती है तो उसे यों लगता है कि माँ बहुत कुछ बदल गयी है । उन दोनों के व्यवहारों में पुरानी ऊष्मलता के स्थान पर औपचारिकता आ गई है । इस प्रकार प्रस्तुत कहानी आधुनिक सन्दर्भों में माँ-बेटी के बदलते सम्बन्धों और उन सम्बन्धों के प्रति बेटी की नयी उभरती भूमिका को मुखर करती है ।[2] परन्तु इस कहानी का एक और पहलू है जिसको अनदेखा किया नहीं जा सकता । माँ-बेटी के संबन्ध में वैसी कोई टकराहट तो हुई नहीं थी । इसका कारण बेटी की वह परिपक्वता है जिसने अपनी माँ के किसी अन्य पुरुष के साथ के संबन्ध को मान लिया था । वह अक्सर उन दोनों के मिलने, साथ रहने, कहीं घूमने जानेवाली बातों से वाकिफ है । वह विरोध करती नहीं है । क्योंकि माँ की शारीरिक आवश्यकताओं को देखते हुए उसमें अस्वाभाविकता का अंश कम है । पर बेटी की मजबूरी यह है कि वह उसके पिता की उपस्थिति से भी बीच-बीच में सचेत होती है । प्रस्तुत कहानी का संकट जन्य पक्ष यही है, जो सुमी अनुभव करती है, वैधव्य को झेलते हुए उसकी माँ अपने नए रिश्ते को क्यों साथ लिए जा रही है । वैधव्य का बाना पहनने के कारण वह न माँ की भूमिका अदा कर पा रही है न प्रेमिका का । अतः सुमी का घर छोडकर

---

1. तलाश - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - (1972) - पृ: 147.
2. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाज शास्त्रीय दृष्टि - रघुबीर सिन्हा - (1977) - पृ: 57.

बाहर जाना नई परिस्थितियों के अनुकूल होते हुए भी, संकटजन्य भी है । अपने मातृत्व और प्रेमिक पक्ष को एकसाथ निभा पाने की अवस्था उसकी युवा माँ केलिए संकटजन्य है ।

टी. पद्मनाभन की एक सशक्त कहानी है, "दुःखम्" {दुःख} । वर्षों के बाद अपनी नौकरी से निवृत्त होकर आए हुए एक आदमी की व्यथा इस कहानी में मुखरित है । गरीबी के दिनों में उस परिवार का एकमात्र सहारा वही था । अब वह अपने घरवालों के बीच "मिस्फिट" होने का-सा अनुभव करता है । वह सोचता है "एक ज़माने में खाना खाते समय अपने साथ बैठकर माँ बहुत-सी बातें कहा करती थी । एकाध बार उसने {माँने} पूछा - "तुझे क्या चाहिए? थोडी खिचडी लाऊँ?" उसे ऐसा लगा कि माँ किसी दूसरे केलिए पूछ रही है । उन दिनों ऐसा नहीं था ।"[1] उसको देखते ही बच्चे भी अपना गाना समाप्त कर देते हैं और उनके बीच गहरा सन्नाटा छा जाता है । दुःख सह न पाने के कारण वह उनके बीच से लौट जाता है । "वह वहीं खडा नहीं रहा । उसे ऐसा लगा कि वह उनके बीच बिलकुल अजनबी है और कभी उनमें एक नहीं हो सकेगा ।"[2] उसके मन में यह विचार होता है कि अपनी माँ, बहन, पत्नी, सभी उससे अलग हो जा रहे हैं । जीवन के सारे सम्बन्ध अर्थ पर अधिष्ठित है । उसे मालूम है सिर्फ पैसे की लालच से ही भतीजे की शादी अमीर घराने से कराने की बात घरवाले सोचे रहे हैं । अपने घरवालों के बीच वह निपट अकेला हो जाता है । वापस जाने की बात वह सोचता है । "निकट आकर माँ ने पूछा - "अंधेरे में पडे-पडे क्या सोच रहे हो? " उसने ऐसा कहना चाहा - "मेरा बच्चा नहीं । मैं बूढा हो जा रहा हूँ । मुझे जाना है ।" किन्तु ऐसा नहीं कहा । इतना ही कहा - कल सबेरे मुझे जाना है ।"[3] आखिर हताश होकर वह वापस चला जाता है ।

---

1. "दुःखम्" {दुःख} - टी.पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ {1980} - पृ:228.
2. वही - पृ: 230.
3. वही - पृ: 232.

संबन्ध जब आर्थिक स्थिति पर पूर्ण रूप से टिक जाता है तो संबन्ध की ऊष्मलता केलिए कोई स्थान नहीं रह जाता । आधुनिक जीवन की यह व्यावहारिक दृष्टि संकटबोध का मूल उत्स है । कहानी का "वह" यह जानता है कि दूध न मिलने के कारण ही उसके घरवाले गाय को बेचना चाहते हैं । वह इसलिए व्याकुल होता है कि उसके घरवालों की इस हरकत में मूल्यों का एकदम अभाव था, साथ ही वे अर्थशून्य जीवन-स्थितियों को ही बढावा दे रहे हैं । ऐसी स्थिति में उसकी पहचान की, उसकी ऊष्मलता का कोई मूल्य नहीं रह जाएगा । वह उस अर्थ-अधिष्ठित मंच से दूर हट जाना चाहता है । यह उसकी वास्तविक वापसी है । विघटित संबन्धों के परिप्रेक्ष्य में जीवन की संकटग्रस्त स्थिति की ओर पद्मनाभन ने इस कहानी में प्रकाश डाला है ।

पारिवारिक संबन्धों को बदलने में अर्थ बहुत बडी भूमिका अदा करता है । एम.टी.वासुदेवन नायर की कहानी, "स्नेहत्तिन्टे मुखङ्ङल" ﴾स्नेह के विभिन्न चेहरे﴿ में परिवार का बडा भाई, राजन पढ़कर बडा अफ्सर बन जाता है और छोटा भाई बेकार रह जाता है । आर्थिक अभाव के कारण छोटा भाई जीवन में सबकुछ खो बैठता है, अपनी प्रेमिका, भागीरथी को भी । यही नहीं, यह भागीरथी राजन की पत्नी भी हो जाती है । उसकी शादी के दिन छोटा भाई वह सब कुछ छोड-छाडकर कहीं चला जाता है । नौं वर्षों के बाद जब वह अपने भाई के बंगले में आया, तब तक वह बिलकुल बदल गया था । किसी गरीब युवति के साथ उसकी शादी भी हो चुकी थी । अब वह बीमार है, उसको चिकित्सा केलिए उसके पास एक कौडी भी नहीं है । गाँव में उन दोनों भाइयों के स्वामित्व में जो ज़मीन है, उसमें से वह अपना हिस्सा बेच देना चाहता है । उसकेलिए भाई की अनुमति माँगने वह आया है । भाई उसकेलिए अपनी अनुमति तो देता है, किन्तु शादी के बाद वह उससे इतना अलग हो जाता है कि उसके रू-ब-रू खडा होना भी नहीं चाहता । शादी के बाद वह अपनी पत्नी के साथ बडे ध्यान से ही बातें करता था । इसपर वे ध्यान देते थे कि विषय कभी घूम-घामकर छोटे भाई के बारे में न हो जाए । न तो वे दोनों, न छोटा भाई आपस में मिलना नहीं चाहते हैं । जब वह वहाँ आया तब राजन ने उससे कहा -

"भागी तो गयी होगी ।"

छोटे भाई ने कहा - "उसे तंग न कीजिए । मैं . . . ।"

फिर उसने पूछा - आपके कितने बच्चे हैं?

"दो । . . . दोनों लडकियाँ हैं ।"[1]

नई परिस्थितियों में ये दोनों भाई कितने अजनबी होते हैं, उपर्योक्त संवाद इसका स्पष्ट प्रमाण है । अपने भाई के आगमन की बात वह अपनी पत्नी से छिपाता है । छोटे भाई के चले जाने के बाद जब उसकी पत्नी वहाँ आती है, वह उससे पूछती है -

"कौन आया था? "

"ओ ! वह? एक आदमी, हमारे गाँव का है ।"

"कौन है वह? "

"तू नहीं जानती"[2]

छोटा भाई अपनी पत्नी के प्रेमी होने के कारण ही वह इस कदर उसे अलग हटाता है और अजनबी - सा व्यवहार भी करता है । यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य होते हुए भी यह अजनबीपन दो भाइयों के बीच में उपस्थित हुआ है और उसकी उपस्थिति संकट-बोध का गहराता हुआ अनुभव है ।

माधविक्कुट्टि की "नरिच्चीरुकल परक्कुंबोल" {जब चमगादड उडते हैं} शीर्षक कहानी में भाई और बहन के बीच के संबन्ध का एक नया आयाम उद्घाटित हुआ है । बचपन में उस भाई का एकमात्र सहारा वह बहन थी । उसकी शादी समाज के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के साथ होती है । दूसरी ओर भाई का जीवन अस्त-व्यस्त होता है । किन्तु उस बहन के हृदय के किसी कोने में अब भी

---

1. "स्नेहत्तिन्टे मुखङ्ङल" {स्नेह के विभिन्न चेहरे} - एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 237-238.

2. वही - पृ: 246.

भाई के प्रति स्नेह की ऊष्मल भावना मौजूद थी । लेकिन अपने परिवार के और अपने पति की झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने की मजबूरी के कारण वह अपना स्नेह भी प्रकट नहीं कर पा रही थी । उसके पति का कथन है - "मेरी एक अच्छी-खासी नौकरी है । समाज में प्रतिष्ठा है । उन सब में तुम पानी मत फेरना । वह इधर आ जाया करेगा तो मेरा मान-अभिमान सब मिट्टी में मिल जाएगा । इतना तुम याद रख लो तो अच्छा है ।"

"किन्तु कितने वर्षों तक हम एक साथ . . ."
"वह सब तुम्हें भूलना होगा । वह तुम्हारा भाई नहीं है ।"[1]

धीरे धीरे वह भी अपने पति की भाँति सोचने लगती है । संघर्ष-रहित दाम्पत्य जीवन केलिए वह उसे अपने मन से दूर हटाने का प्रयत्न करती है । लेकिन जब उसे अस्पताल में दाखिल किया जाता है, तब उससे मिलने वह जाती है । भाई को देखकर उसे ऐसा लगता है कि समय ने ही उन दोनों को अपरिचित बना लिया है । वह सोचती है - "यह गलत हो गया कि मैं ने इस शराबी, व्यभिचारी और बेवफाई आदमी को भैया पुकारा है । अपने और उसके बीच में कौन-सा संबन्ध रह गया है? वे यादें भी मानो कमज़ोर कड़ियों के समान हैं ।"[2] इसप्रकार उस बहिन के मन में गहरा द्वन्द्व होता है । लेकिन उस द्वन्द्व में अपनी झूठी इज्जत और प्रतिष्ठा की विजय होती है । इसलिए वह अस्पताल के नर्स से यह कह नहीं पा रही थी कि वह उसका भाई है । नर्स उससे पूछती है - "आप यहाँ क्यों आई है? आपका कोई नौकर यहाँ पडा हुआ है क्या?

"ना, कोई नहीं । मैं ने अभी तक एक सरकारी अस्पताल देखा नहीं है । इसलिए . . . ।"[3] लेकिन जब नर्स बाहर जाती है, वह अपने भाई के

---

1. "नरच्चीरुकल परक्कुंबोल" {जब चमगादड उडते हैं} - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - {1982} - पृ: 291.
2. वही ।
3. वही - पृ: 300.

हाथ में सौ रुपये का नोट रख देकर कहती है - "मुझे माफ करो"[1] प्रतिष्ठा और स्नेह के बीच में पडकर मानसिक द्वन्द्व सहनेवाली एक बहिन का चित्रण ही माधविकुट्टि ने इसमें किया है । लेकिन मान मर्यादा की विजय जब होती है तो स्नेह की सरिता एक दम सूख जाती है । झूठी प्रतिष्ठा की यह विजय ही इस कहानी का त्रासद प्रसंग है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

हर युग में पारिवारिक जीवन से संबन्धि कहानियाँ मिली है । हर भाषा में ऐसे सैकडों कहानियाँ मिलती हैं । आधुनिक युग के प्रारंभ होते ही पारिवारिक जीवन को लेकर लिखी हुई कहानियों में बदलाव नज़र आने लगे । समझौतावादी दृष्टिकोण के स्थान पर धीरे धीरे खुली दृष्टि की सक्रियता का एहसास होने लगा । व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगा । सामाजिक तौर पर देखें तो पारिवारिक जीवन का ढाँचा भी काफी कुछ बदल चुका था । हर सदस्य की भूमिका भी बदल गयी थी । यह बदलाव आधुनिक युग का है । इसके अनुरूप पारिवारिक स्थितियाँ भी बदलने लगी थीं । अतः आधुनिक कहानीकारों केलिए एक चुनौती थी, इस बदली हुई पारिवारिक स्थितियों को कैसे अपना लिया जाय? क्योंकि संबन्धों की कहानियाँ भारतीय सन्दर्भ में पारिवारिक स्थितियों के बीच में ही ढूँढी जा सकती हैं । परिवार से अलग कुछ व्यक्ति-सापेक्ष संबन्ध भी होते हैं जिनका उल्लेख कहानीकारों ने किया है । लेकिन अधिकतर कहानियाँ परिवार से छुटकर संबन्धों की कहानियों के रूप में अभिव्यक्त हुई हैं । जैसे ऊपर सूचित किया गया है कि प्रतिक्रियाओं के बदलने के पीछे सामाजिक नीतियों के बदलने की पृष्ठभूमि है तो संबन्धों के नए परिदृश्यों से संबन्धित कहानियाँ आखिरकार मात्र नये संबन्धों की कहानियाँ नहीं है, नए संकट-बोध की भी कहानियाँ हैं ।

-----

1. "नरच्चीरुकल परक्कुंबोल" (जब चमगादड उडते हैं) - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ (1982) - पृ: 301.

हिन्दी और मलयालम की आधुनिक कहानी के प्रारंभिक दौर में ऐसी ही अनेक कहानियाँ रची गयीं जिनमें व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्ध का एक नया आयाम प्रस्तुत होता है। यहाँ व्यक्ति परिवेश से कटा हुआ नहीं है बल्कि व्यक्ति के माध्यम से परिवेश ही अभिव्यक्त हुआ है। अतः ऐसी कहानियों में प्राप्त एक नया संबन्ध या संबन्ध की कोई विघटनात्मक स्थिति हमारे ही परिवेश की वास्तविकता है।

औद्योगिकीकरण ने जिस प्रकार व्यक्ति के मूल्य को कम कर दिया है और अर्थमूलक दृष्टि के सामने जिसप्रकार एक व्यक्ति अकिंचन होता है या निपट अकेला होता है उसकी कहानियाँ हैं उषा प्रियंवदा की "वापसी" और पद्मनाभन की "दुखम"। यह अर्थमूलक दृष्टि पहले भी तो रही थी, लेकिन परिवारों को सुदृढ बना रहने की शक्तियाँ कुछ दूसरी थीं। आधुनिक युग में ऐसे परिवारों केलिए, उन शक्तियों केलिए कोई मूल्य नहीं है। "वापसी" का गजाधर बाबु और "दुखम्" का "वह" इसी शिथिलता के शिकार हैं। इन दोनों कहानियों के पात्र भावुक नज़र आते हैं। लेकिन उनकी भावुकता अवास्तविक नहीं है। वापसी के दूसरे पात्र उस बुजुर्ग व्यक्ति से लगातार कटते जाते हैं अपना एक संसार खड़ा करता है जिसमें बुज़ुर्ग व्यक्ति अपने को दाखिल नहीं हो सकता है। उसमें दाखिल होते ही वे अपनी अपनी व्यस्तताओं में मग्न हो जाते हैं और पुनः वह अकेला होता है। उसी प्रकार "दुखम" कहानी के दूसरे पात्र लगातार अपनी कल्पनाओं के अनुसार उस परिवार की हालात को बदलते रहते हैं हालांकि उस "वह" ने वह परिवार बना लिया था; उनकेलिए उस आदमी की कल्पनाओं का, उसकी अपनी एकाकीपन का कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि वे एक अलग मूल्य अपना चुके थे। इन दोनों कहानियों में प्रयुक्त अनेक सांकेतिक सन्दर्भ समान-से लगते हैं। और इन दोनों कहानीकारों ने एक ही मानसिकता को इनमें प्रयुक्त किया है जो संबन्ध-विहीनता के संकट को भली-भाँति संकेतित करती है।

इसी अर्थमूलक दृष्टि का एक भिन्न पहलू माधविक्कुट्टि की कहानी, "नरिच्चीरूकल परक्कुंबोल" (जब चमगादड उडते हैं) तथा उषा प्रियंवदा की कहानी, 'ज़िन्दगी और गुलाब के फूल' में मिलता है । इन दो कहानियों की तुलना दो स्तरों पर की जा सकती है । पहला स्तर है छोटी मान-मर्यादा का और दूसरा है संबन्ध की अस्वाभाविकता का । प्रथम स्तर पर जिस प्रकार दोनों कहानियों में भाई-बहन अपने को आर्थिक सुविधा के आधार पर आँकते हैं, यह स्थिति तुलनीय है । थोडा-सा अन्तर इस बात को लेकर है कि मलयालम कहानी की बहन अपने पति के प्रभाव में आकर भाई को ठुकरा देती है जबकि हिन्दी कहानी में घर को चलाने के दंभ के कारण स्वयं बहन भाई को ठुकराती है । इसी दृष्टि से "ज़िन्दगी और गुलाब के फूल" की निकटता कमलेश्वर की कहानी, "आसक्ति" के साथ है । यहाँ जहाँ पुनः इन दो कहानियों पर विचार करते हैं तो यह दूसरा स्तर जो संबन्ध की अवास्तविकता को लेकर है, प्रकट होता है । बेरोज़गार भाई होने के कारण वह भावुकता नष्ट होती है जो वांछित है । मलयालम कहानी में भाई के कुपथगामी होने का आरोप लगाकर बहन स्वयं हट जाती है ।

संबन्धों का यह वायवीपन एक गहन संकट को भी उजागर कर रहा है । इस वायवीपन के प्रेरक तत्व मुख्यतः अर्थमूलक दृष्टि और स्थिति है । इसमें अमानवीयता का एक पहलू देखा जा सकता है । संबन्धों का यह अमानवीकरण आज की सब से बडी विडंबना है और आज भी तीव्रतम संकट-जन्य स्थिति है ।

मूल्यगत विडंबनाओं की कहानियाँ

मनुष्य अपनी मौलिक चिन्तन-शक्ति के विकास और परिस्थितियों के अनुसार परंपरा से चले आ रहे मूल्यों को छोडकर उनके स्थान पर नए मूल्यों की तलाश करता है । परम्परागत जीवन-मूल्यों का अन्धानुकरण करने के स्थान पर

आधुनिक मनुष्य उन्हें तर्क या बुद्धि के आधार पर विश्लेषित करता है और नए मूल्यों की स्थापना भी करता है । "सामाजिक मूल्य न तो शाश्वत होते हैं और न ही निरपेक्ष होते हैं । सामाजिक मूल्यों में बराबर परिवर्तन होता रहता है । यह परिवर्तन देश, काल, वर्गान्तरण, आर्थिक स्थिति इत्यादि के अनुसार होता है ।"[1] सन् 1950 तक आते आते भारत के सामाजिक और पारिवारिक क्षेत्रों में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन दिखाई देने लगता है उसको ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है । स्वतन्त्रता - आन्दोलन के समय भारतीयों ने आज़ादी के जो सपने देखे थे, वे सब सन् पचास तक आते आते बिखरने लगते हैं । जिन सामाजिक और नैतिक मूल्यों को लेकर आज़ादी की लडाई लडी गई थी, उनका अवमूल्यन और विघटन हुआ है । ऊँची नैतिकता, ईमानदारी, निस्वार्थ-सेवा आदि के स्थान पर कालाबाज़ारी, रिश्वत, घूसखोरी आदि समूचे समाज में पनपने लगी हैं । समाज में बेचैनी और असन्तोष की स्थिति अनुभूत होने लगी है ।[2] इसके अतिरिक्त पश्चिमी दर्शन, कला और संस्कृति से परिचित आधुनिक पीढी अपने सजग अस्तित्वबोध के कारण हमारे परम्परागत आदर्शों और "शाश्वत" मूल्यों को चुनौती देने लगी । इसी तरह औद्योगिकीकरण और तकनीकी परिवर्तनों ने भी व्यक्ति के चिन्तन पर प्रभाव डाला है । इससे हमारे सामाजिक और पारिवारिक संबन्धों में आन्दोलनात्मक परिवर्तन हुआ है । व्यक्ति के आपसी संबन्ध टूटने लगे हैं । स्त्री - पुरुष सम्बन्धों और पीढियों के बीच के सम्बन्धों में विघटन की स्थिति दिखाई देने लगा है । इन सब से सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों और सामाजिक मान्यताओं पर गहरा आघात लगा । धीरे धीरे परम्परागत जीवन-मूल्य टूटने लगे और उनके स्थान पर नए मूल्यों की प्रतिष्ठा भी होने लगी है । प्रश्न यह रह जाता है कि ये नये मूल्य वस्तुतः नये मूल्य हैं या रूढियाँ हैं । कभी-कभी नई-नई रूढियाँ भी पुनस्थापित होने लगी हैं जो आज की बहुत बडी विडंबना है ।

---

1. साहित्य और सामाजिक मूल्य - §1985§ - हरदयाल - पृ: 18.
2. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि §1977§ - रघुबीर सिन्हा - पृ: 20-21.

परंपरागत-जीवन मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगाने की प्रवृत्ति हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में, "नई कहानी" से शुरू होती है। उसमें युग-चेतना की समग्र अभिव्यक्ति हुई है। "नई कहानी" के पूर्व की कुछ एक कहानियों में परंपरागत जीवन मूल्यों और आदर्शों को चुनौती दी गयी है। जैनेन्द्रकुमार की 'जाह्नवी', 'निराकरण' अज्ञेय की 'रोज़' जैसी कहानियाँ इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण कहानियाँ मानी जाती हैं। किन्तु इस काल की अधिकांश कहानियों में शाश्वत मूल्यों की स्थापना हुई है। क्योंकि इनके रचनाकारों की अपनी विशिष्ट जीवन-दृष्टि या मानसिक पद्धति है। कमलेश्वर के मतानुसार, इन कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में अपनी इस विशिष्ट जीवन दृष्टि को साबित करने का प्रयास किया है और इसलिए आदमी को आदमी के रूप में देखने में वे प्रायः असमर्थ हो गए हैं। "शाश्वत मूल्यों की स्थापना में हमारे इन कथाकारों (जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि) ने कहानी के वातावरण को यथार्थवादी ढंग से सम्प्रेषित ज़रूर किया, परन्तु आदमी के आन्तरिक यथार्थ को उन्होंने हमेशा खण्डित किया। . . . शाश्वत मूल्यों की इस अतिरिक्त आग्रह ने आदमी को आदमी नहीं रहने दिया। . . . हमारे तत्कालीन कहानीकारों ने अपनी विशिष्ट मानसिक पद्धति को साबित करने का ढोंग किया है।[1] किन्तु सन् 1950 के बाद की "नई कहानी" में इन "शाश्वत" मूल्यों का आग्रह नहीं है। कमलेश्वर के ही शब्दों में, "नई कहानी" ने इन तथाकथित शाश्वत मूल्यों की आग्रह-मूलकता को खण्डित किया था, केवल खण्डित ही नहीं किया था बल्कि अस्वीकार किया था।"[2] "नई कहानी" में नई परिस्थितियों के अनुरूप नये जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति तटस्थता के साथ हुई है। इसलिए उसमें मूल्यगत संप्रेषण के विविध पक्ष प्राप्त होते हैं। स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में और पीढियों के आपसी सम्बन्धों में मूल्य-संक्रमण की नयी दिशाएँ जो होती हैं जिनकी अभिव्यक्ति "नई कहानी" में हुई है।

---

1. नई कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 22-23.
2. वही - पृ: 23.

इनमें स्त्री-पुरुष के परस्पर विरोधी मूल्य-बोध को लेकर ही सब से अधिक कहानियाँ लिखी हुई हैं। राजेन्द्र यादव ने लिखा है - "नारी-पुरुष के आपसी सम्बन्धों की नैतिक धारणा में एक मूल भूत अन्तर ज़रूर आ गया है। नया कथाकार इस सच्चाई को बिना किसी पाप-बोध के स्वीकार करके, किसी नयी नैतिकता की प्रतीक्षा करता है। अगर उसका दोष, स्खलन या अपराध है तो इतना ही कि उसने श्लील-अश्लील, नैतिक-अनैतिक, शुभ-अशुभ, उदात्त-विगर्हणीय से उठकर साहस से इस सच्चाई को अपनी कहानियों में उभारा है। मैं इसे मूल्य-मूढता नहीं, तथ्य-स्वीकृति के साहसिक मूल्यों की स्थापना मानता हूँ जो नए मूल्यों के निर्धारण-निरूपण का आधार बनते हैं।"[1]

जहाँ तक मलयालम कहानी का संबन्ध है, मूल्य के क्षेत्र में आए अनेकानेक परिवर्तन ही मलयालम कहानी की प्रमुख विषयवस्तु है। मूल्यगत बदलाव को सौन्दर्य के नये प्रतिमानों के रूप में देखते हुए एम.के.सानु ने लिखा है कि इनमें (इन कहानीकारों में) सौन्दर्य का भावुक पक्ष मिलता नहीं। वह समय अब बीत चुका है। बिना किसी लाग-लपेट के साथ ही इन कहानीकारों ने मानवीय व्यवहारों को प्रस्तुत किया है।[2] मूल्यगत चिन्तन को इसी सन्दर्भ में उन्होंने व्याख्यायित किया है। प्रकारान्तर मलयालम कहानीकारों ने अपने संक्षिप्त मन्तव्यों में यही बात दुहराई है।

राजेन्द्र यादव की "बिरादरी बाहर" का पिता, पारसबाबु, परंपरागत जीवन-मूल्यों का समर्थक है। अपनी पुत्री, मालती के विजातीय विवाह सम्बन्ध को वह कभी स्वीकार कर नहीं पाता। तथाकथित "शाश्वत-मूल्यों" के प्रति उसके मन में जो लगाव है उसके कारण वह अपने ही बिरादरी से अलग हो जाता है। एक दिन उनकी बिरादरी के सारे सदस्य - बेटे, संजय और विजय, उनकी बहुएँ,

---

1. एक दुनिया : समानान्तर (1974) राजेन्द्र यादव - पृ: 36.
2. अवधारणा (1984) - एम.के.सानु - पृ: 240.

बेटियाँ और जामाता - घर में एकत्रित होते हैं । पारसबाबु को छोड़कर बाकी सब साथ मिलकर खाना खा रहे हैं । वह उन से दूर घर के किसी कोने में अकेले बैठकर खाना खा रहा है । इन दोनों पीढ़ियों के बीच जो मूल्य-संघर्ष है, वह कहानी का मुख्य स्वर है । परम्परागत मूल्यों के समर्थक होने के नाते पारसबाबु और उसकी पत्नी घरवालों के बीच में अजनबी बन जाते हैं । उसकी पत्नी का कथन है - "इस घर में, घर के लोग तो खुद मेहमान बन जाते हैं ।"[1] वे मेहमान तो हैं अवश्य , बल्कि अयाचित ! अपनी बिरादरी के लोगों की मूल्य-च्युति पर वह बेहद दुःखी होता है । वह सोचता है - "कुछ नहीं, कुछ नहीं . . . कोई किसी का नहीं . . . न किसी को प्रतिष्ठा की चिन्ता है, न माँ-बाप की . . . लड़के अपनी बहुओं में, बच्चों में मस्त हैं । . . . वे सचमुच सफ़ेदीवाले हैं । लेकिन लगता है वे दुनिया में अकेले और फालतू हैं, और किसी दूसरे के सुख को अनधिकारी की तरह भोग रहे हैं ।"[2] एक ज़माने में परंपरागत जीवन-मूल्यों के विरोध करनेवाले को बिरादरी से बाहर किया जाता है, लेकिन नयी परि-स्थितियों में उन "शाश्वत मूल्यों" के समर्थक स्वयं अपनी बिरादरी से निर्वासित हो जाते हैं । राजेन्द्रयादव की यह कहानी नए सन्दर्भों के अनुरूप बदलते जीवन-मूल्यों की कहानी है ।

राजेन्द्र यादव की एक दूसरी कहानी है, "टूटना" । इसमें पति-पत्नी के संबन्ध-विघटन का जो चित्रण हुआ है उसका मूल कारण चाहे मनोवैज्ञानिक हो । "किन्तु किशोर और लीना के परस्पर-विरोधी मूल्य-बोध ही उस संघर्ष केलिए उत्तरदायी है । किशोर समाज के निम्न-मध्यवर्ग का प्रतिनिधि है जहाँ एक-एक पैसे का अपना महत्व है । दूसरी ओर लीना ऊँचे वर्ग की युवति है । इस आर्थिक विषमता और तज्जन्य परस्पर विरोधी मूल्य-बोध के कारण उन दोनों के जीवन के बीच एक खाई पैदा होती है जो क्रमशः बढ़कर दोनों के अलग होने की स्थिति तक पहुँचते हैं । वह उससे कहती है - "देखो किशोर, आज से बल्कि इसी क्षण से हम

---

1. "बिरादरी बाहर" - किनारे से किनारे तक {1963} राजेन्द्र यादव - पृ: 131.
2. वही - पृ: 133.

लोग साथ नहीं रहेंगे । मैं भी सोच रही थी कि अब तुमसे बात कर ही ली जाये । न तुम अन्धे हो, न बहरे । तुम सिर्फ "इन्फीरियॉरिटी काम्पलेक्स" के मारे हुए हो । इसलिए तुम्हें मेरी हर बात वह नहीं लगती, जो होती है । उसके पीछे और-और बातें दीखती हैं ।"[1] बाद में वह यह समझता कि अपना विरोध लीना से नहीं, अपना ससुर, दीक्षित से है । वह सोचता है - "आज तो उसे लगता है, लीना नाम का एक परदा था, जिसके हटते ही उसने अपने आपको दीक्षित साहब के रू-ब-रू खड़े पाया ।"[2] वास्तव में उन दोनों पति-पत्नी का संघर्ष उनका व्यक्तिगत जीवन का संघर्ष ही नहीं, बल्कि दो भिन्न वर्गों के जीवन-मूल्यों का संघर्ष है ।

मोहन राकेश की "अपरिचित "कहानी इस सन्दर्भ में विश्लेषण के योग्य है । एक स्त्री और एक पुरुष यात्रा में हमसफर बनते हैं । लेकिन वे अपरिचित हैं । परन्तु सफर के दौरान जो बातचीत हुई उससे इसका खूब अन्दाज़ा होता है कि दोनों का वैवाहिक जीवन इतना शिथिल और इस कारण से वे दोनों समान ढंग से परेशान भी है । स्त्री का पति अपनी स्वार्थपूर्ति के हेतु उसे छोड़कर अपनी पढाई केलिए गया हुआ है । उसी प्रकार पुरुष की पत्नी के साथ उसका अच्छा संबन्ध नहीं है । आपस में अपनी अपनी कहानियों को, परोक्ष ढंग से बतलाने के बावजूद वे अपरिचित रहते हैं । लेकिन जब एक बार गाड़ी रुकती है और स्त्री थोड़ा पानी लाने का अनुरोध उस पुरुष से करती है तो वह पानी लेने चला जाता है । गाड़ी जब चल पड़ी तो वह स्त्री इतनी विह्वल और उत्तेजित हो उठती है, और उसके आने पर शान्त अनुभव करती है । उन दोनों को अलग-अलग स्टेशन उतर जाना था । स्त्री पहले उतरनेवाली थी । उतरते समय उसने सोते हुए उस पुरुष को कम्बल से ठीक से ओढ दिया और जाती है ।

---

1. "टूटना" - एक दुनिया : समानान्तर - (1974) - सं. राजेन्द्र यादव - पृ:318.
2. वही - पृ: 319.

पति-पत्नी के अपरिचय की गहराई को दर्शाने में कहानी की यह घटना पर्याप्त है । लेकिन साथ ही अंतरंग स्तर पर ये दोनों जिस प्रकार नए मूल्य (नई दृष्टि) को सहेज रहे हैं उसका परिचय मिलता है । अतः अपरिचय परिचित के बीच में रहता है और इन दोनों के बीच में परिचय का एक नया सिलसिला शुरू हो गया है । एक नए मूल्य का प्रस्फुटन यहाँ अनुभव किया जा सकता है ।

कृष्णबलदेव वैद की कहानी "दूसरे का बिस्तर" तथाकथित, "शाश्वत नैतिक मूल्यों" के विघटन को रेखांकित करती है । कहानी में विनोद और सिन्धिया नामक दो शादीशुदा व्यक्तियों के शारीरिक संबन्धों का वर्णन है । वस्तुतः सिन्धिया ही उसे फोण कर बताती है कि उस दिन वह कुछ घंटों केलिए घर में अकेली है । आने न आने का फैसला वह विनोद को छोड देती है । शारीरिक संबन्ध केलिए पहले वह तैयार नहीं होती । किन्तु जब वे दोनों बिस्तर के निकट पहुँचते, अचानक वह अपना कपडा उतार देती है । कपडे उतारते समय भी वह यों कहती है - 'नहीं विनोद, यहाँ नहीं ।"[1] लेकिन बाद में वही सिन्धिया स्वयं नग्न होने के पश्चात् उससे यों कहती - "शायद कपडों के बगैर तुम्हें मेरा जिस्म पसन्द आये या न आएँ"[2] उसकी नग्नता के सामने विनोद का मन इतना कुंठित हो जाता है कि वह चाहकर भी उससे कपडा पहनने का अनुरोध नहीं कर सकता । अपनी झुंझलाहट को छिपाने केलिए वह सिर्फ यही कहता है - "वक्त न जाने क्या गया होगा' "[3] जब सिन्धिया बत्ती जला देती है तब वह अपनी आँखें बन्द कर देता है । लेकिन रोशनी का सिन्धिया पर कोई असर नहीं हुआ वह लापरवाही से यों कहती है -- "अब हमें कपडे पहन लेने चाहिए ।"[4] थोडी देर के बाद विनोद वापस चले जाने को तैयार होता है, तब भी वह उससे यों कहती है -

---

1. "दूसरे का बिस्तर" - आलाप (1986) - कृष्णबलदेव वैद - पृः 83.
2. वही - पृः 84.
3. वही ।
4. वही ।

"अगर वे लोग किसी वजह से वक्त से पहले लौट आए तो' "
"तुम्हें फोन नहीं करना चाहिए था"
"तुम्हें आना नहीं चाहिए था । वैसे मैं अपनी गलती मानती हूँ ।"
"और मैं अपनी ।"[1]

अपनी उस "गलती" को माननेवाली सिन्धिया उससे यह भी कहती है - "सुनो, मैं कल तुम्हें फोन करूँगी ।"[2]

यौन संबन्ध का यथावत् वर्णन करना वैद का उद्देश्य नहीं लगता । प्राय: ऐसी कहानियों में यौन संबन्धों का इतना खुला चित्रण होता है कि उससे मानवीय चेष्टाओं का एक सामान्य पहलू ही मिलता है । उसे पारंपरिक दृष्टि से घिनौना भी कहा जा सकता है । परन्तु जिस "अनैतिकता" को नैतिक ढंग से चित्रित किया गया है तो प्रश्न उठता है कि नैतिक संबन्ध का वह कौन-सा पक्ष दुर्बल पड गया कि ये इतने अनैतिक हो गए । इसी पक्ष में कहानी का मूल्य-बोध प्रकट होता है ।

नए सन्दर्भों में विघटित हो रहे मूल्यों को लेकर माधविक्कुट्टि ने कई एक कहानियाँ लिखी हैं । उनके द्वारा लिखी हुई एक प्रसिद्ध कहानी है, "पट्टंगल" {पतंग} जो स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में दृष्टिगत बदलते मूल्यों से जुडी हुई है । गरीब परिवार का वासु कठिन प्रयत्न से बंबई में एक बडा अफसर बन जाता है । वहाँ एक दिन अपनी पुरानी प्रेमिका से उसकी भेंट होती है । उस समय वह अपने मित्र की पत्नी है । लेकिन वे दोनों एक दूसरे को भूल नहीं पाते । अपने प्रेम को वासु तब भी पवित्र मानता है । इसलिए वह उसके साथ अनैतिक सम्बन्ध स्थापित करना नहीं चाहता । लेकिन वह युवति अधिक स्वतन्त्र विचारों की है । इसलिए दाम्पत्य और प्रेम को वह अलग अलग मानती है । एक दिन वह वासु से पूछती है -

---

1. "दूसरे का बिस्तर" - आलाप- कृष्णबलदेव वैद - पृ: 87.
2. वही - पृ: 88.

"वैसे जब एक मर्द एक स्त्री को बाहर लिवा ले चलता है तो क्या करेगा?
क्या उसका चुम्बन करेगा?

"हाँ"

"तुम छू तक नहीं रहा। क्या मुझसे नफरत करते हो?"

"नहीं . . . घृणा . . . नहीं . . . लेकिन . . ."

"कोई लेकिन – वेकिन नहीं। मुझे किसी हॉटल ले चलो न।"

"छी: छी: कैसी बात कर रहे हो? तुम ऐसी वैसी स्त्री नहीं हो।"[1]

थोडी देर के वार्तालाप के बाद वह युवति फिर पूछती है –

"मैं उतनी अच्छी नहीं हूँ जैसा कि तुम सोचते हो। क्या, तुम जानते हो कि मैं आपके पीछे क्यों दौड रही हूँ?"

"तुम ऐसी बात मत किया करो"

"फिर मैं क्या करूँ? रात को आपके बारे में सोचकर बिस्तर पर लेटी रहूँ?"

"यह मैं विश्वास नहीं कर सकता।"

"सत्य पर आप भरोसा क्यों नहीं करते? आप तो सिर्फ यही सोच रहे हैं कि मैं एक देवता के समान सुशील हूँ।"[2]

वस्तुत: वासु का ऐसा ही विचार है। हॉटल के कमरे में जब उसके साथ समय बिताता है, तब भी उसके मन में यही विचार है कि वह सुशील युवति है। लेकिन वह एक वेश्या के समान बातें करने और व्यवहार करने लगती तो उसका हृदय टूट जाता है। उसे यह सन्देह होता है कि प्रेमिका के मन में उसके प्रति जो भाव है वह सच्चा प्रेम है या केवल सहानुभूति। लेकिन जब वह उसके द्वारा लिखी हुई एक कविता पढती है तब उसका सन्देह दूर हो जाता है। और वह भी सच्चा प्रेमी बन जाता है। उस कविता की पंक्तियाँ हैं – "पतंग के पीछे

---

1. "पट्टंगल" {पतंग} – माधविक्कुट्टि की कहानियाँ { 1982} – पृ: 136.
2. वही – पृ: 139.

जो धागा है उसकी भाँति अपनी मृत्यु के बाद यादें मेरे साथ ऊपर नहीं उठेंगे । सब कुछ मुझे नष्ट हो जायेंगे ।"[1] यह पतंग उसकी नियति या अस्तित्व है । वह समझती है, जीवन से उसका जो सम्बन्ध है वह अपने यादों के सहारे है । मृत्यु के बाद वे यादें उसके साथ ऊपर नहीं उठेंगे ।[2] यह बदली हुई मानसिकता की कहानी है , तदर्थ एक नए मूल्य-संस्थापन की थी । इसकी युवति सिर्फ अपने विचार के कायल ही नहीं, अपितु अपने जीवन का एकमात्र भोक्ता भी है । उसके विचार, चिन्तन और संकल्प उसके पत्नी होने के विरुद्ध नहीं है । वह पत्नी है । पर उससे बढ़कर वह प्रेमिका । एक ऐसी सच्ची प्रेमिका जो सिर्फ प्रेम चाहती है । अपने प्रेमी का शरीर चाहती है । अपने प्रेमी के साथ भोग करना चाहती है । कलरकोडु वासुदेवन नायर ने लिखा है - "अपने अस्तित्व के नियमों को ढूँढ निकालने में ही सब से ऊँचा मूल्य बोध निहित है ।"[3] यह प्रस्ताव उक्त कहानी के सन्दर्भ में एकदम प्रासंगिक है ।

माधविक्कुट्टि की "लोकम ओरु कवयित्रिये निर्मिक्कुन्नु {संसार एक कवयित्री को सृजित करता है ।} शीर्षक कहानी की नायिका को अपने दाम्पत्य-जीवन में कभी भी प्यार नहीं मिलता है । उसका पति प्यार का महत्व नहीं समझता है । उसकी दृष्टि में प्यार निरी मूर्खता है । वह कई स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखता है और उसमें वह कोई गलती नहीं देख सकता । लेकिन पत्नी सिर्फ प्यार करना जानती है । अपने पति के चेहरे को देखती हुई वह बहुत-देर तक बैठी रहती है ।

उसने पूछा - "तुम ऐसा क्यों घूर रही हो? "
"मैं तुमसे प्यार करती हूँ ।"
"वह तो ज़रूरी है ।"

---

1. "पट्टंगल" {पतंग} माधविक्कुट्टि की कहानियाँ {1982} - पृ: 142.
2. ऊसर भूमि की कहानियाँ {1974} - कलरकोडु वासुदेवन नायर - पृ: 41.
3. माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - भूमिका - कलरकोडु वासुदेवन नायर - पृ: 22.

लेकिन उसने पति से ऐसे एक जवाब की प्रतीक्षा नहीं की थी ।"[1] धीरे धीरे पत्नी के स्वभाव में भी बदलाव होता है । एक तरह की प्रतिशोध - भावना से वह भी दूसरे पुरुषों से प्यार करने लगती है । लेकिन उन नए "प्रेम-सम्बन्धों" में भी प्रेम मात्र एक दिखावा सिद्ध होता है । इसप्रकार मूल्य-विघटन के दलदल में फँसकर वह दाम्पत्य जीवन शिथिल हो जाता है । पति अपनी पत्नी से पूछता है - "हमें क्या हुआ ? "

"ऊँ ? "

"हमारा जीवन शिथिल हो गया है ।"

"मेरा जीवन ? "

"नहीं हम दोनों का ।"[2]

इस द्वन्द्व पूर्ण वातावरण में भी ये दोनों अलग नहीं है । वे पास रहते हुए अलग-अलग जीवन जी रहे हैं । इस स्वीकार और अस्वीकार के बीच एक भयानक छटपटाहट है जो आज के स्त्री पुरुषों की नियति है।[3] श्रीकान्त वर्मा का यह कथन माधविक्कुट्टि की इस कहानी के सन्दर्भ में सर्वथा उचित है । यह कहानी मूल्यों की टकराहट की भी कहानी कोई नया मूल्य स्थापित करना माधविक्कुट्टि का लक्ष्य नहीं है । इसमें मूल्य-बोध की शिथिलता से उत्पन्न संकट-बोध को दर्शाना ही कहानी लेखिका का उद्देश्य है ।

एम. मुकुन्दन की कहानी "वेश्यकले निगंलक्कोरु अम्बलम" §वेश्याओं, तुम्हारे लिए एक मन्दिर§ में पारंपरिक नैतिकता और मूल्य-बोध के स्थान पर नयी नैतिकता और नये मूल्यों की स्थापना हुई है । कहानी का "वह" वेश्याओं से घनिष्ठ संबन्ध रखता है । वेश्याएँ उसके घर में रोज़ आया करती हैं । उनके साथ बैठकर वह चाय पिया करता है, उनके ही साथ वह मन्दिर जाया करता है ।

---

1. "लोकम् ओरु कवयित्रिये निर्मिक्कुन्नु" §संसार एक कवयित्री को बना लेता है§ - माधविक्कुट्टि कहानियाँ - पृ: 153.
2. वही - पृ: 163.
3. प्रेम कहानियों का बदला हुआ रूप - श्रीकान्त वर्मा -
नयी कहानी : दशा, दिशा और सम्भावना - §1966§ - सं. सुरेन्द्र - पृ:230-

दफ्तर में उसे सदा वेश्याओं से फोण मिलता है । नगर की सारी वेश्याएँ उसे प्यार करती हैं । उसकी यह इच्छा होती है कि वह वेश्याओं के साथ ही मर जाये । जब वह हरिद्वार जाता है, तब अपने साथ नगर की लता नाम की एक वेश्या को भी अपने साथ ले जाता है । उसका विचार है - "वेश्याओं केलिए किसी ने अभी तक मन्दिर नहीं बनाया है । वह बनायेगा . . . वह उनकेलिए संसार भर में मन्दिर बनायेगा . . . वेश्याएँ देवकन्याएँ हैं, तपस्विनियाँ हैं, देवियाँ हैं ।"[1] वे दोनों हरिद्वार में गंगा के तीर पर पहूँचते हैं । वहाँ पहूँचने पर लता उससे कहती है -

"मुझे नहाना है . . . अपने पापों को इसमें धो डालूँ ।"

वह सोचता है - उसे गंगा में नहाने की ज़रूरत क्या? क्या वह स्वयं गंगा नहीं है? " वह उससे कहता है - "तुम नहाओ" । तुम्हारे स्पर्श से गंगा को अपने पापों से मुक्ति मिले । गंगा पवित्र बने ।" . . . "लता के हाथ को पकडे वह नदी में उतरता है । वे आगे बढते रहे । सप्त धाराओं को पारकर, ब्रह्मकुण्ड को पारकर, असंख्य पुलों के नीचे से, सागर को लक्ष्य करके वे बहने लगे ।"[2] इसप्रकार अपने इच्छानुसार एक वेश्या के साथ ही वह आत्महत्या कर लेता है । कहानी की संवेदना हमारे पारंपरिक मूल्यबोध को झकझारे कर देने में सक्षम हुई है । मुकुन्दन की कहानियों की भूमिका लिखते हुए आलोचक, वी. राजकृष्णन ने यह स्पष्ट किया है - "फ्लॉबेर ने कहा है कि कलाकार समाज का रोग है । उस रोग से वह एक अविनाश सौंदर्य - कृग की सृष्टि करता है । . . . कलाकार की भाँतिवेश्याभीसमाज का एक रोग है । समाज के सारे पापों को वह स्वीकार करती है । इसलिए जो व्यक्ति उसके पास जाता है, उसका जीवन पवित्र बन जाता है । इसीलिए मुकुन्दन वेश्या को मोक्ष-प्रदायिनी मानकर उसकेलिए

---

1. "वेश्यकले निंगलक्कोरु अम्बलम" - मुकुन्दन की कहानियाँ - §1982§ - पृ: 135.
2. वही - पृ: 138.

मन्दिर बनाना चाहता है । कहानी का नायक [वह] वेश्या से यही आशा करता है कि उसके स्पर्श से गंगा पवित्र हो जाये । उसका यह कथन हमारे पारंपरिक मूल्यबोध को बेचैन कर डालता है ।"[1]

एम. मुकुन्दन की एक दूसरी कहानी है, "पुतिया पुतिया मुखड्डल" [नये नये चेहरे] । यह एक कालेज प्रिन्सिपाल, प्रो. देवकी और उसके बेटे के मूल्य संघर्ष की कहानी है । गंजा, भाँग जैसे चीज़ों के वश में पड़े आधुनिक युवा-वर्ग के मूल्य विघटन के कुछ संकेत कहानी प्रस्तुत करती है । मद्रास में पढ़नेवाला, शंकु, एक दिन अपने घर आता है । अपनी माँ केलिए वह वहाँ से भाँग लाया है । उसका कथन है - "इस भाँग ने मुझे मुक्ति प्रदान दी है, ऐसा मैं नहीं कहूँगा । . . . लेकिन उसने पुराने "अनार्की"[2] से मुझे छुटकारा दिया है । . . . यानी वह मुझे चैन देता है । बचपन से ही मेरा मन बेचैन था । अब मैं उससे मुक्त हुआ । अब मैं खुश हूँ ।"[3] वह अपनी माँ से आगे कहता है - "मैं ने कहीं पढ़ा है, बहुत काल तक भाँग पीने से "सूपर ईगो" का नाश हो जाता है समाज की रूढ़ियों से मुक्त हो जाता है । "ऐ डाण्ट माइन्ड इट" । उसके बावजूद इससे कोई हानि नहीं ।"[4] वह अपने साथ भाँग पीने को, माँ को मजबूर करता है । "मैं इसे पिऊँ और आप न पिएँगी तो हमारा संबन्ध अधूरा हो जायेगा ।"[5] प्रोफसर के यहाँ शारू नाम की एक नौकरानी थी जिसे वह अपनी ही बेटी के समान प्यार करती थी । किसी युवक के चंगुल में फँसकर जब वह गर्भवती होती है तो उसे छोड़ दी जाती है । शंभु का शादी करने का कोई इरादा नहीं था । लेकिन जब वह

---

1. मुकुन्दन की कहानियाँ - भूमिका - वी. रामकृष्णन - पृ: 24.
2. "अनार्की" - एक ड्रग विशेष ।
3. "पुतिय पुतिय मुखंड्डल" [नये नये चेहरे] - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 97.
4. वही - पृ: 97.
5. वही

शारु की कहानी सुनता है तो उससे शादी करने का फैसला करता है । यहाँ रूढियों का विरोध, झूठी परंपराओं के प्रति विद्रोह आदि प्रमुख हैं । प्रस्तुत कहानी विद्रोही दृष्टि की प्रतिक्रिया मात्र है । मूल्य-संकट का एक सशक्त परिदृश्य इस कहानी का रहा है ।

काक्कनाडन की कहानी, "भ्रान्त" {पागलपन} की स्त्री केवल अपनी काम-वासना की पूर्ति केलिए किसी अपरिचित पुरुष का इस्तेमाल करती है । नगर के जिस किसी पुरुष से वह परिचित होती है उसको साथ लेकर वह अपने घर आती है । पुरुष जब उसके सौन्दर्य का बखान करने लगता है, तब वह अपनी अतृप्ति और नीरसता प्रकट करती है । संभोग के बीच जब वह उन्माद में उससे कहता कि वह उसे प्यार करता है, तब वह नाराज़ होकर यों कहती है - "मैं झूठ सुनना नहीं चाहती । न तो मैं न तुम प्रेम करता हो । यह केवल एक मनोरंजन है । पागलों का मनोरंजन ।"[1] उसके बाद वह स्वयं अपना कपडा उतार देती है और उससे कपडे उतार देने को कहती है । संभोग के बाद उठकर वह उसे धन्यवाद भी देती है । जब वह पुरुष उसका नाम पूछता, तब वह यों कहती कि वह कुछ खास नहीं हैं । वह आगे कहती - "हम ने जो कुछ किया, वह पागलपन है मैं इसीलिए तुम्हें यहाँ बुला लायी कि मैं पागल हूँ । यह पागलपन है, पाप है । तुम जो चाहते थे वह तुम्हें मिल गया न? अब जाओगे न? "[2] यों कहते हुए वह उस पुरुष को वहाँ से बाहर निकाल देती है । यह कहानी जर्मनी के किसी नगर की पृष्ठभूमि में लिखी हुई है किन्तु भारत का भी कोई नगर इसकी पृष्ठभूमि हो सकती है । स्त्री-पुरुष संबन्धों की तथाकथित "पवित्रता" और मूल्यबोध में इस कहानी ने प्रश्न चिह्न लगा दिया है ।

---

1. "भ्रान्त" {पागलपन} - काक्कनाडन की कहानियाँ {1984} - पृ: 177-178.
2. वही - पृ: 179.

ऐसी दर्जनों कहानियाँ मलयालम में उपलब्ध हैं जिनमें कहीं मूल्यों की टकराहट है, कहीं मूल्यों का खुला तिरस्कार है, कहीं मूल्य-संकट के विविध सन्दर्भ हैं । आधुनिकता की प्रमुख प्रवृत्ति ही उसकी निषेधात्मकता है । अत: आधुनिक दौर में लिखी हुई कहानियों में मूल्यों के स्तर पर ऐसी निषेधात्मकता दर्शित होती है । परन्तु ध्यान देने की बात यह है कि यह तिरस्कार एकदम सतही नहीं है । एक ऐसी अविच्छिन्न परंपरा को तोडने का उपक्रम इसमें देखा जा सकता है । मूल्य संक्रमण के सन्दर्भ में यह मुख्य नहीं है कि इन कहानियों ने कौन-सा नया मूल्य स्थापित किया, बल्कि यह मुख्य है ये पुराने मूल्यों से कैसे टकराती हैं । विषय वस्तु चाहे प्रेम हो, दाम्पत्य हो, पारिवारिक सन्दर्भ हो या कोई बाहरी रिश्ता ही सही, इस मूल्यगत टकराहट की गहराई के आधार पर आधुनिक जीवन की संकट-जन्य स्थितियों का परिचय मिलता है । मूल्यों की छटपटाहट या उसकी यह तिरस्कार भावना आधुनिक युग के संकट से संबन्धित है । अत: इन कहानियों को तथाकथित स्वाभाविकता की कसौटी पर न कसकर विशिष्ट मानसिकता की विशिष्ट पहचान के रूप में प्रतिष्ठित करना है । आधुनिक जीवन का संकट बोध एकदम परिभाषेय नहीं है । यही उसकी विडंबना है । मलयालम की इन कहानियों ने इस मूल्य-विडंबना को सही ढंग से पहचाना है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

आधुनिक युग में लिखी गयी भारतीय भाषाओं की कहानियों में मूल्यों की खोज के स्थान पर मूल्यगत विडम्बनाओं के विविध सन्दर्भ प्राप्त होते हैं । पुरानी कहानियों में मूल्यों की खोज या तो सुधारवादी आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप है, या परंपरावादी दृष्टि के प्रतिफलन के रूप में । अपने इस इच्छित आदर्श के कारण पुराने कहानीकारों ने पात्रों, स्थितियों, सन्दर्भों को अपनी इच्छा के अनुसार बदल देते थे । आधुनिक युग की कहानियों में यह प्रवृत्ति लुप्त हो चली है ।

इस कारण से मूल्यों की खोज करने की तत्परता इनमें दिखायी पडती नहीं । पर मूल्य संघर्ष या मूल्यगत विडंबना इन कहानीकारों की प्रमुख विषयवस्तु रही है । हिन्दी और मलयालम कहानियों में मूल्य विडंबना के विविध पक्ष ढूँढे गए हैं ।

कृष्णबलदेव वैद और एम॰मुकुन्दन ने मूल्य विडंबना को तिरस्कार के रूप में चित्रित किया । लेकिन यह तिरस्कार पिछली दृष्टि के समान नहीं है । भ्रष्टाचारों, अव्यवस्थाओं के विरूद्ध स्वर बुलन्द करनेवाले पात्र इनकी कहानियों में नहीं है । इन दोनों कहानीकारों की कहानियों में - इस प्रकरण में चर्चित "दूसरे का बिस्तर" (वैद), "वेश्याओं, तुम्हारे लिए एक मन्दिर," "नये नये चेहरे" (मुकुन्दन) - पात्र अपनी मूल एषणाओं सहित दर्शाए गए हैं । अतः शारीरिक संबन्ध का खुला चित्रण, उन संबन्धों को उनकी सूक्ष्मताओं के साथ पहचानने का उपक्रम आदि इनमें सुलभ हैं । मुकुन्दन वेश्याओं केलिए मन्दिर बनवाने की अपनी इच्छा प्रकट करता है और वैद का स्त्री-पात्र अपने पत्नित्व का तिरस्कार पूरी सहजता के साथ करता है । मूल्यों की टकराहट को आन्तरिक स्तर पर ही इन कहानीकारों ने चित्रित किया है । व्यक्ति जीवन और सामाजिक जीवन के असंख्य अस्पृहणीय स्थितियों के विरूद्ध बोलने के बजाय उन तमाम स्थितियों को स्वीकारते नज़र आ रहे हैं । उनकी इस स्वीकारोक्ति में ही वह विडंबना निहित है ।

इस प्रकरण में संबन्धों के नए आयाम का चित्रण करते हुए मोहन राकेश और माधविक्कुट्टि - 'अपरिचित' और 'पतंग' - मूल्य विडंबना के एक विशिष्ट पहलू को प्रस्तुत करने का कार्य किया है । माधविक्कुट्टि अपनी कहानी में उस प्रेम को सर्वस्व मान रही है, जिसकेलिए उसका पात्र समर्पित लग रहा है । इतने पर उसके प्रेमी की तरफ से यह समर्पण का भाव नहीं है । प्रेम के मूल्य के विघटन से उत्पन्न अतिसूक्ष्म विडंबना को कहानीकार ने प्रेम भाव के महीन रोए-रेशे के बीच में पहचाना है । यही स्थिति राकेश की "अपरिचित" की है । वहाँ समर्पण के क्षण का सामीप्य हो गया है । इसलिए प्रस्तुत कहानी में अपरिचय की विडंबना का

आरंभ हो गया है । विडंबना इस बात की भी है कि प्रस्तुत कहानी में विघटित अवस्था का बोझ पात्र सहन भी कर रहे हैं । वस्तुत: कहानी में आपस में मिलते अपरिचित पात्रों के मध्य इसलिए परिचय बढता है, अन्दरूनी परिचय साबित होता है कि वे अपने बोझ को झटककर अलग करना चाहते हैं । मूल्यगत विडंबना का, दाम्पत्य संबन्ध की शिथिलता के बीच में सही प्रक्षेपण प्राप्त हुआ है । माधविक्कुट्टि की कहानी में इसी का प्रारंभिक स्वरूप दर्शाया गया है और इसी बिन्दु से विडंबना की शुरूआत होती है ।

वैसे यादव की कहानी, "बिरादरी बाहर" और एम.मुकुन्दन की कहानी "नए नए चेहरे" के बीच में प्रकट तुलना असंभव है । ये कहानियाँ दो अलग अलग स्थितियों से संबन्धित हैं । "बिरादरी बाहर" में मूल्य विडंबना का कारुणिक सन्दर्भ विवृत होता है जब कि "नए नए चेहरे" में मूल्य विडंबना का साहस के साथ सामना करने का सन्दर्भ है । लेकिन दोनों रचनाओं में परोक्षत: जीवन मूल्यों के विघटन का अच्छा खासा परिचय मिलता है । उसके प्रति व्यक्तिमन की दो प्रतिक्रियाएँ भी इनमें अभिव्यक्त हुई हैं । आधुनिक कहानी का यह एक प्रमुख और विशिष्ट परिच्छेद है । क्योंकि व्यक्ति और परिवेश को उनके सही सन्दर्भ में पहचानने की दिशा में आधुनिक कहानी ने सफलता हासिल की है । इसका मुख्य कारण यही है कि आधुनिक कहानीकारों ने मूल्यों की खोज के स्थान पर मूल्यों की वास्तविकता को अंकित किया । उसके दौरान उनसे परिकल्पित पात्र पूर्णत: जीवन्त थे । उन्हें जीवन्त परिवेश में अन्वेषित किया गया था । मलयालम और हिन्दी कहानी की मूल्यगत दृष्टि में सीमातीत समानताएँ हैं, भले ही कहानी केलिए स्वीकृत वस्तुवादी स्थितियाँ अलग क्यों न हो ।

अध्याय : तीन

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों में सामाजिक यथार्थ की विभिन्न धाराएँ

कहानी और सामाजिक धारा

प्रत्येक युग का और प्रत्येक देश का कहानीकार अपने चेतन दर्पण में प्रतिबिंबित इस बाह्य संसार और समाज को ही अभिव्यक्त करता है । अभि-व्यक्ति के विभिन्न तरीके होंगे , बाह्य संसार में {से} गुज़रकर, उसे अपना बनाकर, अपने माध्यम से या अपने में से गुज़रकर, उसे या उसमें अपने को वह प्रकट करता है । किन्तु कहानी न तो वही रहती और न केवल उसकी छाया या प्रतिबिंब । वह बिलकुल एक नये संसार में ढल जाती है । कहानी के रूप में ढला, यह नया संसार या तो बाह्य संसार के समानान्तर होता है अथवा उसका विरोध या उससे बेहतर । दोनों स्थितियों में उसका सृजन इसी संसार में से, इसी समाज में से होता है ।[1] अतः किसी भी काल के, किसी भी देश के कहानी-साहित्य में सामाजिक यथार्थ का चित्रण होना स्वाभाविक ही है ।

यथार्थवाद और यथार्थबोध

कला और साहित्य में यथार्थवाद एक ऐसा दार्शनिक मतवाद है जिसमें यथार्थ के आग्रह पर बल दिया जाता है । दर्शन और मनोविज्ञान के कोश के अनुसार यथार्थवाद आदर्शवाद विरोधी दृष्टिकोण का नाम है जो वस्तुओं को वस्तुओं के रूप में चित्रित करने की व्यक्तिनिष्ठ प्रणाली का विकास करता है ।[2] विश्व-साहित्य में यथार्थवाद की परंपरा बल्ज़ाक, तुर्गनेव, तोल्स्टॉय और दस्तोवस्की की

---

1. कहानी का रचना - संसार — हस्तक्षेप - {1.979} - धनंजय वर्मा - पृ: 31.
2. Dictionary of Philosophy and Psychology - Ed. Mark Baldwin - p.424.

रचनाओं से शुरू होती है । इन कथाकारों ने जीवन के समग्र चित्रण की संभावना को प्रत्यक्ष कर एक स्वस्थ रचनात्मक संवेदना का विकास किया । इस साहित्यिक धारा के मूल में एक संपूर्ण मानववादी आस्था मौजूद है । जिस समय रूस में इस नयी साहित्यिक प्रवृत्ति का उद्भव और विकास हो रहा था, तब पश्चिमी यूरोप में फ्रायड ने मानसिक जगत की जटिल समस्याओं का विश्लेषण करते हुए एक दूसरी नयी पद्धति का सूत्रपात किया था । फ्रायड, एडलर तथा युंग ने मनुष्य-मन की आन्तरिक समस्याओं का विश्लेषण किया है । इनके द्वारा प्रवर्तित मनोविश्लेषणात्मक तत्वों ने जेम्स जोय्स, रिचर्डसन, वर्जीनिया वुल्फ आदि की रचनाओं को नई दिशाएँ प्रदान की । इसप्रकार विश्व-साहित्य में दो प्रकार की यथार्थवादी प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं इनमें एक को सामाजिक यथार्थवाद कहते हैं और दूसरी प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद या मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद के नाम से अभिहित हुई है ।

हिन्दी कहानी में यथार्थवाद की इन दोनों धाराओं का समावेश हुआ है । सामाजिक यथार्थवाद की कहानियों में व्यक्ति को समाज की इकाई के रूप में लिया गया है और प्रायः उसे किसी वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है ।[1] प्रेमचन्द द्वारा हिन्दी में उद्घाटित इस प्रवृत्ति का विकास यशपाल, रांगेय राघव, अमृतराय आदि कहानीकारों की समृद्ध परंपरा में हुआ है । मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवादी परंपरा को वैयक्तिक यथार्थवाद भी कहते हैं । जैनेन्द्र-कुमार, इलाचन्द जोशी, अज्ञेय आदि की कहानियों में यथार्थ के मनोवैज्ञानिक पक्ष का उद्घाटन हुआ है ।

---

1. आज की कहानी : यथार्थवाद के परिप्रेक्ष्य में रचना-प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - अनुशीलन {विश्वनाथ अय्यर षष्टिपूर्ति स्मारिका - 1980-81} पृ: 87.

लगभग सन् 1950 के बाद की कहानियों में जो यथार्थ परिलक्षित होता है वह पहले की कहानियों के यथार्थ से कई स्तरों पर भिन्न है । 1950 के पूर्व की कहानी में प्रायः यथार्थ का एकायामी स्तर चित्रित किया गया है । प्रेमचन्द-युग के कहानीकार कहानी को जीवन की व्याख्या या आलोचना मानते थे । उनके इस आदर्श के मूल में राष्ट्रीय आन्दोलन और समाज-सुधार की चेतना वर्तमान है । इन दोनों ने मिलकर प्रेमचन्द-युग के कहानीकारों के रचनात्मक बोध को स्थापित किया है । अपने इस रचनात्मक बोध से उन्होंने अपनी कहानियों में अपने चारों ओर के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है । स्वयं प्रेमचन्द ने लिखा है - "जब तक करेन्ट अफयर्स से लगाव न रहे किसी मजमून पर लिखने की तहरीक नहीं होती ।"[1] प्रेमचन्द-युगीन और स्वयं प्रेमचन्द की यथार्थ - सम्बन्धी मान्यता को व्यक्त करते हुए मोहन राकेश ने लिखा है - "मैं प्रेमचन्द को एक समर्थ यथार्थधर्मिता का कथाकार मानते हुए भी यह मानता हूँ कि यथार्थ में उनकी आस्था आदर्श केलिए ही थी । उनकेलिए यथार्थ साधन न होकर साध्य है, और वह भी ऊपर से आरोपित यथार्थ नहीं, वरन् अंदर से पैदा होता यथार्थ ।"[2] कहने का मतलब यह है कि प्रेमचन्द युग में कहानी का सत्य या यथार्थ जीवन के सत्य या यथार्थ से भिन्न नहीं था । उत्तर प्रेमचन्द-युग की कहानी में यथार्थबोध के विविध स्तर दिखाई देते हैं । एक ओर यशपाल, अश्क, रांगेय राघव आदि कहानीकार हैं जिन्होंने सामाजिक यथार्थ को तीव्रता और सूक्ष्मता के साथ चित्रित किया है । दूसरी ओर जैनेन्द्रकुमार जोशी, अज्ञेय आदि हैं जिन्होंने मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म यथार्थ को अपनी कहानियों का आधार बनाया है । इन सब ने जिस यथार्थ को रेखांकित किया वह एक-आयामी है । लेकिन 1950 के बाद की कहानी का यथार्थ एक आयामी नहीं बल्कि बहु आयामी है । स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जीवन और परिस्थितियों में

---

1. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृतराय - पृ: 122.
2. सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - (1974) - मोहन राकेश - पृ: 61.

बदलाव उपस्थित हुआ है । इसके फलस्वरूप जीवन और साहित्य को देखने और समझने की दृष्टि में भी अन्तर आया है । नये कहानीकार व्यक्ति को एक इकाई के रूप में चित्रित करना नहीं चाहते । वे व्यक्ति के माध्यम से समूचे वर्ग का चित्रण करते हैं । संवेदना के बदलने के साथ यथार्थ की परिभाषा भी बदल गई - "एक एक कर हमारी सारी अभ्यस्तितियाँ और आत्मतुष्टियों में दरार पडने लगती है और हमारा व्यक्तित्व, वह जाना पहचाना अनुभव नहीं रह जाता, यहाँ तक कि यथार्थ की परिभाषा ही हमारेलिए आमूलचूल बदल जाती है ।"[1] नई कहानी का यथार्थ पूर्ववर्ती कहानी की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और जटिल है । उसमें यथार्थ के संवेदन-पक्षों की उद्भावना हुई है । कमलेश्वर की राय में, {नई कहानी के पूर्व की} "कहानी का यथार्थ यदि कुछ है तो वह मात्र वातावरण होता है या कहानी को वास्तविक बनाने केलिए इस्तेमाल में आनेवाला वह एक आवश्यक नुस्खा है । यानी, स्वतन्त्रता से पहले कहानी में यथार्थ की स्थिति मात्र एक कला मूल्य के रूप में स्वीकृत थी ।"[2] इस तरह कला मूल्य के रूप में स्वीकृत यथार्थ स्थिति नई कहानी में जीवन-मूल्य बन जाती है । कमलेश्वर आगे लिखते हैं । "जब कहानी अयथार्थवादी या अस्वाभाविक वातावरण में भी आदमी की परिणति को रेखांकित करने लगी, तभी उसे सच्चे अर्थ में यथार्थवादी कहा जा सका ।"[3] नई कहानी और उसकी पूर्ववर्ती कहानी के यथार्थ की तुलना करते हुए मधुरेश ने यों लिखा है - "नयी कहानी का पूरा आन्दोलन अपने को यथार्थ पर संकेन्द्रित करके ही आगे बढा अर्थात उसकी पहली और मूल स्थापना यही थी कि उसकी पूर्ववर्ती कथा पीढी में यथार्थ जिस रूप में संप्रेषित किया जाता रहा था वह यथार्थ का वास्तविक और स्पृहणीय रूप नहीं था । . . . नयी कहानी की सब से बडी उपलब्धि यह है कि उसने व्यक्ति और परिवेश की

---

1. समानान्तर - रमेश चन्द्र शाह - पृ: 150.
2. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 77.
3. वही - पृ: 78.

अस्वाभाविक बाड़े-बन्दी को नकार कर इन्हें एकरूपता दी अर्थात उसने यह स्थापना की कि परिवेश के बीच ही व्यक्ति का वास्तविक और सही आकलन हो सकता है और इन दोनों को एक साथ पकड़ना ही व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से पकड़ना है ।"[1] यथार्थ-संबन्धी अपनी मान्यता को मोहन राकेश ने यों व्यक्त किया है - "यथार्थ का अर्थ मैं यथातथ्य नहीं लेता । मेरी दृष्टि में यथार्थ को ऐतिहासिक कार्यकारण की श्रृंखला रखकर ही, उसकी वास्तविकता में जाना जा सकता है । इस दृष्टि से आज के यथार्थ को मैं बीते हुए कल और आनेवाले कल से काटकर नहीं देख पाता ।"[2] साधारण अर्थ में यथार्थ का वह सामान्य सन्दर्भ ही प्रमुख है । किन्तु परिवेश से संबन्धित यथार्थ एक विशेष पहचान का है । कलात्मक पहचान ऐतिहासिक नैरन्तर्य की उपज है । अतः यह वस्तुपरकता से हटकर मानवीय एहसास की व्यापकता की ओर विकसित होती है । इसलिए हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में परमानन्द श्रीवास्तव की मान्यता अधिक संगत लग रही है - "यह यथार्थबोध अनुभूतिपरक है जो हमें कहानी में व्यक्त मानवीय परिस्थिति से ठीक सामने रख देती है । यह यथार्थबोध वह अनुभूति है जो विशेष मानवीय परिस्थिति में लक्षित होनेवाले संबन्धों को ठीक ठीक समझने की दृष्टि देता है ।"[3] यथार्थबोध आधुनिक बोध की आधार शिला है । इस पहचान के अलावा आधुनिक बोध का संकेन्द्रीकरण कदापि संभव नहीं है । इसमें सामान्य यथार्थ दृष्टि से लेकर एक उच्चतर सामाजिक पहचान तक का सिलसिला है । व्यक्ति-सत्यों और समष्टि-सत्यों का एकीकरण इसमें होता है । जिन कहानियों में इस एकीकरण का विशिष्ट रूप पाया जाता है उन्हें हम सामान्य यथार्थवाद की परिधि में रख सकते हैं । उन्हें यथार्थबोध की विशिष्ट उपलब्धि के रूप में आँका जा सकता है ।

---

1. आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया - (1971) - मधुरेश - पृ:35.
2. सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - (1974) - मोहन राकेश - पृ: 73.
3. परमानन्द श्रीवास्तव का लेख - आज की कहानी - कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति (1973) - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 127.

मलयालम कहानी के रचना-दृश्य को देखते समय भी यही तथ्य सामने आता है कि यथार्थ दृष्टि का धीरे धीरे विकास होता रहा है । सामाजिकता का यह रचनात्मक विकास साहित्यिक अवबोध-संबन्धी विकास भी है । मलयालम के तकषी, केशवदेव, पोनकुन्नम वर्की प्रभृति कहानीकार प्रेमचन्द के ही समान कहानी को जीवन की व्याख्या या आलोचना मानते हैं । सामाजिक दायित्व से प्रेरित होकर लिखने के कारण उनकी कहानियों में वास्तविक सामाजिक स्थितियों का अंकन हुआ है । सामान्य जीवन-सन्दर्भों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करनेवाली ये कहानियाँ एक आयामी हैं । अस्वाभाविक या अविश्वसनीय से लगनेवाला कोई सन्दर्भ इन कहानियों में देखने को नहीं मिलते । क्योंकि यथार्थ-संबन्धी इन कहानीकारों की जो मान्यताएँ हैं वे सब पूर्व निश्चित हैं । पूर्व निश्चित सामाजिक स्थितियों में पात्रों के क्रिया-कर्म, उनकी मानसिकता आदि भी असाधारण नहीं होंगे । उनकी कहानियों में नए सन्दर्भ की जटिल और विडम्बनापूर्ण मानवीय स्थितियों का अंकन नहीं हुआ है । यथार्थ को एक दार्शनिक समस्या के रूप में स्वीकारने का उपक्रम बशीर की कहानियों में यत्र-तत्र मिलता है, किन्तु इसका सहज और समग्र विकास सन् पचास के बाद की कहानियों में हुआ है । नये कहानीकार अपनी रचनाओं के द्वारा आधुनिक मनुष्य की विडम्बनापूर्ण स्थितियों से संबन्धित समस्याओं के समाधान ढूँढने का प्रयास करते हैं । वे यथार्थ को अपनी आन्तरिक सत्ता का अनुभव मानता है । उसके मन में यथार्थ-संबन्धी जो मान्यता है वह पूर्व निश्चित नहीं है । पूर्व निश्चित मान्यता के अभाव में नये कहानीकार अपने अपने ढंग से यथार्थ का सृजन करने को बाध्य होते हैं और इसीलिए उनकी कहानियों में विविधता है । अपने परिचित यथार्थ के बाहर जाकर वे यथार्थ की नयी नयी परिभाषाएँ देते हैं ।[1] ओ. वी. विजयन अपनी "पारकल" (शिलाएँ), 'उपनिषद्' जैसी कहानियों में विनष्ट भारतीय यथार्थ को पुनर्सृजित करने का प्रयास करते हैं । सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार वी. के. एन. (इनका पूरा नाम वी. के. नारायणन कुट्टि है । किन्तु साहित्यिक क्षेत्र में

---

1. रियलिज़्म का नया सन्देश - के. पी. अप्पन - मातृभूमि ओणम विशेषांक, 1986 (सितम्बर 14-20) - पृ: 217.

वी.के.एन. नाम से वे विख्यात हैं) की कहानियों में यथार्थ शैलीकृत अवबोध बन गया है । पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला की कहानियाँ सदा ही बदलते रहनेवाले, विसंगतिपूर्ण जीवन-यथार्थ की अभिव्यक्तियाँ हैं । एम.सुकुमारन के सन्दर्भ में यथार्थ अपने सूक्ष्म अर्थ में भी वर्ग-संघर्ष पर आधृत समस्यामूलक तत्व है ।

यथार्थ के विभिन्न आयामों को उद्घाटित करनेवाली बहुत-सी कहानियाँ हिन्दी और मलयालम में लिखी गयी हैं । अध्ययन की सुविधा केलिए उन्हें निम्नांकित वर्गीकरणों के अन्दर देखा गया है -

राजनीतिक यथार्थ की कहानियाँ
मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ की कहानियाँ
पारिवारिक तनाव की कहानियाँ
व्यंग्य-विद्रूपता के नए आयाम
आँचलिक यथार्थ की कहानियाँ
विभाजन से संबन्धित कहानियाँ
फौजी जीवन यथार्थ की कहानियाँ

दोनों भाषाओं में लिखी गई गहरी सामाजिक अवबोध की कहानियों का समावेश इनके अन्तर्गत किया जा सकता है ।

राजनीतिक यथार्थ की कहानियाँ

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय जीवन सन्दर्भ में राजनीति का प्रभाव और दबाव अत्यन्त गहरा है । स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय राजनीति के व्यापक प्रभाव से जनता सजग थी अवश्य । किन्तु उन दिनों लोगों के मन में एक स्वप्न, एक प्रतीक्षा या एक लक्ष्य था - स्वाधीनता प्राप्ति । स्वाधीनता मिली, लोकतान्त्रिक पद्धति की सरकार बनी । लेकिन राजनीति के पहले जो त्याग, जो नैतिकता की भावना थी, वे सब क्रमशः लुप्त हो जाने लगीं । राजनीति स्वार्थपरता, अवसरवादिता से संबन्ध स्थापित करने लगी । जनता की सारी

आकांक्षाएँ टूटने लगीं । प्रत्येक राजनीतिक दल सत्ता प्राप्त करने केलिए चुनाव में पैसा, जातिवाद, क्षेत्रवाद आदि का खुलकर उपयोग करने लगा । देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास केलिए जो जो पद्धतियाँ या योजनाएँ बनायी हैं, वे सब व्यवहार में उस उद्देश्य की पूर्ति में असफल ही रहीं । जातिवाद और भ्रष्ट राजनीति ने अपना प्रभाव सर्वत्र दिखाया । अफसरशाही भी इस भ्रष्ट राजनीति से जुड़ी हुई है । इन दोनों ने मिलकर जनता का जीवन ज्यादा पीड़ाग्रस्त बना दिया । राजनीति के इस दिशाहीन विकास ने सामाजिक जीवन के हर पहलू को कुंठित किया है । जीवन के जितने भी क्षेत्र हों, राजनीतिक घुसपैठ की अवांछित स्थितियों से अलग नहीं है । हर क्षेत्र से संबन्धित समाजशास्त्रीय विश्लेषण के दौरान कइयों ने इस ओर संकेत किया है । इस कारण से कई अवांछित स्थितियों का विकास भले ही हुए हों, राजनीति का ऐसा कुंठित रूप भी हमारे सामने सिर उठाए खड़े हों, जीवन का आतंकित रूप एकदम सस्ता पड गया है । यहाँ आतंक का संबन्ध मात्र त्रस्तता ही नहीं है बल्कि उसकी अनेक दिशाएँ हैं । कहानी ने राजनीतिक यथार्थ के इस आन्तरिक विधान को अच्छी तरह महसूस किया है ।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-मलयालम कहानी - साहित्य राजनीति के इस आन्तरिक विघटन का अच्छा खासा ब्यौरा है । हिन्दी में कमलेश्वर, अमरकान्त, भीष्मसाहनी, फणीश्वरनाथ "रेणु" और मलयालम में टी.पद्मनाभन, पट्टत्तुविला करुणाकरन, एम.सुकुमारन आदि की कहानियों में राजनीतिक परिदृश्य के विभिन्न आयाम देखने को मिलते हैं । ऐसी बहुत सारी कहानियाँ हैं जो मुख्यतः राजनीतिक यथार्थ पर आधारित न होते हुए भी कहीं कहीं राजनीतिक विघटन के किंचित सन्दर्भ से युक्त हैं । ऐसी रचनाओं का परामर्श भलेही इस प्रकरण में न हुआ हो तथापि यह समझना ठीक नहीं होगा कि राजनीतिक यथार्थ की कहानियों का रचनापटल सीमित है । वस्तुतः राजनीतिक यथार्थ का रचनापटल अत्यधिक व्यापक है । उसके मुख्य पहलुओं को दोनों भाषाओं के सन्दर्भ में विश्लेषित करने का कार्य किया गया है ।

कमलेश्वर की कहानी "बयान" एक चर्चित रचना है जिसमें न्यायतन्त्र के खोखलेपन और राजनीतिक नेताओं के भ्रष्टाचारों का खुला चित्रण है । कहानी का पूरा स्वरूप एक बयान के रूप में है । एक स्त्री अपने पति की आत्महत्या के सिलसिले में अदालत में अपना बयान प्रस्तुत करती है । उसका पति एक सरकारी "फॉटोग्राफर" था । एक बार एक मंत्री ने थार के रेगिस्तान को रोकने के संबन्ध में कोई बयान दिया । बयान में ऐसा कहा गया कि मीलों जंगल रोपकर रेगिस्तान का पूरब की तरफ बढना रोक दिया गया है । फॉटोग्रैफर ने उस जगह की जो तस्वीरें खींची उनमें जंगल कहीं नहीं था, रेगिस्तान ही रेगिस्तान था । गलती से वे तस्वीरें छप गईं । मंत्री का बयान उसकी तस्वीरों से मेल नहीं खाता था । वह उस फॉटोग्रैफर को नौकरी से हटा देने का आदेश कर देता है । उसके बाद उसे नौकरी से मजबूरन हटना पडा । फॉटोग्रैफर की पत्नी के बयान के बीच-बीच के मौन तथा यंत्रवत् प्रस्तुतीकरण में राजनीतिक आतंक का पूरा सन्निवेश हुआ है । नौकरी से हटने के उपरान्त फॉटोग्रैफर की हालत के बारे में उसकी पत्नी अपने बयान में यों कहती है - "गलत तस्वीरें छप जाने के बाद उनके साथ जो कुछ हुआ था, उसे वे बर्दाश्त नहीं कर पाए थे । उनका विश्वास अपने काम पर से उठ गया था । आप सोच सकते हैं कि जब आदमी का यकीन अपने काम पर उठ जाए तो उसकी क्या हालत होती है । वे तस्वीरें जो उन्हें विश्वास देती थीं, एकाएक उनके विश्वास को तोड दी थीं । क्योंकि उन्हें सच्चाई से काट दिया गया था । वे वही कह सकते थे, जो दूसरे चाहते थे । इस नतीजे पर पहुँचने के बाद उनकी आँखों से खून के कतरे पहली बार गिरे थे ।"[1] उसके बाद उसे किसी दूसरे एक कंपनी में काम मिला । लेकिन थोडे ही दिनों में उसने वह नौकरी छोड दी । आर्थिक अभाव के कारण उनके जीवन में बडी तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई । कठिन हृदय-व्यथा के कारण उसने आत्महत्या कर ली । कहानी में उस फॉटोग्रैफर की मृत्यु का

---

1. "बयान" - "बयान" - कमलेश्वर (1972) - पृ: 118-119.

कारण क्रूर व्यवस्था और राजनीतिक दबाव ही है । किन्तु न्यायतन्त्र क्रूर व्यवस्था पर प्रहार करने के स्थान पर उस मृतक व्यक्ति के पारिवारिक संबन्धों के बीच उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण खोजता है । इस प्रकार कहानी ने वर्तमान राजनीति के भ्रष्टाचारों और न्यायतन्त्र के खोखलेपन के विरुद्ध रखा गया एक खुला दस्तावेज़ है ।

अमरकान्त की "बस्ती" आज के समाज के समूचे अन्तर्विरोधों की कहानी है । कहानी का आत्मानन्द नेता, रामलाल के ओजपूर्ण भाषण पर विश्वास कर लेता है और अपने जैसे आम लोगों के उद्धार का रास्ता उसे रामलाल के बताए रास्ते पर चलने में ही नज़र आता है । बस्ती केलिए आन्दोलन होता है और बस्ती बन भी जाती है । "धीरे धीरे एक स्वस्थ सामाजिक जीवन विकसित होने लगा ।"[1] रामलाल सब लोगों का आदर्श बन जाता है लेकिन यही रामलाल बस्ती का एक हिस्सा उजाड़कर अपना कर बनाने में तत्पर होता है । नया नेता, बाँकेलाल इस चोरी का भंडाफोड करता है । अब आत्मानन्द जैसे बस्ती के कुछ लोग रामलाल के स्थान पर बाँकेलाल को प्रतिष्ठित करते हैं और बस्ती दो टुकड़ों में बंट जाती है । इस विभाजन ने लोगों को हर तरह से बांट दिया है । किन्तु यथार्थ का कटु अनुभव तब होता है जब बाँकेलाल रात में नालियों से लोहे की जालियों और मैनहोल के ढक्कन की चोरी में लगा हुआ दीख पडता है । उसके बाद बस्ती की हालत दिन-ब-दिन खराब होती गयी । अब सब के सामने रामलाल और बाँकेलाल का आदर्श ही है । जाति, धर्म, क्षेत्र के आधार पर गिरोह बनाकर लोग स्वार्थ साधन करने लगते हैं । ये सब देखकर आत्मानन्द जैसे जड हो गया है । "कभी वह क्रोध, घृणा और विद्रोह की भावना से कांपने लगता । कभी ईर्ष्या एवं महत्वाकांक्षाओं की लहरों पर झूलने लगता । कभी व्यर्थता और उदासीनता से ग्रस्त । कभी कभी उसके सामने कई विचार और रास्ते उभर आते लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि सत्य क्या है? आखिर सत्य क्या है ।"[2]

---

1. "बस्ती" - मित्र मिलन तथा अन्य कहानियाँ - (भाग-1) - अमरकान्त - पृ:28

2. वही - पृ: 35.

कहानी का बस्ती हमारे देश का समूर्त रूप है तथा रामलाल और बांकेलाल हमारे देश के स्वार्थी राजनीतिक नेताओं के प्रतीक हैं । उन जैसे धोखेबाज और अवसरवादी नेताओं के बीच में आत्मानन्द जैसे आम आदमी टूट जाता है । इन तथाकथित नेताओं के द्वारा बार बार छले जाने पर वह हताश होता है ।

'बस्ती' भारतीय राजनीति का नग्न चित्र है । राजनीतिक आदर्शों के विघटन का इतना सूक्ष्म चित्रण अमरकान्त ने इस कहानी में किया है कि उसकी हर छोटी मोटी घटना हमारी राजनीतिक खोखलेपन का ही दस्तावेज़ है । आत्मानन्द जैसा व्यक्ति राजनीतिक उत्पीड़न का असली प्रतीक है । उसमें निष्क्रियता का अंश भी है । वह आम व्यक्ति की तरह आदर्शों का पालन कर सकता है , पर आदर्शविघटन का विरोध खुले आम करने में असमर्थ है । "बस्ती" की समग्र प्रतीकात्मकता के बावजूद हमारे राजनीतिक यथार्थ की अन्तरंगता की पहचान है ।

भीष्म साहनी की कहानी, "मौका-परस्त" में आज के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में दृष्टिगत अवसरवादी मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति हुई है । कहानी में, शहर की किसी गली में सड़क-दुर्घटना से शंभु नामक एक गरीब आदमी की मृत्यु होती है । कहानी का "वह" उसके दाह-कर्म का प्रबन्ध करता है । उस इलाके का एक प्रमुख राजनीतिक नेता है रामदयाल जो अपनी पार्टी के हरनारायण केलिए चुनाव-प्रवर्तन §"इलक्शन-कांपइन"§ करता है । इसलिए पहले वह दाह-कर्म केलिए नहीं आता । उसका कथन है - "मैं मुर्दे जलाता फिरूँ, तो इलक्शन कौन लड़ेगा? तुम चले जाओ, आज मैं नहीं जाऊँगा । मुझे बहुत काम है ।"[1] लेकिन जब शंभु की अरथी निकलती, तब रामदयाल उसमें आ शामिल होता है । देखते देखते सारा दृश्य बदल जाता है । ट्रक में एक ऊँची मेज़ पर शंभु की लाश रख दी जाती है, उसपर पार्टी का झण्डा बिछाया जाता है । इस प्रकार रामदयाल की

---

1. "मौका परस्त" - पटरियाँ - भीष्म साहनी §1973§ - पृ: 64.

अवसरवादी मनोवृत्ति शवयात्रा को मौके का फायद उठाने केलिए पार्टी-जुलूस में बदल देती है। जुलूस, लाउडस्पीकर, और नारों से शंभु को एक शहीद की हैसियत प्राप्त होती है। सारी स्थिति पर अपनी कृतार्थता व्यक्त करते हुए वह कहता है - "अगर अब भी हरनारायण नहीं जीते, तो उसकी किस्मत! हमतो जो बन पडा, हमने कर दिया। दुश्मन के गढ़ को तोड आए, और क्या कर सकते थे! हमारे लिए तो उनके इलाके में घुसना मुश्किल हो रहा था। सब मौके-मौके की बात है।"[1] इसप्रकार कहानी में, आज के स्वार्थी और अवसरवादी राजनैतिक नेता के प्रतीक के रूप में रामदयाल का चित्रण हुआ है। मधुरेश ने ठीक ही लिखा है - "हरनारायण के चुनाव - अभियान में शंभु की अरथी का यह उपभोग रामदयाल को आज की भारतीय राजनीति के प्रतीक-पुरुष का दर्जा दिलाने को काफी है।"[2] परोक्षत: कहानीकार ने अमानवीकरण के एक पक्ष को भी सामने रखा है। जब सब कुछ राजनीतिक गतिविधियों के लिए मोहताज हो, राजनैतिक अनैतिकता के शिकंजे से आम आदमी युक्त हो तो इससे बढकर अमानवीकरण और क्या हो सकता है। अत: यह कहानी आज की मौका परस्ती की कहानी भर नहीं, आज के जीवन मूल्यों के विघटन की सच्ची तस्वीर भी प्रस्तुत करती है।

राजनीतिक आदर्शों का विघटन, राजनीतिक अनैतिकता, आम आदमी का उत्पीडन, अमानवीकरण के विविध प्रसंग मलयालम कहानी में भी विषय वस्तु के रूप में स्वीकृत हुए हैं। आज की राजनीति का भारतीय सन्दर्भ निर्विवाद रूप से स्वीकृत तथ्य है। मलयालम कहानी का मुख्य ज़ोर छटपटाते हुए उस मनुष्य पर है जो राजनीतिक अनैतिकता के शिकंजे में फंसा हुआ है। राजनीतिक यथार्थ की इन कहानियों में प्राय: उसी मनुष्य को केन्द्र में रखा गया है। इस कारण से मलयालम की ये कहानियाँ निरी राजनीतिक भ्रष्टाचार की कहानियाँ भर नहीं हैं।

---

1. "मौका परस्त" - पटरियाँ - भीष्मसाहनी - (1973) - पृ: 74.
2. कहानीकार भीष्मसाहनी - (मधुरेश का लेख) - दस्तावेज़ - जनवरी, 1985.

एम. सुकुमारन की एक कहानी है "अयलराजाव" {पडोसी राजा} जिसमें एक राजनीतिक समस्या का उद्घाटन हुआ है । कहानी का उमापति एक समर्थ मूर्तिकार है जिसे राजा की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए, पडोसी देश की सुख-समृद्धि की तारिफ करने के कारण सजा मिल जाती है। उसके घरवालों को देश से निकाल जाता है । तब वे उस पडोसी राजा से साक्षात्कार करने केलिए निकल जाते हैं । अपनी यात्रा के बीच उमापति को घरवालों को छोड देना पडता है । उसके पुत्र को, जो महल के राज-पुरुषों को राजा के खिलाफ लडने की प्रेरणा देता रहा, रास्ते में जंगल के राजा का गुलाम बनना पडता है । उसकी पुत्री को, जो देश की उस बुरी प्रथा से लडती रही जिसकेअनुसार हर एक कन्या को राजा और अन्य राज-अधिकारियों के साथ सह-शयन करना पडता था, यात्रा के बीच एक प्रभु की दासी बनना पडता है । उसकी पत्नी को, जो औद्योगिकीकरण और "मैकनाइसेशन" के खिलाफ काम करती थी, रास्ते में एक बडे उद्योगपति के यन्त्र की मरम्मत कर, उसको काम में लाना पडता है। वस्तुतः यही हुआ कि जिन आदर्शों और मूल्यों केलिए वे संघर्ष करते आए थे, उन्हीं आदर्शों और मूल्यों को उन्हें रास्ते में छोड देना पडा । बडी आशा और आकांक्षा के साथ जब वह पडोस के राजा के पास आता है तब वह देखता है कि वह राजा उसी क्रूर मर्दक राजा का चित्र खींच रहा है जिसने उसे परिवार-सहित देश से निकाल दिया था । उस चित्र के बारे में राजा कहता है - "इस देश की भाँति एक और समृद्ध, विकसित और सुन्दर देश के राजा का यह चित्र है । अभी कुछ घटों के पूर्व तक वे हमारे मेहमान थे । उनकी भेंट की मधुर स्मृति में मैं इसको अपने महल में रख लूँगा ।"[1] कहानी में मुख्य रूप से एक समस्या -क्रान्ति के लक्ष्य और मार्ग संबन्धी समस्या - उठायी हुई है । मार्क्सवाद को एक तरह का "प्रागमैटिज़्म" { Pragmatism } माननेवालों का आदर्श है कि क्रान्ति का मार्ग मुख्य नहीं है, किसी भी मार्ग से लक्ष्य का साक्षात्कार हो सकता है । किन्तु

---

1. "अयलराजाव" {पडोसी राजा} - एम. सुकुमारन की कहानियाँ - पृ: 229.

कहानीकार इसके विरुद्ध एक ऐसी चेतावनी देता है कि मार्ग लक्ष्य को ही धोखा दे सकता है । कहानी में उमापति को अपने लक्ष्य के साक्षात्कार केलिए राज-शासन, पूँजीवाद, औद्योगिकीकरण आदि से भी समझौता करना पडता है । अन्त में ही वह समझ सकता है कि जिन मार्गों से वह लक्ष्य की तरफ अग्रसर होता आया था, वे मार्ग शुद्ध नहीं हैं । शायद उस पडोसी राजा ने भी अपने लक्ष्य के साक्षात्कार केलिए समझौते का रास्ता अपनाया होगा । इसी "प्रागमैटिज़्म" के कारण समाजवादी राष्ट्रों में क्रमशः पूँजीवाद की स्थापना हो रही है ।

प्रस्तुत कहानी सुकुमारन की श्रेष्ठ कहानियों में से एक है । कहानी में अथ से इति तक एक मिथकीय वातावरण सृजित कर दिया गया है । पात्र भी कमोबेश प्रतीकात्मक हैं । इन दोनों के बावजूद पूँजीवाद के बढते प्रसार को मिथकीकृत करने में सुकुमारन सफल दीखते हैं । पूँजीवाद का आतंक इस प्रकार फैला हुआ है कि हमारी राजनीति उसके अधीन में पड चुकी है । अतः जितने भी पूँजीवादी विरोधी नारे है, अर्थहीन हो गए हैं । पूँजीवाद का आतंक इतना गहरा है कि वह उसके विरोध करनेवाले तक को अपने चंगुल में फंसाता है । पूँजीवादी वृत्तियों का यह ताण्डव-नृत्य हमारी आज की राजनीति का एक प्रमुख पक्ष है ।

एम. सुकुमारन की एक अन्य बहुचर्चित कहानी, "संघगानम" §संघगीत§ में यह समस्या उठायी गयी है कि मध्यवर्ग को कौन मुक्ति दिलाएगा । कहानी का नायक, जो मध्यवर्ग का एक आदमी है, एक अन्वेषी है । वह एक ऐसे व्यक्ति या शक्ति की तलाश करता है जो उसे अपनी स्थितियों से मुक्त कर सके । पहले वह एक गुरु से मिलता है जो उससे कहता है - "कोई भी किसी की इन्तज़ार नहीं करता । तुम्हें स्वयं अपने अस्तित्व को खोज निकालना होगा ।"[1] गुरु से बिदा लेकर वह अपना प्रस्थान शुरु करता है । पहले उच्चवर्ग के गौतम के साथ उसकी भेंट होती है । उसे देखते ही गौतम कुपित होकर घर से निकाल देता है । दुःखी और

---

1. "संघगानम्" §संघगीत§ - एम. सुकुमारन की कहानियाँ - §1984§ - पृ: 165.

अपमानित होकर वह उधर से चला जाता है । इस घटना के बाद उसे ऐसा एहसास होता है कि मध्यवर्गीय आदमी को अपनी मुक्ति केलिए अपने ही वर्ग के आदमी के पास जाना होगा । लेकिन मध्यवर्ग का वह दूसरा गौतम, जिससे वह मिला था उसे चोर समझकर धोखे से पुलिस के हवाले कर देता है । किसी न किसी प्रकार वह पुलिस के चंगुल से बच जाता है । इस अनुभव से दूसरे गौतम की मध्यवर्गीय मानसिकता से वह परिचित होता है । अपने वर्ग से उसका विश्वास उजड जाता है । यही नहीं अपना वर्ग उसे धोखा भी दे सकता है । इसके पश्चात् गौतम को खोज निकालने का अपना सारा प्रयत्न वह छोड देता है । बिना किसी लक्ष्य के चलते समय एक आदमी की पुकार सुनकर वह उसके पास जाता है । वह किसी कारखाने में नौकरी करनेवाला गौतम है जिसे "स्ट्राइक" में भाग लेने के कारण पुलिस के हाथों खूब मार पीट सहनी पडी । कारखाने के मालिक की धोखेबाजी की कथा भी वह उसे सुनाता है । लेकिन इस तीसरे गौतम की बातों का उस आदमी पर कोई असर नहीं पडता । अपने सहज अविश्वास और अपने ही जीवन के अनुभवों के कारण वह उसका विश्वास नहीं कर पाता । वह उससे (गौतम से) कहता है – "मिस्टर गौतम" आप मालिक की अपेक्षा बुद्धिमान और मध्यवर्गीय आदमी से ज्यादा कुशल हैं । आप, ध्यान से सुनिए, एक आदमी का धोखा देना कठिन नहीं है, किन्तु सदा एक ही आदमी का धोखा नहीं दे सकेंगे ।"[1] अब उसे ऐसा लगता है कि उसका अपना कोई नहीं, उसे स्वयं अपनी खोज करनी है । इस प्रकार "स्व" की तलाश करते हुए चलते चलते युवकों के एक जुलूस को देखकर वह उसमें शामिल होता है । गलियाँ पार करते हुए वह जुलूस उच्चवर्गीय गौतम के बंगले के फाटक पर आ पहूँचता है । उसके बंगले में वह मध्यवर्गीय गौतम भी है । अकस्मात् जुलूस पर गोली चलना शुरु हो जाती है और लोग इधर उधर दौडने लगते हैं । किसी न किसी प्रकार वह भी बच जाता है । दूसरे दिन पिछले दिन की गोली में मारे गए चार आदमियों की अर्थी देखकर

---

1. "संघगानम्" (संघगीत) – एम. सुकुमारन की कहानियाँ – पृ: 178.

वह उसके पास जाकर देखता है । तब उसे पता चलता है कि उनमें एक वह तीसरा निम्नवर्ग का गौतम है । दाह-संस्कार के बाद वे सब एक जुलूस के रूप में चलने लगे तो वह आदमी उनसे यों कहता है - "इस श्मशान में थोडी देर केलिए मुझे अकेला बैठना है । तुम चलो उसके बाद मैं भी तुम्हारे साथ आऊँगा ।"[1] इसप्रकार कहानी का वह मध्यवर्गीय आदमी अन्त में अपने दल को खोज निकालता है । मेहनतकश लोगों में भी मध्यवर्ग की स्वतन्त्रता का साक्षात्कार है । यह कहानी राजनीतिक जागृति और राजनीतिक विघटन के इस युग में वास्तविक राजनीति की तलाश की भी कहानी है ।

आधुनिक मलयालम के एक सशक्त कहानीकार है "काक्कनाटन" । §इनका असली नाम जॉर्ज वर्गीस है § इन्होंने अपनी कहानियों में प्रतीकों और मिथकों के सहारे राजनीतिक और सामाजिक यथार्थ के चित्र प्रस्तुत किए हैं । उनकी "कालियमर्दनम्" शीर्षक कहानी में कृष्ण और कालिय के पौराणिक मिथकों के सहारे आधुनिक समाज के मजदूरों और अन्य कामगरों का दायित्व स्पष्ट किया गया है । कहानी में जब नदी के किनारे एक गाय की लाश दिखाई पडी तो सारे ग्रामवासी भयभीत हो जाते हैं । यही नहीं, लाशों की संख्या दिन-ब-दिन बढ जाती है । बुजुर्ग लोगों की राय में नदी में किसी विषैला जीवी का आगमन हुआ है । उसको मारने केलिए ग्रामवासी कई एक उपाय ढूँढते हैं । पहले वे नीलिमला[2] के कालिय-स्वामी को बुला लाते हैं । उसके पूजा-कर्म से कोई फायदा नहीं होता।अगले दिन भी नदी के किनारे बहुत-से जानवरों और मनुष्यों की लाशें दिखाई पडती हैं । दो-तीन दिनों के बाद वह अपनी सारी कमाई लेकर कहीं चला जाता है । उसके चले जाने के बाद एक दूसरी जगह से "परय"[3] जाति के लोगों को बुला लाते हैं । लेकिन

---

1. "संघगानम" §संघगीत§ - एम. सुकुमारन की कहानियाँ - पृः 182.
2. "नीलिमला" - एक पहाड ।
3. "परय" जाति - केरल की एक अनुसूचित जाति ।

वे भी ग्रामवासियों को धोखा देकर चले जाते हैं । इसप्रकार उस विषैले जीवी को मार डालने का उनका सारा प्रयत्न बेकार सिद्ध हो जाता है । उस समय उसी गाँव का कृष्णनकुट्टि नामक एक लडका सारे ग्रामवासियों का सम्बोधन करते हुए कहता है - "यह विषैला जीवी हमारी नदी में रहता है । उसके विष से हमारे ही पालतू जानवर और हमारे ही ग्रामवासी मर गए हैं । . . . "नीलिमला" के "पुलयों" या "कल्लिक्काट्टुमला"[1] के "परयों" को इससे कोई हानि नहीं । . . . हमारी रक्षा करने केलिए कोई भी नहीं आयेगा । हमारी रक्षा सिर्फ हम ही कर सकते हैं ।"[2] आगे वह उस विषैले जीवी से उनकी मुक्ति का तौर-तरीका भी बता देता है - "हम मृत्यु का सामना कर रहे हैं । इस अभिशाप को स्वीकारने केलिए भी हम तैयार हैं । इसलिए हम सिर्फ यही कर सकते हैं कि इस अभिशाप का सामना करें । सारी तैयारियों के साथ, सारे हथियारों के साथ हम नदी की तरफ जायें । उस जन्तु के साथ हम युद्ध करें । . . . हम दूसरों केलिए नहीं, अपने जीवन और अपनी जायदाद की रक्षा केलिए लडनेवाले हैं । इसलिए हमें कभी पीछे हटना नहीं होगा । विजय हमारी ही है ।"[3] कृष्णनकुट्टि का यह आह्वान सुनकर सारे ग्रामवासी अपने अपने हथियार लेकर नदी की तरफ चले जाते हैं । उनके नदी में एक साथ कूदने पर वह विषैला जीवी बाहर आ जाता है । थोडी देर केलिए उनके बीच घमासान लडाई होती है । लडाई के अन्त में वे उस जीवी को मार डालते हैं । मारे गए सर्प (जीवी) के सिर पर खडे होकर कृष्णनकुट्टि नाचता है । कृष्ण और कालिय की पौराणिक कथा को यहाँ सामाजिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है । कालिय शोषक वर्ग का, साम्राज्यवाद का प्रतीक है । दूसरी ओर कृष्णनकुट्टि शोषित, पीडित, "प्रालिटारियट्" वर्ग या मज़दूर वर्ग का प्रतीक है ।

---

1. "काल्लिक्काट्टु मला" - एक दूसरा पहाड ।
2. "कालियमर्दनम" - काक्कनाडन की कहानियाँ (1984) - पृ: 298.
3. वही - पृ: 298.

"बुर्ज्वुआ" शोषक वर्ग या साम्राज्यवाद की दमन नीति का सामना सिर्फ मज़दूर वर्ग ही कर सकता है और शोषण-रहित, पीडा-रहित समाजवाद की संस्थापना में सब से बडी भूमिका मज़दूर वर्ग की है । उस केलिए सारे मज़दूरों की एकता अनिवार्य है । कहानी एक अन्योक्ति के रूप में है । एम. सुकुमारन की कहानी, 'संघगीत' के समान यह कहानी अन्ततः शोषक वर्ग के विरुद्ध लडने का आह्वान करती है । अतः इसकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक यथार्थ का सुदृढ संकल्प है ।

टी. पद्मनाभन की कहानी, "क्रान्ति का कारोबार" स्वातन्त्र्योत्तर भारत के राजनीतिक क्षेत्र में हो रहे मूल्यगत अवमूल्यन को रेखांकित करती है । कहानी का "मैं" और रारिच्चन मूप्पन एक समय एक ही क्रान्तिकारी दल के सदस्य थे । इनमें मूप्पन बाद में कई तरह के कारोबार करके बडा अमीर बन जाता है और उसका मित्र जीवन के व्यावहारिक पक्षों में सफल नहीं होता । पैसा कमाने की कला में वह मूप्पन की तरह चतुर नहीं है । किन्तु दोनों अब भी पार्टी के सदस्य हैं । जब मूप्पन एक अखबार का प्रकाशन आरंभ करता है तब वह (कहानी का "मैं") सोचता है कि वह उसे ही उसके संपादक पद पर नियुक्त करेगा । क्योंकि वे दोनों वर्षों से एक ही राजनीतिक दल में एक साथ काम करते आ रहे थे । लेकिन मूप्पन शंकरनारायण नाम के एक दूसरे व्यक्ति को संपादक का पद देता है । वस्तुतः उसने उन दिनों पार्टी के साथ छल किया था । कहानी का "मैं" मूप्पन से पूछता है - "क्या? शंकरनारायण . . . ? . . . क्या यह धोखेबाज नहीं? उसने पार्टी के साथ छल किया है कि . . . ।"[1] मूप्पन का उत्तर यह है । - "वह पुरानी कहानी है, गलतियाँ हुई होंगी । कौन गलती नहीं करता? वह मशहूर और काफी रौबदार आदमी भी है । सच कहूँ तो उसका नाम मंत्री महोदय ने सुझाया था । अखबार के सिलसिले में जब चर्चा करने गया तो वे कह रहे थे ।"[2] लेकिन अखबार की, पहले दिन की प्रति देखकर मूप्पन नाराज़ हो

---

1. "क्रान्ति का कारोबार" - टी. पद्मनाभन - वार्षिकी - 76-77 - अनु: ए. अरविन्दाक्षन - पृ: 181.
2. वही - पृ: 183.

उठता है । क्योंकि उसमें कुछ क्रान्तिकारियों के द्वारा पुलिस की हत्या का समाचार छपा है । उस समाचार के बारे में संपादक, शंकरनारायण ने एक टिप्पणी भी लिखी है और ऐसी घटना दुहराने की ताकीद भी दी है । इस पर नाराज़ होकर मुप्पन उसे वहाँ से बाहर निकाल देता है । उसका कथन है - " मंत्री के कहने पर मैं ने तुझे यहाँ रखा था । क्या तू मेरी टाँग खींचने आया है ? इस तरह तो तू मुझे भिखमंगा बनाके ही छोडेगा । अब तुझे यहाँ नौकरी करने की कोई ज़ुरूरत नहीं । इसी पल तू यहाँ से जा ।"[1] कहानी में मुख्यतः हमारे राजनीतिक क्षेत्र के मूल्यगत बिखराव की अभिव्यक्ति हुई है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

जैसे उपरिवत् सूचित किया गया है कि राजनीतिक क्षेत्र का कोई भी प्रसंग हमारे सामाजिक जीवन का पहलू है क्योंकि हमारे जीवन के साथ ऐसी राजनीतिक स्थितियों का गहरा संबन्ध है । यथार्थ की वास्तविकता को अपनी कहानियों में जिन कहानीकारों ने चित्रित किया है वे इस सत्य से मुहँ मोड नहीं सकते हैं । इस दृष्टि से ही हिन्दी और मलयालम कहानी की इस खास प्रवृत्ति को देखा गया है ।

अमरकान्त की "बस्ती" राजनीतिक विघटन की कहानी है । आम आदमी की आँखों में धूल झोंकनेवाले राजनीतिज्ञों के अनैतिकता-पूर्ण व्यवहारों पर यह कहानी अवश्य ही चोट करती है । इस कहानी की तुलना एम.सुकुमारन की कहानी "पडोसी राजा" के साथ की जा सकती है । "पडोसी राजा" उक्त कहानी के आम आदमी के प्रतीक बने हुए, या ऐसे सचेत व्यक्ति के प्रतीक बने हुए मूर्तिकार उमापति की आकांक्षा का अमूर्त रूप है । जब उसका अपना राजा ऐसे कार्य में लगते हैं, जो जनता के विरुद्ध है तो उमापति अपना देश ही छोड देता है ।

---

1. "क्रान्ति का कारोबार" - टी. पद्मनाभन - वार्षिकी - 76-77 - अनु: ए. अरविन्दाक्षन - पृ: 185.

वह उस पडोसी राजा के महल की ओर प्रस्थान करता है, जो उसने सुना है कि जनवादी है । अमरकान्त की कहानी में आत्मानन्द - उमापति का सहभागी - अपना देश छोडता नहीं । लेकिन वह रामलाल का पक्ष अवश्य छोड देता है । वह बाँकेलाल का पक्ष लेता है और भरोसा रखता है कि बाँकेलाल के नेतृत्व में उसकी बस्ती की उन्नति संभव है । इन दोनों कहानियों में आम व्यक्ति की त्रासदी का उल्लेख है । बस्ती का आत्मानन्द अन्त में इस प्रकार विचलित होता है कि वह कुछ कर नहीं पा रहा है । मलयालम कहानी में सुकुमारन ने उस अवस्था को और अधिक त्रासद बनाया है । कहानी का पात्र जिन आदर्शों का पालन करना चाहता था जिसकेलिए वह पडोसी राजा के समक्ष उपस्थित होना चाहता था।उसके प्रस्थान के पहले ही उसी के घरवाले अनेक प्रकार की अनैतिकताओं का शिकार होते हैं । यही नहीं अन्तिम दृश्य और अधिक त्रासद है । जिस राजा को उसने अनैतिक, पूँजीपति मानकर छोडा था, उसी की प्रशंसा करनेवाले पडोसी राजा के सामने ही उसे उपस्थित होना पडता है । बस्ती की वही स्थिति है - रामलाल बाँकेलाल के बीच में पडे हुए आत्मानन्द की स्थिति । लेकिन सुकुमारन पूँजीवादी मानसिकता रखनेवाले इन्हें मिलाकर औसत आदमी की त्रासदी को और अधिक गहराया है । दोनों रचनाएँ अपनी प्रतीकात्मकता के कारण अधिक निकट की जान पडती हैं ।

"पडोसी राजा" की तुलना कमलेश्वर की कहानी, "बयान" के साथ भी संभव है । बयान पूँजीवादी मानसिकता के विरोध करनेवाले एक औसत फॉटोग्रैफर की ऐसी मृत्यु की कहानी है जिसे मजबूरन मृत्यु को वरण करना पडा । यह मृत्यु उसकी सचेतना की मृत्यु है । शासन का पूरा तंत्र जनवादी दृष्टि का विरोध करता है । अतः फॉटोग्रैफर का साथ देने आखिर उसकी बीवी ही रह जाती है, जो अदालत में सिर्फ बयान दे सकती है । "पडोसी राजा" के मूर्तिकार के घरवालों को यही भुगतना पडता है । यह मृत्यु उन तमाम जनवादी दृष्टियों की मृत्यु है ।

लेकिन सुकुमारन की "संघगीत" तथा काक्कनाडन की "कालियमर्दनम" नामक कहानी में इन स्थितियों से उभरने की भाव-दिशा संकेतित है । दोनों कहानियाँ जनवादी चेतना की पहचान की कहानियाँ हैं । इन दो कहानियों की तुलना शेखर जोशी की कहानी "बदबू" से की जा सकती है । परन्तु सब से पहले यह मान लेना होगा कि मलयालम कहानी में जनवादी चेतना को पहचानने केलिए जिन संकेतों को उभारा गया है वे एकदम मिथकीय और "बदबू" की कथा स्थितियों से नितान्त भिन्न है । इसके बावजूद 'बदबू' के साथ तुलना इसलिए संभव है कि बदबू समाज की बदबू को पहचानने तथा उसके दल दल से निकलने की जनवादी चेतना का समर्थ संकेत है । इस एक पहचान के अभाव में जीवन-स्थितियाँ इस प्रकार शिथिल पड जाती हैं कि फिर एक बार उभरना मुश्किल लगता है । बदबू राजनीति की पराजय और वास्तविक जनचेतना की कर्कश पहचान की उपलब्धि की कहानी है और संघगीत उस जनचेतना के समवेत स्वर को पहचानने का उपक्रम । "कालियमर्दनम" अपनी क्षमता की विशिष्ट पहचान की मिथकीय अभिव्यक्ति है ।

भीष्म साहनी की कहानी, 'मौका परस्त' और टी. पद्मनाभन की 'क्रान्ति का कारोबार' की तुलना भी हो सकती है । यह तो अवश्य है कि दोनों कहानियों की वस्तुवादी स्थितियों में अन्तर है । पहली कहानी राजनीतिज्ञों की मौका परस्ती प्रवृत्ति को उठाया गया है और दूसरी कहानी में क्रान्तिकारी दल के सदस्य बने हुए तथाकथित क्रान्तिकारी नेता के अमानवीय आचरण का प्रसंग है । लेकिन इन दोनों कहानियों का तुलनीय पक्ष इन रचनाओं में मानवीय संस्थिति की मिटती रोशनी के प्रति प्रकटित उत्कंठा है । अवसर का लाभ उठानेवाले अगर शासन हाथ में लें तो शासन के स्थान पर मनुष्य मात्र को नफा-नुकसान के तराजू पर तौलने का उपक्रम शुरू हो जाता है । दोनों कहानियों की वांछित दिशाएँ इसी दृष्टि से संबन्धित हैं । दोनों में ऐसी वास्तविकताओं को प्रश्रय दिया गया है कि जो हमारे जीवन के किसी भी सन्दर्भ में घटित होने योग्य हैं ।

इस प्रकरण में चर्चित कहानियों में पाई जानेवाली समानत: की सबसे सुदृढ श्रृंखला औसत आदमी का संकेन्द्रीकरण है । लेकिन यह संकेन्द्रीकरण भावुक स्तर पर संकेतित न होकर यथार्थ की गहरी पहचान के रूप में है । लेकिन इनमें प्राप्त औसत आदमी न आदर्शों का वाहक है न भावुकता का निरा पुतला । वह ऐसा जीवन्त व्यक्ति है । वह विचलित अवश्य होता है । थकता अवश्य है । लेकिन हमारे परिवेश का सच्चा प्रतीक है ।

मध्यवर्गीय जीवन यथार्थ की कहानियाँ

स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय कहानी में मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियों के विभिन्न आयामों का उद्घाटन हुआ है । समाज के निम्न वर्ग की आर्थिक विषमताएँ और उससे जुड़ी हुई अन्य अनेकों समस्याओं का चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में कम हुआ है । वस्तुत: यह मूल्यों के संक्रमण का काल रहा है जिसका सब से अधिक प्रभाव मध्यवर्ग पर पडा है । क्योंकि इस वर्ग के लोगों के मन में स्वतन्त्रता की जो रंगीन कल्पनाएँ थीं, स्वतन्त्रता के बाद वे सब निर्मूल सिद्ध होने लगीं । सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त कृत्रिम, बनावटी और अनात्मीय जीवन-स्थितियों को मध्यवर्ग का व्यक्ति गहराई से महसूस कर सकता है । उत्पीडन, खोखली आदर्शवादिता, अवसरवादिता आदि का परिणाम उस वर्ग के व्यक्ति को अधिक भोगना पडता है । इसी तरह औद्योगिकीकरण, मशिनीकरण आदि का प्रभाव भी सब से अधिक मध्यवर्ग पर पडता है । राजनीतिक भ्रष्टाचार, मशिनीकरण आदि ने उसके जीवन में ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी जहाँ वह अपने भाग्य का विधाता नहीं रह गया । इसी तरह देश की आर्थिक स्थिति में जो परिवर्तन उपस्थित हो गया है उससे मध्यवर्ग का जीवन अधिक जटिल और त्रासद बन गया । स्वतन्त्र भारत के मध्यवर्ग की प्रमुख स्थिति मोहभंग की रही है । पढे-लिखे मध्यवर्ग के मोहभंग से उत्पन्न मानसिकता और जीवन के बिखराव का चित्रण स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और मलयालम कहानियों में हुआ है । इसका एक कारण यह है कि इस युग के अधिकांश कहानीकार मध्यवर्ग के हैं । उनकी कहानियों में अपने भोगे हुए या

अनुभूत यथार्थ का चित्रण मिलता है । मध्यवर्गीय जीवन-यथार्थ के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करनेवाली हिन्दी और मलयालम की कुछ एक कहानियों की विवेचना करना इस सन्दर्भ में उचित प्रतीत होता है ।

अमरकान्त की एक बहुचर्चित कहानी है "दोपहर का भोजन" जिसमें एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की गरीबी की त्रासद स्थिति का उल्लेख हुआ है । कहानी की सिद्धेश्वरी दोपहर का भोजन बनाकर बैठी है । उसके बडे-छोटे बेटे और पति बारी बारी से खाना खाने आते हैं । सिद्धेश्वरी सब से एक रोटी और ले लेने आग्रह करती है, किन्तु सभी जानते हैं कि उनके हिस्से में केवल दो रोटियाँ हैं । " कुल दो रोटियाँ, भर कटोरा पनिआैआ दाल और चने की तली तरकारी"[1] बिना दूसरे की एक रोटी छीनने के, उनमें कोई भी तीसरी रोटी के नहीं सकता । सभी दो-दो रोटियाँ खाकर, पेट भरा होने का बहाना कर उठ जाते हैं । पढे-लिखे बेकार बडे पुत्र और एक-दो महीने पूर्व नौकरी से निवृत्त पिता के परिवार में वे सब ऐसा व्यवहार करने को बाध्य होते हैं । माँ बडे भाई से छोटे भाई की तारिफ करती है तो छोटे भाई से बडे भाई की । इसी तरह वह पिता से दोनों लडको की प्रशंसा करती है और लडकों से पिता की । कहानी में वह माँ एक ऐसी ओट है जिसमें उस परिवार की सारी सच्चाइयाँ छिपी हैं । "रोटियों की थाली को भी उसने पास खींच लिया । उसमें केवल एक रोटी बची थी । . . . उसने पहला ग्रास मुँह में रखा, और तब न मालूम कहाँ से उसकी आँखों से टप-टप आँसू चूने लगे ।"[2] इस कहानी के पात्रों का आपसी समझौता मध्यवर्गीय मानसिकता का अच्छा खासा उदाहरण है । यह मौन का समझौता है जिसको हमेशा साथ लेकर ही उसे चलना पडता है । अमरकान्त की इस कहानी में कारुणिकता का आरंभ होते हुए भी यह कारुणिकता उनके जीवन के बन्द रहने की मजबूरी की भी कारुणिकता है ।

---

1. दोपहर का भोजन - मौत का नगर - (1973) - अमरकान्त - पृ: 168.
2. वही - पृ: 171.

अमरकान्त की "जिन्दगी और जोंक" शीर्षक कहानी में एक साधारण भिखमंगे, रजुआ के जीवन की असाधारण व्यथा का करुण चित्रण हुआ है । उसमें अदम्य जिजीविषा है, उसमें अकेलेपन से मुक्त होने की इच्छा है, अतः वह एक पगली से प्रेम करता है और दूसरों के निन्दा करने पर भी वह उसे नहीं छोडता। कहानी का "मैं" (नरेटर") उसके बारे में यों सोचता है - "मुझे कभी कभी लगता है कि वह किसी का मुहताज न होना चाहता था और इसकेलिए उसने कोशिश भी की, जिसमें वह असफल रहा । चूँकि वह मरना न चाहता था, इसलिए जोंक की तरह जिन्दगी से चिमटा रहा । लेकिन लगता है, जिन्दगी स्वयं जोंक-सरीखी उससे चिमटी थी और धीरे धीरे उसके रक्त की अंतिम बूँद तक पी गयी ।"[1] कहानी में उसकी इस जिजीविषा का ही नहीं, बल्कि उस बेचारे भिखमंगे के प्रति समूचे निम्न मध्यवर्ग की प्रतिक्रियाएँ और मानसिकता का अंकन भी हुआ है । कहानी का शिवनाथ बाबू तथा उस इलाके का सारा मध्यवर्ग रजुआ का शोषण करता है । शिवनाथ बाबु उसपर साडी की चोरी करने का आरोप लगाता है, उसे गालियाँ देता है, और पीटता है । जिस साडी को चुराने का आरोप उसपर लगाया गया है, वह उस घर ही में मिल जाती है तो शिवनाथ बाबु खिसिया तो जरूर जाता है । किन्तु इस घटना के प्रति उसकी जो प्रतिक्रिया है वह उसकी मूल मध्यवर्गीय शोषक मानसिकता को स्पष्ट व्यक्त करती है - "इस बार तो साडी घर में ही मिल गई है, पर कोई बात नहीं, चमार-सियार डाँट-डपट पाते ही रहते हैं । अरे, इसपर क्या पडी है । चोर-चोई तो रात-रात भर मार खाते हैं और कुछ नहीं बताते ।" फिर बाई आँख को खूबी से दबाते हुए दाँत खोलकर हँस पडे : "चलिए साहब, नीच और नींबू को दबाने से ही रस निकलता है ।"[2] नीच और नींबू को दबाने की यह प्रवृत्ति सम्पूर्ण मध्यवर्ग के छद्म और कृत्रिम नैतिकता का दस्तावेज़ है ।

---

1. "जिन्दगी और जोंक" - मौत का नगर - (1973) अमरकान्त - पृ:212-213.
2. वही - पृ: 191.

अमरकान्त की ही कहानी "डिप्टी कलक्टरी" मध्यवर्गीय खोखली मानसिकता की अभिव्यक्ति है जिसमें अर्थहीनता का अंश अधिक है, पर कारुणिकता या दैन्य का थोडा सा अंश भी है। कहानी में मध्यवर्ग के प्रतिनिधि शकलदीप बाबू का बेटा, नारायण डिप्टी कलक्टरी की परीक्षा में बैठता है। अपने बेटे के प्रति उस पिताजी के मन में बडी बडी आकांक्षाएँ हैं। इसपर उसे कोई सन्देह नहीं कि डिप्टी कलक्टर के रूप में अपने बेटे की नियुक्ति ज़रूर हो जाएगी। उसका कथन है, - "होंगे, ज़रूर होंगे, बबुआ डिप्टी कलक्टर अवश्य होंगे। कोई कारण ही नहीं कि वह न लिये जायँ। लडके के जेहन में कोई खराबी थोडे हैं। राम-राम . . . नहीं, चिन्ता की कोई बात नहीं। नारायण जी इस बार भगवान की कृपा से डिप्टी कलक्टर अवश्य होंगे।"[1] किन्तु उस पिता की आकांक्षाओं की पूर्ति कभी नहीं होती नारायण परीक्षा में पास नहीं होता। तब भी अपने बेटे की बुद्धि और क्षमता पर उसे कोई सन्देह नहीं है। उसे यह सन्देह होता है कि कठिन अवसाद के मारे बेटा आत्महत्या करने की बात न सोचे। वह उसके कमरे में जाकर यह जाँच करता है कि वह कमरे में है या नहीं। "शकल्दीप बाबु एकदम डर गए और उन्होंने काँपते हुए हृदय से अपना बायाँ कान नारायण के मुख पर बिलकुल नज़दीक कर दिया। और उस समय उनकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा, जब उन्होंने अपने लडके की साँस को नियमित रूप से चलते पाया।"[2] वास्तविकता से परिचित होने के उपरान्त भी शकलदीप बाबु अपनी स्थितियों से समझौता नहीं कर पा रहा है। वह इसलिए अपने बेटे की मृत्यु की कामना से आशंकित है कि उसमें मध्यवर्गीय स्वप्न का-उपरिवर्ग की ओर प्रस्थान करने का - थोडा सा अंश बचा हुआ है। मध्यवर्ग का वह खोखला स्वप्न मात्र निरंतर विकासमान है। इसलिए विजयमोहन सिंह का कथन संगत प्रतीत होता है कि यह कहानी स्वतन्त्रता के बाद की आशाओं और उन आशाओं से मोहभंग की सही और ताजा तस्वीर पेश करती है।[3]

---

1. "डिप्टी कलक्टरी" - मौत का नगर §1973§ अमरकान्त - पृ: 55.
2. वही - पृ: 81.
3. अमरकान्त की कहानियाँ - विजयमोहन सिंह का लेख - आलोचना §41§ - अप्रैल - जून, 1977 - पृ: 103.

इस तस्वीर की विशेषता यही है कि इसमें वास्तविकता से पलायित करनेवाले पात्र ही अधिक दिखाई देते हैं ।

राजेन्द्र यादव की कहानी, "एक कमज़ोर लडकी की कहानी" प्रेम त्रिकोण की कहानी लगते हुए भी ऐसी एक मध्यवर्गीय मानसिकता की है जो कभी अपनी निजी अवस्था को व्यक्त न कर पा रही है । अपने पूर्व-प्रेमी के आगमन पर पत्नी बनी हुई प्रेमिका इस प्रकार विचलित होती है कि वह एकदम फीकी-सी रह जाती है । प्रेम जब तक भावुक दृष्टि की प्रतिक्रिया है तब तक वह जीवन की निजता से संबन्धित नहीं होता है ।

प्रस्तुत कहानी की कमज़ोरी उस मध्यवर्गीय मानसिकता का सच्चा प्रतिफलन है । इसी से मिलती जुलती कमलेश्वर की कहानी है, "साँप" । साँप उक्त कहानी की मध्यवर्गीय आशंकाओं, क्लीबताओं तथा दिखावटीपन का प्रतीक है। अपनी प्रेमिका को एकान्त स्थान में मिलनेवाला प्रेमी स्वस्थ नहीं होता है । लेकिन प्रेमिका एकदम स्वस्थ और खुश हो जाती है । जब एक बंगले का पहरेदार उस इलाके में साँप के होने की चेतावनी देता है तो वह हँसी में उडता है, जब कि उसका मन निरन्तर साँप की प्रतीति से आशंकित होने लगता है । दूसरे दिन जब उसकी प्रेमिका आती है तो बाहरी तौर पर खुश दीखता है । लेकिन उसका मन साँप की उपस्थिति का अनुभव कर रहा है । प्रेमिका से सटकर बैठते समय जब उसके शरीर पर प्रेमिका की पिन के चुभते ही वह बेहोश-सा होता है कि उसे साँप ने डंस लिया है । यह कहानी मध्यवर्ग की निरंकुशता की कहानी है, जो कभी अपनी निजता को प्रदर्शित नहीं करता, अपनी निजता को ओट में रखकर कुछ अवास्तविक पक्षों का प्रदर्शन मात्र करता है ।

सामाजिक यथार्थ की गहरी पहचान करनेवाली मलयालम कहानी में भी ऐसी रचनाएँ अक्सर लिखी मिलती हैं । वस्तुगत अन्तर के होते हुए भी इन मलयालम कहानियों की दिशा और दृष्टि मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न सन्दर्भों से संबन्धित हैं ।

पी. वत्सला की एक कहानी है, "उच्चयुडे निष्ल" §दोपहरी की छाया§ । कम आमदनी में गुज़ारा करने को अभिशाप्त बने एक कर्मचारी की यह कहानी है । जो कुछ बची-खुची जायदाद थी वह अपनी पढाई में खत्म हो गई । शहर में रहकर वह अपने परिवार के पोषण में असमर्थ होता है । शहर में उसकी बीवी है बच्चे हैं और गाँव में उसके माँ-बाप और छोटी बहन । जिन्दगी उसके सामने एक समस्या बन गयी है । जीवन की विषमताओं से उसका जीवन कठिन हो जाता है । एक दिन उसकी बहन किसी नौकरी की तलाश में उसी शहर में आती है । वह अनुभव करती है, कि भाई के चेहरे की वह रौनक अब गायब हो गई है । जब वह अपने भाई से छुट्टियों में घर आने को कहती है, तो वह यही उत्तर देता है - " साल भर में नौकरी करने पर भी यहाँ जीना दुष्कर है ।"[1] वह सोचती है कि उसके सामने खडा व्यक्ति आखिर उसका भाई है या उस शहर का दुःख । उसका घर इतना छोटा है कि उसमें किसी दूसरे व्यक्ति का रहना मुश्किल है । उसकी प्रतीक्षा बिखर जाती है और वह उसी दिन घर लौट जाती है । लौटती बहिन से वह कुछ कह नहीं पा रहा है । उसका मौन मात्र आर्थिक अभाव का नहीं है । उसका मौन उस असमर्थता का भी है, जो सिर्फ मध्यवर्ग की है ।

एम. सुकुमारन की "संरक्षकरुडे त्रासिल" § रक्षकों के तुले पर § शीर्षक कहानी आधुनिक समाज के "हिपॉक्रैटिक" और द्विमुखी व्यक्तित्ववाले मध्यवर्गीय आदमी की तस्वीर प्रस्तुत करती है । कहानी का नारायणन नायर, बाप्पुट्टी और गीवर्गीस, तीनों एक ही व्यक्ति है या एक ही व्यक्तित्व के तीन पहलू हैं । अपने मालिक या "बॉस" की झूठी प्रतिष्ठा को बनाए रखने केलिए कितने ही निन्दनीय काम करने को वह तैयार होता है । कहानी के गिरिजावल्लभ मेनन के द्वारा जब आमिना गर्भवती होती है तो उसकी हत्या करने का काम नारायणन नायर स्वयं करता है । बाद में अपने किए पर उसे पश्चात्ताप होता है । अपने अपराध को

---

1. "उच्चयुडे निष्ल" § दोपहरी की छाया § - दोपहरी की छाया - § 1976 § पी. वत्सला - पृ: 123.

स्वीकार करने केलिए जब वह स्टेशन पहुँच जाता है तो इन्स्पेक्टर उससे कहता है - "मिस्टर नारायणन नायर, "एक्सक्यूस मि" । आई एम रियली हेल्पलेस" । हमें अपराधी मिल चुका है । उसने अपना अपराध स्वीकार किया है ।"[1] कहानी का बाप्पुट्टी अपने मालिक के कथन पर मजदूरों के नेता, पुरुषोत्तमन नायर की हत्या कर बैठता है । इसी तरह, कहानी का गीवर्गीस अपने मंत्री केलिए उम्मरकुट्टी नामक पत्रकार की हत्या कर देता है । उस अपराध केलिए वह स्वयं जेल जाकर मेजिस्ट्रेट से कहता है - "मुझे पाँच वर्षों केलिए कैदी के रूप में यहाँ रहने की अनुमति दे दीजिए ।"[2] लेकिन मजिस्ट्रेट उसकेलिए तैयार नहीं होते । प्रत्युत् वह बड़े आदर के साथ उसका स्वगत सत्कार करता है । इसलिए उन तीनों अपराधों की सजा वह स्वयं अपने कन्धे पर ले लेने का निश्चय करता है । बारह वर्षों की कैद और उसके बाद फाँसी । वह दुर्गा के मन्दिर जाकर मूर्ति के पास स्वयं लेटता है । तब भी उसे इसी बात का भय रहता है कि कहीं अपने मालिकों में से कोई वहाँ आकर उसे मन्दिर से धकेल न दें । मध्यवर्गीय आदमी की अपनी अस्तित्वहीनता का संकेत इसमें मिलता है । वह उच्चवर्ग की अमानवीयता और क्रूरता का मूक गवाह बनता है । कभी कभी उसके साथ कठपुतला भी बन जाता है । लेकिन उसमें सभ्य बने रहने की तीव्र आकांक्षा रहती है । यह "ह्रिपॉक्रैसी" मध्यवर्ग की नियति है । कवि-आलोचक सच्चिदानन्दन के अनुसार यह कहानी एक खास अर्थ में सोद्देश्य रचना है । - "पूँजीवाद के समर्थक के मनः-परिवर्तन के द्वारा यह कहानी यह स्पष्ट करती है कि हमारा यह संसार कैदीखाने से भी कितना डरावनेवाला है । हमें आत्म-विश्लेषण कराते हुए हमारे ही भीतर के नारायणन नायर, बाप्पुट्टी, गीवर्गीस आदि को सजा देना ही कहानी का सामाजिक उद्देश्य है ।"[3]

---

1. "संरक्षकरुडे त्रासिल" (रक्षकों के तुले पर) - एम. सुकुमारन की कहानियाँ (1984) पृ: 269.
2. वही - पृ: 279.
3. सुकुमारन की प्रासंगिकता - (भूमिका - एम. सुकुमारन की कहानियाँ) - सच्चिदानन्दन - पृ: 40.

एम. मुकुन्दन की कहानी, "आप्पीस" (दफ्तर) में भी मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ उभर आया है। कहानी का "वह" शहर के किसी प्राइवेट कार्यालय में नौकरी करता है। प्रायः हफ्ते में सात दिन सबेरे आठ बजे से रात आठ बजे तक उसे काम करना पडता है। नौकरी से वह बिलकुल ऊब गया है। पर वह उस नौकरी को छोड भी नहीं सकता है। अनिच्छा के साथ ही वह उसी में लगा रहता है। उसके जीवन में कोई हेर-फेर नहीं है। कई हफ्तों के बाद जब एक दिन उसे छुट्टी मिलती है, तो उसकी कल्पना मात्र से वह बहुत खुश हो जाता है। लेकिन अपनी आदतों और जीवन-रीतियों को एक दिन केलिए बदलने में वह असमर्थ हो जाता है। घंटों तक सोते रहने की इच्छा के बावजूद वह सो नहीं पा रहा था। वह अपनी प्रेमिका, शालिनी, के यहाँ जाना चाहता है, परन्तु वह उस विचार को छोड देता है। अपने मित्रों के साथ समय बिताने केलिए वह उनके यहाँ जाता है, किन्तु वहाँ भी उसे चैन नहीं मिलता। अन्त में छुट्टी होने पर भी वह अपने दफ्तर जाने का निश्चय करता है - "चौकीदार ने फाटक खोल दिया। लिफ्ट खराब हो गया है - ऑपरेटर नहीं। इसलिए सीढियों से ही उसे ऊपर जाना पडा। वह बडा-सा मकान सो रहा है, छः दिनों के कोलाहल के बाद। उसका दफ्तर तीसरी मंजिल के एक कोने में है। उसने कमरा खोला। कोई आवाज़ नहीं, उसे लगा कि यही आराम से काम करने का अवसर है।"[1] दफ्तर में अकेले बैठकर वह अपना काम शुरू करता है काम में लगने पर उसे चैन का अनुभव होता है और वह सब कुछ - मित्रों को, प्रेमिका को, और स्वयं को - भूल जाता है। एक मध्यवर्गीय विडंबना को मुकुन्दन ने इस कहानी में प्रस्तुत किया है। अपनी सीमाओं को यान्त्रिक गति में बाँधने के कार्य ने मध्यवर्गीय स्थिति को इतना अधिक कुंठित किया है कि खुद मध्यवर्ग मोह और मोहभंग का पुंज-सा बन गया है। प्रस्तुत कहानी उक्त मोह और मोहभंग को प्रतीकवत कर रही है।

---

1. "आप्पीस" (दफ्तर) - मुकुन्दन की कहानियाँ (1982) - पृ: 57.

तुलनात्मक दिशाएँ

भारतीय जीवन की सच्ची तस्वीर हम मध्यवर्ग की विभिन्न संकीर्ण स्थितियों में कभी स्पष्ट तथा कभी अस्पष्ट ढंग से दिखती रहती है । निम्न वर्ग और उच्चवर्ग की तुलना में मध्यवर्ग की अपनी अनेकानेक संकीर्णताएँ हैं । इसका कारण यह है कि मध्यवर्ग की अपनी अलग पहचान कभी हुई नहीं है । अतः जीवन की तमाम छटपटाहट इसी वर्ग के जीवन में महसूस की जा सकती है ।

अमरकान्त की कहानी "दुपहर का भोजन" और पी. वत्सला की कहानी "दुपहरी की छाया" में एक ही अभिप्राय के दो सन्दर्भ अवतीर्ण हुए हैं । दोनों कहानियों में वस्तुतः निम्न मध्यवर्गीय जीवन चित्रित है । मुख्यतः आर्थिक अभाव का दैन्य-चित्र इन दोनों कहानियों में प्राप्त है । लेकिन दोनों कहानियों के प्रमुख तुलनीय पक्ष उस मध्यवर्गीय स्थिति का है । सब कुछ अपने मौन में समेट लेने की प्रवृत्ति उसकी वास्तविकता को कबूल करते हुए कहीं उससे परे हट जाने की प्रवृत्ति मध्यवर्गीय बोध की है । "दुपहर का भोजन" भोजन का दृश्यपट मात्र नहीं है , वह अपनी हालात से समझौता करने का उपक्रम है । "दुपहरी की छाया" अपनी स्थिति को कबूल न कर पाने की स्थिति से उत्पन्न अवसाद की उपस्थिति से संबन्धित है । दोनों रचनाओं में मध्यवर्गीय मजबूरी के सन्दर्भ सुलभ हैं ।

एम. सुकुमारन की कहानी, "रक्षकों के तुले पर" मध्यवर्गीय अनैतिकता का ज्वलंत उदाहरण है । बहुत जल्द उसे उच्च वर्ग अपना हथियार बना लेता है और एक डोरी से बाँध कर अपनी इच्छा के अनुसार नचाता रहता है । कहानी के नारायणन नायर, बाप्पुट्टि तथा गिवर्गीस ऐसी एक मानसिकता के प्रतीक पात्र हैं । अमरकान्त ने अपनी कहानी, "जिन्दगी और जोंक" में ऐसे एक पात्र का सृजन किया है । उक्त कहानी का शिवनाथ बाबु सुकुमारन के पात्रों के निकट ही खडे मिलते हैं । इसी का एक दैन्य-पक्ष "डिप्टी कलक्टरी" के शक्लदीप बाबु में भी

मिलता है । सुकुमारन और अमरकान्त की कहानियों की तुलना अन्य कई स्तरों पर भी संभव है । ये दोनों प्राय: उस वर्ग को अपनी कहानी केलिए चुनते हैं जो इतने जाते-जमाते नज़र आ रहे हैं , हमारे आस पडोस के लग रहे हैं । मध्यवर्गीय व्यक्ति की तमाम विशेषताओं को ही इन कहानीकारों ने व्यक्त किया है ।

मुकुन्दन की कहानी, "दफ्तर" का कर्मचारी जिस प्रकार अपनी भीतरी गुलामी से संतुष्ट है कि लगता है कि उसे जीवन की कोई इच्छा ही नहीं है । भीतरी गुलामी का एहसास श्रीकान्त वर्मा की कहानी "ठंड" में भी मिलता है । दो विरोधी चित्रों के माध्यम से श्रीकान्त वर्मा ने इस बात को व्यक्त किया है । खुलेपन का अभाव, निजता की कमी, तर्कसंगत दृष्टि का एकदम अभाव आदि मध्यवर्ग की ऐसी कमियाँ हैं जो प्रकट ढंग से देखने को मिलती नहीं । यह एक प्रकार की गुलामी ही है ।

राजेन्द्र यादव की कहानी, एक "कमज़ोर लडकी की कहानी" की विकल्पहीनता का एक दूसरा ही पक्ष सखरिया की कहानी, "अश्लीलता की गडबडी" में मिलता है । सखरिया ने उस कहानी को ऐसे युवक की जीवन कथा के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपने में केन्द्रित होकर, अपनी शारीरिक माँग की पूर्ति करते हुए जीवन में विजयी होता है । वस्तुत: यह एक व्यंग्य कहानी है जिसमें विकल्प-हीनता पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है । कुल मिलाकर ये दोनों कहानियाँ विकल्प-हीनता के विभिन्न सन्दर्भों से संबन्धित हैं । कमलेश्वर ने भी अपनी कहानी, "साँप" में इस पक्ष को लिया है ।

निष्कर्षत: यह बताया जा सकता है कि हिन्दी और मलयालम में रची गई मध्यवर्गीय जीवन-यथार्थ की कहानियों में मोटे तौर पर मध्यकालीन संकीर्णताएँ ही अधिकाधिक मात्रा में अभिव्यक्त हुई हैं । यही संकीर्णता उन्हें अनैतिक भी बना डालती और कभी उनके स्वत्व को नष्ट कर देती है । भीतरी गुलामी का एहसास भी इसी संकीर्णता का परिणाम है । कुछ एक कहानियों में इस संकीर्णता के दैन्य पक्ष को चित्रित किया है ।

पारिवारिक तनाव की कहानियाँ

स्वतन्त्रता के बाद के सामाजिक परिवर्तन ने पारिवारिक जीवन को कई स्तरों पर प्रभावित किया है । नई सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार पारिवारिक जीवन में बडा परिवर्तन उपस्थित हुआ है । यह परिवर्तन मुख्य रूप से दो स्तरों पर हुआ है, बाह्य और आन्तरिक । अपने मूल निवास से बाहर नए वातावरण में नया जीवन शुरु करने के साथ पारिवारिक स्थितियों में मूलभूत परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन का बाह्य स्तर है । कभी परिवार के किसी सदस्य को आजीविका केलिए परिवार से बहुत दूर जाना पडता है । लंबे अंतराल के बाद जब वह वापस आता है, तो घरवालों के साथ मिल-जुल रहने में असमर्थ होता है । वह दूसरों से अलग होता है, उसे अकेलापन और आत्मनिर्वासन का अनुभव होता है । यह परिवर्तन का आन्तरिक स्तर है । इन दोनों स्थितियों में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है । परिवार में तनाव की स्थिति अन्य अनेक कारणों से भी होती है । उनमें मुख्य है आर्थिक अभाव । आर्थिक अभाव के कारण तनाव की स्थिति मध्यवर्गीय परिवारों में सब से अधिक होती है । क्योंकि मध्यवर्गीय लोगों के सन्दर्भ में अपने परिवार की झूठी प्रतिष्ठा और इज्जत मुख्य है । इसलिए वे अपने अभावों को दूसरों से छिपाते हुए जीना पसन्द करते हैं । ऐसी अवस्था में तनाव की स्थिति अनिवार्य है । पारिवारिक तनाव का दूसरा कारण दृष्टिगत भिन्नता है । अनात्मीय व्यवहार के कारण भी तनाव उत्पन्न हो सकता है ।

ऐसी अनेकों कहानियाँ सन् पचास के बाद हिन्दी और मलयालम में लिखी हुई हैं जिनमें पारिवारिक तनाव के विविध सन्दर्भ अंकित हैं । तुलनात्मक दृष्टि से देखते समय इनमें ऐसी समान विशिष्टता पाई जाती है तो उनकी तटस्थ और निर्मम दृष्टि है । प्राय: सभी कहानियों में पारिवारिक स्थिति का कोई न कोई अंश मिल सकता है । लेकिन उन कुछ कहानियों का विश्लेषण यहाँ किया गया है जिनमें उपरोक्त सूचित तनाव का कोई सन्दर्भ हो । क्योंकि सामाजिक विडंबना को सूचित करनेवाला तत्व इन्हीं तनाव युक्त सन्दर्भों में ढूँढा जा सकता है ।

मन्नू भंडारी की "शायद" नये सामाजिक सन्दर्भों के अनुसार पारिवारिक सम्बन्धों के बिखराव की कहानी है । कहानी का राखाल अपनी जीविका कमाने केलिए परिवार से बहुत दूर एक जहाज़ में नौकरी करता है । परिवार से वह निरन्तर सम्बन्ध चाहता है । परन्तु यह संभव नहीं है । वह समय समय पर अपनी पत्नी के नाम निश्चित रकम भेज देता है । कहानी के आरंभ में वह एक लंबे अंतराल के बाद परिवार से जुडे रहने की आशा से घर आया हुआ है । उसकी पत्नी, माला अपने पति की अनुपस्थिति में ही जीवन की कठिनाईयों का सामना स्वयं कर रही थी । कभी-कभी उसे पडोस के लोगों का सहारा भी लेना पडता था । इस प्रकार के "अड्जस्टमेंट" के साथ वह अपने घर का पालन करती है । पडोस का शंकर कभी कभी उसकी आर्थिक सहायता भी किया करता है । इसी तरह पडोस में रहनेवाली पिशी माँ के प्रति उसके मन में गहरी स्नेह भावना है । इसीलिए वह अपने पति से कहती है - "आज भी मेरा आधा काम तो ये ही करती है । बिलकुल माँ की तरह मेरे ख्याल करती है ।"[1] यह देखकर राखाल के मन में एक प्रकार का अपराध-भाव और हीनता-बोध उत्पन्न होता है । उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए जो नये संबन्ध स्थापित किए हैं उससे वह बहुत व्याकुल होता है । उसे यह सन्देह होता है कि इस सन्दर्भ में अपने घर में अपनी कोई उपयोगी भूमिका नहीं रह गई है । इसलिए वह जानबूझकर घर के प्रति अपनी भूमिका का निर्वाह करने का असफल प्रयत्न करता है । जब माला अपने बच्चे के बारे में उससे शिकायत करती है - "यह बच्चू तो सारा दिन आवारागर्दी करता है . . . शंकर के लडके को पढाने केलिए मास्टर आता है, कई बार उसने कहा था कि बच्चू तू भी बैठ जाया कर, पर खेलने-कूदने से फुरसत हो तब न ?"[2] तो राखाल की प्रतिक्रिया यही है - "देखना, अब बच्चू कैसे पढता है, कोई शकर-वंकर का मास्टर नहीं, मैं पढाऊँगा बच्चू को । क्यों बेटा, अच्छे नंबरों से पास होना है न तुम्हें ?"[3] राखाल के इस वक्तव्य में उसके मन का पुरुष-भाव और

---

1. "शायद" मेरी प्रिय कहानियाँ (1975) - मन्नू भंडारी - पृ: 137.
2. वही - पृ: 140.
3. वही ।

पुरुष – सहज अहं की भावना ही प्रकट है । घर में अपना जो स्थान है, या जो स्थान वह चाहता है, उसकी ओर किसी दूसरे का आगमन वह बर्दाश्त नहीं कर सकता । उसका कथन है-यह मेरा घर है, इसमें मेरी इच्छा के खिलाफ कुछ भी नहीं हो सकता ।"[1] इसी मानसिकता के कारण परिवार और अपनी पत्नी के प्रति उसका जो आत्मीय संबन्ध है वह क्रमशः टूट जाता है और पारिवारिक वातावरण में तनाव की स्थिति उत्पन्न होती है । रघुवीर सिन्हा के शब्दों में, "परिवार के मुखिया की भूमिका और पिता की भूमिका सभी एक ही व्यक्ति में समाहित होकर एक आधिकारिक भूमिका बनाती है पर वह पाता है कि समय और अनुपस्थिति ने मिलकर इनमें एक प्रकार का बिखराव पैदा कर दिया है और वह अपनी सारी शक्ति और सामर्थ्य इस बिखराव को पाटने में लगा देता है ।"[2] इस कहानी में तनाव को गहरे स्तर पर अंकित किया गया है । यह कहानी मात्र तनाव की ही कहानी नहीं है तनाव से उभरने की भी कहानी है । इसलिए पति के जाने के उपरान्त वह पडोसी घर की सहायता लेने को चूकती नहीं है । वस्तुतः कहानी का यह पक्ष यथार्थ की गहरी पहचान से युक्त है ।

मन्नू भंडारी से लिखी हुई एक दूसरी चर्चित कहानी है, "अकेली" । कहानी की सोमा बुआ घर में अकेली रहती है । उसका पति पुत्र-वियोग के आघात से सन्यासी हो चला है । वह अपने अकेलेपन की व्यथा को हल्का करने केलिए अपने पडोस के लोगों के साथ मिल-जुलकर रहती है । उनके सुख और दुःख, दोनों में वह परिवार के एक सदस्य के रूप में भाग लेती है । उसका पति हर साल एक महीने केलिए उसके साथ आकर रहता है । जब वह आता, तब वह और भी आकुल हो जाती, क्योंकि उसका स्नेहहीन व्यवहार बुआ के जीवन का स्वच्छन्द प्रवाह रोक देता है । उस समय उसका घूमना-फिरना, मिलना-जुलना-सब बन्द हो जाता है ।

---

1. "शायद" – मेरी प्रिय कहानियाँ – मन्नूभंडारी – पृः 146.
2. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य : मूल्यों से प्रयाग – रघुवीर सिन्हा और शकुंतला सिन्हा (प्रथम संस्करण 1980) – पृः 51.

उसका पति उससे यों कहा करता है - "तू जबरदस्ती दूसरे के घर में टाँग अड़ाती फिरती है।"[1] वह अपनी पड़ोसिन, राधा से कहती है - "मन तो दुःखता ही है कि एक महीने को आते हैं तो भी कभी मीठे बोल नहीं बोलते। मेरा आना-जाना इन्हें सुहाता नहीं।"[2]

कहानी में यह शैथिल्य सामान्य ढंग से ही चित्रित किया गया है। परन्तु यह सामान्य नहीं है। जीवन से पलायित व्यक्ति पति होने के अधिकार से पत्नी की जीवनाकांक्षा को रोकने का प्रयास कर रहा है। समधि के रिश्तेदारों के यहाँ से निमंत्रण की इच्छा रखने के बाद जब वे लोग सोमा बुआ को निमंत्रित करने नहीं आए तो इसलिए सोमा बुआ टूट जाती है कि उसका वास्तविक संबन्ध निराधार हो चुका है और अब यह विचार, कि कहीं न जुड़ पाने की बात, उसे शिथिल कर देता है। पारिवारिक स्थितियों की द्विमुखी संकीर्णता पर आधारित इस कहानी का यथार्थ मानवीय पक्ष से संबन्धित है।

राजेन्द्र यादव की "टूटना" निम्नमध्यवर्गीय परिवार के किशोर और उच्चवर्ग की लीना का दाम्पत्य-सम्बन्ध के विघटन की कहानी है। इस सम्बन्ध-विघटन के पीछे मनोवैज्ञानिक असमानता के अलावा, मूल में कुछ समाजशास्त्रीय कारण भी है। आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश की भिन्नता और पारिवारिक पृष्ठभूमि की असमानता दाम्पत्य-सम्बन्धों के असफल होने का मुख्य कारण हो सकता है। रघुवीर सिन्हा की दृष्टि में "टूटना" की संज्ञा अपने आप में एक व्यापक अर्थबोध भी समोए हुए हैं। व्यक्ति-विशेष तक सीमित न रहकर यह संज्ञा वर्ग अथवा समाज-विशेष की भी संकेतक बन जाती हैं, और कहीं कहीं काल विशेष की भी। "टूटना" में किशोर और लीना का अभिव्यक्त टूटना उनके अपने वैवाहिक जीवन और प्रणय का ही टूटना नहीं है, वरन् वह अपने साथ अपने समाज के उस टूटने का भी

---

1. "अकेली" - मेरी प्रिय कहानियाँ - मन्नू भंडारी - पृः 12.
2. वही - पृः 12-13.

पर्याय है, जो आज की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में गहरे रूप से अनुभूत तनाव और घुटन की स्वाभाविक परिणति है ।"[1] आर्थिक असमानता से उत्पन्न तनाव प्राय: परिवार में अन्य प्रकार के तनावों को भी उत्पन्न कर सकता है । वस्तुत: यह हमारे सामाजिक जीवन का संकट ही नहीं है बल्कि हमारी संस्कृति का भी संकट है । अत: "टूटना" शीर्षक कहानी मात्र दाम्पत्य जीवन की टूटन की कहानी नहीं है ।

कृष्ण सोबती की कहानी, "कुछ नहीं, कोई नहीं" में पति-पत्नी के संबन्धों के विघटन से तनाव की स्थिति उपस्थित होती है । कहानी के आनन्द और शिवा विवाहित हैं । ऊपरी तौर पर उन दोनों के दाम्पत्य में कोई समस्या नहीं है । शिवा अपने पति को प्यार तो करती है । और उससे अलग होना नहीं चाहती । किन्तु स्थितियाँ उसके नियन्त्रण में नहीं रहतीं । दूसरी ओर पति के मित्र, आनन्द के प्रति उसके मन में एक तरह का अस्पष्ट और अव्याख्येय भाव विकसित होता है । किन्तु वह संयम करती है । लेकिन एकदिन क्षण भर केलिए वह अपना सुध-बुध खो बैठती है । उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे याद नहीं । रूप के नाम वह खत लिखती है - "आनन्द ने काफी गिरते देख बढ़कर हाथ को थामना चाहा, कि हाथ से छूते ही ठहर गए हाथ पर पडे हाथ आँखों से एक दूसरे को कुछ कहते थे और बह आते थे । कई महीनों का संयम पल भर केलिए कडा होकर रुका और रुकते ही पानी हो गया । आनन्द मेरी ओर घिरा, मैं उसकी ओर ।"[2] ". . . मैं उस दिन जैसे तुम्हारे कडेपन की चट्टान पर से होकर बहती थी आनन्द की ओर ।"[3] तब से वह आनन्द के साथ रहने लगती है । किन्तु उनकी विडम्बना

---

1. "आधुनिक हिन्दी कथा - साहित्य : मूल्यों से प्रयाण - रघुवीर सिन्हा - शकुंतला सिन्हा - (1980) - पृ: 20.
2. "कुछ नहीं, कोई नहीं" - बादलों के घेरे (1985) - कृष्ण सोबती - पृ:82.
3. वही - पृ: 79.

यह है कि एकसाथ रहने पर भी उन्हें चैन नहीं मिलता - तब भी उन दोनों के मन में अपराध की भावना उमडती है । वह लिखती है - "नाते रिश्तों को छोटा कर देनेवाली नज़रें, मित्रों और परिचितों की उघाडनेवाली दृष्टि और जी पर किसी बहुत बडे अपराध का एक बोध-रूप, तुम्हें मैं ने कम यातना नहीं दी, तुम्हारे दर्द को कम निर्दयता से नहीं उछाया पर चारों ओर से खुली जिस गृहस्थी में मैं ने इतने वर्ष बिता दिये उसमें न भली गृहस्थी का परदा था, न परिवारवाले घर की-सी गरमाई थी, बस, दिन-रात जागती एक प्यार की चाह थी । प्यास थी एक दूसरे को बाँध लेने की । एक दूसरे को जी लेने की ।"[1] उसका जीवन तब बिलकुल त्रासद बन जाता है जब आनन्द बीमार होकर मर जाता है । वह आगे लिखती है - "अभागी वह घडी थी और अभागे हम दोनों थे जो तुम्हारे और अपने सौभाग्य से एक साथ ही दूर हो गए । ऐसे भाग्यहीन हो गए जिन्हें कोई सा सौभाग्य नहीं सोहता । आज अकेली हूँ । पर जैसे यह भी कोई नया दुर्भाग्य नहीं है । लगता है, वही पुरानी दुर्भाग्य की कडी है जो समय के साथ खुल-खुलकर मुझसे लिपटती जाती है ।"[2] इस तनावग्रस्त स्थिति में वह अपनी और आनन्द की सारी संपत्ति आनन्द के बच्चों में बाँट देकर अकेली कहीं चली जाती है । उसका कथन है, "कहाँ रहूँगी, कहाँ जाऊँगी, कुछ पता नहीं । रूप, अब किसे आज जानना है मैं कहाँ हूँ . . . मैं क्या हूँ? मैं किसी की कुछ नहीं, कोई नहीं . . . ।"[3] इस कहानी में पारिवारिक जीवन का व्यक्ति-सन्दर्भ प्रमुख हो गया है । लेकिन व्यक्ति-सन्दर्भों की ये सीमाएँ सामाजिक संकट से अवश्य ही जुडी हुई हैं ।

नए सन्दर्भ में मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुषों का दाम्पत्य जीवन विश्वास, सहयोग और समझौते के महीन और नाज़ुक तन्तुओं से बुना हुआ है । सन्देह या

---

1. "कुछ नहीं, कोई नहीं" - बादलों के घेरे - कृष्णा सोबती - पृ: 81.
2. वही - पृ: 82.
3. वही - पृ: 84.

अविश्वास की एक सूक्ष्म चिनगारी पूरे दाम्पत्य को बर्बाद कर सकती है। एम. टी. वासुदेवन नायर की कहानी, "इडवषियिले पूच्चा मिंडापूच्चा" {Alley Cat, Silent Cat} में मध्यवर्ग के शिक्षित पति-पत्नी है। पति डा. राजा एक प्रसिद्ध "इकणोमिस्ट" है और पत्नी मिसेज़ राजा एक कालेज की प्राध्यापिका है। उनके दो बच्चे भी है, सण्णि और वनजा। उनका दाम्पत्य जीवन सुख और चैन से बीत रहा था। उनके जीवन की त्रासदी तभी शुरु होती है जब मिसेज़ राजा एक क्षण के प्रलोभन को नियन्त्रित कर नहीं पाती। उस एक क्षण केलिए वह अपनी सुधि खो बैठती है और अपने घर में आए उस युवक की प्रेमाभ्यर्थना को वह चाहकर भी अस्वीकार कर नहीं सकी। यह "अपराध", जब बाद में दुहराया जाता है तब उस दाम्पत्य-जीवन में तनाव उपस्थित होता है। यह तनाव बढकर उन दोनों के अलग होने की नौबत तक पहुँचती है। पत्नी के नाम लिखे पत्र में डा. राजा ने लिखा - "हमारे घर में ही रहें। सब-कुछ पुराने जैसे जारी हो। हमारा जो संबन्ध है, मात्र वह जारी किया नहीं जाता।"[1] अपने अलगाव की यह बात वे दोनों अपने बच्चों से छिपा लेते हैं। इसीलिए वह अपनी पत्नी के नाम हर महीने रूपये भेजते हैं। इस तरह वे अपने बच्चों के सामने नाटक के पात्रों के समान अभिनय कर रहे थे। लेकिन जब बच्चे बडे हो जाते हैं, तब वे इस अभिनय को समाप्त करने को बाध्य हो जाते हैं। अपने ही परिवार में मिसेज़ राजा को अजनबी और फालतू होने का-सा अनुभव हो रहा है। वह सोचती है - "जब मैं कमरे में घुसी, तब वनजा अपने भाई से दबे स्वर में कुछ कह रही थी। सण्णि सुन रहा था। उसकी आवाज़ ज़्यादा अजनबी हो रही है। बेटी के चेहरे का प्रकाश फीका पड गया है। बक्से के ऊपर से वह नीचे उतरी। सण्णि एक युवक बन गया है। मोटी ऐनक। चेहरे पर एक युवक का भाव है।"[2] सण्णि को बार्डिंग ले जाते समय वह

---

1. "इडवषियिले पूच्चा मिंडा पूच्चा"
   एम. टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 597.
2. वही - पृ: 593.

सोचती है - "बच्चों केलिए यह अभिनय कुछ दिनों केलिए और जारी रखना है। .... शायद नाटक का अन्त होनेवाला है। शायद वह लौट नहीं आयेगा, वह लौट नहीं आयेगा।"[1] अपने परिवार में फालतू और अजनबी होने की यह स्थिति उसके जीवन को ज्यादा संकटग्रस्त बनाती है। प्रस्तुत कहानी में पारिवारिक जीवन के तनाव को व्यक्ति जीवन के स्तर पर उठाया गया है।

एम. टी. वासुदेवन नायर की "वारिक्कुषि" ("गड्ढा") में उच्चवर्गीय परिवारों की तनावपूर्ण स्थितियों का चित्रण मिलता है। यहाँ अनमेल विवाह के कारण तनाव की स्थिति उपस्थित हुई है। कहानी में निम्नमध्यवर्गीय शंकरनकुट्टि की शादी उच्चवर्ग की सुभद्रा के साथ होती है। सुभद्रा का पति होने के कारण वह उसके परिवार की सारी संपत्ति और बडी जायदाद का स्वामी बन जाता है। किन्तु अपनी ही हीनग्रन्थियों के कारण वह अपने को इतनी बडी जायदाद और संपत्ति के स्वामी के रूप में नहीं मानता। अपने को सुभद्रा का पति मानने में भी वह झिझकता है। इसी मानसिकता के कारण उसे बेगानापन का एहसास होता है। वह सोचता है - "जब मैं अकेला था, तब यही सोचा था कि मेरा सब कुछ है, यद्यपि उन दिनों अपना कहने को कुछ भी नहीं था। अब एक विस्तृत संसार अपना है। तो भी लगता है कि अपना कुछ नहीं है।"[2] उसे लगता है कि वह सुभद्रा के बहाने जी रहा है। "सुभद्रा के जंगल, सुभद्रा के "एस्टेट", सुभद्रा की संपत्ति - चूँकि मैं उसका पति हूँ, इसलिए मैं इन सब का स्वामी हूँ। इस विचार से मैं अन्य अमीर व्यक्तियों के साथ शहर में घूमता रहता हूँ।"[3] पहाड में उनकी अपनी ज़मीन है, जहाँ हाथियों को गड्ढे में गिराकर पकडा जाता है।

---

1. "इडवषियिले पूच्चा मिंडा पूच्चा"
   एम. टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 598.
2. "वारिक्कुषि" (गड्ढा) - वही - पृ: 419.
3. वही - पृ: 415.

गड्ढे में गिरते हाथि को देखने जब शंकरनकुट्टि जाने को तैयार होता है, तब सुभद्रा कहती है - "दस बजे के पूर्व मैं माँ के साथ वहाँ आ पहुँचूँगी । तब तक हाथी को गड्ढे में से बाहर चढा देना होगा ।"[1] सुनकर उसे ऐसा लग रहा है कि उसके शब्दों में अधिकार का स्वर है । कठिन प्रयत्न कर हाथी को गड्ढे में से बाहर निकाल दिया जाता है । लेकिन तब तक वह मर चुका था । सब दुःखी हो जाते हैं । किन्तु शंकरनकुट्टि के मन में तनिकभी दुःख नहीं । अपनी पत्नी और उसकी संपत्ति के प्रति उसके मन में विद्वेष और प्रतिशोध की भावना एक-साथ फूट पडती है । मन में वह फूले न समाता है । "उसे जोर से चिल्लाने की इच्छा हुई । हाथी की मृत्यु हुई । 'कोट्टमला' सुभद्रा के हाथी की मृत्यु हुई ।"[2] हाथी की मृत्यु की घोषणा वह इसलिए ऊँचे स्वर में कह देना चाहता है कि मरने के कारण वह हाथी स्वतन्त्र हो गया है । अन्यथा लगातार उसे काम करना पडता । शंकरनकुट्टि का अस्वतंत्र-अनुभव करना हीनता-बोध का प्रतिफलन मात्र नहीं है अपितु आर्थिक अनबन से उत्पन्न सामाजिक संकट का प्रतिफलन भी है ।

माधविकुट्टि की "रात्रियिल" (रात में) शीर्षक कहानी में पारिवारिक जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों के एक और आयाम का परिचय मिलता है । इसमें पति और प्रेमी में से एक को स्वीकार करने में असमर्थ पत्नी के मानसिक संघर्ष और तनाव का चित्रण मिलता है । कहानी की सुमति को उसका पति उसकी इच्छाओं की पूर्ति अवश्य कर देता है । वह कभी भी उससे नाराज़ नहीं हो जाता है । किन्तु वह उससे प्यार करना नहीं जानता है । इसीलिए सुमति भी उस घर की अन्य अनेक वस्तुओं के समान एक "वस्तु" बन जाती है । वह चाहे अच्छी साडी पहनकर खडी हो या जैसे भी हो पति का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता ।

---

1. "वारिक्कुषि" (गड्ढा) - एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 417.
2. वही - पृ: 435.

शाम को दफ्तर से आते ही वह किसी पुस्तक में मग्न होता है । वह सोच रही है - "फिर क्यों यह आदमी रात को अपनी यौन-सम्बन्धी चपलताएँ दिखा रहा है । उसे घृणा-सी लगती है । उस व्यक्ति से, और वैवाहिक जीवन से भी । . . . पूरे आराम के साथ सोते हुए उस आदमी को देखने पर उसे ऐसा लगता है, जानवर . . . निरा जानवर . . . और मैं उसका गुलाम ।"[1] अपने दाम्पत्य-जीवन से ऊबकर वह राजन नाम के एक दूसरे व्यक्ति के साथ संबन्ध स्थापित कर लेती है । किन्तु तब भी उसे चैन नहीं मिलता है । दाम्पत्य के बन्धन से शारीरिक तौर पर मुक्त होने पर भी मानसिक तौर पर मुक्त हुए बगैर दूसरे रिश्ते से चैन नहीं मिल सकता । दाम्पत्य जीवन की पुरानी मूल्यगत मान्यताओं को पूर्णतः अस्वीकार किए बिना वह किसी दूसरे व्यक्ति के साथ के संबन्ध नहीं रख सकता । इस स्थिति में सुमति राजन से सच्चे प्रेम की तलाश नहीं कर सकती है । अपराध बोध के साथ जिस नए संबन्ध के साथ जुड जाती, जिसके फलस्वरूप उसका जीवन अधिक जटिल हो जाता है । उसका यह सहज प्रेम आत्मपीडा का कारण भी बन जाता है । वह सोचती है । "प्रेम ने मुझे पीडा ही दी है । - आनन्द की अपेक्षा अवसाद । क्या उसका मूल ही धोखेबाजी है'"[2] कभी उसे ऐसा भी लगता है - "इस छिपाव को समाप्त कर राजन के साथ कहीं भाग जाये' सभी से सत्य कहकर राजन की पत्नी हो जाये' संसार से यह क्यों नहीं बताया जाय, कि राजन और मैं प्रेमी-प्रेमिका है ।"[3] किन्तु, उसे मालूम है ऐसा करने से उसका पति दुःखी हो जायेगा । यह भी वह नहीं चाहती । इसप्रकार वह यह निर्णय नहीं कर पा रही है कि पति और प्रेमी में से किसको स्वीकार करे और किसको अस्वीकार करे । प्रेम-

---

1. "रात्रियिल" {रात में} - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृः 147.
2. वही ।
3. वही ।

कहानियों के बदलते हुए स्वरूप की व्याख्या करते हुए श्रीकान्तवर्मा ने लिखा है - "हम दूसरे को न तो पूरी तरह स्वीकार कर पाते हैं, न पूरी तरह अस्वीकार। इस स्वीकार और अस्वीकार के बीच एक भयानक छटपटाहट है, और यही आज की स्त्री-पुरुष की नियति है।"[1] इस कहानी की सुमति की भी यही नियति है जिससे उसका जीवन तनावग्रस्त हो गया है।

टी. पद्मनाभन की एक चर्चित कहानी "दुःखम" (दुःख) भी पारिवारिक संबन्धों के बिखराव की अभिव्यक्ति है। नौकरी से निवृत्त होकर कहानी का "वह" घर आया हुआ है। घरवालों का आचरण उसे अजीब-सा लगता है। उसे लगता है कि घरवाले उससे बहुत दूर हैं। यहाँ तक कि माँ के शब्दों और व्यवहारों में भी वह पुरानी आत्मीयता और सहजता का अनुभव नहीं कर पा रहा है। उसे देखते ही बच्चे अपना गाना समाप्त कर देते हैं। "उनके बीच में उसे एक तरह का परायेपन का एहसास हुआ। उसे ऐसा लगा कि वह कभी उनमें एक नहीं हो सकता।"[2] मालूम होता है कि सभी प्रकार के रिश्ते अर्थ पर अधिष्ठित है। पहले उस घर का एकमात्र आश्रय वही था। कठिन प्रयत्न कर उसने घरवालों का पालन किया है। उनदिनों वे आत्मीय थे। लेकिन अब वे सब धन के पीछे दौडने लगे हैं। साथ ही साथ संबन्धों की सहजता भी उनमें लुप्त चली है। "माँ के और कालेज में पढनेवाले भतीजे के नाम हर महीने वह रुपया भेजा करता था। पहले वह नियमित ढंग से खत भी लिखा करता था। बाद में वह धीरे धीरे कम होता गया। अन्तमें वह बिलकुल खत्म हो गया। उसे लगा कि वे सब उससे अलग हो रहे हैं।"[3] धन के लोभ के ही कारण उसकी बडी बहन अपने बेटे की शादी अमीर घराने से करा देना चाहती है। अपने अहाते का आम का बडा पेड काट

---

1. प्रेम कहानियों का बदला हुआ स्वरूप - श्रीकान्तवर्मा - नई कहानी - दशा, दिशा और संभावना - (1966) - सं. सुरेन्द्र - पृ: 231.
2. "दुःखम" (दुःख) - टी. पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 230.
3. वही - पृ: 231.

डालने में और बूढ़ी गाय को बेच देने में घरवालों को तनिक भी दु:ख नहीं है । लेकिन वह अतीव दुखी हो जाता है । मनुष्य मात्र के प्रति ही नहीं जन्तुओं और पौधों को भी प्यार करनेवाला एक व्यक्ति पद्मनाभन के कलाकार का मूर्त रूप है । इसीलिए एम.तोमस मात्यु उन्हें स्निग्ध प्रेम का कथाकार मानते हैं । "एकाकी और असहाय व्यक्तियों की कथाओं से भी पद्मनाभन हमें जीवन को प्रेम करने की सीख देते हैं । दु:ख की स्मृतियों में से होकर वह चलनेवाले ये पात्र प्रेम की अमृतधारा के स्रोत बन जाते हैं ।"[1] यह धारा भावुकता की अभिव्यक्ति नहीं है । यह निजता की पहचान है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

परिवार समाज की सुदृढ इकाई है । अत: कोई भी पारिवारिक उथल-पुथल सामाजिक स्थिति का परिचायक ही है । अर्थात सामाजिक विडंबनाओं या सामाजिक संकट के प्रक्षेपण के रूप में ही इन पारिवारिक अव्यवस्थाओं को देखना है । पारिवारिक स्थितियाँ हर कहानीकार केलिए अत्यन्त निकट की हैं । अत: हर युग में, युगीन अवस्थाओं के अनुरूप पारिवारिक कहानियाँ लिखी गई हैं । आधुनिक युग भी कोई अपवाद नहीं है । आधुनिक युग की जिन हिन्दी और मलयालम कहानियों में पारिवारिक स्थितियों को उजागर किया गया है उनमें समय की विडंबनाओं के विविध कोण हमें मिल जाते हैं । जीता-जागता कोई व्यक्ति, अपनी सचेतनता के कारण कभी अकेला पड़ता व्यक्ति इनमें प्राय: दृष्टिगोचर होता है ।

---

1. तप्त स्मृतियों से रिसनेवाली प्रेम-धारा - एम.तोमस मात्यु - मातृभूमि साप्ताहिक - 1984 दिसम्बर 30, 1985 जनवरी 5 - पृ: 47.

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानी, "शायद" केलिए ऐसे एक परिवार की कथा चुनी है जिसमें विघटन के माध्यम से स्त्री के स्वत्व को ढूँढा गया है। लेकिन इसमें विद्रोह की कोई चिनगारी फूटती दर्शाई नहीं गई है। अतः यह परिवार की उस निजता की कहानी है जो उसके वास्तविक परिवेश में अन्वेषित हुई है। "शायद" की स्त्री पति के पाने के बाद पडोसी के यहाँ से सहायता लेने हिचकती नहीं, जिसका विरोध उसके पति ने किया था। इसमें कोई प्रतिशोध भावना भी नहीं है। "शायद" की पत्नी 'परिवार में' जीती है, और "शायद" का पति 'परिवार को' देखता है। सामाजिक विडंबना या तनाव का अंश इन दोनों के दृष्टिकोण से अनुभव किया जा सकता है। माधविक्कुट्टि की मलयालम कहानी, "रात में" और 'शायद' की बाह्य स्थितियाँ अलग सी लग रही हैं। "रात में" कहानी का पति अपनी पत्नी केलिए यांत्रिक ढंग से सब कुछ देता रहा है। लेकिन वह पति उस पत्नी केलिए दूसरी वस्तुओं में से एक जैसी ही है। इसी स्तर पर इन दोनों कहानियों की स्त्रियों की अधिक तुलना हो सकती है। इस दृष्टि से देखें तो पता चलेगा कि मलयालम कहानी में स्त्री के स्वत्व को पहचानने का प्रयास हुआ है। लेकिन मलयालम कहानी में स्त्री की तरफ से उस तनाव को व्यक्त किया गया है जिससे वह पूर्ण रूप से मुक्त हो जाना चाहती है। पर वह मुक्त नहीं हो पाती। वह अपने प्रेमी को भी स्वीकार कर नहीं पा रही है। "शायद" में यह छटपटाहट आन्तरिक स्तर पर विन्यसित है। इन दोनों कहानियों में पारिवारिक मूल्यों के रूढियों में बदलने से स्त्री के स्वत्व बोध के लुप्त हो जाने की ओर पर्याप्त संकेत मिलते हैं। इन महिला कहानीकारों ने स्त्री के स्वत्वबोध की वास्तविक पहचान पत्नीत्व की पारिवारिक भूमिका के सन्दर्भ में अंकित भी है।

एम. टी. वासुदेवन नायर की कहानी, "इडवषियिले पूच्चा, मिंडापूच्चा" (Alley Cat, Silent Cat) और कृष्णा सोबती की कहानी, 'कुछ नहीं कोई नहीं' की तुलना भी कई स्तरों पर संभव है। दोनों कहानियों में दुहरे संबन्ध के कारण उत्पन्न तनाव का चित्रण है। सवाल यह है कि दुहरे संबंध की

अनिवार्यता क्यों हुई है? दोनों कहानियों में चित्रित स्त्रियाँ विकृत मानसिकता के शिकार नहीं हैं। फिर यह अनिवार्यता क्या संयोग मात्र है? घटनाओं को सतही ढंग से व्याख्यायित करते समय संयोग का आभास मिल सकता है। परंतु ये दोनों कहानियाँ दाम्पत्य विघटन की अन्दरूनी स्थितियों से संबंधित हैं। अतः इनमें चित्रित विघटन संयोग मात्र नहीं है। अतः दोनों कहानियों में उस स्थिति से अलग हटने याने जीवन मात्र से अलग हटने की स्थिति या त्रासद प्रसंग भी आया है।

मन्नू भंडारी की "अकेली" और टी.पद्मनाभन की "दुःख" की तुलना का एक खास सन्दर्भ है। इन दोनों कहानियों में अकेले बने हुए दो पात्र हमें मिल जाते हैं। इनका अकेलापन इनकी पारिवारिक स्थितियों की परिणति मात्र है। यह अकेलापन इसलिए उन्हें अखरता है कि इनकी जीवन-स्थितियों में सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न रहा है। अपने खुद के जीवन के त्रासद प्रसंगों से ऊपर आने के उपरान्त परिवार में वे अपने को पहचानना चाहते हैं। पर परिवार उन्हें उस गर्त में गिरा देता है जहाँ मनुष्य पर आस्था रखनेवाले लोग ही गिरे पड़े हैं। इन दोनों कहानियों में मूल्यहीनता का तनाव ही वस्तुतः प्रमुख हो उठा है। अतः दोनों कहानियों के मुख्य पात्रों के इर्द गिर्द घटी छोटी-छोटी घटनाएँ मूल्यहीनता के सन्दर्भ के महत्वपूर्ण उदाहरण बन गई हैं।

एम.टी. वासुदेवन नायर की कहानी "गड्ढा" और राजेन्द्र यादव की कहानी "टूटना" उस टूटन की अनिवार्यता की कहानी है जो जुड़ने के बजाय टूट ही सकते है। दोनों कहानियों की पारिवारिक तुलना आसानी से की जा सकती है। लेकिन दोनों कहानियों की वास्तविक स्थिति अधिक तुलनीय है। ये कहानियाँ हमारी समाजिक स्थितियों की असंतुलित अवस्था से संबंधित रचनाएँ हैं। इस असंतुलन का मुख्य पक्ष संपत्ति ही है। जब हमारे संबंध, मूल्य, भाव या विकार अर्थ पर देखा या अनुभव किया जाता है तो वे कुछ है ही नहीं है। यह एक भारतीय दृष्टिकोण है। संयोग को प्रमुखता देते हुए भी भारतीय दृष्टि मूल्य को उसके ऊपर ग्रहण करती है। परन्तु आधुनिक उपभोगवादी संस्कृति ने भारतीय

समाज को तथा भारतीय पारिवारिक स्थितियों को इस कदर उजाड़ा है कि अब भारतीय दृष्टि एक संकल्प मात्र रह गई है । अतः ये दो कहानियाँ हमारी उपभोगवादी संस्कृति की अवांछित दिशा की ओर संकेत करती है । "टूटना" की टूटन, "गड्ढा" का गड्ढा समान प्रतीकात्मक स्थितियों को ही द्योतित कर रहे हैं ।

इस प्रकार के पारिवारिक विडंबनाओं के चित्र रामकुमार की कहानी, "सेलर" में, कृष्ण बलदेव वैद की "शैडोज़" में तथा पी. वत्सला और मुकुन्दन की अनगिनत कहानियों में मिल ही जाते हैं । इन कहानियों का व्यक्ति-सन्दर्भ और सामाजिक-सन्दर्भ एक दूसरे से घुल मिलकर हमारी सामाजिक विडंबनाओं की गहराई को तीव्रता के साथ अभिव्यक्त करते हैं । तुलनात्मक दृष्टि से देखते समय इन कहानियों का यह खास वैशिष्ट्य भी सामने आता है जो इनमें स्वीकृत और उल्लंघित यथातथ्यता का अंश है । सामान्य स्थितियों के चित्रण के दौरान ही यथातथ्यता का उल्लंघन हुआ है । पर इसकेलिए अयथार्थ घटनाओं का चित्रण कहीं नहीं मिलता है भले ही कुछ प्रतीकात्मक संकेत प्राप्त हों ।

व्यंग्य-विद्रूपता के नए आयाम

आधुनिक कहानी, सामाजिक यथार्थ को जिस रूप में संप्रेषित करती है उसमें प्रारंभ से ही व्यंग्य का सशक्त प्रयोग देखा जा सकता है । पूर्व-आधुनिक युग में हास्य-व्यंग्य का प्रयोग केवल मनोरंजन केलिए हुआ है । लेकिन बाद में व्यंग्य का सामाजिक सन्दर्भ विस्तार पाता गया है । प्रेमचन्द युग में स्वयं प्रेमचन्द की और प्रेमचन्दोत्तर युग में यशपाल, अश्क आदि की कुछ एक कहानियों में व्यंग्य का अच्छा खासा संस्पर्श मिलता है । "पूस की रात", "कफन" जैसी चर्चित कहानियों में प्रेमचन्द ने व्यंग्य का प्रयोग एक कलात्मक हथियार के रूप में किया है । "पूस की रात" का हल्कू खेत चौपट हो जाने पर भी प्रसन्न है कि वह सोचता है उसे पूस की सर्दी में सोना तो नहीं पड़ेगा । "कफन" के

बाप-बेटा सब कुछ लुट जाने पर भी ताडी के नशे में गाते हैं, "ठगिनी क्यों नैना झमकाव" ।[1] प्रेमचन्दोत्तर युग में यशपाल ने व्यंग्य का सशक्त प्रयोग किया है । अज्ञेय की एकाध कहानियों में व्यंग्य का संस्पर्श देखा जा सकता है । जो हो हर युग में व्यंग्य सामाजिक दृष्टि का सही प्रक्षेपण रहा है । आधुनिक दौर में जीवन की अनेकानेक विडंबनाओं और विसंगतियों का पर्दाफाश व्यंग्य के द्वारा ही किया गया । नए युग की कहानियों में व्यंग्य का जो परिवर्तित रूप दिखाई पडता है वह समकालीन युगबोध की अनिवार्यता के अनुकूल है । परिवेश की विसंगतियों और लगातार जटिल और विकराल होती जा रही समस्याओं को न भावुक होकर चित्रित किया जा सकता है और न तटस्थ रहकर ही उनका सामना किया जा सकता है । मन्नू भंडारी के मतानुसार, "इसे चित्रित करने का शायद यही उपयुक्त रास्ता रह गया है कि इसपर व्यंग्य किया जाय इसका मखौल उडाया जाय ।"[2] धनंजय वर्मा ने लिखा है - "पिछले दौर के कुछ कलावादियों की तरह अप्रतिबद्ध और असंबद्ध लेखन-मुद्रा उनकी (युवा-लेखन की) नहीं है, एक तीखी सामाजिक और राजनीतिक चेतना लिए हुए वह पूरी तरह प्रतिबद्ध और पक्षधर लेखन है, लेकिन यह फिर राजनीतिक कार्यक्रमों या पार्टी से प्रतिबद्धता नहीं है, वह मानवीय संबद्धता और पक्षधरता ही है । वह सामाजिक जागरूकता का ही व्यापक सन्दर्भों में प्रसरण है । इसी व्यापक सामाजिक जागरूकता और राजनीतिक चेतना के कारण उनका प्रमुख स्वर अब व्यंग्य का है, व्यंग्य-प्रखर, तिलमिला देनेवाला और चौतरफ ।"[3] नए युग में व्यंग्य को जो महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड रही है उसके बारे में वे आगे लिखते हैं - "व्यंग्य को अब तक एक नकारात्मक योजना समझा जाता रहा है,

---

1. "कफन" - प्रेमचन्द - भारतीय श्रेष्ठ कहानियाँ (1987) - प्रबन्ध संपादक : सन्हैयालाल ओझा - पृ: 464.
2. सारिका - सितंबर 1970 - पृ: 89.
3. धनंजय वर्मा - हिन्दी कहानी : कहाँ से कहाँ तक - एक परिसंवाद - आजकल, दिसंबर 1969 - पृ: 9.

लेकिन अब यही व्यंग्य एक बहुत सचेत आक्रमण का साधन है - निहायत तटस्थ और निर्मम भाव से, अनुत्तेजित और संतुलित, सामाजिक विद्रूप और विघटन, राजनैतिक भ्रष्टाचार और अवसरवादिता {के व्यवस्थागत कारणों} पर चोट करता हुआ, नेपथ्य की निहित शक्तियों को बेनकाब करने की कोशिश में । यही नहीं, कहीं हमें अपना चेहरा दिखाने की कोशिश में भी ।"[1]

नये कहानीकारों में सर्वाधिक श्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई हैं । उनकी कहानियों में अभिव्यक्त व्यंग्य हमारे सामाजिक-राजनीतिक जीवन की विडंबनापूर्ण स्थितियों को रेखांकित करता है । व्यंग्य-विद्रूपता पर बहस करते हुए परसाई जी ने यों लिखा है - "व्यक्ति और समाज के जीवन की भीतरी तहों में जाकर विसंगति खोजना, उन्हें अर्थ देना तथा सशक्त विरोधाभास से पृथक करके जीवन से साक्षात्कार करना दूसरी बात है । सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा होता है । वह मनुष्य को सोचने केलिए बाध्य करता है और जीवन में व्याप्त मिथ्याचार, पाखंड, असामंजस्य और अन्याय से लडने केलिए उसे तैयार करती है ।"[2] नए कहानीकारों में भीष्म साहनी, अमरकान्त, कमलेश्वर आदि ने भी ऐसी कुछ कहानियों की रचना की है जिनमें सामाजिक यथार्थ का व्यंग्यात्मकचित्रण हुआ है । अपने कहानी-संग्रह, 'जिन्दा मुर्दे' की भूमिका में कमलेश्वर ने लिखा है - "अब मुझे लगता है कि अपने समय और परिवेश को समझने में प्राथमिक दृष्टि व्यंग्य की हो सकती है ।"[3]

मलयालम में हास्य-व्यंग्य कहानियों की लंबी परंपरा है । पूर्व-आधुनिक युग की ई.वी. कृष्णपिल्लै और के. सुकुमारन की कहानियों में हास्य का जो पुट है वह मनोरंजन-प्रधान है । यथार्थवादी युग में हास्य और व्यंग्य की

---

1. धनंजय वर्मा - हिन्दी कहानी : कहाँ से कहाँ तक - एक परिसंवाद - आजकल, दिसंबर 1969 - पृ: 9.
2. "इतिहास, विचारधारा और साहित्य" में राजेश्वर सक्सेना द्वारा उद्धृत - पृ:82.
3. जिन्दा मुर्दे - {1970} - कमलेश्वर - पृ: 1.

कहानियाँ बहुत कुछ लिखी हुई हैं । किन्तु उस युग में बशीर एक अपवाद सिद्ध हुए हैं । उनकी कहानियों में व्यंग्य-विद्रूपता की आधुनिक प्रवृत्तियों के प्राय: सभी पहलुओं का अंकन हुआ है । "व्यंग्य-विद्रूपता के प्रति बशीर में जो लगाव है वही उनके व्यंग्य-बोध का मुख्य स्वभाव है । किन्तु कभी उनका स्वर "अइरणी" और परिहास का है ।"[1] उनकी एक बहुचर्चित कहानी है, "विश्वविख्यातमाया मूक्कु" §विश्व-विख्यात नाक§ कहानी के प्रमुख पात्र की नाक दिन-ब-दिन बढती जा रही है । इस लंबी और असाधारण नाक के कारण वह विश्व-भर में प्रसिद्ध होने लगा । "उसकी आय बढने लगी । आखिर क्या कहें, वह निरीह, निरक्षर आदमी छ: वर्षों में लखपति बन गया । उसने तीन फिल्मों में अभिनय किया । उसका फिल्म, "दि ह्यूमन सबमराइन" कितने ही प्रेक्षकों को आकर्षित किया ! छ: कवियों ने उनका गुणगान करते हुए महाकाव्यों की रचना की । नौ लेखकों ने 'मूक्कन' §नाकवाला§ की जीवनी लिखकर पैसा कमाया ।"[2] कहानी के अन्त में उस असाधारण नाकवाले आदमी को अपने दल का सदस्य बनाने केलिए दो राजनीतिक दलों के बीच झगडा होने लगा । प्रस्तुत कहानी हमारे जीवन के थोथरेपन पर व्यंग्य करती है । प्राय: बशीर की कहानियों में व्यंग्य का एक सशक्त स्तर रहता है भले ही वे रचनाएँ व्यंग्यात्मक घोषित न हों ।

सन पचास के बाद की मलयालम कहानी में व्यंग्य विद्रूपता के विभिन्न आयाम दिखाई पडते हैं । नई परिस्थितियों के जटिल और तीक्ष्ण जीवन-यथार्थ को चित्रित करने केलिए नए कहानीकारों ने व्यंग्य-विद्रूपता का सहारा लिया है । वी. के.एन., एम.पी. नारायणपिल्लै, सखरिया, पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला आदि इस युग के अनेकों कहानीकार हैं जिन्होंने अपनी कहानियों में सामाजिक एवं राजनीतिकविसंगतियों पर अपने अपने ढंग से तीखा व्यंग्य किया है ।

---

1. बशीर की कहानियाँ - जी. कुमारपिल्लै - बशीर का संसार - §1985§ - सं. एम. एम. बशीर - पृ: 92.
2. "विश्वविख्यातमाया मूक्कु" §विश्व-विख्यात नाक§ - विश्वविख्यात नाक - §1970§ - बशीर - पृ: 10.

सामाजिक व्यंग्य-कहानियाँ

व्यंग्यकार अपने चारों ओर के परिवेश के सजग दर्शक हैं और वह उन सारी स्थितियों पर प्रहार करता है जिनपर सामाजिक विसंगति अवलंबित रहती है। हिन्दी और मलयालम में ऐसे कई व्यंग्य कहानीकार हैं जो समाज में प्रचलित रूढियों, अनाचारों, अन्धविश्वासों, और पाखण्डों पर खुलकर प्रहार करते हैं। वे अपने लेखन को दुनिया से लडने का एक हथियार बना देते हैं। हिन्दी के प्रमुख व्यंग्य कहानीकार हरिशंकर परसाई ने लिखा है - "मेरे हाथ में कलम है, मैं चेतना संपन्न हूँ। जो हथियार हाथ में है उसी से लडना है। . . . मैं ने सब ढंग से इतिहास, समाज, राजनीति और संस्कृति का अध्ययन शुरु किया। लेखन को दुनिया से लडने केलिए एक हथियार के रूप में अपनाया।"[1] मलयालम के व्यंग्य कहानीकारों के बारे में चर्चा करते हुए एम.अच्युतन ने लिखा - "वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की विसंगतियाँ और विलक्षणताएँ उनकी कहानियों को हास्यात्मक और व्यंग्यात्मक बनाती हैं। अतिरंजना से युक्त वक्तव्यों और विलक्षणताओं से युक्त पात्रों के सृजन के द्वारा पाठकों को हँसा देनेवाली कुछ एक कहानियों के बावजूद उनका व्यंग्य मोटे तौर पर अपनी परिवेशगत प्रासंगिकता और आलोचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।"[2]

हरिशंकर परसाई की एक चर्चित कहानी है, 'भोलाराम का जीव' जिसमें कहानीकार ने सरकारी दफ्तरों के भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी आदि पर व्यंग्य किया है। कहानी में नारदमुनि भोलाराम के जीव को ढूँढते हुए भूमि पर आते हैं। क्योंकि उसकी मृत्यु के पाँच दिन बाद भी उसका जीव यमपुरि नहीं पहुँचा है।

---

1. "इतिहास, विचारधारा और साहित्य" (1983) में राजेश्वर सक्सेना द्वारा उद्धृत - पृ: 82-83.
2. कहानी : कल और आज - एम. अच्युतन - पृ: 248.

यहाँ आकर भोलाराम की पत्नी के अनुरोध के अनुसार उसकी रुकी हुई पेंशन के सिलसिले में वे सरकारी दफ्तर जाते हैं । दफ्तर के बड़े बाबू का कथन है - "भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भी दी थीं, पर उनपर वज़न नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी ।"[1] वज़न की बात को और स्पष्ट कराने केलिए वह आगे कहता है - "जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, इसका भी वज़न भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है ।"[2] यह सुनकर नारद वज़न के रूप में अपनी सुन्दर वीणा उसे दे देता है । तुरन्त ही बड़ा बाबू भोलाराम के केस की फाइल लेकर उसका नाम देखता है और निश्चित करने केलिए उसका नाम पूछता है जब नारद उसका नाम बताते हैं तब फाइल में से आवाज़ आती है - "कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है क्या? पेंशन का आर्डर आ गया?"[3] नारद उसे अपने साथ स्वर्ग आने का निमंत्रण देने पर वह (जीव) कहता है - "मुझे नहीं जाना । मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ । वहीं मेरा मन लगा है । मैं अपनी दरख्वास्तों को छोड़कर नहीं जा सकता ।"[4] सरकारी दफ्तरों में रिश्वत दिए बिना कोई काम नहीं चलता । कहानी में जब नारदमुनि रिश्वत के रूप में अपनी वीणा देने को तैयार होते हैं तो भोलाराम के पेंशन - केस पर कार्रवाई होती है । इस तरह की कई सामाजिक - राजनीतिक कुरीतियों पर भी आनुषंगिक ढंग से कहानीकार ने परामर्श किया है । कहानी के चित्रगुप्त का कथन है - "आजकल पृथ्वी पर इसका व्यापार बहुत चला है । लोग दोस्तों को फल भेजते हैं, और वे रास्ते में ही रेलवे-वाले उड़ा लेते हैं । होज़री के पार्सलों के मोजे रेलवे आफिसर पहिनते हैं । मालगाड़ी के डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं । एक बात और हो रही है । राजनैतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं ।"[5] यह तो सच है कि

---

1. 'भोलाराम का जीव' - सदाचार का तावीज़ (1967) - हरिशंकर परसाई - पृ: 59.
2. वही - पृ: 60.
3. वही - पृ: 61.
4. वही - पृ: 61.
5. वही - पृ: 56.

'भोलाराम का जीव' आज के सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार के विभिन्न पहलुओं से संबन्धित है । परन्तु यह तो कहना पड रहा है कि परसाई की इस कहानी में व्यंग्य का एकमात्र स्तर ही विवृत हुआ है ।

"इतिश्री रिसर्च" शीर्षक कहानी में परसाई ने हमारे विश्व-विद्यालयों में चल रहे तथाकथित शोध पर व्यंग्य किया है। इसमें कहानीकार का लक्ष्य साहित्यिक शोध के नाम पर होनेवाले शोध-आभासों की यथार्थ स्थितियों का पर्दाफाश करना है । कहानी में सन् 1960 में किसी व्यक्ति ने किसी स्मारक के नीचे के शिले पर अपने पुत्र की जिन चार रद्दी पंक्तियों को खुदवाया है उन्हीं को सन् 2950 में शोध करनेवाला रोबर्ट महान कविता सिद्ध करता है और उन पंक्तियों के रचयिता को राष्ट्रकवि का पद देता है । यह रोबर्ट अपने निदेशक से कहता है - "लेकिन सर, वैसे देखा जाय तो ये पंक्तियाँ बहुत रद्दी हैं । निष्कर्ष गलत न हो जाये ।"[1] निदेशक का उत्तर है - "रोबर्ट, तुम्हें शोध का सब से पहला नियम नहीं आता । अरे, जो प्राचीन है वह सब से उत्तम है । बुरा केवल वर्तमान है । और शोध का प्रयोजन ही यह है कि जिसमें जो चीज़ न हो, उसे खोजा जाये । इन पंक्तियों में काव्यगुण नहीं है तो तुम्हें अपनी ओर से आरोपित करना होगा । महाकवि था । कोई हँसी-खेल नहीं है ।"[2] आधुनिक शोधकार्य पर व्यंग्य करनेवाली यह कहानी आधुनिक जीवन-दृष्टि के सस्तेपन की तरफ भी भली-भाँति प्रकाश डाल रही है ।

परसाई की एक और व्यंग्यात्मक कहानी है, 'वैष्णव की फिसलन' जिसमें समाज के ढोंगी और पाखंड भक्तों पर व्यंग्य किया गया है । कहानी का वैष्णव जो अपने को विष्णु भक्त घोषित करनेवाला है समाज के उन ढोंगी और कपट भक्तों का प्रतिनिधि है जो अपने निकम्मे धन्धे को धर्म से जोड रहा है । इस

---

1. "इतिश्री रिसर्च" - जैसे उनके दिन फिरे - (1969) - हरिशंकर परसाई - पृ: 17.
2. वही - पृ: 17-18.

"भक्त" के होठों पर सदा ईश्वरनाम है तो मन में सदा धन कमाने की इच्छा । एक ओर "माया" से मुक्त हो जाने का निरर्थक प्रयत्न, दूसरी ओर उसी माया से चिपके रहने का आकर्षण । इन दोनों के बीच पडे व्यक्ति के नैतिक बोध के बिखराव पर व्यंग्य किया गया है । "दूसरे दिन वैष्णव फिर प्रभु की सेवा में गया । प्रार्थना की: "कृपा निधान, ग्राहक लोग नारी माँगते हैं - पाप की खान । मैं तो इस पाप की खान से जहाँ तक बनता है, दूर रहता हूँ । अब मैं क्या करूँ' " वैष्णव की शुद्ध आत्मा से आवाज़ आयी - मुझे यह तो प्रकृति और पुरुष का संयोग है । इसमें क्या पाप और क्या पुण्य' चलने दें । "वैष्णव ने बैयरों से कहा - चुपचाप इन्तज़ाम कर दिया करो । ज़रा पुलिस से बचकर, 25 फीसदी भगवान की भेंट लिया करो ।"[1] इसप्रकार वैष्णव का होटल खूब चलने लगता है - शराब, गोश्त, कैबरे और औरत । वैष्णव धर्म बराबर निभ रहा है । अपना धन्धा भी खूब चल रहा है । "वैष्णव ने धर्म को धन्धे से खूब जोडा है ।"[2] आधुनिक समाज में ऐसे अनेकों कपट भक्त दिखाई पडते हैं जो अपनी अपनी सुविधा के अनुसार धर्म की व्याख्या कर रहे हैं । धर्म के नाम पर कितने निकृष्ट काम करने केलिए भी वे तैयार हो रहे हैं । ऐसे ढोंगी भक्तों पर कहानी में व्यंग्य किया गया है ।

मोहन राकेश की "परमात्मा का कुत्ता" शीर्षक कहानी सामाजिक यथार्थ का ज्वलन्त परिचय देती है । कहानी में सरकारी दफ्तरों की अफसरशाही, भ्रष्टाचार आदि पर कटु आलोचना की गयी है । कहानी का "वह" अपने परिवार के साथ सन् 1947 के विभाजन के बाद पाकिस्तान से भारत आया है । उन शरणार्थियों को जिस दफ्तर से भूमि "अलॉट" कर दी जाती थी , वहाँ आकर सारे अफ्सरों और कर्मचारियों की वह खूब फटकार करने लगता है । बात तो यह है :

---

1. "वैष्णव की फिसलन" - दो नाकवाले लोग (1983) - हरिशंकर परसाई - पृ: 95.
2. वही ।

जमीन के नाम पर उसे एक गड्ढा ही मिल गया है । उसकी जगह दूसरी ज़मीन मिलने केलिए उसने दो साल के पहले आवेदन दिया था । किन्तु दो साल से अर्जी दो कमरे पार नहीं कर पाई है । उसकी ऊँची आवाज़ सुनकर पहले चपरासी, बाद में दफ्तर के अन्य कर्मचारी और अन्त में कमीश्नर साहब बाहर आते हैं । तब भी वह उन सब पर गाली देता रहा है । - "तुम सब भी कुत्ते हो और मैं भी कुत्ता हूँ । फर्क सिर्फ इतना है कि तुम लोग सरकार के कुत्ते हो । हम लोगों की हड्डियाँ चूसते हो और सरकार की तरफ से भौंकते हो । मैं परमात्मा का कुत्ता हूँ । उसकी दी हुई हवा खाकर जीता हूँ और उसकी तरफ से भौंकता हूँ । उसका घर इन्साफ का घर है । मैं उसके घर की रखवाली करता हूँ । तुम सब उसके इन्साफ की दौलत को लुटेरो हो ।"[1] कमीश्नर साहब के कथन के अनुसार वह उसके साथ दफ्तर के कमरे की तरफ चलने लगता है । उसके केस पर जल्दी ही कार्रवाई होती है और आधे ही घण्टे के बाद वह आदमी मुस्कुराता हुआ बाहर आता है । दफ्तर के बाहर इक्कट्ठे हुए लोगों का सम्बोधन करते हुए वह कहता है - "चूहों की तरह बिटर-बिटर देखने से कुछ नहीं होता । भौंको, सब के सब भौंको । अपने-आप सालों के कानों के परदे फट जायँगे । भौंको कुत्ते, भौंको । . . . हयादार हो तो सालो मुहँ लटकार्य खड़े रहो । अर्जियाँ टाइप कराओ और नल का पानी पियो । सरकार वक्त ले रही है । और नहीं तो बेहया बनो । बेहयाई हज़ार बरकत है ।"[2] कहानिकार ने हमारी सामाजिक व्यवस्था और सरकारी दफ्तरों की बुराईयों पर व्यंग्य किया है । यह हमारी सामाजिक स्थिति है कि यहाँ जो आवाज़ उठाता है, उसी की सुनता है । प्रस्तुत कहानी में, सिर्फ उस आदमी के केस पर कार्रवाई होती है जो दफ्तर के सभी कर्मचारियों पर गाली देता है । हयादार होकर खड़े रहनेवालों पर कोई भी ध्यान नहीं देता । यह हमारी अफसरशाही की सब से बड़ी विडम्बना है ।

---

1. परमात्मा का कुत्ता - मेरी प्रिय कहानियाँ - मोहन राकेश - पृ: 64.
2. वही - पृ: 67-68.

मलयालम के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य कहानीकार हैं वी.के.एन.। रोज़मर्रा की छोटी छोटी बातों को लेकर वे व्यंग्य का सृजन करते हैं। सामाजिक जीवन की असंगतियों और विरोधाभासों को वे अपनी पैनी दृष्टि से देखते हैं। उनकी कहानियों में व्यंग्य उसकी ऊपरी धारा है। उसकी अन्तर्धारा जीवन की तमाम विसंगतियाँ है। समाज में प्रचलित अनाचारों, और पाखण्डों पर उनकी कहानियाँ तीखा व्यंग्य करती हैं। उनकी "पेंशन" शीर्षक कहानी सरकारी दफ्तरों के भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, अफसरशाही आदि पर खुला हुआ आक्रमण है। कहानी का स्कन्दहोरन एक बूढा गरीब आदमी है जो पेंशन केलिए सरकारी दफ्तर में दरख्वास्त देता है। उसकेलिए के.के.पद्टालजी दरख्वास्त तैयार करता है। आवेदन पत्र लिखते समय वह कहता है -

"कोरा, पहली बार तम्हें जो रक्म मिल जायेगी उसका आधा हिस्सा तुम्हें मुझे देना है।"

"खैर कोई बात नहीं।"

"अरे यह एक झमेला है। बहुत कुछ करना। तभी तो . . . ।"

"ये सब पद्टालजी की अनुपम कृपा है।"

"उसके बाद हर महीने।"

"कोई बात नहीं।"[1]

दफ्तर का बडा बाबु भी उससे यही बात दोहराता है। आवेदन देते समय उसे दस रुपये बडे बाबु को और पाँच रुपये पद्टालजी को देने पडते हैं। तीन महीनों के बाद जब पेंशन का आर्डर मिलता है, वह रक्म स्वीकार करने केलिए दफ्तर जाता है। वहाँ पाँच सौ रुपये केलिए वह दस्तखत करता है, किन्तु उसे मिलता है केवल दो सौ पचास रुपये। लिपिक, मनमोहन सिंह से वह कहता है -

---

1. "पेंशन"- पचास कहानियाँ - (1985) - वी. के. एन. - पृ: 148.

"स्वामीजी, कागज़ात में पाँच सौ रुपये ही तो लिखा है ।" सिंह ने कहा - "उसी रकम केलिए भगवान ने हस्ताक्षर किया है । पर रकम तो मुफ्त में मिल रही हो न? इसलिए अपने लिए आधा, ईश्वर केलिए आधा ।" स्कन्दहोरन ने आँखें बन्द कीं । अपना वेश बदल दिया । फहराते हुए वस्त्र विशेष के साथ, सिर के ऊपर एक वृत्त के साथ उठ खडे होते हुए अगली पंखा के करीब बैठ गया । 'गुमाश्ता जी, सविताजी । आपकी समस्याएँ मुझसे बदतर ! अतः पूरी रकम आप ही रख लें ।"[1]

वी.के.एन. की "रोगनिर्णयम" (रोग का निर्णय) शीर्षक कहानी का मुख्य पात्र साहित्यकार है जिन्होंने सात वर्षों के अन्तर तैंतीस पुस्तकों की रचना की है । एकदिन सबेरे उसे लगता है हाथ दुःख रहा है । तंग आकर वह डाक्टर से मिलने जाता है । वार्तालाप के बीच वह कहता है कि वह एक साहित्यकार है । डाक्टर और उस आदमी के बीच का संवाद इस प्रकार है -

"क्या आपका कोई ग्रन्थ प्रकाशित है?"

"हाँ"

"कितने?"

"तैंतीस ।"

"एक-एक विधा में कितने?"

"उपन्यास-17, कहानी-संग्रह-8, नाटक-5, काव्य-3 ।"

". . . . . "

"क्या आपको पढने की आदत है? "

"नहीं ।"

"क्या सृजन के पहले या बाद में आप चिन्तन करते हैं? "

"चिन्तन ! चिन्तन करने की आदत ही नहीं ।"[2]

---

1. "पेंशन" - पचास कहानियाँ - वी.के.एन. - पृ: 151.
2. "रोगनिर्णयम" (रोग का निर्णय) - वी.के.एन. की कहानियाँ - (पहला भाग, 1982) - पृ: 235.

सात वर्षों से वह रोज़ ही लिखता आ रहा है । अब पिछले दिन उसने एक उपन्यास लिख डाला था । इसलिए कल उसने कुछ लिखा नहीं । उसकी बात सुनकर डाक्टर कहता है । "वर्षों से आप रोज़ लिखते आ रहे हैं । कल रात आपने कुछ लिखा नहीं । इसलिए आपका हाथ दुख रहा है । आप जल्दी जाकर लिखिए । सब ठीक हो जायेगा ।"[1]

सामाजिक असन्तुलन को भी अपने लिए उपयुक्त बनाना, हर किसी को उपभोगवादी दृष्टि से देखना-यही आज की रीति और नीति है । हमारे जीवन का आन्तरिक खोखलापन इस कदर बैठ गया है कि इस बीमारी केलिए कोई दवाई उपलब्ध नहीं है । साहित्यिक क्षेत्र में भी यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । वी.के.एन. की प्रस्तुत कहानी साहित्यिक क्षेत्र की असावधानी की कहानी भर नहीं है , वह हमारे जीवन की असावधानी की भी कहानी है ।

सखरिया आधुनिक मलयालम के एक प्रमुख कहानीकार हैं । वैसे सखरिया व्यंग्य कहानीकार के रूप में प्रख्यात नहीं हैं । परन्तु उनकी कहानियाँ उच्च नैतिकता पर व्यंग्य करती हैं । मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियों की अर्थहीनता पर हँसती हैं । उनकी एक प्रसिद्ध कहानी है "किंग सोलमन" जो आधुनिक समाज के मूल्यगत विघटन पर व्यंग्य करती है । कहानी में दो वेश्याएँ एक जटिल और अनोखी समस्या के समाधान केलिए किंग सोलमन के पास आयी हुई हैं । उनके साथ एक बच्चा है और उनके हाथ में एक बच्चे की लाश भी । दोनों उस मरे हुए बच्चे को अपना बच्चा कहती हैं और उस जीवित बच्चे को स्वीकारने केलिए कोई तैयार नहीं है । उनमें कौन-सी युवति उस मरे हुए बच्चे की माँ है, यह जानना न्याय के निर्वाह केलिए आवश्यक हो जाता है । लेकिन उस जटिल समस्या केलिए एक समाधान ढूँढ निकालना उतना आसान नहीं है । किंग सोलमन उन दोनों से कहते है - "मैं सत्य और न्याय का निर्वाह करना चाहता हूँ । क्योंकि हमारी

---

1. "रोगनिर्णयम" - वी.के.एन की कहानियाँ - पृ: 235.

प्रजाओं की तृप्ति ही हमारी तृप्ति है । तुम दोनों में किसने अपराध किया, यह बात हमारे लिए मुख्य नहीं है । मुख्य बात न्याय और नीति का पालन है । हमारे दिव्य ज्ञान ने हमारे लिए न्याय का रास्ता खोल दिया है ।"[1] न्याय के निर्वाह केलिए वे उस जीवित बच्चे की भी हत्या करने का निश्चय कर लेते हैं । उनके आदेश के अनुसार उसकी हत्या होती हैं और दोनों वेश्याएँ सन्तुष्ट होकर वापस चली जाती है । कहानी में सखरिया ने नए सन्दर्भ के अनुसार, किंग सोलमन और दो स्त्रियों की प्रसिद्ध बाइबिल-कथा की पुनर्व्याख्या की है । बाइबिल की उस प्रसिद्ध कहानि में एक बच्चे के मातृत्व को लेकर दो स्त्रियों के बीच झगडा होता है । लेकिन वहाँ दोनों अपने को उस बच्चे की माँ कहती है । सखरिया की कहानी में झगडा मरे हुए बच्चे को लेकर है । बाइबिल की कहानी जब वास्तविकता की पहचान करनेवाली एक नैतिकता-प्रधान कहानी है । सखरिया की कहानी नैतिकताहीन संसार की कहानी है । माताओं के स्थान पर वेश्याओं को प्रतिष्ठित करके उन्होंने सब से पहले नैतिक आधार की शिथिलताओं की ओर हमारा आकर्षण खींचा है । माताओं की पहचान के स्थान पर जीवित बच्चे को भी मारकर जीवन-मूल्यों की इति पर भी व्यंग्य किया है ।

पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला की एक कहानी है, "आकाशत्तिन्टे मरुपुरम" (आसमान के उस पार) जिसमें जीवन के दो चित्र प्राप्त होते हैं । पहला चित्र एक बूढे आदमी की मृत्यु का है । वह अपना बडा मकान बेटे को सौंप कर उसी मकान के एक कोने में रहता है । उस मकान में रहनेवालों से किराया लेने केलिए हर महीने जब उसका बेटा आता है, तब वह पिता को कुछ रुपये दिया करता है । एक दिन उस बूढे की मृत्यु होती है । उसकी मृत्यु होने पर किसी को दुःख नहीं हुआ । उस घटना को किसी त्योहार के रूप में मनाया जाता है । दूसरा चित्र है पडोसी घर का । वहाँ एक बच्चे का जन्म हो रहा है । डाक्टरनी आती है । पति बैठकर कुछ लिख रहा है -

---

1. "किंग सोलमन" - "ओरिडत्तु" - (किसी जगह पर) - सखरिया की कहानियाँ - (1982) - पृ: 69.

"वह "तकदीर" शीर्षक लंबी कथा का आरंभ था
डाक्टर का फीस - 50 रूपये
दवा - 25 रूपये
ग्रैप वाटॅर - 2 रूपये
खिलौने - 20 रूपये
स्कूल फीस - 28 रूपये
हास्टल फीस -125 रूपये
परीक्षा फीस - 75 रूपये"[1]

तुरन्त ही घर के भीतर से पत्नी का रूदन सुनाई पडता है । थोडे ही क्षण के बाद पत्नी की माँ काला कपडा पहनकर दीपक के सामने बैठकर गीता-पाठ करने लगती है । तब नौकरानी बाहर आकर कहती है - "लडकी ।" पति किताब खोलकर फिर लिखता है - "दहेज - 15,000 रुपये ।" अति नाटकीय ढंग से प्रस्तुत इन दो विरोधी चित्रों में सामाजिक मूल्यों के विचलन के प्रारूप ही हमें मिल जाते हैं ।

राजनैतिक व्यंग्य-कहानियाँ

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सभी भारतीय भाषाओं में राजनैतिक व्यंग्य कहानियों का लेखन ज़ोरदार ढंग से होता रहा है । इसका कारण यही है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के पहले राजनीति एक मूल्य थी ।जो आदर्शवादी थे वे ही राजनीति के क्षेत्र में टिक सकते थे । ये सब स्वाधीनता के पश्चात् क्रमशः टूटने लगे ।

---

1. "आकाशत्तिन्टे मरूपुरम" (आसमान के उस पार) - आसमान के उस पार (1982) - पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला - पृ: 126.

हमारे तथाकथित राजनैतिक नेता ऐसा भ्रष्ट, अवसरवादी, लोभी जीवन जीने लगे कि उनके प्रति आदर की भावना बढने के स्थान पर द्वेष और घृणा की भावना पैदा होने लगी । भारतीय राजनीति में स्वाधीनता प्राप्ति के बाद का समस्त वातावरण व्यंग्यमय हो गया है । दर असल हमारा समाज ही इतना हास्यास्पद हो गया है कि आदर्श दुर्लभ वस्तु के रूप में परिणत हो गया है । इसीलिए अश्क ने ऐसा लिखा है । "स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद मूल्यों का जो विघटन हुआ है, वह हास्य-व्यंग्य की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करता है । राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, असाहित्यिक सभी क्षेत्रों में आज हास्य-व्यंग्य केलिए अपूर्व सामग्री प्रस्तुत है और विघटन को देखकर उस सामग्री का उपयोग करने की इच्छा भी आप-से-आप लेखकों के मन में पैदा हो गयी है ।"[1] राजनैतिक जीवन की विसंगतियाँ, उनके नारों का खोखलापन, उनके सिद्धान्त-पक्ष और कर्मपक्ष के असामंजस्य, अवसरवादिता - इन सब पर इन दोनों भाषाओं के कहानीकारों ने तीखा व्यंग्य किया है । हरिशंकर परसाई की कहानियों की विवेचना करते हुए राजेश्वर सक्सेना ने लिखा है - "परसाई के लेखन के केन्द्र में राजनीतितत्व है, राजनीति-दृष्टि है जो आधुनिक युग में मनुष्य और समाज की नियति को निर्धारित करती है । परसाई इस राजनीति के प्रति सजग है, इसके प्रति बेखबरी से ही अनेक प्रकार के छल, फरेब पैदा होते हैं, और समाज में विसंगति का भाव पैदा होता है । उनके व्यंग्य राजनीतिक विचारधारा से प्रेरित हैं ।"[2] मलयालम के सशक्त व्यंग्यकार, पट्टत्तुविला करुणाकरन की कहानियों का मूल-भाव सच्चिदानन्दन की राय में, राजनीतिक सजगता (जागरूकता) है । "वर्तमान भारत के तीक्ष्णतम वर्ग-संघर्ष की मिट्टी में ही ये कहानियाँ (पट्टत्तुविला की कहानियाँ) पनप रही हैं ।"[3] सी.पी. शिवदासन के

---

1. हिन्दी हास्य-व्यंग्य : एक शोभायात्रा - हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग पहचान (प्रथम संस्करण, 1967) - उपेन्द्रनाथ अश्क - पृ: 342.
2. इतिहास, विचारधारा और साहित्य - (1983) - राजेश्वर सक्सेना - पृ:74.
3. पट्टत्तुविला की कहानियाँ : एक पाद टिप्पणी - चुने हुए लेख (1985) - सच्चिदानन्दन - पृ: 122.

मतानुसार राजनीतिक सजगता पट्टत्तुविला का मूल-भाव ही नहीं, इनके कहानीकार का "सेल्फ" भी है ।[1] इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता ही है कि जिन कहानीकारों ने खास तौर से राजनैतिक जीवन को लेकर कहानियाँ लिखीं, वे व्यंग्य और विद्रूपता को ही अपना दे रहे हैं । जिन्होंने कभी कभी राजनीतिक विषयवस्तु ग्रहण की, उनकी कहानियों में भी यही बात मिल जाती है ।

हरिशंकर परसाई की 'भेड़े और भेड़िये' एक राजनैतिक व्यंग्य-कहानी है जिसमें हमारे तथाकथित नेताओं की अमानवीयता, अवसरवदिता, धोखेबाजी, षडयन्त्र आदि पर खुलकर व्यंग्य किया गया है । जंगल में चुनाव हो रहा हैं । भेड जो स्वभात: दुर्बल और मासुम होते हैं, संख्या में ज़्यादा है जबकि भेडिये संख्या में बहुत कम हैं । उनका चुनाव में जीतना कठिन है । अत: सरकार बनाना भी कठिन ही है । किन्तु अपने षडयन्त्रों से ये भेडिये सियार जैसे दलालों की सहायता से ऐसी कूटनीति चलाते हैं जिसके फलस्वरूप निष्कलंक भेड भेडियों को अपनी पंचायत के मुखिये के रूप में चुन लेते हैं । चुनाव के पूर्व जिन भेडियों ने भेडों की रक्षा करने का वादा दिया था वे चुनाव जीत लेने के बाद यह प्रस्ताव पारित कर कानून बनाते हैं कि - "हर भेडिये को नाश्ते केलिए भेड का एक मुलायम बच्चा दिया जाये, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड तथा शाम को स्वास्थ्य के खयाल से कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड दी जाय ।"[2]

कहानी का व्यंग्य बहुत स्पष्ट है । इसके भेड और भेडिये यथाक्रम असंगठित, दुर्बल प्रजाओं तथा हमारे सत्ताधारी नेताओं के प्रतिरूप हैं । वोट हासिल कर, चुनाव जीतकर, सत्ता हासिल करनेवाले अपने अमानवीय, और क्रूर व्यवहारों से भेडिये बन जाते हैं । अपने स्वार्थ की पूर्ति केलिए लोगों को

---

1. Pattathuvila's Stories - C.P.Sivadasan - Malayalam Literary Survey -October-December, 1988 - p.25.
2. "भेड़े और भेड़िये" - जैसे उनके दिन फिरे - (1969) - हरिशंकर परसाई - पृ: 25.

सताने में वे हिचकते नहीं है । प्रस्तुत कहानी में हमारी राजनीतिक व्यवस्था की कूटनीति, षड्यंत्र, धोखेबाजी आदि का व्यंग्यात्मक चित्रण हुआ है ।

परसाई की एक अन्य प्रमुख व्यंग्य कहानी है, "आमरण अनशन"। अपने को यशस्वी बनाने में हमारे राजनैतिक नेता कितने परिहास्य बन जाते हैं, उसका उल्लेख कहानी में मिलता है । कहानी का सेठ किशोरीलाल गाँधीजी की जो मूर्ति बनाकर नगरपालिका को भेंट करता है वह नगर में स्थापित की जाती है । किन्तु नगरपालिका का अध्यक्ष, गोवर्धनबाबु मूर्ति के चबूतरे पर फाटक की ओर यों खुदवाता है - "बाबु गोवर्धनदास के प्रयत्न से उनके कार्यालय में स्थापित ।" गोवर्धन की यह करतूत सेठ जी को अच्छी नहीं लगती । उसका कथन है - "जिसने पैसा दिया, उसका नाम पीछे खुदेगा और जिसने एक कौडी नहीं दी, उसका नाम सामने खुदेगा । लोग फाटक से घुसें तो पहले आपका नाम देखें ।"[1] दूसरी ओर गोवर्धन का यही आदर्श है : "आखिर मैं नगरपालिका का अध्यक्ष हूँ । इस शहर का प्रथम नागरिक । आखिर मेरी भी तो कोई प्रतिष्ठा है ।"[2] रात को सेठजी गोवर्धन के नाम के स्थान पर अपना नाम खुदवाता है तो गोवर्धन इसके बदले प्रतिमा के सामने का फाटक बन्द करवाकर मूर्ति के पीछे की तरफ फारक बनवा लेता है । इसप्रकार दोनों अपनी अपनी हरकत पर अटल रहते हैं और अपनी अपनी हठ केलिए आमरण अनशन करने लगते हैं । उनका यह आमरण अनशन तब एकदम समाप्त होता है जब मुख्यमंत्री आकर उन दोनों के कानों पर कोई रहस्य बताता है । "वे सीधे सेठ किशोरीलाल के पास गए और कान में कहा, "अगर एक घण्टे के अन्दर तुम्हारा हृदय नहीं बदला, तो चपरासियों की वर्दी के कपडे की सप्लाई का जो आर्डर तुम्हें मिल रहा है, वह नहीं मिलेगा ।" फिर गोवर्धन बाबु के पास गए और कहा - "अगर एक घण्टे में तुम्हारा हृदय परिवर्तन नहीं हुआ, तो नगर-पालिका भंग कर दूँगा ।" थोडी देर बाद जनता ने सुना कि गोवर्धन बाबु और सेठ किशोरीलाल का हृदय-परिवर्तन हो गया ।"[3]

---

1. "आमरण अनशन" - जैसे उनके दिन फिरे - हरिशंकर परसाई - पृ: 112.

2. वही ।

3. वही - पृ: 115.

"जार्ज पंचम की नाक" कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी है जिसमें भ्रष्ट राजतन्त्र, शासन-व्यवस्था, लालफीताशाही आदि के बीच घुटते आम लोगों की व्यथा व्यंग्यात्मक रूप में चित्रित हुई है। कहानीमेंइंग्लैंड की रानी एलिसबेथ द्वितीय के आगमन पर हमारे पूरे राज-तन्त्र पर जो व्यंग्यपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उसका अंकन हुआ है। रानी का स्वागत करने केलिए सारी तैयारियाँ हो गई हैं। "नई दिल्ली में सब कुछ था, सब कुछ होता जा रहा था, सब कुछ हो जाने की उम्मीद थी, पर जार्ज पंचम की नाक की बडी मुसीबत थी। नई दिल्ली में सब कुछ था . . . सिर्फ नाक नहीं थी।"[1] भारत के सभी नेताओं की मूर्तियों की नाक नाप ली गयीं, पर जार्ज पंचम की नाक से सब बडी निकलीं। कहानी में राज-तन्त्र की कार्यक्षमता और कार्यप्रणाली पर जो व्यंग्य किया गया है उसका चरमोत्कर्ष वहाँ है जहाँ मूर्तिकार यह प्रस्ताव रखता है - "चूँकि नाक लगाना एकदम जरूरी है, इसलिए मेरी राय है कि चालीस करोड में से कोई एक जिन्दा नाक काटकर लगा दी जाए . . .।"[2] कहानी में आम आदमी के शोषण और उसकी उपेक्षा की भी अभिव्यक्ति हुई है। जार्ज पंचम की मूर्ति के चेहरे पर जिस अनाम आदमी की नाक फिट कर दी जाती है उसकी कोई चर्चा कहीं नहीं हुई है। "उस दिन देश में कहीं भी किसी उद्घाटन की खबर नहीं थी। किसी ने फीता नहीं काटा था। कोई सार्वजनिक सभा नहीं हुई थी। कहीं भी किसी का अभिनन्दन नहीं हुआ था, कोई मानपत्र भेंट करने की नौबत नहीं आई थी। किसी हवाई अड्डे या स्टेशन पर स्वागत समारोह नहीं हुआ था। किसी का ताजा चित्र नहीं छपा था।"[3] कहानी में भ्रष्ट राजतन्त्र और नौकरशाही सत्ता के बीच में घुटते आम लोगों की त्रासद स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है। कहानी की सृजन-प्रेरणा के बारे में लिखते समय कमलेश्वर ने इस बात को स्वीकारा है -

---

1. "जार्ज पंचम की नाक" - जिन्दा मुर्दे - कमलेश्वर - पृ:10
2. वही - पृ: 14-15.
3. वही - पृ: 16.

"राजनीति सचमुच क्या होती है, भ्रष्ट राजतन्त्र और नौकर शाही सत्ता द्वारा लगाए गए अप्रत्यक्ष प्रतिबंध और उनमें घुटते-संघर्ष करते व्यक्ति की क्या हालत है - यह सब दिल्ली में ही पहली बार बहुत गहराई से दिखाई दिया । यह भी लगा कि इस तंत्र पर कहीं से भी कोई प्रहार नहीं किया जा सकता । इसी घुटन से गुजर रहा था कि मैं "जार्ज पंचम की नाक" कहानी लिखी ।"[1] इस कहानी की प्रासंगिकता के बारे में देवेन्द्र ठाकुर ने यों लिखा है - "महाप्रभुओं की नाक बचाने केलिए सामान्य जन को अपनी नाक हमेशा कटानी पडती है लेकिन उसके त्याग की इस गाथा पर एक शब्द भी कहीं नहीं लिखा जाता । आखिर शोषण और अन्याय की यह स्थिति कब तक चलती रहेगी - पूरी कहानी एक प्रश्न बनकर पाठक के दिमाग पर देर तक दस्तक देती रहती है ।"[2]

'जार्ज पंचम की नाक' हमारी व्यवस्था की आधारहीनता की कहानी है । वह एक बहु-आयामी रचना है जो एक साथ राजनीतिक खोखलेपन पर भी अंकुश लगाती है तथा आम जनता की तडप पर भी । लेकिन उस तडप को अधिक कारुणिक या उदात्तीकृत करने का कार्य नहीं किया है । इसलिए इसका व्यंग्यात्मक पक्ष भी गहन प्रतीत होता है ।

भीष्मसाहनी की "मौका-परस्त" शीर्षक कहानी में आज के स्वार्थी और अवसरवादी राजनैतिक नेताओं पर व्यंग्य किया गया है।कहानी का रामदयाल एक राजनैतिक नेता है जो चुनाव के दौरान अपने दल के हरिनारायण केलिए प्रयत्न कर रहा है । वह इतना क्रूर और अवसरवादी है कि सडक-दुर्घटना के कारण मरे हुए शंभू की शवयात्रा को पार्टी-जुलूस के रूप में बदल देने को भी वह हिचकता नहीं है ।

---

1. जिन्दा मुर्दे - (1970) - कमलेश्वर - पृ: 1.
2. कमलेश्वर की कहानियों में सामाजिक चेतना - देवेन्द्र ठाकुर का लेख - कमलेश्वर - सं. मधुकर सिंह । (1977)

उसका कथन है - "जब जुलूस की शक्ल में ले जायेंगे, तो कुछ इलाकों में से चलकर जाना चाहिए । यों सीधे श्मशान भूमि के ले जाने में क्या तुक है । साथ में थोडा प्रचार भी हो जायेगा ।"[1] इस तरह मौके का फायदा उठाने पर वह सन्तुष्ट होता है और अपनी कृतार्थता को वह यों ही प्रकट कर रहा है - "अगर अब भी हरनारायण नहीं जीते, तो उसकी किस्मत । हमतो जो बन पडा, हमने कर दिया । दुश्मन के गढ को तोड आए, और क्या कर सकते थे । हमारे लिए तो उनके इलाके में घुसना मुश्किल हो रहा था । सब मौके - मौके की बात है ।"[2] कहानी में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के ऐसे राजनैतिक नेताओं पर तीखा व्यंग्य हुआ है जो पैसे लेकर किसी भी दल का समर्थन कर सकता है और जो चुनाव में उस दल की जीत केलिए शवयात्रा को भी पार्टी-जुलूस में बदल सकता है ।

अमरकान्त की "बस्ती" राजनीतिक लूट के बीच पडकर निरालंब बने हुए आत्मानन्द की कहानी है, अर्थात राजनीतिक लूट के बीच पडे हुए सामान्य लोगों की कहानी है । ये लोग निरे दर्शक होते हैं,कुछ करने की स्थिति में नहीं होते । इसलिए बस्ती उजडती गई, उसका सर्वनाश होता गया । आदर्श हवा में उड गया । यह बस्ती भारत ही है जिसको उजडते देख, जिसको लूटते देखकर भी आम आदमी आहें भरता है । अतः अमरकान्त की यह रचना आज की व्यवस्था का खुला परिचय है ।

पद्‌टत्तुविला करुणाकरन की एक कहानी है, "अल्लोपनिषद्" जिसका व्यंग्य बहु-आयामी है । भारतीय आध्यात्मवाद के और राजनीति के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों पर जो विरोधाभास है उसपर कहानी में तीखा व्यंग्य हुआ है । कहानी में केवल दो पात्र हैं , एक युवक जो साम्यवादी चिन्तन पर आकृष्ट है और उसकी साली जो वेदों का अध्ययन करनेवाली है । इन दोनों के वार्तालाप से सामाजिक और राजनीतिक विडम्बनाओं पर कहानीकार ने व्यंग्य किया है । वह युवति वेद-पाठ कर रही है -

---

1. "मौका परस्त" - पटरियाँ - भीष्मसाहनी - पृ:70

2. वही - पृ: 74.

"आत्मा का लिंग भेद नहीं है । शरीर का लिंग भेद है । वेदों ने आत्मा को पुरुष के रूप में नहीं, बल्कि वस्तु के रूप में देखा है । आत्मा शब्द का प्रयोग उत्तम पुरुष सर्वनाम एकवचन पुल्लिंग के रूप में करने पर ऐसा भ्रम हो सकता है कि आत्मा पुरुष है ।"[1]

वह आगे पढ़ती है -

"हिन्दुओं के आध्यात्मिक आचार्य मनु ने शूद्रों केलिए केवल एक ही कर्म बताया है - सवर्णों की नौकरी करना ।"[2]

यहाँ प्राचीन भारतीय चिन्तन और आध्यात्मवाद के खोखलेपन पर व्यंग्य किया गया है । वह युवति वार्तालाप में कभी कभी वेदों से उद्धरण देती है । अपने जीजा जी के प्रति उसके मन में जो यौन भावना से युक्त आकर्षण है उसको भी वह प्रकट कर रही है । इस तरह भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन और यौन भावना के दो विरुद्ध भावों को एक ही व्यक्तित्व में संकेन्द्रित कर, कहानीकार ने आध्यात्मवाद के खोखलेपन पर व्यंग्य किया है -

"वह नहा रही है । गुसलखाने से "शवर" की आवाज़ और उसका गीत सुनाई पड़ते हैं । तुरन्त ही ये दोनों स्वर रुक जाते हैं । वह उसे पुकारती है -

"जीजा जी "

"क्या है ?"

"स्टैन्ड से वह तौलिया लेकर मुझे दे दीजिए ।"

मुझे डर लगा ।

"घबड़ाओं मत, दीदी ऊपर वाले कमरे में है ।"

दरवाज़े को थोड़ा खोलकर वह तौलिया लेती है । दरवाज़े की दरार से वह कहती है - मैं एक मन्त्र जप दूँ ? 'तमेवैकम् जानेथा आत्मानाम् अन्यवाय कि मुंझना' इसका अर्थ यह है - केवल आत्मा को जानो, और किसी पर ध्यान मत दो । ... दीदी सो रही है ।"[3]

---

1. "अल्लोपनिषद्" - कथा - {1984} - पट्टुत्तुविला करुणाकरन - पृ: 44.
2. वही - पृ: 43.
3. वही - पृ: 48.

मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक पक्ष और भारत के मार्क्सवादी साम्यवादी दल के क्रिया कलापों के व्यावहारिक पक्ष में जो विरोधाभास है उसपर कहानी व्यंग्य करती है । कहानी की युवति अपने जीजाजी से पूछती है -

'जीजाजी, क्या नम्बूतिरिप्पाडु मुख्यमंत्री हो जाने के पूर्व "वयलार"[1] जाकर वहाँ के शहीदों को धन्यवाद दिया न ?'

"धन्यवाद दिया । अधिकार प्राप्त कर लिया । किन्तु उसके तुरन्त ही बाद मन्दाकिनी[2] को पीट दिया"।[3]

इस कहानी के बारे में सच्चिदानन्दन ने लिखा - "अक्टूबर क्रान्ति में लेनिन की जो भूमिका है उससे भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में ई. एम. एस. नम्बूतिरिप्पाडु की भूमिका के बीच जो विडंबना या विरोधाभास मौजूद है उसपर कहानीकार ने व्यंग्य किया है । दूसरी ओर एक और विरोधाभास भी है । वेदों और पुराणों से उद्धरण देकर बातें करनेवाली उस युवती के मन में अपने जीजाजी के प्रति यौन भावना से युक्त जो आकर्षण है उसपर भी कहानी में व्यंग्य हुआ है . . . अल्लोपनिषद् हिन्दुओं और मुसलमानों को समन्वित करने केलिए अक्बर ने जो असफल प्रयत्न किया है उसको सूचित करता है । आजकल मार्क्सवाद और पूँजीवाद को समन्वित करने का जो प्रयत्न हो रहा है प्रस्तुत कहानी उसपर व्यंग्य करती है ।"[4] सामान्य व्यंग्य कहानियों की तुलना में इसका व्यंग्य उच्चस्तरीय है । तथाकथित प्रगतिशील राजनीति के आन्तरिक विघटन पर यह कहानी वार करती है । पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला की कहानी "इंडिया स्वातन्त्र्यम् नेडुन्नु" (भारत आज़ाद हो रहा है)

---

1. "वयलार" - आलप्पि जिले का एक गाँव जहाँ साम्यवादी दल के नेतृत्व में आन्दोलन चला है ।
2. "मन्दाकिनी" - केरल के मार्क्सिस्ट लेनिनिस्ट पार्टी की प्रमुख कार्यकर्त्ता ।
3. "अल्लोपनिषद्" - कथा - पट्टत्तुविला - पृ: 49.
4. पट्टत्तुविला की कहानियाँ : एक अध्ययन - सच्चिदानन्दन - कथा - पट्टत्तुविला - पृ: 228.

में भी इसी प्रकार कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के चालाक निकलने तथा गाँधीजी को अपने कार्यक्षेत्र से हटाने पर व्यंग्य किया गया है । इन दोनों कहानियों में नेताओं के सही नामों का प्रस्तुत कर खोखलेपन पर तीखा व्यंग्य किया गया है ।

आजकल प्रत्येक राजनीतिक दल चुनाव जीत लेने केलिए जातिवाद, क्षेत्रवाद, पैसा आदि का खुलकर उपयोग कर रहा है । वी.के.एन. की "वावर" शीर्षक कहानी हमारे राजनीतिक क्षेत्र की इस विडम्बनापूर्ण स्थिति पर व्यंग्य करती है । कहानी में "पूतलमण्णु" चुनाव-क्षेत्र में चुनाव हो रहा है । वहाँ के सारे राजनैतिक दल दो संघों में विभाजित हो गए हैं । एक दल का उम्मीदवार अतिशक्तन नंबूतिरी है और दूसरे का मायिनकुट्टि हाजी । उस चुनाव क्षेत्र में मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं की अपेक्षा बहुत कम है । इसलिए मायिनकुट्टि को चुनाव जीतने की बात को लेकर सन्देह होता है । लेकिन उसके दल के कुञ्ञिरामन नायर उसे आश्वस्त करता है । चुनाव के एक दिन पहले उस इलाके के मन्दिर में त्योहार था । उस दिन रात को सारा गाँव मन्दिर में जमा हुआ था । मन्दिर का "कोमरम्"[1] लोगों का सम्बोधन करते हुए कहने लगा - "इस बार चुनाव में मेरा उम्मीदवार वावर [2] है । . . . वावर किसी अन्य धर्म का नहीं . . . हूश . . . मैं ही वावर हूँ । . . . इसलिए . . . हियूया . . . अगले शनिवार के चुनाव में हर एक वॉट वावर को . .. - मायिन . . . हू ...

---

1. "कोमरम" - मन्दिर के पुजारियों के समान ये भी ईश्वर के प्रति-पुरुष माने जाते हैं । त्योहार जैसे विशेष सन्दर्भों में विशेष ताल पर नाचते हुए वे लोगों को सन्देश और उपदेश दिये करते हैं ।
2. "वावर" - पौराणिक पात्र,अय्यप्पन {विष्णुपुत्र} का साथी और मंत्री - जाति से मुसलमान है, तो भी अय्यप्पन का बडा भक्त - "शबरिमला" {शबरी पर्वत} की तीर्थयात्रा करनेवाले लोग वावर स्वामी के मन्दिर में जाये करते हैं । हिन्दु-मुस्लिम एकता का प्रतीक ।

हाजी . . . हू . . . वावर । वावर . . . को . . . हूश . . . वोट देना होगा । नहीं तो मैं सजा दूँगा । . . . हियूयो . . . ।"[1]

अगले दिन के चुनाव में मार्यिनकुट्टि हाजी 17, 000 वोटों के बहुमत से विजयी घोषित हो जाता है । आध्यात्मिक नेता कहे जानेवाले लोगों का इस्तेमाल जिस प्रकार आजकल के राजनीतिज्ञ करते हैं उसका अच्छा उदाहरण इस कहानी में प्राप्त है । आध्यात्मिकता की इस अन्तरंग गहराई को मिटाते हुए आदमी मात्र को पुर्जा बना डालने का उपक्रम आज भी राजनीति का अपना हिस्सा बन गया है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करने का एक कोण व्यंग्य का भी होता है । व्यंग्य के कई स्तर हैं । हास-परिहास से लेकर त्रासद संस्पर्श से युक्त विद्रूपता तक उसका सिलसिला है । व्यंग्य के किसी स्तर का उपयोग सामाजिक गतिविधि के किन्हीं पहलुओं को उद्घाटित करने केलिए ही होता है । आधुनिक युग में हिन्दी और मलयालम के कहानीकारों ने व्यंग्य के सभी स्तरों का उपयोग अपनी विभिन्न कहानियों में किया है । अन्य कहानीकारों की तुलना में मलयालम के वी.के.एन. और हिन्दी के हरिशंकर परसाई का अलग स्थान है । इन्होंने बस व्यंग्य का ही सहारा लिया।समाज की असंगति पर इनकी रचनाएँ चोट करती ही रही हैं ।

वी.के.एन. की 'पेंशन' तथा हरिशंकर परसाई की "भोलाराम का जीव" एक ही विषय वस्तु पर लिखी हुई कहानियाँ हैं । बाह्यतः ये रचनाएँ हमारी अफ्सरशाही की विडंबनाओं से जुडी हुई लग सकती हैं । परन्तु अन्ततः ये रचनाएँ हमारे मूल्य-विघटन और अमानवीयता से संबन्धित कहानियाँ हैं । इस विडंबना का शिकार प्रायः वह आम आदमी होता है जिसे हमेशा सब कुछ झेलना पडता है । यह संघर्ष जीने का है । इस संघर्ष को अनदेखा करनेवाला तंत्र, उसे

अवहेलना की दृष्टि से देखनेवाला तंत्र ही हमारे बीच में विकसित हो रहा है । वह भ्रष्टाचार जीवन के किन्हीं संदर्भों से संबन्धित नहीं है । यह भ्रष्टाचार हमारे जीवन-मूल्यों में व्याप्त हो चुका है । इन्हीं कहानीकारों की अन्य दो कहानियों की तुलना संभव है । "इतिश्री रिसर्च" तथा "रोगनिर्णयम्" सृजनात्मक प्रतिभा को मुल्यहीन सिद्ध करने के उस तंत्र पर आधारित रचनायें हैं । यह महाजनी दृष्टि अगर सब कहीं व्याप्त हो तो उसका परिणाम अवाँछित होता है । "इतिश्री रिसर्च" में गवेषणदृष्टि के अभाव पर चोट की गयी है ।

राजनीतिक व्यंग्य कहानियों में अन्तर यही है कि उसका परिवेश राजनीतिक जीवन रहता है । लेकिन जिन अमानवीय व्यवहारों का उल्लेख सामाजिक कहानियों में हुआ है उन्हीं का दूसरा रूप इन राजनीतिक कहानियों में भी मिल सकता है । वी.के.एन. की "वावर" शीर्षक कहानी तथा अमरकांत की "बस्ती" और परसाई की कहानी "आमरण अनशन" की तुलना आसानी से की जा सकती है । ये तीनों राजनीतिक अनैतिकता, राजनीतिक-लूट, राजनीतिक अन्तःशून्यता की कहानियाँ हैं । इन तीनों में समान ढंग से अमानवीय व्यवहारों के शिकार बननेवाले आम लोगों की पीडायें परोक्षतः चित्रित की गयी हैं । व्यंग्य रचनाओं का यह पक्ष प्रायः उन्हें अधिक अर्थवान और गहरा बना देता है । व्यंग्यात्मकता की संवेदनशीलता इसी पक्ष पर आधारित है ।

सामाजिक यथार्थ की कहानियाँ किसी न किसी अवसर पर व्यंग्य का उपयोग अवश्य करती है । यह कहानीकार की अपनी प्रतिक्रिया का परिणाम है । हिन्दी और मलयालम कहानियों का व्यंग्य इसका प्रमाण है ।

आँचलिक यथार्थ की कहानियाँ

आँचलिक धारा के अन्तर्गत आनेवाली कहानियाँ भी अन्तत: सामाजिक यथार्थ के अन्तर्गत ही विश्लेषण के योग्य हैं। इनमें चित्रित जीवन-फलक सामाजिक जीवन का ही एक अभिन्न पहलू है। लेकिन इस प्रकरण में मात्र हिन्दी की आँचलिक कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इसका कारण यही है कि मलयालम में, आधुनिक युग में, इस प्रकार की एक खास प्रवृत्ति का विकास नहीं हुआ है। यत्र-तत्र आँचलिक शब्द, सन्दर्भ इत्यादि तो मिलते हैं। परन्तु उनके आधार पर उन्हें ठहराना ठीक नहीं लगता। पूर्व आधुनिक युग की मलयालम कहानी में, विशेषकर तकषी और पोनकुन्नम वर्की की कहानियों में किसानी जीवन की या क्षेत्र विशेष की बातें अक्सर मिलती थीं। लेकिन यह बात प्रेमचन्द में भी प्राप्त थी। हिन्दी कहानी में यह प्रवृत्ति नागार्जुन, त्रिलोचन इत्यादि से होते हुए विकसित हुई और रेणु जैसे कहानीकार ने इसे प्रतिष्ठापित किया। मलयालम कहानी में क्षेत्रीयता का ऐसा आभास उपलब्ध नहीं है। शायद इसका कारण भौगोलिक स्थितियों की विभिन्नता और अन्य सामाजिक प्रगति से संबन्धित तथ्य ही अधिक है। अत: इस प्रकरण में, आँचलिकता के आधार पर तुलना असंभव है। इस खंड में मात्र हिन्दी कहानियाँ ही विश्लेषित हैं। हिन्दी की कुछ श्रेष्ठ आँचलिक कहानियों का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए सामाजिक यथार्थ के इस नए सन्दर्भ का विश्लेषण भर करना इस खण्ड का उद्देश्य है।

आँचलिकता "नई कहानी" की एक सशक्त प्रवृत्ति है। यद्यपि स्वतन्त्रता के पूर्व की हिन्दी कहानी में यह प्रवृत्ति क्षीण रूप में दिखाई पडती है तो भी स्वतन्त्रता के बाद की "नई कहानी" में ही यह बलवती हो गयी है। राजेन्द्र अवस्थी ने लिखा है - "स्वाधीनता के बाद जनता और विद्वानों का ध्यान जनपदों की ओर गया, जो अभी तक एकदम उपेक्षित थे। जनपदीय बोलियों, मुहावरों और

लोक-गीतों के संकलन का काम एक आन्दोलन की तरह आरंभ हुआ । स्वाधीनता के साथ ही यत्र-तत्र इन विषयों पर लगातार रचनाएँ छपने लगीं ।"[1] इसके पहले ग्रामीण परिवेश की कहानियाँ प्रेमचन्द ने भी लिखी हैं, परन्तु प्रेमचन्द की दृष्टि अलग थी । अपने मानवतावादी दृष्टिकोण और समाज-मंगल की भावना के अनुरूप उन्होंने गाँवों का चित्रण किया और वहाँ के लोगों को प्रस्तुत किया । आँचलिकता में एक क्षेत्र विशेष की अपनी निजी बातें ज्यादा प्रमुख हो उठती हैं । शिवप्रसाद सिंह के इस वक्तव्य में यह स्पष्ट है - "क्षेत्र या अंचल उस भौगोलिक खण्ड को कहते हैं जो सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से सुगठित और विशिष्ट एक ऐसी इकाई हो जिसके निवासियों के रहन-सहन, प्रथाएँ, उत्सवादि, आदर्श और आस्थाएँ, मौलिक मान्यताएँ तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ परस्पर समान और दूसरे क्षेत्र के निवासियों से इतनी भिन्न हो कि इनके आधार पर यह क्षेत्र या अंचल विशेष इसी प्रकार के दूसरे क्षेत्रों से एकदम अलग प्रतीत हो ।"[2] इसप्रकार अलग प्रतीत होनेवाले क्षेत्रों और अँचल से संबन्धित कहानियाँ समाज की एक खास इकाई को ही अभिव्यक्त करती हैं । "जिस कथाकृति में विशिष्ट जनपद या क्षेत्र के जन-जीवन का समग्र चित्रण- वहाँ की भाषा, वेश-भूषा, धर्म, जीवन, समाज, संस्कृति और आर्थिक तथा राजनैतिक जागरण के प्रश्न- एक साथ उभर कर आएँ, वह आँचलिक कृति होगी ।"[3] रामदरश मिश्र के मतानुसार', 'आँचलिक कहानियों की विशेषता गाँव और कस्बे की, पिछडी जातियों की जिन्दगी के कटु जीवन और उनकी मानसिक-संवेदना को लक्ष्य बनाकर चलती है ।"[4] इन मन्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आँचलिक कहानी में ग्रामीण जीवन का यथार्थ व समग्र चित्रण देखने को मिलता है ।

---

1. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - §1974§ - भूमिका - राजेन्द्र अवस्थी §सं.§ - पृ:2.
2. आँचलिकता और आधुनिक परिवेश - §शिवप्रसाद सिंह का लेख§ - कल्पना, मार्च 1965 - पृ: 29.
3. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - भूमिका - राजेन्द्र अवस्थी §सं.§ पृ:2.
4. आज का हिन्दी साहित्य § 1976 § - रामदरश मिश्र - पृ:165.

अंचल को आँचलिकता प्रदान करनेवाले कई तत्व होते हैं । उनमें प्रमुख है अंचल की विशेष भौगोलिक स्थिति । अंचल नगरों की यान्त्रिक और वैज्ञानिक सभ्यता से दूर प्रकृति की गोद में बसे जनपद होते हैं । इन विशेष भौगोलिक स्थितियों के कारण अंचलों की अपनी विशेष स्थितियाँ, समस्याएँ होती हैं जो कि आँचलिकता का दूसरा तत्व है । पूरे आँचलिक समाज पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । आँचलिकता का तीसरा तत्व इन्हीं समस्याओं के फलस्वरूप उत्पन्न पिछडापन है । चौथा तत्व अंचलों के इसी पिछडेपन का परिणाम है - अंचलों का विशिष्ट प्रकार का जीवन, लोगों की धारणाएँ, अन्धविश्वास, अचार-विचार, रीति-रिवाज, संस्कार-समग्र रूप में, एक विशिष्ट संस्कृति, लोक संस्कृति ।[1] अंचल को आँचलिकता प्रदान करनेवाले इन तत्वों का जब कहानी में सन्निवेश किया जाता है तो आँचलिकता का भरापूरा एहसास मिलता है ।

यह कहा जा चुका है कि रेणु के पहले भी हिन्दी में आँचलिक प्रवृत्ति का आभास मिलता रहा है । परन्तु रेणु की कहानियों ने, खासकर उनकी विशिष्ट कहानियों ने हिन्दी आँचलिक धारा को अधिक प्रासंगिक बनाया है । रेणु के पश्चात् शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र इत्यादि ने इसका पोषण किया है ।

"तीसरी कसम" फणीश्वरनाथ रेणु की बहुचर्चित कहानी है । आँचलिक कहानी की मानक रचना के रूप में यह कहानी पढी जाती है । इस कहानी में जिस प्रकार रेणु ने हिरामन को चित्रित किया है यही मुख्य है । हिरामन के व्यक्तित्व के साथ एक पूरा गाँव कहानी में जीवंत हो उठा है । अतः यह एक पूर्ण आँचलिक कहानी है । "तीसरी कसम" का गाडीवान हिरामन चालीस साल का हट्टा-कट्टा, काला-कलूटा युवक है । यद्यपि उसकी शादी बचपन में ही हो गयी तो भी गौने के पहले ही दुल्हिन मर गयी । अब वह गाडीवान है । उसे अपनी गाडी

---

1. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि - (1971) - आदर्श सक्सेना - पृ: 22-23.

में माल लाद कर कई दिनों तक इधर उधर जाना पडता है । मेले में भाग लेने केलिए जाएँ तो हफ्तों तक घर से दूर रहना पडता है । हिरामन इस बार फारबिसगंज शहर के मेले में भाग लेने केलिए "मथुरा मोहन नौटंकी कंपनी में लैला बननेवाली हीराबाई"[1] को अपनी गाडी में ले जाता है । दोनों परिचित होता है । परिचय बढता भी है । हीराबाई को लगा कि हिरामन सचमुच हीरा है । हिरामन भी हीराबाई के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । लेकिन सच्चे प्रेम के विषय में दोनों का जीवन रेगिस्तान है । "जीवन में प्रेम का कैसा स्रोत दबा पडा है और थोडा-सा अवसर पाते ही वह कितने वेग से एक दूसरे की ओर दौड पडता है - यही इस कहानी की मार्मिक भूमि है । यह कथा किताबी प्रेम कथाओं से कितनी भिन्न और अनोखी है । जितनी अनोखी है, उतनी ही वास्तविक ।"[2] कहानी में हिरामन के लडकपन के छोकरा नाच के वर्णन के साथ गाँव का चित्रण प्रस्तुत हुआ है । "हिरामन का मन आज हल्के सुर में बाधा है । उसको तरह तरह के गीतों की याद आती है । बीस-पच्चीस साल पहले, विदेशिया, बलवाही, छोकरा - नाचवाले एक-से-एक गज़ल खमेटा गाते थे । अब तो भोंपा में भोंपू-भोंपू कर के कौन गीत आते हैं लोग ! जा ज़माना ! गाडी की बल्ली पर ऊँगलियों से ताल देकर गीत को काट दिया हिरामन ने ।"[3] हिरामन की मानसिक अवस्था संगीतमय हो जाती है । इसका कारण हीराबाई की उपस्थिति ही है । वह याद करता है । लेकिन वह सिर्फ याद ही नहीं है । गाँव की उन पुरानी बातों का ब्योरेवार स्मरण भर नहीं है । वह प्रमुख पात्र को उस आँचलिक स्थिति से महसूस करने का उपक्रम भी है । इसलिए रेणु ने यहाँ अंचल की उन पुरानी बातों को दोहराया है । अतः एक करुणार्द्र कहानी लोकचेतना से युक्त एक श्रेष्ठ रचना बन जाती है ।

---

1. "तीसरी कसम" - मेरी प्रिय कहानियाँ (1977) - फणीश्वर नाथ रेणु - पृ:25.
2. विश्वनाथ त्रिपाठी का लेख - आलोचना, जनवरी-मार्च 1984, पृ: 21.
3. "तीसरी कसम" - मेरी प्रिय कहानियाँ (1977) - फणीश्वर नाथ रेणु - पृ:31.

गाँवों का बदलना, चाहे वह जिस किसी स्तर का हो, स्वाभाविक है । पुरानी मान्यताएँ बदल रही हैं । पुरानी आस्थाएँ टूट रही हैं । पुराने ज़माने में समाज में कला एवं कलाकारों का अच्छा खासा स्थान था । लेकिन आज हालत बदल गयी है, नृत्य-मंडलियों और गीत-गानों की परवाह कोई नहीं करता । यह एक ग्रामीण यथार्थ है । रेणु की "रसप्रिया" नामक कहानी यद्यपि इस यथार्थ की कहानी नहीं है, फिर भी इसके पंचकौड़ी मृदंगिया के शब्दों में पुरानी आस्था के टूटने से जो वेदना उमड़ती है, उसका संकेत हमें मिलता है । मिरदंगिया कहता है - " . . . जेठ की चढ़ती दोपहरी में खेतों में काम करनेवाले भी अब गीत नहीं गाते हैं । कुछ दिनों के बाद कोयल भी कूजना भूल जायेगी क्या ' ऐसी दोपहरी में चुपचाप कैसे काम किया जाता है ? पाँच साल पहले तक लोगों के दिल में हुलास बाकी था । . . . पहली वर्षा में भीगी हुई धरती के हरे भरे पौधों से एक खास किस्म की गंध निकलती है । तपती दोपहरी में मोम की तरह गल उठती है । रस की डोरी । . . . खेतों में काम करते हुए गानेवाले गीत भी समय-असमय का खयाल करके गाये जाते थे । रिमझिम वर्षा में बारह-मासा, चिलचिलाती धूप में बिरह, चाँचर और लगनी . . . ।"[1] ये सब आजकल किसान भूल गये हैं । यह सच है कि "रसप्रिया" कहानी की मूल दृष्टि ग्रामीण आस्था के टूटने से संबद्ध नहीं है । लेकिन उसमें रेणु ग्रामीण जीवन तथा उसके सामाजिक सन्दर्भ को रेखांकित करते चलते हैं । कहानी में पंचकौड़ी की स्मृति में ग्रामीण भूभाग उभरता-सिमटता रहता है । लेकिन यह मात्र एक भूभाग का अंकन नहीं है । अंकन का एक भीतरी पक्ष भी है । उस भीतरी भाग में विद्यापति के गीतों, उसके आलापनों का एक संसार है । वह खुलने लगता है । अलावा इसके लोकसंस्कृति का एक विशिष्ट संसार भी खुलता है । लोक संस्कृति की चेतना को जिस अनुपात में रेणु ने अपनी कहानियों में मिलाया है वह उनकी कहानियों को अधिक आस्वादनीय बनाती है और यहाँ आँचलिक लोकचेतना रचनाओं को ज़्यादा निजी बना डालती है । श्रीकान्त वर्मा इसे हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रेम कहानियों में

---

1. "रसप्रिया" - मेरी प्रिय कहानियाँ - फणीश्वर नाथ रेणु - पृः 11.

एक मानते हैं – "हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ प्रेम कहानियाँ भी, यह अजीब बात है, रेणु ने ही लिखी है । क्लासिकल ऊँचाइयों तक पहुँचनेवाली महान प्रेम कथा, रसप्रिया, जैसी समूची लोक कथा, लोक कविता, लोक संगीत का निचोड है, बल्कि यह कहना अधिक उचित होगा कि इस एक कहानी में "प्रेमानुभव" को व्यक्त करने केलिए लोक-कलाएँ संगठित और जीवित हो उठी हैं ।"[1]

शिवप्रसाद सिंह की एक चर्चित कहानी है, 'दादी माँ' । स्नेह और ममता की मूर्ति, दादी माँ गाँव भर के बीमारों के "दिन-रात चारपाई के पास बैठी रहतीं, कभी पंखा झेलतीं, कभी जलते हुए हाथ पैर कपडे से सहलाते, सर पर दाल चीनी का लेप करतीं और बीसों बार सर छू-छू कर ज्वर का अनुमान करतीं ।"[2] अंतिम दिनों में ऐसी सेवामयी दादी माँ की भी बुरी हालत हो जाती है । दादा की मृत्यु के बाद उनके श्राद्ध में, दादी माँ के मना करने पर भी, पिताजी ने खूब व्यय किया । इसका कर्ज चुकाने केलिए दादी माँ को अपनी अंतिम संपत्ति, एक सोने का कंगन बेच देना पडता है । दादी माँ कहती है – तेरे दादा ने यह कंगन मुझे इसी दिन केलिए पहनाया था । . . . मैं ने पहना नहीं, इसे सहेज कर रखती आयी हूँ ।"[3] कहानी में संदर्भ के अनुसार ग्रामीण विश्वास की कुछ रीतियों के संकेत भी प्राप्त होते हैं । विवाह के अवसर पर मंगल गीत गाना तथा सीता-राम के विवाह का अभिनय आदि ग्रामीण रीति-रिवाज़ है । एक उदाहरण द्रष्टव्य है – "विवाह के चार-पाँच रोज़ पहले से ही औरतें रात-रात भर गीत गाती हैं । विवाह की रात को अभिनय भी होता है । वह प्रायः एक ही कथा का हुआ करता है, उसमें विवाह से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक के सभी दृश्य दिखायी जाते हैं, सभी पार्ट औरतें ही करती हैं ।"[4] कहानी का यह प्रकरण दादी माँ के व्यक्तित्व को आँचलिक

---

1. प्रसंग – (1981) – श्रीकान्त वर्मा – पृ: 275.
2. "दादी माँ" – अन्धकूप (शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ-1) (1985) – पृ: 24.
3. वही – पृ: 27.
4. वही – पृ: 25-26.

स्थिति के सन्दर्भों में उभारने के साथ साथ विश्वासों के व्यापक वातावरण को बनाने से संबन्धित है ।

शिवप्रसाद सिंह की ही कहानी "कर्मनाशा की हार" में अंधविश्वासों के नाम पर होनेवाले अत्याचार की ओर इशारा है । बाढ को रोकने केलिए विधवा युवति तथा उसके दूध-मुँहे बच्चे की आहुति देने की बात होती है । भैरा पांडे उसका विरोध करता है । लेकिन ग्रामीण परिवेश में निराधार और निरालंब स्त्री के ऊपर किये जानेवाले अत्याचार का पैशाचिक रूप उक्त कहानी में उपलब्ध है । कहानी में ग्रामांकन केलिए लोकगीतों का प्रयोग हुआ है जो उस गाँव की आस्था से बहुत अधिक संबन्ध रखनेवाला है । नयीडीहि गाँववालों का विश्वास है कि नदी के बाढ़ हो जाने पर मनुष्य की बलि दिये बिना वह लौटती नहीं । इसलिए बाढ हो जाने पर "मुखिया जी के द्वार पर लोग इक्कट्ठे होते और कजली बावनी की ताल पर ढ़ोलकें ठनकने लगती । गाँव के दूधमुहँ तक "ईबाढ़ी नदिया जिया के माने"[1] का लोकगीत गाते ।

मार्कण्डेय की प्रसिद्ध कहानी है "भूदान" जो किसानों की भू-समस्या से संबन्धित है । विनोबाजी के भूदान-यज्ञ के परिप्रेक्ष्य में यह कहानी लिखी गयी है । गाँव में यह खबर फैल गयी कि ठाकुर ने दस बिगहा तरी भूदानवालों को दे दी । बेभूम किसानों को यह भूमि बाँटने का निर्णय किया गया । इस निर्णय का लालच दिखाकर ठाकुर ने रामजतन की थोडी ज़मीन हड़प ली । ज़मीन मिलने की प्रतीक्षा में रामजतन भूदान कम्मेटीवालों के पीछे मारा-मारा फिरने लगा । बारह महीने के बाद ज़मीन का कागज़ मिलने पर ही यह मालूम हुआ कि " . . . ठाकुर के जिस दान से उसे भूमि मिली थी, वह केवल पटवारी के कागज़ पर थी । असल में वह कब ही गोमती नदी के पेट में चली गयी है ।"[2] गरीब रामजतन को

---

1. 'कर्मनाशा की हार' - अन्धकूप - शिवप्रसाद सिंह - पृः 60.
2. 'भूदान' - भूदान - (1961) - मार्कण्डेय - पृः 64.

नहर में फावडा चलाना पडा । वहाँ मजूरी करके उसका शरीर सूख कर काँटा बन गया । प्रस्तुत कहानी के संबन्ध में बच्चन सिंह का मत यही है कि "भूदान जैसी कहानी में सुधारों पर व्यंग्य किया गया है ।"[1]

मार्कण्डेय की एक अन्य चर्चित कहानी है, "हंसा जाई अकेला ।" कहानी का हंसा काला-चिट्टा और तगडा आदमी है । पर है वह निरीह । वह काम के खाली होते ही बाबा के पास आकर रामायण, महाभारत की कथाएँ सुनने या गाँधीजी के बारे में जानने का प्रयत्न करता है । उस युवक की बातों के द्वारा तथा कहानी में अन्यत्र सूचित किंचित परामर्शों से ग्रामीण जीवन के विभिन्न पहलुओं को अनावृत किया गया है । कांग्रेस और गाँधीजी पर आकृष्ट होकर हंसा गाँव में कांग्रेस केलिए काम करने लगता है । एक बार गाँव आयी कांग्रेस की कार्यकर्ता, सुशीला हंसा से आकृष्ट हो जाती है । चुनाव के दौरान बारिश में भीगने के कारण वह बीमार पड जाती है । वह हंसा की झोंपडी में पडी है । जी-जान से कोशिश करने पर भी हंसा, सुशीला को बचा न सका । सुशीला की मृत्यु के बाद, हंसा अधपागल-सा गाता हुआ, गाँव भर घूमता - फिरता है । प्रस्तुत कहानी मार्कण्डेय की चर्चित कहानियों में से हैं । नेमीचन्द्र जैन के मतानुसार, "हंसा जाई अकेला" कई दृष्टियों से इस कोटि की कहानियों में सर्वश्रेष्ठ है । उसकी मानवीय सहानुभूति यथार्थ भी है और प्राणवान भी । उसमें कृत्रिमता का अभाव है, और सौभाग्यवश लेखक भावुकता के थोथे-छूँछे जाल से अपने आप को मुक्त रख सका है ।"[2] आँचलिकता के सन्दर्भ में प्रस्तुत कहानी की प्रासंगिकता है । -"अपने प्रभाव में आँचलिकता को भी लेपट लिया है ।"[3] कहानी के स्थानी वातावरण के बावजूद एक सही ग्रामीण मोह की कहानी है "हंसा जाई अकेला ।"[4]

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - §1978§ - बच्चन सिंह - पृ: 400.
2. नेमीचन्द्र जैन का लेख - कल्पना, नवंबर 1957, पृ: 51.
3. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - §1983§ - कृष्णा अग्निहोत्री - पृ: 184.
4. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह - पृ: 400.

विभाजन से संबन्धित कहानियाँ

सन् 1947 का भारत-विभाजन भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। उसका प्रभाव दूरव्यापी रहा है। विभाजन से जुडे हुए सांप्रदायिक दंगे-फसाद में जो नर संहार हुआ वह भारत की ही नहीं, विश्व इतिहास की एक अत्यन्त त्रासद घटना है। इस भयंकर दुर्घटना का प्रभाव न केवल देश की राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में पडा, अपितु सामाजिक संबन्धों और जीवन-मूल्यों को भी इसने विघटित कर दिया है। यह घटना भारत के कितने ही लोगों के जीवन से - उनके वर्तमान और भविष्य से, उनकी सभ्यता और संस्कृति से सीधे जुडी हुई है। नरेन्द्र मोहन के शब्दों में, "इतना बडा नरसंहार, संभव है, पहले भी कभी हुआ हो, पर परस्पर मिल-जुलकर रहनेवाली एक ही संस्कृति में पली ढली, समान भाषाएँ बोलनेवाली, एक से जातीय भावों में बंधी जातियों का देशान्तरण-हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों का, साम्प्रदायिक आग की लपटों में झुलसते हुए स्वदेश त्याग, विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। . . . विभाजन स्थूल और भौतिक रूप में ही एक दुर्घटना नहीं था, यह एक मानवीय ट्रैजडी थी जिसने लाखों लोगों को भावात्मक, विचारात्मक, मनोवैज्ञानिक, मानसिक, और आत्मिक स्तरों पर प्रभावित किया था।"[1] इस मानवीय ट्रैजडी ने लोगों का मानवता में विश्वास एक बार फिर लडखडा दिया है। इसकी ओर संवेदनशील साहित्यकार का ध्यान जाना सहज और स्वाभाविक है। विभाजन को उपजीव्य बनाकर विभिन्न भारतीय भाषाओं में कहानियाँ लिखी गयी हैं। इन कहानियों में उस ऐतिहासिक हादसे के विभिन्न पहलुओं की, उससे उत्पन्न होनेवाली आन्तरिक तथा बाह्य समस्याओं की और इन सब में निहित मानवीय करुणा की सजीव अभिव्यक्ति हुई है। हिन्दी में "अज्ञेय" की "शरणदाता", मोहन राकेश की 'मलबे का मालिक', भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है', उर्दु में अशफाक अहमद की

---

1. विभाजन की भूमिका और एक कथा - संसार - समकालीन कहानी की पहचान - (1978) - नरेन्द्र मोहन - पृ: 109.

'गडरिया,' पंजाबी में कुलवंत सिंह विर्क की 'घास,' बंगला में प्रबोधकुमार मजुमदार की 'सीमान्त' आदि ऐसी कुछ कहानियाँ हैं जो इस राजनीतिक त्रासदी की मानवीय और मनोवैज्ञानिक दस्तावेज़ हैं। किन्तु मलयालम, तमिल, तेलुगु जैसी दक्षिण भारत की भाषाओं के साहित्य में विभाजन की त्रासदी का उतना गहरा अंकन लक्षित नहीं होता है। इसका अपना कारण है। दक्षिण के लोग भारत-विभाजन से सीधे जुडे हुए नहीं हैं। दूसरी ओर उत्तर के लोगों के सिर पर यह एक चट्टान की तरह टूटा है। इसलिए यह उन्हें अधिक गहराई में स्पर्श करता है। मलयालम में टी॰पद्मनाभन की "मखनसिंगिन्टे मरणम" (मखनसिंह की मृत्यु) जैसी कुछ एक कहानियाँ हैं जिनमें विभाजन की त्रासदी का गहरा सन्दर्भ प्राप्त होता है। संभवतः टी पद्मनाभन की कहानी "मखनसिंह की मृत्यु" भारतीय आत्मा की पहचान उसकी सारवत्ता के साथ करानेवाली है

विभाजन के दौर में संकीर्ण धार्मिक दृष्टि को विकसित कराने में धार्मिक ठेकेदार अवश्य ही समर्थ निकले। हिन्दू का हिन्दुत्व के प्रति और मुसलमान का इस्लाम के प्रति इतना राग उत्पन्न हो गया जिसका परिणाम था अमानवीय व्यवहारों का एक लंबा सिलसिला। भीष्म साहनी की कहानी "अमृतसर आ गया है" इसी पर आधारित है। पाकिस्तान से अमृतसर जानेवाली गाडी में हिन्दू, मुसलमान और सिख, तीनों धर्म के मुसाफिर हैं। शहर में दंगा हुआ है। पूरे डिब्बे में खामोशी और तनाव फैल गया है। वज़ीराबाद स्टेशन आने पर पठानों के मन का तनाव ढीला पड जाता है। वे हिन्दुओं को गालियाँ देने लगते हैं। एक हिन्दू परिवार को वे डिब्बे से बाहर धकेल देते हैं और उनके सारे सामान बाहर फेंकते हैं। ये सब देखकर भी अन्य मुसाफिर चुप ही रह जाते हैं। उनमें एक दुबला बाबू भी है। गाडी अमृतसर स्टेशन तक पहुँचते पहुँचते उस आदमी के चेहरे के भाव और उसकी प्रतिक्रियाएँ एकाएक बदल जाती हैं। दूसरी ओर पठानों के मन में डर समाहित होता है। वह दुबला बाबू उन्हें गालियाँ देने लगता है और उन्हें मारने केलिए एक लोहे का हथियार ले आता है। लेकिन इसी बीच सारे पठान दूसरे डिब्बे में जा घुसते हैं। एक बूढा

मुसलमान जब डिब्बे में चढ़ने आता है तो वह दुबला आदमी उसे मारकर नीचे गिरा देता है । "वह दो एक बार 'या अल्लाह' बुदबुदाया, फिर उसके पैर लडखडा गए । उसकी आँखों ने बाबु की ओर देखा, अधमुंदी सी आँखें जो धीरे धीरे सिकुडती जा रही थीं . . . जैसे उसे पहचानने की कोशिश कर रही हो कि वह कौन है और उससे किस अदावत का बदला ले रहा है।"[1] उसका यह प्रश्न विभाजन-काल का सब से बडा ज्वलन्त मानवीय प्रश्न रहा है जिसका कोई उत्तर उस सामाजिक सन्दर्भ में ढूँढ नहीं सका है । ऐसी मूल्य-संबन्धी समस्याओं का अर्थ उन सांप्रदायिक दंगों में कहीं खो गया है । इस अमानवीय हरकत के बाद भी वह बाबु अन्य यात्रियों के साथ बैठकर यों यात्रा करने लगता है कि वहाँ कुछ घटित नहीं हुई हो । "थोडी देर तक वह खडा डोलता रहा, फिर उसने घूमकर दरवाज़ा बन्द कर दिया । उसने ध्यान से अपने कपडों की ओर देखा, अपने दोनों हाथों की ओर देखा, फिर एक एक करके अपने दोनों हाथों को नाक के पास ले जाकर उन्हें सूँघा, मानों जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही है । फिर वह दबे पाँव चलता हुआ आया और मेरी बगल वाली सीट पर बैठ गया ।"[1]

कृष्ण सोबती की कहानी, 'सिक्का बदल गया' विभाजन के सन्दर्भ में संबन्धों और मूल्यों के विघटन और द्वन्द्व को अभिव्यक्त करती है । कहानी की शाहनी चनाब नदी के किनारे एक बडी हवेली में अकेली रहती है जो अपने चारों ओर के मुसलमानों से हिल मिल कर सुख और चैन के साथ जीवन बिताती है । विभाजन सब स्थितियों और संबन्धों को बदल देता है । हुकूमत के बदल जाने पर उसे अपने स्वदेश को छोडकर जाना पडता है । जिस शेरा को उसने बडे वात्सल्य के साथ पाल-पोसकर बडा किया है, वह उसकी सारी संपत्ति लूट लेना चाहता है । वह सोचता है - "हमारे ही भाई-बन्दों से सूद ले लेकर शाहजी (शाहनी का पति) सोने की बोरियां तोला करते थे ।"[2] तब उसके मन में प्रतिहिंसा की भावना उमडती है ।

---

1. "अमृतसर आ गया है" - पटरियाँ (1973) - भीष्मसाहनी - पृ: 32.
2. "सिक्का बदल गया" - कृष्णा सोबती - सिक्का बदल गया - (1975) - सं. नरेन्द्र मोहन - पृ: 87.

किन्तु अगले ही क्षण उसके मन में अपने ही जीवन के अतीत की स्मृतियाँ उठती हैं। उसका विचार है - "आखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गयी, वह शाहनी को जरूर बचायेगा।"[1] विभाजन के बाद पाकिस्तान के हिन्दुओं को हिन्दुस्तान ले जाने केलिए ट्रक आती है। जब वह खाली हाथ चलने लगती, तब थानेदार उसे कुछ साथ रखने को (सोना या चाँदी) कहता है। सुनकर वह कहती है - "सोना-चाँदी! बच्चा, वह सब तुम लोगों केलिए हैं। मेरा सोना तो एक एक ज़मीन में बिछा है।"[2] उसकी बिदाई पर वहाँ जमे हुए सब लोग - सब हिन्दु और मुसलमान रो पड़ते हैं। शेरे बढ़कर उसके पैर छूते हुए कहता है - "शाहनी, मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते! वक्त ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है।"[3] रात को कैंप की ज़मीन पर लेटने पर वह यों सोचती है - "राज पलट गया है . . . सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी।"[4] इस जीवन यथार्थ को मानने केलिए वह तैयार नहीं होती कि अब हुकूमत बदल गया है, सिक्का बदल गया है। हुकूमत के बदल जाने पर, सिक्के के बदल जाने पर उसे तनिक भी अफ्सोस नहीं है। उसे अफ्सोस है, मानवीय संबन्धों और मूल्यों के सिक्के के बदल जाने पर। वस्तुतः इस अन्तर्यथार्थ का एहसास वहाँ एकत्रित सब लोगों को होता है। विभाजन से जुड़ी हुई सारी नृशंसताओं के बावजूद मानवता पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है। विभाजन के सन्दर्भ की इस दुविधा और द्वन्द्व की स्थिति की ओर भी कहानी संकेत करती है। इस कहानी-सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए राजेन्द्र यादव ने यों लिखा है -

---

1. "सिक्का बदल गया" - कृष्णा सोबती - सिक्का बदल गया - सं. नरेन्द्रमोहन - पृ: 88.

2. वही - पृ: 90

3. वही - पृ: 91.

4. वही।

"-छूटते हुए घर, ज़मीन, जायदादें, खेत - खलिहान, सम्बन्ध रिश्ते - सारा परिवेश जो अस्तित्व की सांस - सांस में रचा बसा है । एक पूरी सामन्ती दुनिया, जहाँ औरत या तो केवल एक वस्तु है या वस्तुओं से ऐसी चिपकी है कि उन्हीं का एक हिस्सा हो गयी है ।"[1] इसीलिए अपने स्वदेश को छोडकर जाने में उसे बेहद दुख होता है ।

कमलेश्वर की कहानी, 'कितने पाकिस्तान' में मानवीय एकता की खोज की गयी है जो विभाजन के दौरान सांप्रदायिक दंगों में खोई हुई है । कहानी के मंगल नाम के हिन्दू युवक को सलीमा (बन्नो) नाम की मुसलमान युवति से प्रेम करने के कारण अपना शहर, चुनार को छोडकर पूने जाना पडता है । वह सोचता है - 'सच कहता हूँ तुमसे, उसी दिन से एक पाकिस्तान मेरे सीने में शमशीर की तरह उतर गया था ।"[2] काफी समय के बाद उसे पता चलता है कि उसका दादा भी उस शहर को छोडकर भिवंडी नामक एक दूसरी जगह चले गए हैं । जाते वक्त वह अपने साथ अनेक मुसलमानों और हिन्दुओं को भी ले गए हैं । उनमें बन्नो और उसका बाप भी शामिल हैं । उनके वहाँ आए थोडे दिनों के बाद वहाँ भी दंगा हुआ । दंगा शुरू होने से तीन दिन पहले बन्नो के बच्चा हुआ । तब वह एक डाक्टर के जच्चा-बच्चा के घर में थी । जब दंगाइयों ने वहाँ भी आग लगा दी तब उन जच्चाओं और बच्चों को दूसरी मंजिल से फेंका गया । कुछ बच्चे मर गए, उनमें बन्नो का बच्चा भी शमिल था । पूने आने के बाद मंगल ने बन्नों को केवल दो बार देखे हैं । पहली बार जब वह भिवंडी में अपने दादा के घर गया, तब उसे वहाँ देखा। दूसरी बार बंबई के किसी हाटल में वह बन्नो से मिलता है जो तबतक एक वेश्या हो चुकी थी । वहाँ से लौटते समय उसके मन में यह प्रश्न उठता है - अब कौन सा शहर है, जिसे छोडकर

---

1. औरों के बहाने - (1981) - राजेन्द्र यादव - पृ: 40.
2. कितने पाकिस्तान - कमलेश्वर - भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - (क्रमांक -12) - सं. नरेन्द्र मोहन - पृ: 39.

में भाग जाऊँ' कहाँ-कहाँ भागता हूँ, जहाँ पाकिस्तान न हो ।"[1] जिस उद्देश्य से प्रेरित होकर विभाजन की लड़ाई लड़ी गयी, उस उद्देश्य की पूर्ति से, यानी पाकिस्तान के अस्तित्व में आने के बाद भी, समस्याओं का अंत नहीं हुआ । मंगल सोचता है - "मालूम नहीं कितने पाकिस्तान बन गए - एक पाकिस्तान बनने के साथ-साथ कहाँ-कहाँ, कैसे-कैसे, सब बातें उलझकर रह गईं । सुलझा तो कुछ भी नहीं ।"[2] कहानी में पाकिस्तान शब्द बार बार दोहराया गया है । नरेन्द्र मोहन ने उसे बँटवारे के पर्यायवाची शब्द के रूप में स्वीकारा है । उन्होंने लिखा - "इन पंक्तियों में लेखक ने उस या उन तमाम चीज़ों को पाकिस्तान कहकर पुकारा है, जो एहसास को उथला करती है, कम करती है या खत्म कर देती है और जो हमारे बीच सन्नाटा पैदा करती है जिससे 'कोई कुछ कम होता है'। लेखक ने 'एहसास की कुछ ऐसी ही आ गई कमी' को पाकिस्तान कहकर पुकारा है । आप चाहे इसे बँटवारा भी कह सकते हैं ।"[3]

विभाजन के यथार्थ को जिस रूप में हिन्दी के कहानीकारों ने देखा या महसूस किया, इसी का प्रमाण उपर्युक्त कहानियों में उपलब्ध है । मलयालम में विभाजन के यथार्थ से संबन्धित कहानियाँ विरले ही लिखी गई हैं । पद्मनाभन की कहानी 'मखनसिंह की मृत्यु' एक अपवाद है । अतः इस खंड में तुलनात्मक विश्लेषण अपेक्षित नहीं है ।

---

1. "कितने पाकिस्तान" - कमलेश्वर - भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - सं. नरेन्द्र मोहन - पृ: 54.
2. वही - पृ: 34.
3. भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - भूमिका - नरेन्द्र मोहन (सं.) पृ: 7.

फौजी जीवन यथार्थ की कहानियाँ

मलयालम में कुछ फौजी कहानीकार हैं । वे सचमुच फौजी थे । उन्होंने अपनी कहानियों में फौजी-जीवन के तीक्ष्ण अनुभवों को रेखांकित किया है । "कोविलन" (असली नाम वी॰वी॰अय्यप्पन), पारप्पुरत्तु (के.ई मत्ताई) और नन्दनार (गोपालन) इनमें प्रमुख हैं । सिपाहियों के रूप में इन कहानीकारों को जिन जिन अनुभवों का सामना करना पडा उनका सजीव और यथार्थ चित्रण उनकी कहानियों में मिलता है । भाषा, संस्कृति, आचार-विचार, रीति-रिवाज़ - आदि की दृष्टि से सिपाहियों के जीवन में जो वैविध्य हैं, वे इन कहानीकारों का मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं । इन कहानियों में उदात्त मानवीय मूल्यों पर ज़ोर दिया गया है जो किसी भी जीवन को सार्थक बना देते हैं । कोविलन की कहानियों की विवेचना करते हुए पी. राधाकृष्णन नायर ने इस ओर ज़ोर दिया है - "कोविलन की कहानियों में बन्दूक, फिरंगी, फौज, गाँव, लोकगीत - इन सब का चित्रण मिलता है । लेकिन इनकी समूची कहानियाँ अन्ततः मनुष्य की कथा है ।"[1] पारप्पुरत्तु की बहुत सारी कहानियों में फौजी जीवन केवल पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकृत है । किन्तु उनमें भी मूलतः मानवीय संकट के स्वर ध्वनित हैं । फौजी जीवन को लेकर लिखी हुई नन्दनार की कुछ कहानियाँ हैं जिनकी मूल संवेदना ग्रामीण है । उस ग्रामीण संवेदना को गृहातुरता के परिवेश में ज़्यादा तीव्र और तीक्ष्ण बनाने केलिए फौजी जीवन को उनमें पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया गया है ।[2] चाहे विषय वस्तु के रूप में हो, या पृष्ठभूमि के रूप में, फौजी जीवन का यथार्थ इनमें विन्यसित है । वस्तुतः इन्होंने अपने अनुभव-सत्यों के एकाध प्रकरणों को ही कहानी का रूप दे दिया है । परन्तु, जैसे उपर्योक्त सूचित है, इन्होंने मानवीयता की ऊष्मलता को पहचानने का कार्य किया है ।

1॰ चुनी हुई कहानियाँ - (कोविलन) - (1980) - भूमिका - पी. राधाकृष्णन नायर - पृः 13॰

2॰ चुनी हुई कहानियाँ - (नन्दनार) - (1981) - भूमिका - के॰पी. शंकरन - पृः 16.

हिन्दी में ऐसी कहानियाँ नहीं के बराबर हैं । फौजी जीवन की विडंबनाओं को लेकर, या फौजी जीवन की अनगिनत समस्याओं को लेकर कोई समर्थ रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं है । जबकि मलयालम में इन कहानीकारों ने यथार्थ के एक नए परिच्छेद से हमारा परिचय कराया है ।

कोविलन की कहानी, "अल्लाहुविन्टे समक्षत्तिल" (अल्लॉ के समक्ष में) लडाई में मारे गए मुहम्मद हुसैन साहब नाम के सिपाही के नाम उसके करीबी दोस्त, माधवन के द्वारा लिखे हुए पत्र के रूप में विन्यासित है । हुसैन यह खूब जानता था कि लडाई में "गनबॉट" में जाना ज़्यादा खतरनाक है । फिर भी वह इसलिए गनबॉट में जाने को तैयार होता है जिससे माहवार पच्चीस रुपये अधिक मिलने की संभावना है । "मैं ने तुमसे कहा था कि गनबॉट में न जाना । किन्तु तुम, उसकी तरफ यों बढे कि मार्च कर रहे हो । परिवार का जिम्मा है, पैसे की तंगी है ।"[1] उस युद्ध में बहुतेरे नाविकों की मृत्यु हुई । किन्तु हुसैन बाल बाल बच गया । उसके बाद बंबई के "क्यासल बारक्स" में अंग्रेज़ सेना के साथ जो घमासान लडाई हुई उसमें उसे अपने प्राणों को उत्सर्ग करना पडा । माधवन उससे पूछता है कि उस लडाई में उसने क्यों भाग लिया? अपने पत्र का उत्तर भारत के और पाकिस्तान के राष्ट्रपतियों के नाम भेज देने के भी वह उससे कहता है । कहानी में सिर्फ सूचनाएँ हैं, कोई स्पष्ट आदर्श नहीं है । कहानी का माधवन हुसैन से (हुसैन से ही नहीं अपनी अन्तरात्मा से और हर किसी भारतीय से) पूछता है कि भारत के हिन्दू और मुसलमान कन्धे से कन्धे मिलाकर किसलिए लडाई लडी है? क्या अपनी मातृभूमि को दो भागों में बाँटने केलिए?

हुसैन के मन में एक ओर अपने अभावग्रस्त परिवार के पालन की जिम्मेदारी थी, दूसरी ओर अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का दायित्व। मातृभूमि की लाज उसकेलिए अपनी माँ की लाज के बराबर थी। माधवन लिखता है -

---

1. "अल्लाहुविन्टे समक्षत्तिल" (अल्लॉ के समक्ष में) - चुनी हुई कहानियाँ - कोविलन - पृ: 184.

"हुसैन, प्रत्येक सिपाही को देखते देखते मैं उसका स्मरण कर रहा हूँ। तुम्हारी माँ का स्मरण कर रहा हूँ।"[1] यहाँ कहानीकार का ज़ोर युद्ध की निरर्थकता और असंगति पर ही रहा है। "तुमने युद्ध देखा और महसूस किया। माँ चाहती है, कि पुत्र सदैव अपने पास ही रहा करें। पुत्र का दायित्व है कि वह माँ की देखभाल करें। फिर यह लडाई क्यों? उसकी सोच क्यों? हम जैसे बेटे अनेक हैं? उन चालाक शासकों ने हमारा इस्तेमाल किया है। उन्हीं लोगों ने इतिहास भी बनाया।"[2] युद्ध में निहित नृशंसता से बढ़कर अनैतिकता पर कहानीकार का ज़ोर रहा है। युद्ध को सामने देखकर, उसे अपनी अन्तरात्मा में जख्म करते देखकर ही कोविलन ने ऐसी कहानियाँ लिखी हैं। धार्मिक अन्वेषण के विरुद्ध जो स्वर इस कहानी में गुंजायमान है, वह आदर्श से बोझीला नहीं है।

कोविलन की "सेन्ट्रि" भारत-पाकिस्तान युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी हुई कहानी है। लडाई चल रही है। भारतभूषण और धनिराम सेना की "इन्फेन्ट्री" में हैं जिन्हें दुश्मनों की भूमि पर कब्जा करनेकेलिए आगे बढना है। दुश्मन पहाडों के ऊपर से गोली चला रहे हैं। वे दोनों धीरे धीरे आगे बढ रहे हैं। पहाड के ऊपर दुश्मनों के "ट्रेंच" में पहुँचने पर वे बडे जोश के साथ चिल्लाने लगते हैं - "हिन्दुस्तान जिन्दाबाद, पाकिस्तान मुर्दाबाद"। लडाई में कुछ एक सैनिकों की मृत्यु हुई, कई घायल हुए। भारतभूषण जैसे-वैसे बाल बाल बच गया है। उस "ट्रेंच" के निकट जो खाली घर है उसमें एक पाकिस्तान सैनिक को कैदी के रूप में रखा गया है। रात के वक्त भारत-भूषण को उसके पास "सेन्ट्रि" के रूप में खडे रहना पडता है। उस मुसलमान कैदी के प्रति उसके मनमें घृणा उमडने लगी। उस व्यक्ति से ही नहीं, विभाजन के उन दिनों से लेकर वह सारे मुसलमानों से घृणा कर रहा है। अब उसे एक मुसलमान की हत्या करने का जो मौका मिला है, उसपर

---

1. "अल्लाहुविन्टे समक्षत्तिल" (अल्लॉ के समक्ष में) - चुनी हुई कहानियाँ - कोविलन - पृ: 187.
2. वही।

वह बहुत सन्तुष्ट होता है । वह सोच रहा है - "इस संसार में जितने ही मुसलमान हैं, उन सब की हत्या करनी है । . . . शताब्दियों से ये मुसलमान इस पवित्र देश का अपमान कर रहे हैं । अब मुझे उनमें एक की हत्या करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । हर हर महादेव . . . ।"[1] विभाजन के दिनों के दंगे, हिंसा, डकैती, कत्लेआम,लूटमार . . . इन सब के चित्र उसके मन में उभर आने लगते हैं । उस मुसलमान की हत्या करने केलिए वह कमरे में प्रवेश करता है । ध्यान से देखने पर पता चला कि वह मरा पड़ा है । भारत भूषण के हृदय में जो घृणा जमी हुई थी, वह पिघलने लगी और उस स्थान पर करुणा की धारा बह निकलने लगी । अचानक उसके मुँह से आर्द्र स्वर निकल पड़ा-भाई साहब । भारत भूषण के हृदय का यह सहभागीत्व मानवीयता की पहचान का निदान है । और धर्म, देश इत्यादि की संकीर्णता से ऊपर उठने की बलवत्ती आकांक्षा से प्रेरित, एक सच्चे इनसान के अवरुद्ध कंठ की पुकार इस कहानी में प्रतिध्वनित है ।

नन्दनार की कहानी, "तोक्कुकलक्किडयिले जीवितम्" [बन्दूकों के बीच का जीवन] में सदा ही बन्दूकों के बीच में रहने केलिए अभिशप्त, निराशा और ऊब से ग्रस्त सिपाहियों के जीवन की एक झाँकी मिलती है । कहानी का "मैं" एक "कोत" - कमान्डर है जिसे सुबह से शाम के छः बजे तक बन्दूकों और बयनटों के बीच रहना पड़ता है । उन्हें सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी उसकी है । पहले उसे बन्दूक देखकर ही बड़ा डर लगता था । किन्तु अब तो डर नहीं लगता । बन्दूकों के बीच रहते रहने का आदी हो गया है । वह सोचता है कि बन्दूकों के विषय में उसका रुख एक कसाई का-सा बन गया है । "कभी कभी ये बन्दूकें गुर्राती-सी लगती हैं ।

---

1. सेन्ट्री - चुनी हुई कहानियाँ [कोविलन] - पृ: 129.

बन्दूकों की नालियों में कुछ मन - मुटाव सा लगता है । नालियों को हमेशा ताप जरूरी है । इसीलिए गोलियों को उनमें से गरजते हुए गुज़रना होता है । नालियों से होकर गोलियों के लगातार गुज़रते समय उनको कुछ ऐसे सुख का अनुभव होता होगा जो कि अपने लालों को दूध पिलाते समय माताओं को होता है । दूध भरे स्तनोंवाली माता की बेकरारी का सा अनुभव नालियाँ भी करती होंगी ।"[1] उस अभिशाप्त जीवन से वह बिलकुल ऊब गया है । किन्तु इस ऊब और निराशा के बीच में भी उसके मन में आशा की किरणें फूटती हैं । वहाँ से बहुत दूर उसका भी अपना गाँव है । घर, पत्नी, बच्चे - सब हैं । पत्नी, कुञ्ञिलक्ष्मि उसे सप्ताह में दो पत्र लिखा करती है । उसकी चिट्टी पढने के वे क्षण उसके जीवन के सब से मीठे क्षण हैं । उस "बैरक" में एक दिन एक दारुण घटना घटती है । वहाँ का संतरी (सेन्ट्री) स्वयं बन्दूक चलाकर मर गया । उसकी जेब से जो पत्र मिला उसमें लिखा गया था - "आज उस लडकी की शादी है, जिसे मैं इतने दिनों तक प्यार करता आ रहा था । अब मेरे जीवन का कोई मतलब ही नहीं रहा, मेरा जीना बेकार है । मैं मर रहा हूँ ।"[2] कहानी का "मैं" जल्दी से वहाँ से वापस आता है और अपनी पत्नी की चिट्ठी एक बार फिरपढ़ता है - "यहाँ से गए तीन महीने और ग्यारह दिन हुए । अभी और कितने दिन काटने हैं' ज़रा से देखने से मुझे . . . "[3] फौजी जीवन की मजबूरियों का यथार्थ चित्रण इस कहानी में प्राप्त होता है । कहानीकार यह बताना चाहता है कि यह भी एक जीवन है, एक खास प्रकार का जीवन ।

---

1. "तोक्कुकलक्किडायिले जीवितम" (बन्दूकों के बीच का जीवन) - नन्दनार मलयालम की श्रेष्ठ कहानियाँ " (1970) - सं. और अनु: सुधांशु चतुर्वेदी -पृ: 109.
2. वही - पृ: 116.
3. वही ।

नन्दनार की एक अन्य सशक्त कहानी है, "सिपाही होशियार सिंह" जो भारत-चीन युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी हुई है। कहानी का सिपाही होशियार सिंह वोलांग (चीन) लड़ाई का अश्वत्थामा [1] है। वह भारत के उन सिपाहियों का प्रतीक है जो भारत-चीन युद्ध में बुरी तरह घायल हुए हैं, अपंग हुए हैं और जिन्होंने लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त की है। कहानी का 'मैं' एक सिपाही है जो अस्पताल में होशियार सिंह से परिचित होता है। पंजाब के एक मध्यवर्गीय कृषक परिवार में होशियार सिंह का जन्म हुआ था। घर में उसके माता-पिता और एक भाई है। सन् 1958 में फौज में उसकी भर्ती हो गयी थी। उसे पाँच वर्ष का अनुभव है, लान्सनायक के रूप में उसकी पदोन्नति भी हो जाती है। उसी समय भारत-चीन सीमा में लड़ाई शुरू हो गयी थी। अपने साथियों के साथ उसे नेफा भेजा गया। घमासान लड़ाई हुई। एक दिन वह शत्रु-सेना के बीच में फँस गया। शत्रुओं के तन्त्रों और रहस्यों को जानने केलिए ही वह सीमा के बाहर गया था। उसने बड़े साहस के साथ शत्रु सेना का सामना किया। अन्त में शत्रु की गोली खाकर वह गिर पड़ा। उसे तिब्बत के अस्पलात में पहुँचाया गया। जब लड़ाई खत्म हुई उसे गुआहटी के अस्पताल लाया गया। वहाँ उनकी दोनों टाँगें चीरफाड कर काट डाली गयीं। बावजूद इसके वह बड़े जोश के साथ कहता है - (चीन के साथ लड़ने केलिए) "हमें ज़्यादा 'ऑटोमाटिक' बन्दूकों की ज़रूरत है, 'ऑटोमाटिक' बन्दूकों की ज़रूरत है।"[2] कहानी के कथावाचक को लगता है कि वह सच्चा देश-भक्त है। "उसका यह ख्याल ठीक ही है - "यह कहानी मात्र सिपाही होशियार सिंह की कथा ही नहीं, बल्कि हर भारतीय सिपाही की कथा है। यह देश के हर नागरिक की कथा है, जो शक्ति और सौहार्द पर विश्वास रखता है।"[3]

---

1. "सिपाही होशियार सिंह" - नन्दनार - चुनी हुई कहानियाँ - (1981) - नन्दनार - पृ: 235.
2. वही - पृ: 230.
3. वही - पृ: 229.

फौजी जीवन को विषय-वस्तु बनाकर लिखनेवाले मलयालम के एक अन्य प्रमुख कहानीकार हैं "पारप्पुरत्तु" । उनकी कहानी, "ओन्नुरंड्डान कषिन्ञेंकिल" (अगर ठीक से सो सका तो) का सोमन उन हजारों साधारण सिपाहियों का प्रतिनिधि है जो अपने परिवार की अभावग्रस्त स्थिति के कारण ही फौज में शामिल है । कहानी में कोई विशेष घटना तो नहीं है । घटना तो केवल इतना है : घर से उसे माँ का एक पत्र मिलता है । उसमें उन्होंने कुछ पैसे भेज देने को लिखा है । पत्र पढ़कर वह सोच में पड जाता है । अपने जीवन की समूची घटनाएँ उसके मन में एक चलचित्र के दृश्यों की भाँति एक दूसरे के बाद उभर आ रही हैं । "उसने एक पैसे का भी दुरुपयोग नहीं किया है । पूरा का पूरा वेतन वह घरवालों को भेजता है । घर की हालत बिगडी हुई है । बारह वर्ष की आयु से ही माँ और तीन छोटी बहनों के परिवार का दायित्व कन्धे पर है । . . . तब से वह अपने परिवार का पालन करता आ रहा है । छोटी बहन की शादी भी उसने ही करा दी है ।"[1] जब माँ का पत्र मिलता है तब उसके पास एक कौडी भी नहीं है । उसे बेहद दुःख होता है । कर्ज लेने को उसका मन तैयार नहीं है । किन्तु उसे बार बार कर्ज लेना ही पड रहा है । अब किसी से पैसा नहीं मिलेगा । वस्तुतः प्रस्तुत कहानी में उसके असमंजस का चित्रण हुआ है । एक औसत सिपाही की पारिवारिक मजबूरियों की कहानी के रूप में इसका विश्लेषण संभव है ।

मलयालम कहानी साहित्य में इन तीनों कहानीकारों को फौजी कहानीकार बताए जाते हैं । जब कभी भारतीय अस्मिता से जुडी हुई कहानियों की चर्चा होती है तो प्रायः इनकी युद्ध की पृष्ठभूमि में या फौजी जीवन की पृष्ठभूमि में लिखी हुई कहानियों का विश्लेषण किया जाता है ।

---

1. "ओन्नुरड्ड्डान कषिन्ञेंकिल" (अगर ठीक से सो सका तो) - चुनी हुई कहानियाँ (1968) - पारप्पुरत्तु - पृ: 77-78.

अध्याय : चार

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों का अस्तित्ववादी सन्दर्भ

अस्तित्ववाद : सैद्धान्तिक विवेचन

"अस्तित्व" शब्द अंग्रेजी के "एक्सिस्टेन्स" (existence) या "बीइंग" (Being) के समान अर्थ में प्रयुक्त है। "अस्तित्व" का अर्थ है, जीवित रहने की वह पद्धति, जो अन्य वस्तुओं के साथ समायोजन में निहित है।[1] 'एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एंड एथिक्स' में अस्तित्व को 'बीइंग' का समानार्थी माना गया है।[2] 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के अनुसार अस्तित्व भाषा में पत्थर, मछली आदि प्रत्येक की उपस्थिति को सूचित करनेवाला शब्द है।[3] इस प्रकार अस्तित्व शब्द के अनेक सामान्य अर्थ तथा उच्चतर अर्थ बताए गए हैं।

प्रथम विश्व महायुद्ध के बाद "अस्तित्व" शब्द को दर्शन के क्षेत्र में ग्रहण किया गया है। एक दार्शनिक पद्धति के रूप में अस्तित्ववाद का प्रारंभ सुप्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक, सॉरेन कीर्केगार्द के चिन्तन से होता है। अस्तित्ववाद में मानवीय जीवन और मानवीय नियति का यथार्थपरक विश्लेषण होता है। कीर्केगार्द ने मानवीय अस्तित्व को एक दार्शनिक समस्या के रूप में स्वीकार कर उसकी व्याख्या की है। उनके मतानुसार, अस्तित्व मनुष्य के बाह्य अस्तित्व, जो इन्द्रियों से अनुभूत है, से भिन्न एक आंतरिक आत्मा है जो सामान्य परिस्थितियों

---

1. "The Mode of being which consists in intraction with other things". D.D.Runes - The Dictionary of Philosophy - p.102.

2. Encyclopaedia of religion and ethics - James Hastings, Vol.II - p.454.

3. Encyclopaedia Britanica - Vol.7 - p.964.

में बोधगम्य नहीं है बल्कि चरम संकट के क्षणों में क्षण मात्र केलिए प्रकाशित हो उठती है । और अस्तित्व की विशिष्टता केवल निर्वासन में है, जो केवल मनुष्य के पास है, मनुष्येतर प्राणियों में नहीं ।"[1] उनका कहना है, "अस्तित्व शब्द का उपयोग इस दावे पर ज़ोर देने केलिए किया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति इकाई अपने आप में विशिष्ट (Unique) है और आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में अविश्लेषणीय है । यह वह अस्तित्वमय है, जो स्वयं चुनाव करता है, एवं स्वयं चिन्तन करता है, यह कि उसका भविष्य कुछ अंशों में उसके स्वतन्त्र चुनाव पर निर्भर है, अतः उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता ।"[2] सारेन कीर्केगार्ड के अलावा, दस्तोवस्की, नीत्शे, एडमंड हसरेल, कार्ल जैस्पर्स, मार्टिन हैडगर, गैबरीयल मार्सल, ज्याँ पाल-सार्त्र, अल्बेर कैमू, फ्रान्ज़ काफ्का आदि साहित्यिक मनीषियों और दार्शनिकों ने भी मानवीय अस्तित्व सम्बन्धी गहरी समस्याएँ उठायी हैं । विभिन्न अस्तित्ववादी विचारकों और विद्वानों की अस्तित्व-सम्बन्धी परिभाषाएँ अस्तित्ववाद के बहुमुखी स्वरूप और उसके मानवीय सन्दर्भ को व्यक्त करती हैं । 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' के अनुसार, अस्तित्ववाद एक दार्शनिक स्कूल की बजाय एक प्रवृत्ति या संस्थित भाव है। सभी अस्तित्ववादी विचारकों में कुछ विचार समान है । किन्तु इसे साधारणतः विश्व के मतों और

---

1. अस्तित्ववाद : कीर्कगार्ड से कामू तक: योगेन्द्र शाही - पृ: 41.

2. 'According to Kierkegard', the word is that used to emphasize that claim that each individual person is unique and inexplainable in terms of any Metaphysical or Scientific system; that he is a being who chooses as well as a being who thinks or conteffiplates; that he is free and that because he is free he suffers, and that since his future depends in part upon his free choice it is not altogether predictable'.
Encyclopaedia Britänica - p.968.

कार्य-पद्धतियों के प्रति विरोधी कहा गया है, जिनके कारण मानव ऐतिहासिक शक्तियों के हाथों असहाय कठपुतली माना जाता है या पूर्णतः प्राकृतिक प्रक्रिया के सतत प्रवाहक्रम द्वारा निश्चित होता है ।"[1] 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में इसकी {अस्तित्ववाद की} व्याख्या एक दूसरे ढंग से भी की गयी है । "अस्तित्ववाद-दर्शन चिन्तन का वह रास्ता है, जो सम्पूर्ण पार्थिव ज्ञान का उपयोग करता है और उसे इस क्रम में परिवर्धित करता है, जिससे मानव पुनः स्वयं जैसा बन सके ।"[2] प्रसिद्ध दार्शनिक, ज्याँ पॉल सार्त्र ने लिखा है - "अस्तित्ववाद अनीश्वरीय और अनास्थात्मक सह-जीवन स्थितियों के परिणामों को प्रस्तुत करने के प्रयास के सिवाय और कुछ नहीं ।"[3]

अस्तित्ववाद के उदय केलिए उत्तरदायी परिस्थितियाँ

किसी भी दार्शनिक चिन्तन धाराओं के उदय का तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से सीधा या परोक्ष संबन्ध होना स्वाभाविक है । अस्तित्ववाद दर्शन भी इसका अपवाद नहीं है । इसलिए

---

1. "Since Existentialism is a tendency or attitude rather than a philosophical school; there are few doctrines common to all exponents of it. But it may be generally characterised as protest against views of the world and policies of action in which individual human beings are regarded as the helpless play things of historical forces are wholly determined by the regular operation of natural process". Encyclopaedia Britanica - Vol.8, p.968.

2. 'Philosophy of existence is a way of thinking which uses and Transcends all material knowledge in order that man may again become himself". Ibid. p.968.

3. 'Existentialism is nothing else than an attempt to draw all the consequences of a coherent atheist position". Jean Paul Sartre - Existentialism - (1947) - p.61.

प्रस्तुत चिन्तन पद्धति का अध्ययन करने से पहले उन परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना उचित लगता है जिसके फलस्वरूप इस दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ है । उन परिस्थितियों में फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति, दोनों विश्व-महायुद्ध, विज्ञान का बढ़ता हुआ प्रभाव, पूर्ववर्ती दर्शन आदि प्रमुख हैं । इन बाह्य परिस्थितियों पर संक्षिप्त ढंग से प्रकाश डालना संगत प्रतीत होता है ।

1. फ्रान्सीसी राज्य क्रान्ति

फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति ने फ्रान्स के ही नहीं, समूचे यूरोप के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में बड़ा-सा परिवर्तन उपस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । सन् 1792 में फ्रान्स ने आस्ट्रिया और प्रशिया के खिलाफ लडाई शुरू कर दी । लडाई में फ्रान्स की सेना पराजित हुई । लोगों ने समझा कि बादशाह, सोलहवीं लुई शत्रुओं से मिला हुआ है । पैरिस की क्रान्तिकारी कम्यून ने यह घोषित किया कि बादशाद के विरुद्ध जनता ने फौजी कानून जारी कर दिया है । उसने 10 अगस्त 1792 ई. को बादशाह के महल पर हमला किया । बादशाह जनता पर गोलियाँ चलाने लगा । किन्तु आखिर जनता की ही जीत हुई सन् 1792 ई. की नाशनल कन्वेन्शन ने गणराज्य की घोषणा कर दी । उसके बाद 16 वीं लुई का मुकद्दमा हुआ । उसे मौत का सजा दी गई और 21 जनवरी 1793 ई. को उसे फाँसी पर चढाया ।[1] इस क्रान्ति के बाद फ्रान्स के सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में आन्दोलनात्मक परिवर्तन हुए । रूसो, वाल्तेयर, मोन्टेस्क्यू जैसे लेखकों ने क्रान्ति को बहुत कुछ प्रोत्साहन दिया है । अब तक मनुष्य अपनी मुक्ति केलिए ईश्वर पर निर्भर रहते थे । क्रान्ति के बाद वह यह बात समझने लगा कि अपनी मुक्ति ईश्वर से नहीं, अपने ही प्रयत्न से होती है ।

---

1. विश्व इतिहास की झलक -(पहला खंड)- (1962) - जवहरलाल नेहरू - अनुवादक : चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय - पृ: 515-516.

इस क्रान्ति के फलस्वरूप जनता के बीच में बन्धुत्व, समानता और स्वतन्त्रता आदि की भावनाएँ फैलने लगीं । फ्रान्स की राज्य-क्रान्ति के पूर्व अमेरीका का स्वतन्त्रता संग्राम और औद्योगिक क्रान्ति, ये दोनों घटित हो चुकी हैं । इन तीनों के फलस्वरूप व्यक्ति-चेतना का विकास हुआ । धार्मिक अन्ध-विश्वासों, रूढियों और बन्धनों को तोडकर मनुष्य स्वतन्त्र और समान घोषित किया गया ।

विश्व-महायुद्ध

दोनों विश्व-महायुद्धों की विभीषिका से उत्पन्न आर्थिक, सामाजिक राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ अस्तित्ववादी दर्शन के उदय और प्रचार-प्रसार की दिशा में सहायक हुई हैं । इन दोनों विश्व-महायुद्धों में लाखों सैनिकों की ही नहीं करोडों आम लोगों की मृत्यु हुई है । इसके अलावा थोडे से महत्वाकांक्षी राजनैतिक नेताओं की स्वार्थ-पूर्ति केलिए बहुत से राष्ट्रों की आर्थिक स्थिति बिगड गई । हिटलर ने मनुष्य को भयंकर पीडा दे देकर मक्खियों की तरह मार डाला है । सन् 1945 में अमेरीका ने जापान की हिरोशिमा और नागसाकी में अणुबम गिराया जिससे कितने ही निरीह प्राणियों की मृत्यु हुई है । मनुष्य अपनी नश्वरता के बारे में सोचने को बाध्य हुआ । जर्मन कैम्पों में बन्दी रहने के बाद स्वयं सार्त्र ने लिखा - "हम से सब अधिकार छीन लिये गये, यहाँ तक कि बोलने का अधिकार भी हमें नहीं मिला । हमें प्रतिदिन हमारे मुँह पर अपमानित किया जाता और हमें मौन रहकर उसे सहन करना ही पडता । सेवकों, यहूदियों अथवा राजनीतिक बन्दियों के रूप में एक अथवा दूसरे कारण के बहाने हमें सामूहिक ढंग से देश-निकाला दिया जाता था । . . . देश-निकाला, बन्दीगृह और विशेषकर मृत्यु हमसे संबद्ध एक प्रकृति बन गए थे । . . . प्रत्येक अवसर पर हम "मनुष्य नश्वर प्राणी है" की समान्य कहावत चरितार्थ करते थे ।"[1]

---

1. The Republic of Silence - Jean Paul Sartre - p.498-499.

इन दोनों विश्व-युद्धों ने मनुष्य की क्रूरता, पाशविकता और स्वार्थपरता को पूर्णतः पर्दाफाश किया हैं। परिणाम स्वरूप मानवीय मूल्यों पर मनुष्य का जो विश्वास था वह भी टूट गया है। लोग निराशावादी बन गए। जीवन की निस्सारता और निरर्थकता का बोध मनुष्य-मन को कचोटने लगा। अपनी सत्ता और अस्तित्व के बारे में विचार करने केलिए वह विवश हो गया। उसके मन की अशान्ति और आकुलता अस्तित्ववादी दर्शन के उदय के कई कारणों में प्रमुख मानी जाती है।

विज्ञान का बढता हुआ प्रभाव

वैज्ञानिक उन्नति के कारण संसार में, विशेषकर पश्चिम देशों में जीवन की सुविधाएँ बहुत कुछ बढ गयी हैं। यह जीवन में विज्ञान का एक धनात्मक प्रभाव है। किन्तु इसके कई ऋणात्मक प्रभाव भी है। अणुबम और अन्य भीषण हथियारों के निर्माण ने मनुष्य को ऐसा सोचने को बाध्य कर दिया कि मानवता की सुरक्षा का कोई मार्ग नहीं है। दूसरे शब्दों में इन हथियारों ने समूचे मानव-अस्तित्व के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिये हैं। विज्ञान के विकास के फलस्वरूप हम अद्भुत मशीनों का आविष्कार कर सके। किन्तु इन मशीनों ने मनुष्य को जड और मशीनी बनाया। आदमी और आदमी के बीच का रिश्ता टूट गया और एक तरह की यान्त्रिक सभ्यता का प्रचार हुआ। मनुष्य अपने द्वारा निर्मित मशीनों का दास बन गया। इस प्रकार वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के साथ साथ मनुष्य कटा हुआ और बेसहारा अनुभव करने लगा। इसको तकनीकी अलगाव कह सकते हैं।[1] इस तकनीकी अलगाव से मुक्त होने केलिए और अपने अस्तित्व के बारे में सोचने केलिए मनुष्य बाध्य हो गया।

---

1. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - {प्रथम संस्करण} - शिवप्रसाद सिंह - पृ: 3-4.

पूर्ववर्ती दार्शनिक पद्धतियों का प्रभाव

अस्तित्ववादी दर्शन के उदय को उसके पहले के कई दार्शनिकों की चिन्तनधाराओं से जोड़ा जा सकता है । इस दर्शन का स्रोत कैंट के दर्शन में ढूँढा जा सकता है । कैंट ने लिखा है - "अस्तित्व वस्तुत: एक वास्तविक विधेय अथवा किसी चीज़ की अवधारणा नहीं है जिसे किसी दूसरी चीज़ की अवधारणा में जोड़ा जा सके ।"[1] इसी तरह इस चिन्तन-पद्धति को देकार्त के दर्शन से भी जोड़ा जा सकता है । देकार्त ने कहा है - "मैं सोचता हूँ, अत: मैं हूँ ।" उनके इस व्यक्तिवादी और वस्तुगत चिन्तन-पद्धति दार्शनिक चिन्तन की कसौटी मानी जाती है । आधुनिक अस्तित्ववादियों ने इस मान्यता को उलट दिया और आत्मगत चिन्तन-पद्धति को अपनाया है ।

एक दार्शनिक पद्धति के रूप में अस्तित्ववाद का उदय कीर्कगार्द और नीत्शे के दर्शन से होता है । इसके व्यापक प्रचार-प्रसार में पश्चिम के विभिन्न दार्शनिकों और लेखकों का योगदान महत्वपूर्ण है । किन्तु वे सब इस दर्शन पद्धति के सभी तत्वों और सिद्धान्तों के विषय में एकमत नहीं है । इस विषय में हर एक दार्शनिक की अपनी अपनी मान्यताएँ हैं । ईश्वर-संबन्धी मान्यता को आधार बनाकर इन सब को मुख्यत: तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

1. आस्थावादी दार्शनिक - इस वर्ग के अन्तर्गत कीर्कगार्द , जैस्पर्स, मार्सेल आदि के नाम आते हैं ।
2. अनास्थावादी दार्शनिक - इस कोटि में नीत्शे, सार्त्र और कैमू आदि आते हैं ।
3. मध्यम श्रेणी के दार्शनिक - हैडगर इस कोटि में आते हैं ।

---

1. अस्तित्ववाद : कीर्कगार्द से कामू तक - योगेन्द्र शाही - पृ: 6.

कीर्केगार्द, जैस्पर्स, मार्सल आदि को ईश्वर के अस्तित्व पर कोई सन्देह नहीं था । इसलिए अपनी अस्तित्व-सम्बन्धी सारी समस्याओं का समाधान वे ईश्वर में ढूँढते थे । इनमें कीर्केगार्द का मुख्य उद्देश्य ही ईसाई जगत में व्याप्त बाह्याडंबरों और अनाचारों का खंडन करना और ईश्वर और मनुष्य के बीच सीधा सम्बन्ध स्थापित करना था । उनके मतानुसार ईश्वर व्यक्ति के अन्तःकरण में प्रेरक-शक्ति के रूप में मौजूद है , तर्क से उसका अस्तित्व सिद्ध करने की जरूरत नहीं है । उन्होंने लिखा है - "ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणों से नहीं, भक्ति से सिद्ध किया जाता है ।"[1]

किन्तु जब नीत्शे ने यह घोषित किया, कि ईश्वर मर गया है, हमने ईश्वर को मार दिया है[2], तब प्रचलित विश्वासों की जड़ें हिलने लगीं । उनकी यह घोषणा डार्विन के विकासवाद का दूसरा सोपान है । अस्तित्ववादी दार्शनिकों में सर्वाधिक विख्यात, सार्त्र की यही मान्यता है, यदि व्यक्ति को अपने जीवन में ही सार अनुभूत नहीं होता, तो फिर ईश्वर की आस्था में किसी महत्वपूर्ण वस्तु के मिलने की आशा नहीं की जा सकती । वे दस्तोवस्की के इस मत से पूर्ण रूप से सहमत हैं कि यदि ईश्वर विद्यमान नहीं है, तो सब कुछ स्वीकृत होगा । सार्त्र के अनुसार यही अस्तित्ववाद को मूल-चेतना है ।[3] वे ईश्वर में विश्वास न करते हुए भी मानवता में विश्वास करनेवाला प्रतिबद्ध दार्शनिक हैं । उनके सन्दर्भ में सब से बडी चीज़ मनुष्य की अपनी स्वतन्त्रता है । अपनी सभी स्थितियों केलिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है । इसलिए अस्तित्व का मुख्य अर्थ है स्वतन्त्रता ।

---

1. 'One proves God's existence by worship - ... not by proofs'. - Soren Kierkeguard, Concluding Unscientific Post - Script-p.179

2. 'God is dead; we have killed God' - See Paul Roubiczek - Existentialism for and against - (1966) - p.49.

3. 'Dostoievsky once wrote - If God did not exist, everything would be permitted'. - Existentialism and Humanism (1960)- Jean Paul Sartre - p.33.

उनकी राय में मनुष्य केवल स्वातन्त्र ही नहीं, बल्कि स्वतन्त्र होने केलिए अभिशाप्त भी है ।[1] कैमू जीवन को विसंगति का पर्याय मानते हैं । उनकी राय में, आशा और निराशा के दो छोरों में बंधा जीवन सिर्फ एक ही बोध उत्पन्न कर सकता है, वह है विसंगति का बोध। कैमू ने कहा कि हम अस्तित्व के चट्टान को ढोते रहने केलिए अभिशाप्त हैं । विसंगतियों की दुनियाँ में अभिशाप्त अकेले मनुष्य की व्यथाएँ कैमू-चिन्तन और साहित्य का मुख्य आधार है । युद्धोत्तर यूरोप का वातावरण और अकेलेपन ने काफ्का को तंग किया है । उनके मतानुसार युग की सबसे भीषण समस्या अलगाव या एकाकीपन की है । मनुष्य और मनुष्य का, मनुष्य के बाहरी और भीतरी अस्तित्व का, उसके भौतिक और आध्यात्मिक अंशों का जो अलगाव है, उस अलगाव को पाटने केलिए उनका हर एक पात्र - चाहे वह "अमेरिका" का काल हो, या 'ट्रायल' का जोसफ.के. हो, या 'कैसिल' का "के" हो - प्रयत्नशील है । मानवीय अस्तित्व सम्बन्धी इस समस्या का उत्तर देने का आग्रह उनकी कृतियों में लक्षित होता है ।

बीसवीं शताब्दी के चिन्तन और साहित्य को मुख्य रूप से तीन प्रतिभाओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया है । डारविन ने अपने विकासवाद के सिद्धान्त के द्वारा, फ्रायड ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के द्वारा और कार्ल-मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्द के द्वारा मानवीय चिन्तन और उसके सृजनात्मक क्षेत्रों को नया आयाम प्रदान किया है । इन तीनों ने जीवन से संबन्धित प्रचलित मान्यताओं पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है । तदुपरान्त जीवन की परंपरागत धारणाओं के विरुद्ध अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने जो विद्रोह किया, उससे मनुष्य पहले अपने स्वातन्त्र्य और अस्तित्व के प्रति सचेत हो गया । नीत्शे, सार्त्र, कैमू, काफ्का आदि अस्तित्ववादी चिन्तकों ने मानवीय अस्तित्व की जो गहरी समस्याएँ उठायी, इनका व्यापक प्रभाव पश्चिम के वातावरण और साहित्य पर पडा ।

---

1. Being and Nothingness - (1957) - Jean Paul Sartre - p.515

इन दार्शनिकों में अधिकांश स्वयं साहित्यकार भी थे जिनकी सृजनात्मक कृतियों में उनके दर्शन की व्याख्याएँ मिलती हैं । इसके अलावा, दस्तोवस्की, विलियम ब्लेक, टी. ई. लारेन्स, टी. एस. इलियट, जेम्स ज्वाइस, अरनेस्ट हेमिंगवे, साइमन दे बाउआ जैसे लेखकों की कृतियों पर इस चिन्तन पद्धति का न केवल प्रभाव है, अपितु इनमें से अधिकांश ने इस दर्शन के आधुनिक स्वरूप को गढ़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । युद्धोत्तर पाश्चात्य साहित्य में अस्तित्व के संकट का अत्यन्त प्रखर रूप मिलता है ।

अस्तित्व के संकट की समस्याएँ प्राचीन काल से भारतीय साहित्य का विषय भी रहा है । पश्चिम के अस्तित्ववादी चिन्तन-पद्धति ने अवश्य भारतीय साहित्य को प्रभावित किया है । किन्तु यह भी एक सत्य है कि यहाँ की समस्याएँ यहाँ के परिवेश यहाँ के जीवन्त यथार्थ से जुड़कर इसकी अभिव्यक्ति हुई है । "इस विचारधारा का आयात भारत में गत दस पन्द्रह वर्षों से हो रहा है और अपने देश की बिगड़ती हुई राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों ने इसके प्रचार में योगदान दिया है ।"[1] मोहन राकेश के अनुसार, पश्चिमवालों और भारतीयों ने अपने अपने परिवेश में मानवीय संकट और अस्तित्व की व्यथा को भोगा है । उन्होंने लिखा है - इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि ह्यूमन क्राइसिस का जो रूप पश्चिमी देशों में है, उस रूप में हमने उसे नहीं भोगा है । सच बात तो यह है कि हमने पश्चिमवालों द्वारा पैदा की गयी परिस्थितियों को अधिक भोगा है - दूसरे शब्दों में मैं इसी बात को यों कह सकता हूँ, कि हमने परिस्थितियों की परिस्थितियों को भोगा है । . . . उन लोगों ने अपने परिवेश में ह्यूमन क्राइसिस को भोगा है, और हमने अपने परिवेश में । और दोनों ने ही समय और परिवेश की छटपटाहट को अपने-अपने ढंग से अभिव्यक्त किया है ।"[2] कमलेश्वर भी चिन्तन की समय-

---

1. आज का लेखक और सांस्कृतिक विघटन - (डा. नगेन्द्र का लेख) धर्मयुग - 2 जून, 1968 - पृ: 17.
2. सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि : मोहन राकेश - पृ: 56.

सापेक्षता पर ज़ोर देते हैं । "चिन्तन भी देश-काल-बोध से निरपेक्ष नहीं है और देश अपने काल-विशेष में अपना ही चिन्तन-स्वर स्थापित करता है । यदि कहीं और से कुछ ग्रहण भी करता है तो अपने परिवेश की सापेक्षता में ।"[1] धर्मवीर भारती का यह मत है कि भारतीय रचनाकारों पर एक ओर उस वैश्विक स्थितियों का असर भी पड़ा है साथ ही साथ भारतीय जीवन की संकीर्णता का प्रभाव भी । "उन्होंने लिखा है- "सांस्कृतिक संकट या मानवीय तत्व के विघटन की जो बात बहुधा उठायी जाती रही है उसका तात्पर्य यही रहा है कि वर्तमान युग में ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी हैं जिसमें अपनी नियति के इतिहास निर्माण के सूत्र मनुष्य के हाथों से छूटे हुए लगते हैं, मनुष्य दिनों दिन निरर्थकता की ओर अग्रसर होता प्रतीत होता है । यह संकट केवल आर्थिक या राजनीतिक संकट नहीं वरन् जीवन के सभी पक्षों में समान रूप से प्रतिफलित हो रहा है । यह संकट केवल पश्चिम या पूर्व का नहीं है वरन् समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है ।"[2] गंगाप्रसाद विमल की राय में, पश्चिम के और भारतीय अस्तित्ववादी चिन्तन में जो भिन्नता है उसका मुख्य कारण अपनी अपनी सामाजिक बनावट है । उनका कथन है - "स्वतन्त्रता के बाद के कुछ उपन्यासों, कथाओं और कविताओं पर अस्तित्ववादी प्रभाव पूर्ण रूपेण देखा जा सकता है, मनुष्य के जनहीन प्रदेशों अर्थात विजन अर्थात अकेलेपन की समस्या, आत्मपरायापन, आत्मनिर्वासन, मृत्युबोध, स्वतन्त्रता, सामूहिक मुक्ति, मशीनीकरण से उत्पन्न संत्रास के बिन्दुओं का स्पर्श करती हुई कहानियाँ गंभीर अस्तित्ववादी चिन्तन की कथाएँ कही जा सकती हैं । भारतीय सन्दर्भ में अस्तित्ववादी चिन्तन थोड़ी भिन्नता लिए हुए है - इसी भौगोलिक और ऐतिहासिक दबाव की भिन्नता भी कह सकते हैं परन्तु मूलतः इस भिन्नता का कारण हमारी सामाजिक बनावट है जिसमें एक ओर परंपरा के मिथक का प्रभुत्व है तो दूसरी संक्रमित आधुनिकता का संचरण ।"[3]

---

1. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 149.
2. मानव मूल्य और साहित्य (प्रथम संस्करण) - भूमिका - धर्मवीर भारती-पृ: 10.
3. आधुनिकता : साहित्य के सन्दर्भ में (1978) - गंगाप्रसाद विमल - पृ: 169.

इतना तो अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि पश्चिमी दृष्टि से उद्भ वित, पुष्ट अस्तित्ववादी दर्शन अन्ततः मानवीय स्थितियों से संबन्धित था । इसका प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पडा है । इस प्रभाव के अपने कारण हैं । यह नहीं कि पश्चिमी साहित्य में इस समस्या का उल्लेख है, तो अवश्य हमें भी इसका उल्लेख करना है । इस दृष्टि से अस्तित्वदर्शन को यहाँ के साहित्यकारों ने स्वीकारा नहीं । इसका प्रमुख कारण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की सामाजिक स्थितियाँ है । विश्व-युद्ध जैसी विकराल भीषणता से होकर गुज़रने का दुर्भाग्य तो भारत का रहा नहीं । लेकिन भारत की इस समय की परिस्थितियाँ सामान्य नहीं थीं । इन समस्याओं ने साहित्यकारों को पुनः अपने अस्तित्व पर सोचने को बाध्य किया । एक व्यापक मोहभंग का वातावरण सब कहीं फैला हुआ था । इसी अवस्था ने व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्ध को, व्यक्ति और समाज के संबन्ध को, व्यक्ति की अपनी अस्तित्व-स्थिति को सोचने को बाध्य किया । सामाजिक विडंबनाओं के चित्र उपस्थित करते समय भी भारतीय साहित्यकारों ने अस्तित्व-संकट को स्वर दिया । अतः स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य में दृष्टिगत अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य को इसी सन्दर्भ में देखना उचित लगता है । प्रभाव के अंश को स्वीकार करते हुए भी वह हमारे यहाँ के वातावरण के साथ जुडा हुआ है । वही मुख्य प्रतीत होता है । दर असल यहाँ की सृजनात्मक मिट्टी उसकेलिए पकी हुई थी ।

अस्तित्ववादी चिन्तन का प्रखर रूप स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी और मलयालम साहित्य में मिलता है क्योंकि स्वतन्त्रता-संग्राम की तथा उसके बादवाली मोहभंग की स्थिति उसकी पृष्ठभूमि के रूप में आयी है । इसके अलावा मनुष्य की अस्तित्व-संबन्धी शाश्वत समस्याओं की कोई विभाजक रेखाएँ नहीं हैं । वे देश और काल की सीमाओं के परे हैं ।[1] हिन्दी में अज्ञेय से लेकर अस्तित्ववादी समस्याओं की चर्चा शुरु होती है । अज्ञेय के अधिकतर नायक स्वतंत्रता की खोज में व्यस्त दीखते हैं जो अपनी अनिश्चित नियति ढोने केलिए अभिशप्त है । धर्मवीर

---

1. "विद्रोह और आस्था" - (1984) - के.पी.अप्पन - पृ: 85.

भारती के "अंधायुग" में पौराणिक कथा सन्दर्भ के माध्यम से मानवीय मूल्यों के विघटन की कथा बतायी गयी है । मलयालम के सर्वाधिक सशक्त नाटककार हैं सी. जे. तोमस जिन्होंने अपने '1128 में क्रैम 27' जैसे नाटकों में जीवन की विसंगति को चित्रित किया है । सन् 1950 के बाद की हिन्दी और मलयालम कहानियों में मानवीय अस्तित्व-संकट की गहरी समस्याएँ उठी हैं । स्वयं कहानीकारों की आत्म-स्वीकृतियाँ इस बात का समर्थन करती हैं ।

अस्तित्व का बोध आधुनिक जीवन के संकट-बोध से उत्पन्न जीवन-दृष्टि है । अपने कहानी-संग्रह, 'राजा निरबंसिया' की भूमिका में कमलेश्वर ने इस स्थिति को स्पष्ट किया है - "कभी आपने ज्वालामुखी के शिखर पर बैठे हुए व्यक्तियों की कल्पना की हो, उनके अन्तर्द्वन्द्व और मानसिक स्थितियों के अध्ययन की चेष्टा की हो और ऐसा सोचा हो कि इन्हें किस प्रकार विस्फोटों की वह्नि से बचाकर जीवन का मंत्र दिया जाये तो नयी कहानी का धरातल और नये कहानीकारों की प्रवृत्तियाँ सहज ही आपके सामने स्पष्ट हो उठेंगी ।"[1] अस्तित्व का संकट झेलने केलिए अभिशाप्त आधुनिक भारतीय व्यक्ति का शब्द-चित्र कमलेश्वर ने खींचा है - "भारतीय व्यक्ति चिन्ताग्रस्त है, विक्षुब्धता और उदासीनता के द्वन्द्व में ग्रस्त है, प्रतीक्षा से ऊबा हुआ है । अवसंगति (मिसफिट होने) का शिकार है । भीड में फालतू है (क्योंकि यह उसकी रचना में सम्मिलित नहीं है), भयावह स्थितियों का साक्षात्कर्ता है , मृत्यु के प्रति सचेत है । इस व्यक्ति की चेतना में यह भी व्याप्त है कि यह संकट का क्षण केवल उसकेलिए नहीं, उस जैसे करोडों का संकट क्षण है ।"[2]

---

1. राजा निरबंसिया (1982) - भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 5.

2. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 144.

हिन्दी कहानी पर अस्तित्ववादी चिन्तन-पद्धति का प्रभाव ग्रहण करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है - "जहाँ तक अस्तित्ववाद के प्रभाव-ग्रहण का प्रश्न है, निस्सन्देह हमारे कथा-साहित्य पर अस्तित्ववाद का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है । इस प्रभाव-ग्रहण का बहुत अधिक दुरुपयोग भी हुआ है, क्योंकि इस प्रभाव को भारतीय परिवेश की सापेक्षता में ग्रहण नहीं किया गया ।"[1]

उषा-प्रियंवदा ने अपने व्यक्तित्व और लेखन पर अलगाव-बोध का प्रभाव स्वीकार किया है - "जहाँ मैं रहती हूँ उस नगर में चार सौ तेइस भारतीय हैं । संगीत - समारोह, मुशायरे, भोजन, हिन्दी फिल्में, चाट-पार्टियों में निमंत्रण मिलते हैं और प्रायः सम्मिलित भी होती हूँ, पर उस सब के बावजूद भी जैसे उनके जीवन की परिधि पर हूँ । कभी मध्य में नहीं । भारत लौटने पर भी ऐसा ही लगता है, इसीलिए वह अलगाव शायद मेरे व्यक्तित्व और लेखन का अभिन्न अंग बन जा रहा है ।"[2]

मलयालम कहानीकार, टी.पद्मनाभन पश्चिम के जेम्स जोयस से प्रभावित है । अपने इस प्रभाव-ग्रहण की बात उन्होंने स्वीकार की है - "यों कहने में मुझे संकोच नहीं है कि जीवन याने मनुष्य से संबन्धित मेरे अवबोध को पूर्ण तथा समग्र रूप देने में ज्यॉयस ने ही मेरी सहायता की है ।"[3]

नई पीढ़ी के एक सशक्त कहानीकार, काक्कनाडन ने अपनी और अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी की सृजनात्मक मान्यताओं की तुलना करते हुए यों लिखा है -

---

1. कथाकारों से प्राप्त पत्र - अस्तित्ववाद और नयी कहानी - (1975) - - लालचन्दगुप्त "मंगल" - पृ:247.
2. मेरी सृजन प्रक्रिया - उषा प्रियंवदा - "ज्ञानोदय", अगस्त 1969 - पृ: 43.
3. टी.पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - भूमिका - टी.पद्मनाभन - पृ: 13.

"उनके बाद आनेवाले लेखक §एम.टी.वासुदेवन नायर, पद्मनाभन की पीढी§ टूटते अकुलाते व्यक्ति के संबन्ध में, टूटती पीढी के संबन्ध में लिखनेवाले कथाकार बने । . . . ये कथाकार अधिक शक्ति और क्षमता के साथ, समस्याओं के गंभीर विश्लेषण के लिए आनेवाली परवर्ती नई पीढी के अग्रगामी थे । उन कथाकारों ने भावुकता के साथ जिन समस्याओं का सामना किया था, उनका पैनी दृष्टि और दार्शनिकता §पश्चिम की दार्शनिकता§ के साथ सामना करना परवर्ती पीढी का कर्तव्य रहा है ।"[1]

एम. मुकुन्दन हमारी दार्शनिक समस्याओं का मूल उत्स यहीं ढूँढ निकालना चाहते हैं - "हमारे साहित्य में आधुनिकता की अस्पष्ट प्रतिध्वनि ही अधिक होगी , नहीं तो वह एक ऐसा आन्दोलन है जो दार्शनिक, कलात्मक और सामाजिक "हिपॉक्रसी" के विरुद्ध मचा गया था । इस बात का निश्चय काल ही करता है । उसकेलिए अभी समय भी नहीं हो गया है । जो भी हो, हमारी दार्शनिक समस्याओं का मूल उत्स यहीं ढूँढ निकालना होगा । इसी प्रकार इन समस्याओं के समाधान भी इसी मिट्टी से खोज निकालना होगा ।"[2] प्रकारान्तर से ऐसी प्रतिक्रिया आनन्द, सेतु जैसे कहानीकारों की रही है । इनकी कहानियों के विश्लेषण के दौरान मलयालम के आलोचकों ने इस पक्ष पर विस्तार से विवेचन प्रस्तुत किया है ।[3]

अकेलापन और अस्मिता की खोज

अकेलापन या अलगाव बोध के अंग्रेज़ी पर्यायवाची एवं समानार्थी शब्द , एलियनेशन §Alienation§ की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द, एलियनेशियों §Alienatio § से हुई है । यह शब्द, "एलियनेशियों", संज्ञा है जिसका क्रिया

---

1. काक्कनाडन का लेख - मलयालनाडु साप्ताहिक, अप्रैल, 1970.
2. आधुनिकता क्या है' - §1976§ - एम. मुकुन्दन - पृ: 87.
3. §क§ विद्रोह और आस्था - के.पी.अप्पन - पृ: 85-89.
   §ख§ ग्यारह कहानियाँ ही -§1979§ - एम.तोमस मात्यु - पृ: 17.

रूप है एलियनेर § Alienare § एलियनेर का अर्थ है किसी वस्तु को दूसरे की बना देना, छीन लेना, वंचित कर देना, हटा देना इत्यादि ।[1] हिन्दी में "एलियनेशन" शब्द केलिए अनेक शब्द प्रचलित हैं - जैसे अकेलापन, अलगाव, अजनबीपन, आत्मनिर्वासन, आत्मपरायापन आदि । इनमें अकेलापन और अलगाव अधिक प्रयुक्त और संगत शब्द प्रतीत होते हैं । "एक व्यक्ति अकेला है या आत्मनिर्वासित है ; यह कहने का मतलब है कि किसी दूसरे व्यक्ति के साथ उसके संबन्ध में कुछ ऐसे तत्व निहित हैं जिनके परिणाम अनिवार्य अतृप्ति अथवा तृप्ति का नाश है ।[2] आत्मनिर्वासित व्यक्ति बाह्य जगत से, दूसरों से, स्वयं से ही अलग हो जाता है । व्यक्ति की यह आत्मनिर्वासित स्थिति आधुनिक युग की अवस्था मात्र नहीं है । किसी भी काल का हर सचेत व्यक्ति इससे अवगत है । इस स्थिति का सामाजिक पक्ष है, और दार्शनिक पक्ष भी । जीवन में हमेशा अवांछित घटनाओं से जूझनेवाला व्यक्ति अन्तर्मुखी और हताश हो जाता है । वह अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व की निस्सारता महसूस करने लगता है । इस बोध से उसका जीवन संकट-ग्रस्त बन जाता है जिसे अस्तित्व का संकट या अस्मिता का संकट § Identity crisis § कह सकते हैं । अस्तित्व के विघटन से व्यक्ति-जीवन में तीव्र हताशा छा जाती है । जीवन उसे निरर्थक लगता है और वह निष्क्रिय बन जाता है । लेकिन वह सदा निष्क्रिय होकर रहना नहीं चाहता । प्रत्युत्, वह इस संकट से मुक्ति चाहता है । इसलिए वह अपनी विनष्ट अस्मिता की खोज करना चाहता है । दूसरे शब्दों में अपने अस्तित्व या अस्मिता को बनाए रखने का प्रयत्न ही अस्मिता की खोज है ।

---

1. The Latin origin of Alienation is Alienatio. This noun derives its meaning from the verb alienare. (to make something another, to take away, to remove) - Richard Schacht - Alienation - p.1.

2. To claim that a person is alienated is to claim that his relation to something else has certain features which result unavoidable discontent or loss of satisfaction. Arnold Kaufmann - On Alienation - (1965) - Vol.8, p.143.

"परंपरा और भविष्य, स्वीकृति और विद्रोह, इन्हीं की उलझनों में खोया मानव सतत रूप से अपने को जानने, पहचानने तथा पाने का प्रयास कर रहा है और मानव के पारंपरिक संबन्धों के सन्दर्भ में उसकी यही खोज अस्मिता की खोज बन जाती है ।"[1] यह एक आत्मनिष्ठ विचार है । लेकिन इससे व्यक्ति की स्वतन्त्रता की खोज का अंश भी निहित है । जिस प्रकार व्यक्ति अपने चुनाव केलिए सर्वस्वतन्त्र है उसी प्रकार अपनी अस्मिता के संकट से उबरने केलिए भी । अस्तित्ववाद का यह पक्ष आधुनिक जीवन की कई प्रकार की विसंगतियों में से एक है ।

विश्व महायुद्ध की भीषण परिणति तथा यान्त्रिक सभ्यता ने मनुष्य-जीवन को तमोमय बना दिया है । जीवन में उसकी कोई आशा या आकांक्षा नहीं रह गयी । वह अपने को टूटा हुआ और जगत से कटा हुआ महसूस करने लगा । इसके परिणाम स्वरूप उसके व्यक्तित्व और अस्तित्व का विघटन हो गया । भारतीय सन्दर्भ में आज़ादी के बाद की स्थितियों ने हमें हताश बना दिया है । हमारी सारी प्रतीक्षाएँ टूट गयीं । इसके बावजूद तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों को वैश्वविक सन्दर्भ में भी देखना है । तभी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से भारतीय साहित्य को प्रभावित करनेवाली अस्तित्ववादी चिन्तन-पद्धति नज़र आ सकती है । हिन्दी कहानी में अजनबीपन या अकेलेपन के बारे में कार्थेरिन वेनबर्गर का कहना है - "पहले भी ऐसे आजनबी व्यक्ति रहे हैं जो उस व्यवस्था से समझौता नहीं कर पाते जिसमें उनको रहना पडता है । बौद्धिक रूप से ईमानदार और सत्य के आकांक्षी होने के कारण वे अपने समाज में सक्रिय रूप से भाग नहीं ले सकते ।"[2] मलयालम में इस विचारधारा के प्रभाव के बारे में कहानीकार,

---

1. योगेन्द्र शाही का लेख - "लहर", अप्रैल 1970 - पृ: 6.

2. 'There have always been outsiders - individuals who could not adjust themselves to the order under which they had to live. They were unable to adjust themselves to the order under which they had to live. They were unable to participate in their society because they were intellectually honest and stood for truth'.
The outsider in New Hindi short-stories - Cathenine Weinberger - Indian Literature- Vol.XI, No.2, 1968, p.66.

एम. मुकुन्दन ने लिखा है, - "समय की गति इतनी तेज़ है कि प्राचीन काल में जो ज्ञान शताब्दियों से हासिल किया जाता था, वह आज दशाब्दियों से हासिल किया जाता है तथा संसार से केरल और मनुष्य से केरलीय अलग रह नहीं सकता ।"[1] माधविक्कुट्टि ने अपने लेखन का उद्देश्य ही अस्तित्व की पहचान और अस्मिता की खोज मानी हैं ।[2]

निर्मल वर्मा की एक बहुचर्चित कहानी है "परिन्दे" जिसमें अपने अनभिव्यक्त और अप्राप्य प्रेम में बिखरी हुई क्रमशः अकेली पडती जा रही नारी की व्यथा की अभिव्यक्ति हुई है । कहानी की लतिका, जो किसी पहाडी प्रदेश के स्कूल के हास्टल में वार्डन है, अपने को सारे संपर्कों और संबन्धों से काटकर, क्रमशः अकेली पडती जाती है । "अब वह सुरक्षित थी, कमरे की चहारदीवारी के भीतर उसे कोई नहीं पकड सकता । दिन के उजाले में वह गवाह थी, मुजरिम थी, हर चीज़ का उससे तकाजा था, अब इस अकेलेपन में कोई गिला नहीं, उलाहना नहीं, सब खींचातानी खत्म हो गई है, उसका दुःख नहीं, अपनाने की फुरसत नहीं ... ।"[3] सर्दी की छुट्टियों में सभी अपने घर जाने की तैयारी में हैं । मात्र लतिका कहीं भी नहीं जाती । अपनी पुरानी स्मृतियों से वह मुक्त नहीं हो पाती । मेजर नागी से उसका जो भावात्मक संबन्ध था, वह उसके अशान्त जीवन के नयी स्फूर्ति देनेवाला था । लेकिन जब किसी दुर्घटना में नेगी की मृत्यु हुई उसके आघात से वह कभी मुक्त नहीं हो पायी । इस दृष्टि से लतिका की समस्या स्वतन्त्रता या मुक्ति की समस्या है - अतीत से मुक्ति, स्मृति से मुक्ति, उस चीज़ से मुक्ति "जो हमें चलाए चलती है और अपने रेले में हमें घसीट ले जाती है ।"[4] डा. मुखरजी और

---

1. "कहानी : कल और आज" में एम. अच्युतन द्वारा उद्धृत - पृ: 366.
2. कहानी की कहानी - (1975) - टी. एन. जयचन्द्रन - पृ: 141.
3. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ - (1977) - निर्मल वर्मा - पृ: 56.
4. "कहानी : नयी कहानी" - (1966) - नामवर सिंह - पृ: 66.

मिस्टर ह्यूबर्ट दोनों अपनी अपनी दुनिया में, सारे संबन्धों से कटकर जी रहे हैं । उस दुनिया से मुक्त होने का आग्रह होने पर भी वे कभी मुक्त नहीं हो सकते हैं । वे तीनों - लतिका, ह्यूबर्ट और मुखरजी - अपनी आत्मनिर्वासित स्थिति भोगने केलिए विवश हैं । अपनी उस स्थिति से मुक्त होने का उनका सारा प्रयत्न उन्हें उसी अभिशाप्त स्थिति की ओर फिर खींच लेते हैं । इसप्रकार अकेलेपन और अजनबीपन का एहसास पूरी कहानी में छाया हुआ है । "परिन्दे" कहानी के पात्र अपने में कटे हुए हैं । परिन्दों के उड चले जाते देखकर लतिका का कथन इस ओर अवश्य संकेत कर रहा है । ` वे भी प्रतीक्षा कर रहे होंगे ।´ यह निरी प्रतीक्षा नहीं है । अपनी प्रतीक्षाहीनता की प्रतीक्षा है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपने परिवेश से कटा हुआ व्यक्ति अधिक से अधिक अकेला और अजनबी हो जाता है । राजेन्द्र यादव की कहानी, "भविष्य के पास मंडराता अतीत" का पिता ऐसा एक पात्र है जो "अतीत" में अपनी पत्नी से अलग हो गया है । भविष्य में उसे अपनी बेटी, बुलबुल से भी अलग हो जाने की आशंका भी है । वर्षों के बाद अपनी बेटी से मिलने केलिए जाते समय उसके मन में यही विचार है - "उसकी माँ ने उसे ज़रूर बता दिया होगा, सब कुछ बता दिया होगा । उसके खिलाफ जितना भी ज़हर उसके मन में है, सब का सब उसने बेटी को सौंप दिया होगा । . . . मगर न जाने क्यों उसे लगता है कि बुलबुल कभी भी उससे नाराज़ नहीं रह जायेगी ।"[1] किसी दुर्घटना के कारण उसका सारा शरीर जल गया था । किन्तु उससे भी ज़्यादा जल गया था उसका मन । इसी जलन या इसी आत्मपीडा के कारण वह स्कूल की अन्य लडकियों के साथ सडक से गुज़रती उसकी बेटी से बात करने का साहस भी नहीं जुटा पाता । इस कहानी का अलगाव-बोध अपने जीवन से जुड पाने की इच्छा के बावजूद जुड न पाने की है ।

---

1. "भविष्य के पास मंडराता अतीत" - मेरी प्रिय कहानियाँ - राजेन्द्र यादव - पृ: 130.

जीवन की अदम्य जिजीविषा के बावजूद कटकर, दूर रहने की अभिशाप्तता है । इस अवस्था में वह इतना अकेला, अजनबी सा महसूस करता है । अतः राजेन्द्र यादव की कहानी मात्र संबन्धों के विघटन की कहानी भर नहीं वह संबन्ध-विघटन से उपजे हुए अजनबीपन की कहानी है ।

अस्मिता की खोज का अगला चरण है स्वतन्त्रता का बोध । व्यक्ति जन्म से परतन्त्र नहीं होता, जन्म से तो वह स्वतन्त्र होता है । सामाजिक व्यवस्था और अन्य परिस्थितियों में पडकर ही वह अपनी स्वतन्त्रता खो बैठता है । जब मनुष्य अपनी इस अवस्था से परिचित होता है तब वह बेचैन होता है और अपनी स्वतन्त्रता के हेतु संघर्षरत भी होता है । निर्मलवर्मा की कहानी , 'सितम्बर की एक शाम' के सत्ताईस वर्ष के युवक की पीडा इस स्वतन्त्रता बोध के कारण ही उत्पन्न हुई है । बेकारी और तज्जनित अजनबीपन इस कहानी का एक अलग पहलू है । अपनी स्वतन्त्र होने की भावना के कारण ही वह व्यक्ति अपनी बहन के उपदेशों और उलाहनाओं को अनदेखा कर अपना रास्ता स्वयं निर्धारित करता है । और वीरान जगहों की खोज में निकल पडता है । "जीने का एक झिलमिल क्षण, जिसकी कोई अनुभूति नहीं, कोई परिणति नहीं । मुक्ति की उत्कट प्यास, जो सब नैतिक मान्यताओं को तोडती हुई, इन दीवारों के परे, इस रात के परे, समूची पृथ्वी की असीम व्यापकता को इस अन्धेरे क्षण में समेट रही है . . . उसे लगा, इस क्षण वह जी रहा है, अपने समूचे अस्तित्व की मिट्टी अपनी मुट्ठी में दबोचे है ... ।"[1] वह नहीं चाहता कि कोई उसकी स्वतन्त्रता में बाधक सिद्ध हो, चाहे वह अपने भाई-बहन या माता-पिता ही क्यों न हो ।

मोहन राकेश की 'अपरिचित' सफर में दो अपरिचितों के (एक पुरुष और एक स्त्री) मन में पैदा होनेवाले रागात्मक लगाव की कहानी है ।

---

1. "सितम्बर की एक शाम" - परिन्दे - (1970) - निर्मलवर्मा - पृ: 132-133.

इसकी अन्तर्धारा के रूप में दूसरी एक कहानी है । वह परिचितों के §पति-पत्नी§ जीवन में होनेवाले अलगाव की है और इस अलगाव के सन्दर्भ में ही उन दोनों अपरिचित स्त्री-पुरुष का लगाव अधिक मार्मिक होता है । कहानी की स्त्री और उसके पति के स्वभावों में बहुत बडा अन्तर है । पति उसे ज़्यादा बात करने केलिए मज़बूर करता है पर उसे बात करना अच्छा नहीं लगता । और इसी तरह उन दोनों के मनोभाव, लगाव, व्यवहार सौन्दर्यबोध इन सब में बहुत अन्तर है । अन्तरंग ढंग से वे अलग-अलग संसार में जीने लगते हैं । इसी संघर्ष के कारण वह स्त्री अपने को अपरिचित और बेगाना अनुभव करती है । उसका कथन है - "मैं बहुत से परिचित लोगों के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमेल अनुभव करती हूँ । मुझे लगता है कि मुझमें भी कुछ कमी है । मैं इतनी बडी होकर भी वह कुछ नहीं जान-समझ पाई जो लोग छुटपन में ही सीख जाते हैं । दीशी §उसका पति§ का कहना है कि मैं सामाजिक दृष्टि से बिलकुल मिसफिट हूँ ।"[1] उस पुरुष की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है । अभिरुचि,संस्कृति आदि की दृष्टि से उन दोनों में - कहानी के पुरुष और उसकी पत्नी में - बडा भारी अन्तर हैं । वह कहता है - "मैं बल्कि पाँच साल से यह चाह रहा हूँ कि वह ज़रा कम बात किया करे । . . . मैं जब उसे यह समझाना चाहता हूँ, तो वह मुझे विस्तारपूर्वक बता देती है कि ज़्यादा बात करना इनसान की निश्छलता का प्रमाण है और कि मैं इतने सालों में अपने प्रति उसकी भावना को समझ ही नहीं सका ।"[2] इसप्रकार उन दोनों स्त्री-पुरुष की मानसिकता में समानताएँ होते हुए भी उनका अपना अपना दाम्पत्य संघर्षमय और दुविधापूर्ण है । लेकिन वे दोनों अपनी उस अजनबी और आत्मनिर्वासित स्थिति को झेलते हुए जीनेवाले हैं । इसलिए उनमें सिनिसिज़्म की भावना नहीं है । वह स्त्री अपना स्टेशन पहुँचने पर उस पुरुष से कहे बिना गाडी से उतर जाती है । अपने पात्रों के अकेलेपन के बारे

---

1. "अपरिचित" - मेरी प्रिय कहानियाँ - §1971§ - मोहन राकेश - पृ: 77.
2. वही - पृ: 75.

में मोहन राकेश ने स्वयं लिखा है - "इस दौर की अधिकांश कहानियाँ सम्बन्धों की यन्त्रणा को अपने अकेलेपन में झेलते लोगों की कहानियाँ हैं जिनमें हर इकाई के माध्यम से उसके परिवेश को अंकित करने का प्रयत्न है । यह अकेलापन समाज से कटकर व्यक्ति का अकेलापन नहीं, समाज के बीच होने का अकेलापन है और उसकी परिणति भी किसी तरह के 'सिनिसिज़्म' में नहीं, झेलने की निष्ठा में है ।"[1]

रामकुमार की "सेलर" अपने बच्चे के साथ बढ़ते हुए अलगाव को रोकने में पिता की लाचारी की कहानी है । यहाँ पिता और बच्चे के अलगाव केलिए जिम्मेदार सास-ससुर हैं जो पत्नी की मृत्यु के बाद इस पिता को घर और बच्चे से अधिक-से अधिक दूर रखते है । उनके बीच कोई भावात्मक सबन्ध - स्थापित करने में वे सास-ससुर बाधा पहुँचाते हैं । इस दूरी को पाटने के उद्देश्य से वह अपने बेटे को खुद पढाने की कोशिश करता है , तो भी उनके बीच का तनाव कम नहीं होता । कहानी के आरंभ में जब पिता की दृष्टि शीशे में मुँह देखते समय अपनी आँखों पर पड़ती है और उसे ऐसा लगता है कि "जैसे कुछ खो-सा गया हो । . . . खुल खुली, शून्य-सी आँखें, जैसे दो दरवाज़े अपने आप खुल गए हो, जिनके बीच से दूर दूर तक फैला उजाड दिखाई देता है ।"[2] कहानी के अन्त में वह अपने बेटे की नज़र में वैसा ही सा कुछ भाव - एक तरह का शून्यता-भाव - देखता है । इस पहचान के बावजूद भी वह अपने बेटे से अजनबी रहता है । क्योंकि "भीतर क्या है इसे जानने के भय से उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं ।"[3] कहानी में बच्चे के साथ के पिता के अलगाव का कारण परिस्थितियाँ तो है, किन्तु उन परिस्थितियों की अपेक्षा पिता की दुर्बलता और परिस्थितियों को खोज सकने की उसकी असमर्थता उनके अलगाव को तीव्र बना देती हैं ।

---

1. मेरी प्रिय कहानियाँ (मोहन राकेश) - भूमिका - मोहन राकेश - पृ: 10.
2. "सेलर" - एक चेहरा - रामकुमार - पृ: 83.
3. वही - पृ: 95.

कमलेश्वर की "खोई हुई दिशाएँ" महानगरों के अकेलेपन और अजनबीपन पर लिखी गयी कहानी है । कहानी का चन्दर कस्बे से महानगर में आकर अपने को अकेला और अजनबी महसूस करता है । "आस-पास से सैकड़ों लोग गुज़रते हैं, पर उसे कोई नहीं पहचानता हर आदमी या औरत लापरवाही से दूसरों को नकारता या झूठे दर्प में डूबा हुआ गुज़र जाता है ।"[1] वहाँ किसी को किसी की फिक्र नहीं । सब अपने आप में मस्त हैं । चन्दर का मन और भारी हो जाता है । अकेलेपन का नागपाश और भी कस जाता है । अपने साथ बैठे हुए अनजान दोस्त की तरफ वह गहरी नज़रों से देखता है और सोचता है, अजनबी ही सही, पर इसने पहचाना तो । इतनी पहचान भी बड़ा सहारा देती है ।[2] . . . इस अजनबीपन की ऊब में उसे अपने कस्बे और अपनी पुरानी प्रेमिका, इन्द्रा की मधुर यादें आती हैं । किन्तु विडंबना यह है कि उस महानगर में आकर इन्द्रा की भी चन्दर के प्रति मधुर पहचान खो गयी है । उस महानगरीय संस्कृति के अनुसार वह भी बिलकुल यान्त्रिक और औपचारिक बन गयी है । यह उसे एक आघात-सा लगता है जो उसके अजनबीपन के बोध को और भी तीव्र बना देता है । अपने अन्दर की यह आकुलता उसे देर तक सालती रहती है क्योंकि उसकी संस्कृति अब भी कस्बाती है और वह अभी नए वातावरण में 'मिस्फिट' है । अजनबीपन की तीव्रता की स्थिति का वर्णन कहानी के अन्त में हुआ है । वह अपने घर और पत्नी के चिरपरिचित दायरे में लौट आता है और रात को पत्नी को झकझोर कर पूछता है - "मुझे पहचानती हो? मुझे पहचानती हो, निर्मला?"[3] कहानी का चन्दर, प्रेमिका, पत्नी - किसी में अपनापन नहीं पा सकता, क्योंकि - "यह राजधानी है, . . . यहाँ सब अपना है । अपने देश का है . . . पर कुछ भी अपना नहीं है, अपने देश का नहीं है ।"[4]

---

1. खोई हुई दिशाएँ - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 39-40.
2. वही - पृ: 46.
3. वही - पृ: 56.
4. वही - पृ: 40.

कहानी के अन्त तक आते आते वह समाज से ही नहीं, स्वयं से भी कट जाता है। यह स्थिति दोहरे अकेलेपन की है। यह खोई हुई दिशाएँ सिर्फ कमलेश्वर की उक्त कहानी के चन्दर की ही नहीं बल्कि नई कहानी के उस दौर के अनेकों पात्रों की है। निरर्थक बने हुए जीवन के बोझ को सहते हुए जीवन बिताना और लगातार कटकर जीवन जी लेना। यही उस दौर की ऐसी कहानियों की मानसिकता है।

आधुनिक मलयालम कहानी में अजनबी बने पात्रों, अपने से कटे हुए व्यक्तियों, निरर्थकता की चरम सीमा को भोगनेवाले मनुष्यों की भरमार है। ऐसी कहानियों में उस स्थिति का एहसास भर मिल जाता है। कभी कभी अजनबी स्थिति की गहराई का आभास भी मिलता है। एम. मुकुन्दन, सेतु, आनन्द इत्यादि की कहानियों में अजनबी पात्रों के अलगाव-बोध के विविध आयाम मिल जाते हैं।

एम. मुकुन्दन की एक कहानी है, 'प्रभातम मुतल प्रभातम वरे' (सुबह से सुबह तक)। इस कहानी का प्रमुख पात्र, "वह", बिलकुल अपरिचित-से लगनेवाले संसार में अपनी अस्मिता की तलाश करने केलिए अभिशप्त बन जाता है। वह एक स्टेशन के प्लाटफॉर्म पर खड़ा है। स्टेशन पर वह अकेला नहीं है, किन्तु उसे एकाकिता का अनुभव होने लगता है। वह सोचता है - "इस वीरान प्लाटफार्म पर मैं अकेला हूँ। यहाँ मैं ने जो स्वर सुना, वह एकाकिता का है। जो रंग देखा, वह भी एकाकिता का है। . . . इस विस्तृत भूमि पर, इस आसमान के बीच, मैं अकेला हूँ।"[1] यों ही खड़े रहते समय नाणुनायर नाम का एक बूढ़ा आदमी उसके पास आकर अपने को स्वयं परिचित कराता है। नाणुनायर उसे उसके घर की ओर ले जाता है। वह कुछ भी नहीं जानता। रास्ते में जो कुछ दिखाई देता उन सब के बारे में नाणुनायर उसे बता देता है। अपने घर में वह किसी को भी नहीं जानता - अपनी माँ, पिता और पत्नी को भी। नाणुनायर उसे उन सब से

---

1. "प्रभातम मुतल प्रभातम वरे" (सुबह से सुबह तक) - मुकुन्दन की कहानियाँ - (1982) - एम. मुकुन्दन - पृ: 227-228.

परिचित कराता है । सभी के बारे में वह नाणुनायर से पूछता है लेकिन एक बात पूछना वह भूल जाता है जो खुद उसी के बारे में है । "नाणुनायर ने सब कुछ बता दिया । लेकिन सब से प्रमुख प्रश्न, यानी मैं स्वयं कौन हूँ, पूछना मैं भूल गया । . . . मैं एक मूर्ख हूँ । मैं सभी से परिचित हो गया । सभी के नाम परिचित हो गए । मेरा अपना नाम मालूम नहीं । मैं निरा मूर्ख हूँ ।"[1] अन्त में अपने बारे में नाणुनायर से पूछने को वह निश्चय कर लेता है । वह पूछता है - मेरा नाम क्या है, मैं कौन हूँ नाणुनायर?[2] लेकिन उसके इस प्रश्न का उत्तर नाणुनायर नहीं देता । मनुष्य इस संसार में अकेला है । आधुनिक मनुष्य केलिए संसार एक कारागृह है । संसार रूपी इस अपरिचित कारागृह में उसे स्वयं अपनी अस्मिता की तलाश करनी होती है । सब कुछ बता देने पर भी केवल उसके बारे में नाणुनायर उसे बता नहीं देता । अपने अस्तित्व-सम्बन्धी सब से मुख्य प्रश्न पूछने को पहले वह भूल जाता है । बाद में वह पूछता तो है, लेकिन उसे उसका उत्तर नहीं मिलता । कहानी में यह भी ध्यान देने योग्य है कि अपने बारे में पूछनेवाले कहानी के मुख्य पात्र का अपना नाम नहीं है । यह {नाम न होना} एक तरह की स्वतन्त्रता है । सार्त्र की प्रसिद्ध उक्ति है - मनुष्य स्वतन्त्र होने को अभिशप्त है ।[3] स्वतन्त्रता का अभिशापवहन करते हुए आधुनिक मनुष्य अपनी अस्मिता की तलाश करता है । कहानी के 'मेरा नाम क्या है, मैं कौन हूँ', प्रश्न में इस अन्वेषण का स्वर ही मुखरित है ।[4]

---

1. "प्रभातम मुतल प्रभातम वरे" {सुबह से सुबह तक} - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ:234.
2. वही - पृ: 235.
3. 'Man being condemed to be free carries the weight of the whole world on his shoulders'. Jean Paul Sarte - Being and Nothingness - (1956) - Translation Hazal Barns, New York - p.677.
4. सुबह से सुबह तक - के.पी.अप्पन का लेख - नवीन कथा {1977} - सं. एम.एम.बशीर - पृ: 52, 53.

अस्मिता के संकट को विषय बनाकर लिखी हुई एम.मुकुन्दन की एक और चर्चित कहानी है, "राधा, राधा मात्रम" । {राधा, सिर्फ राधा} कहानी की राधा अपने परिचितों के बीच में भी अपरिचित और अजनबी है । उसका प्रेमी, सुरेश, उसके माता और पिता से वह कटी हुई अनुभव करती है । अपने को परिचित कराने का उसका सारा प्रयास निरर्थक निकलने पर निराश होकर वह घर से बाहर निकलती है । "बच्चे उसे ऐसी दृष्टि से देखते रहे जैसे किसी अपरिचित स्त्री को देख रहे हो । अपने अपने घोसलों की ओर उडनेवाली चिडियाँ एक अपरिचित स्त्री को देखकर नीचे की ओर ताक रही थीं । हवा से पेड डगमगाने लगे । समुद्र में लहरें उठीं । आसमान और भूमि में अन्धेरा छा गया । चिडियाँ, पेड-पौधे, समुद्र, हवा, भूमि – सभी एक ही स्वर में गा रहे थे । – "तू राधा नहीं, हम तुम्हें नहीं जानते ।"[1] इसप्रकार कहानी में राधा के विशिष्ट अनुभवों से अजनबीपन के एहसास को स्थापित किया गया है । जिन संबन्धों को हम अटूट समझते हैं उनमें दरारें पडने पर यही अजनबीपन बाकी रह जाता है । अपने प्रेमी या घरवालों पर राधा की जो अटूट आस्था और विश्वास है , वह उसके संकट केलिए उत्तरदायी हो जाता है ।[2] आस्था के बीच अनास्था का एक क्षण अनुभूत होना अजनबीपन को तीव्र बनाने में सक्षम होता है । राधा क्यों राधा में सिमट गई, इस सवाल से बढकर मुख्य यह है कि राधा के सिमटने के बाद के अनुभव कैसे है । उस ऐकान्तिकता को मुकुन्दन ने भली-भाँति प्रस्तुत किया तथा उसके दार्शनिक पक्ष को उभारने का कार्य भी किया है ।

औद्योगिक विकास और यान्त्रिक सभ्यता का अपना भौतिकवादी मूल्य है । लेकिन यह सभ्यता कभी कभी मानवीय रागात्मकता को नष्ट कर देती है और मनुष्य को आत्म-परायेपन के कगार पर छोड देती है । आनन्द की कहानी "विग्रहम" {मूर्ति} इस बात की ओर इशारा करती है। कहानी का श्याम जो किसी

---

1. मुकुन्दन की कहानियाँ – एम.मुकुन्दन – पृ: 241.
2. वही – भूमिका – वी.राजकृष्णन – पृ: 26.

कंपनी का मैनेजर है, अपनी पत्नी, चेतना के साथ दशहरे की छुट्टियों में उदयपुर के महलों देखने जाता है । अपनी फ्लैट में रहते समय उसके मन में सदा अपनी कंपनी की बातें सताती रहती थीं । यह उसकी ही नहीं, उस कंपनी में काम करनेवाले सभी कर्मचारियों की नियति है । उनके मन में किसी व्यक्ति या किसी वस्तु से विशेष लगाव नहीं है । अपना कहने को उनमें कुछ भी नहीं है । उनमें कोई भी ऐसा नहीं कहेगा कि वह कंपनी उसकी है । सभी कंपनी के हैं । सभी उसके नौकर हैं । उसके विकास और लाभ केलिए सभी काम करते हैं । कंपनी में हर एक का अपना कर्तव्य है । कठिन प्रयत्न करने से कंपनी का लाभ बढ जाता है । सभी कंपनी केलिए जी रहे हैं । कंपनी से अलग उनमें किसी का भी अपना अलग अस्तित्व नहीं है । उस यान्त्रिक वातावरण से थोडे ही दिनों केलिए ही सही, मुक्त होने केलिए श्याम उदयपुर आया है । लेकिन वहाँ आकर भी उसे ऐसा महसूस होता है कि वह अपनी पत्नी से बहुत दूर है । उसे महसूस हुआ कि अपनी पत्नी उससे बहुत दूर है । . . . होटलों में और पार्टियों के अवसर पर वह उसे ही अपनी पत्नी कहकर दूसरों को परिचित कराता था । . . . ऐसा एक समय था जब वह उससे चौबीस घंटों बातें किया करता था । आज उसे देखते ही फिर उसके मन में "टूथ पेस्ट" और "डिपार्टमेन्ट स्टोर" के विज्ञापन की यादें आ रही हैं?" [1] जब कभी उसके मन में अजनबीपन का भाव समा जाता है, तब वह अपनी पत्नी का सामीप्य चाहता है । लेकिन अपनी पत्नी के बहुत निकट बैठते समय भी उसका मन उससे बहुत दूर है । इसी तरह तांगे पर बैठकर यात्रा करते समय उसे ऐसा लगा कि वह संसार से दूर जा रहा है । उदयपुर में वह मोहनसिंह नाम के एक "गाइड" से परिचित होता है जो रजपूत राजा, उदयसिंह के महल के सामने अपने को तुच्छ और नगण्य मानता है । श्याम को ऐसा लगता है कि मूर्ति के सामने मूर्तिकार का अलग अस्तित्व नहीं है । सृष्टि स्रष्टा से श्रेष्ठ है [2] रजपूत राजाओं की मूर्तियों को

---

1. "विग्रहम" {मूर्ति} - घर और कैद - {1983} - आनन्द - पृ: 52.
2. वहीं - पृ: 65.

देखते हुए उसके मन में अपनी कंपनी, मोटर कार और फ्लैट के चित्र उभरने लगे । वे मूर्तियाँ उसे अपने अस्तित्व के बारे में सोचने केलिए बाध्य करती हैं । उसकी अवस्था उन मूर्तियों से बढ़कर नहीं है । "उन दोनों को देखते हुए चेतना अकस्मात् जड़ीभूत हो गयी । उसे ऐसा लगा कि उसकी बोझ बढ़ रही है । एक मूर्ति की बोझ । उसे लगा कि वह एक ऐसे शहर के मकान के ऊपर खड़ा है जिसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं है ।"[1] मूर्तियों की प्रतीक-कल्पना के माध्यम से शहरी जीवन के आतंकमय, यांत्रिक, परिवर्तन-हीन जीवन की विडंबना को चित्रित करने के साथ संबन्धों के विघटन से उत्पन्न एकाकीपन को इस कहानी में गहराया गया है । एकाकीपन की गिरफ्त से मुक्त होने केलिए वह दूर चला जाता है । लेकिन वह खुद उसी की गिरफ्त में पड़कर इतना अकेला, बेगाना सा होता है । यांत्रिक सभ्यता की अमानवीयता से अजनबीपन अधिक तीव्रानुभव भी उत्पन्न करता है । वह स्वयं एक मूर्ति हो गया है । अपनी मूर्तिवत् अवस्था में बने रहने को वह बाध्य है ।

आनन्द की एक और कहानी है "वाटकवीटु" {किराए का घर} इस कहानी की कथावस्तु बिलकुल साधारण सी है । एक लेखक अपने नये उपन्यास को पूरा करने केलिए अपनी पत्नी के साथ एक गाँव के पुराने, किराए के घर में आकर रहता है । थोड़े दिनों तक वहाँ रहकर वह उपन्यास को पूरा कर लेता है और वे दोनों उस घर को छोड़कर चले जाते हैं । बिलकुल साधारण सी लगनेवाली इस कथा के माध्यम से कहानीकार ने मनुष्य की अस्तित्व सम्बन्धी गहरी समस्याएँ उठायी हैं । इसके किराए के घर का प्रतीकात्मक और दार्शनिक अर्थ है । आधुनिक मनुष्य के अपने अस्तित्व की तलाश में वह कभी पूर्णतः विजयी नहीं हो पाता । अपने

---

1. "विग्रहम" {मूर्ति} - घर और कैद {1983} - आनन्द - पृ: 67.

वास्तविक घर की तलाश या गृहातुरता इस अस्तित्व-संकट से उद्भूत है । किराए के घर में रहना, या वास्तविक घर में न रहने की स्थिति यानी अपनी अस्मिता के संकट की समस्या आधुनिक जीवन की जटिल समस्या है । कहानी में लेखक और उसकी पत्नी, विमला जिस घर में रहते हैं, वह एक पुराने ज़मीन्दार का था । अब घर में नौकरानी के रूप में जो स्त्री है वह एक समय उस ज़मीन्दार की पत्नी थी । ज़मीन्दार की मृत्यु हुई और वह मकान किसी को बेच दिया गया । लेकिन वह बूढी उस घर को छोडकर कहीं भी नहीं गयी । दूसरे शब्दों में, वह कहीं भी जा नहीं सकी । उसकेलिए वह घर सिर्फ ईंट और लकडी से बनाया हुआ एक मकान नहीं है । उससे बढ़कर कुछ और भी है । किन्तु उस लेखक और पत्नी को अपना कहने को एक घर नहीं है । वे सदा किराए के घर में रहते आए हैं । विमला सन्देह करती है "सिर्फ रहने केलिए, रहने की इच्छा भर के कारण रह सकते ? क्या हम कहीं रह सकते ? "

उसके पति का उत्तर है - "ठीक है, हम किसी से प्यार कर नहीं सकते, किसी को अपना बना नहीं सकते । हम सभी को अपने से दूर रखते हैं - जीवन को भी । हम किराए के घर में रहना चाहते हैं । . . . जीवन हमें एक लक्ष्य नहीं है, मार्ग है । जीवन से हम व्यापार करते हैं । यह उपन्यास, कहानी और यह प्रेम - सभी . . . "[1]

इस कहानी का गाँव गृहातुरता का प्रतीक है । गृहातुरता घर के न होने से उत्पन्न होकर किराए के घर में रहने की अवस्था तक व्याप्त है । इन प्रतीकों के माध्यम से अपने भीतर कसमसाते हुए उस अलगाव बोध को ही आनन्द ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

---

1. "वाटकवीटु" {किराए का घर} - घर और कैद - आनन्द - पृ: 47-48.

कंपनी मैनेजर के पद से इस्तीफा देकर सेतु की "यात्रा" का पात्र अपनी दूसरी यात्रा शुरू करता है । इस्तीफा देने का कारण जीवन की ऊब ही है । अपना त्यागापत्र देते हुए कंपनी के चेयरमैन से वह कहता है - "जिस तरह आपका जन्म चेयरमैन के रूप में नहीं हुआ, उसी तरह मेरा जन्म भी एक एक्सिक्यूटीव के रूप में नहीं हुआ । . . . मैं ऊब गया हूँ ।"[1] बचपन में गणित के एक प्रश्न का उत्तर ढूँढने में वह असफल हो गया था । "अ" और "ब" कागज़ पर मार्क की दो बिन्दुएँ हैं । उन दोनों बिन्दुओं के बीच की दूरी नाप लेना उन दिनों उसके सामने एक जटिल समस्या थी । अब भी उसका सही उत्तर उसे नहीं मिला है । दो बिन्दुओं के बीच की दूरी सदा ही एक ऋजु रेखा की तरह हो, ऐसी कोई बात नहीं है । जन्म और मरण जीवन की दो बिन्दुएँ है । इनके बीच की दूरी यानी जीवन का सदा समान होना है, जरूरी नहीं है हम अपनी नियति के सृष्टा और भोक्ता दोनों हैं । कितने ही रास्तों से हम चल सकते हैं । इसलिए कहानी का कंपनी मैनेजर अपनी "आकर्षक" नौकरी से इस्तीफा देकर, अपनी पत्नी को उसके पुराने प्रेमी के हाथों सौंपकर एक ऐसे रास्ते से अपनी यात्रा शुरू कर देता है जिसपर अपने पद-चिह्न कभी न पडें । अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को बनाए रखने केलिए उसे ऐसा ही करनापडता है । जीवन की पूर्वनिश्चित रास्तों से वह चलना नहीं चाहता । अथवा अपना रास्ता वह अपने लिए चुन लेता है । कार्ल जस्पर्स के अनुसार, चुनने की यह स्वतन्त्रता अस्तित्वबोध की पहली शर्त है ।[2] अतः कहानी के पात्र की दूसरी यात्रा का कोई लक्ष्य नहीं है । लक्ष्यहीनता उसके अलगाव बोध को और गहराता है ।

---

1. "यात्रा" - सेतु की कहानियाँ - सेतु - पृः 148.

2. 'In choosing I am, and if I am not, it is because of my failure to choose' - Karl Jaspers - Philosophie-II - p.182.

एम.पी. नारायणपिल्लै की कहानी, "अवन" {वह} का "वह" जब "मैं" को अपना गुलाम बनाने केलिए प्रलोभित करने आता है, तब "मैं" उन सब को अभिभूत कर देने का प्रयास करता है । "वह" कई रूपों में, कई वेश में आता है । पुराने समाचार-पत्रों को खरीदनेवाले व्यापारी के रूप में, बर्तन बेचनेवाले के रूप में, संपेरे के रूप में और खूबसूरत युवति के रूप में वह उसके पास आता है । जब "मैं" इन सारे प्रलोभनों को अभिभूत कर देता, तो वह सियार और उल्लू के रूपों में आकर उसे डराने लगता है । उल्लू को देखकर वह{कहानी का "मैं"} डर जाता है । तब एक जंजीर के रूप में आकर वह उसे बन्दी बना डालता है । कहानी का "मैं" आधुनिक मनुष्य का प्रतिरूप है जिसका स्थायीभाव भय है । उसे ऐसा लग रहा है कि कोई उसका पीछा कर रहा है । वह सभी से डरने लगता है और यह भय पागलपन की स्थिति तक आता है । यही भय उसके बन्धन का कारण बन जाता है और वह सदा जंजीरों में है । दूसरी ओर अपने इस बन्धन केलिए वह स्वयं उत्तरदायी है । लेकिन वह अपने इस भय और बन्धन से मुक्ति भी चाहता है । वह जानता है शाश्वत मुक्ति असंभव है तो भी वह उसकेलिए प्रयत्न करता है । मुक्ति की छटपटाहट अस्तित्व संकट से उत्पन्न है ।

तुलनात्मक दिशाएँ

अस्तित्ववादी दर्शन की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में ही अलगाव-बोध को देखा गया है । अस्मिता का संकट और अजनबियत की अवस्था भी अलगाव-बोध के ही रूप हैं । अतः स्वतन्त्रता के प्रश्न से, चुनाव के सवाल से जूझनेवाली जीवन-स्थितियाँ इन कहानियों में मिल जाती हैं ।

"मैं कौन हूँ? " इस प्रश्न का दार्शनिक उत्तर ढूँढ पाना कठिन है । इस दौर में लिखी हुई कहानियों में इसी प्रश्न से जूझनेवाले पात्र ही अधिक मिल जाते हैं । इस प्रकरण में चर्चित दो कहानियाँ - "खोई हुई दिशाएँ" और 'सुबह से सुबह तक' तुलनीय लगती हैं । "खोई हुई दिशाएँ" नामक कहानी का

पात्र निरंतर इस कोशिश में तो लगता है कि वह है नहीं । इतने पर उनकी परिस्थितियाँ ऐसी थीं, या ऐसी हो जाती हैं कि वह कहीं रहता नहीं । तभी वह इतना अपरिचित, अजनबी हो जाता है । अपनी पत्नी से अपने बारे में पूछ लेना उसके अलगाव बोध की चरम सीमा है । लेकिन मुकुन्दन की कहानी, "सुबह से सुबह तक" में वह इस प्रयत्न में नहीं लगता बल्कि शुरू से उसे यह प्रश्न आतंकित करता है कि वह कौन है । सब से परिचित होने के उपरान्त भी यह प्रश्न रह जाता है कि वह कौन है । तभी वह पूछ बैठता है मैं कौन हूँ ? दोनों कहानियाँ अपने परिवेश से इस कदर कट गई हैं कि वे एकदम अजनबी हो गई हैं ।

अस्तित्व के संकट का अतिसूक्ष्म वर्णन निर्मल वर्मा की कहानी, 'सितम्बर की एक शाम' तथा सेतु की कहानी, 'यात्रा' में हुआ है । इन दोनों कहानियों के पात्र अपने जीवन से, अपने सभी प्रकार के संबन्धों से कटकर अलग हो जाना चाहते हैं । उसी प्रकार 'यात्रा' में भी उसे लगता है कि कोई इसलिए जन्म नहीं लेता कि अमुक कार्य ही करें । अतः उस पात्र का विचार है कि अगर वह कंपनी एक्ज़िक्यूटीव है तो यह आवश्यक तो नहीं कि वह वहीं बने रहे । इतनी निस्संगता से वह अपनी नौकरी से इस्तीफा दे देता है और उसकी यात्रा शुरू होती है । दोनों कहानियों में इनकी मानसिकता को साधारण और सहज ढंग से देखनेवाले पात्र हैं । पर खुद वे पात्र इसे उतनी सहजता से नहीं देखते हैं । यह पहचान उनकी स्वतन्त्रता या चुनाव की पहचान है । वे अकेले में ही ऐसा चुनाव कर सकता है । उसकेलिए न किसी का सहारा चाहिए, न किसी की सहायता ।

आनन्द की 'मूर्ति' और निर्मलवर्मा की 'परिन्दे' की मनोभूमि समान है । 'परिन्दे' की लतिका की प्रतीक्षा उसकी प्रतीक्षाहीनता का ही उदाहरण है । 'मूर्ति' के श्याम की विडंबना भी यही है । सन्दर्भों से दूर रहने केलिए वह उदयपुर जाता है । लेकिन विभिन्न प्रकार की मूर्तियों के बीच उसे लगता है कि वह भी उन मूर्तियों के समान है । प्रतीक्षाहीनता की चरम सीमा इस कहानी में

देखी जा सकती है । संत्रस्त जीवन से उत्पन्न प्रतीक्षाहीनता का आभास ही इस कहानी में मिलता है । 'परिन्दे' की लतिका की प्रतीक्षा उसे लगातार अपने परिवेश से काटती रहती है । दोनों कहानियों में अन्दरूनी अजनबीपन या अलगाव-बोध का सूक्ष्म अंकन हुआ है ।

अजनबीयत की अवस्था {आउटसाइडरनेस} अलगाव-बोध का परिणाम है । यहाँ फालतू अनुभव करने, कहीं खोया हुआ अनुभव करने का ढंग पाया जाता है । यह जीवन की निरर्थकता से उत्पन्न ऐसी एक त्रासद अवस्था है । लेकिन यह अवस्था भौतिक सुविधाओं के अभाव से उत्पन्न नहीं है । जीवन का भौतिक पक्ष इस चिन्तन का अंग नहीं है । यह एक भीतरी शून्यता है, ऐसा एक खोखलापन है जिसे भरा नहीं जा सकता । इस बोध के आतंक से पीडित, अपनी आन्तरिक शून्यता का वहन करते हुए पात्र अनेक कहानियों में मिल जाते हैं ।

मोहन राकेश की कहानी, "अपरिचित" के पति-पत्नी संबन्ध के विघटन से उत्पन्न अजनबियत की अवस्था का उल्लेख है । उपर्युक्त सुचित आनन्द की "मुक्ति" नामक कहानी का एक पक्ष इसी से संबन्धित है । विघटन से उत्पन्न अजनबीयत को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी आँका जा सकता है । लेकिन जब यही विघटन बार बार अस्मिता के जुडे हुए सवाल के रूप में साकार होता है तो उसका विश्लेषण सामाजिक सन्दर्भ में संभव नहीं है । वस्तुतः इन दोनों कहानियों में विघटन जनित अजनबियत् की अवस्था का उल्लेख पर्याप्त मात्रा में है । "आउटसाइडरनेस" का एक पक्ष इसी से संबन्धित है । तब अपरिचय का वृत्त धीरे धीरे विकसित होने लगता है और परिचितों के मध्य अपरिचित बने रहने की विडंबना का सामना करना पडता है ।

रामकुमार की 'सेलर' और मुकुन्दन की "राधा, सिर्फ राधा" शीर्षक कहानियों के पात्रों की अटूट अवस्था ही उन्हें अजनबी बना देती है । "सेलर" कहानी का पिता इस कारण से अपने बच्चे को अपना सकने में

असमर्थ निकलता है । यद्यपि परिस्थितियाँ उसके अनुकूल नहीं है फिर भी वह अपनी स्थिति से उभर नहीं पा रहा है । मुकुन्दन की कहानी की भी यही स्थिति है । आस्था के बीचों बीच ये दोनों पात्र अनास्था के एक क्षण का सामना करते हैं । इसी कारण जैसे मलयालम कहानी का शीर्षक है 'राधा, राधा मात्रम्' – अर्थात अपने सीमित होने की राधा की विडंबना विकराल होती है ।

इस प्रकरण में चर्चित कहानियों को कुल मिलाकर दो श्रेणियों में बाँटा सकता है । प्रथम श्रेणी में वे कहानियाँ आती हैं जिनके पात्र परि-स्थितियों से समझौता करने को तैयार है, परिस्थिति के अनुकूल आगे बढ़ने को तैयार है । परन्तु वे अपने इस उपक्रम से बुरी तरह से पराजित हो जाते हैं । परिवेश से कटने की स्थिति उनके जीवन में तभी आ जाती है । लेकिन उसके बाद निरंतर कटते जाने की अभिशाप्तता के भी वे शिकार हो जाते हैं । दूसरी श्रेणी में वे कहानियाँ रखी जा सकती हैं जिनमें पात्र भीतरी शून्यता को वहन करते हुए पाते हैं । ऐसी कहानियों में व्यक्ति की संकेन्द्रिता में उसका अजनबीयत नियति के रूप में विद्यमान रहता है ।

विसंगति बोध

विसंगति बोध की विशिष्ट मानसिकता आधुनिकता का परिचायक है । इसे अस्तित्ववादी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है । जीवन के अनुत्तरित सवालों के सामने व्यक्ति का अपना समग्र जीवन इतना बेहूदा और अटपटा लगता । संगत-हीनता की यह अवस्था जीवन का अनिवार्य अंग सा हो जाता है । संगतहीनता की इस अवस्था से निरन्तर जूझना और उत्तरहीनता की नियति को झेलना जीवन की एक नियति है । जीवन मात्र को उसके सामाजिक एवं आर्थिक परिप्रेक्ष्य में देखते समय इस प्रकार की नियति का सामना नहीं होता है । सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से अलग हटकर जीवन की तर्कहीनता और उसकी उलझी हुई अवस्था को देखते समय इस अनिवार्य नियति का सामना होता है । विसंगति-बोध को इस स्थिति से जीवन के एक अनछुए पक्ष से साक्षात परिचय कराता है ।

पश्चिमी साहित्य में अस्तित्ववादी प्रभाव में रचे गए साहित्य में विसंगत अवस्था का एक अटूट सिलसिला प्राप्त होता है । उसी दौर में नाटक क्षेत्र में एक नए आन्दोलन के रूप में ऊलजलूलता को पहचाना गया था । एब्सर्ड नाटकों की परंपरा जीवन की नई पहचान कराने में समर्थ हुई है । एब्सर्डिटी उस अवस्था का द्योतन भर है । ऐसी रचनाओं में विसंगति का एहसास भर होता है । समस्त पश्चिमी साहित्य में, जीवन-मूल्यों के बिखराव के इस युग में, विसंगति का अर्थस्तर काफी गहरा है ।

यह बताया जा चुका है कि भारतीय साहित्य में अस्तित्ववाद का प्रभाव पड़ा हुआ है । लेकिन प्रभाव की मात्रा, स्वरूप इत्यादि को लेकर ही मतभेद हो सकते हैं । इस दौर में लिखी हुई रचनाओं में विसंगति के विभिन्न आयाम विवृत हुए हैं । व्यक्ति की ऐकान्तिकता, ऐकान्तिकता की अनिवार्य नियति, बिखरते संबन्धों से उत्पन्न अवसाद आदि जीवन स्थितियों से संबन्धित रचनाओं में विसंगति के पक्ष दर्शित होने लगे हैं । भारतीय साहित्य में यह दृष्टि एकदम अनपेक्षित या अवांछित नहीं है । जहाँ तक हिन्दी और मलयालम कहानी का सवाल है, दोनों भाषाओं में जीवन की इस तर्कहीनता का पक्ष पर्याप्त मात्रा में संकेतित है ।

हिन्दी कहानियों की तुलना में मलयालम कहानियों में विसंगत स्थिति का अच्छा-खासा परिचय मिलता है । जीवन की इस अनिवार्य नियति का कलात्मक परिचय, एम. मुकुन्दन, सेतु जैसे कहानीकारों ने अधिकाधिक ऐसी ही कहानियाँ लिखी हैं । यह कहना गलत होगा कि इनमें अस्तित्ववादी प्रभाव गहरा है । ये दोनों कहानीकार जीवन को वस्तुवादी ढंग से देखने के आदी नहीं है । उन्होंने जीवन की विसंगति का परिचय दिया है । जबकि ऐसी कहानियाँ हिन्दी में निर्मल वर्मा, कृष्णबलदेव वैद और श्रीकान्तवर्मा ने लिखी हैं । इनकी कहानियों में संकेतित जीवन की विसंगत अवस्था को स्थितिजन्य भिन्नताओं के बावजूद, तुलना की जा सकती है ।

कृष्णबलदेव वैद की कहानी 'उसका कब्रिस्तान' मृत्युबोध से उत्पन्न विसंगतिबोध की कहानी है जिसका नायक {कहानी का} "मैं" अपने को लगातार एक कब्रिस्तान में महसूस करता है । पहले उस कब्रिस्तान में पहुँचना उतना आसान नहीं था, लेकिन अब "यह कब्रिस्तान इस काबिल हो पाया है कि हर अँधेरे - उजाले में जब चाहूँ आँखें बन्द करके भी किसी कब्र या पत्थर को ठोकर मारे बगैर एक कब्र तक पहुँच सकता हूँ ।"[1] कब्रिस्तान का यह शौक उतना नया नहीं है, क्योंकि पहले भी इस कब्रिस्तान का अस्तित्व था, लेकिन वह उससे दूर रहा था । परन्तु बाद में "ख्वाहिश के खिलाफ इसमें जाना ही पडता था और इसकी उजडी हुई हालत देख दिल दिनों वीरान रहता था और उस वीरानी से जो वहशत पैदा होती थी उसका खयाल आते ही अभी तक खाक हो जाता हूँ ।"[2]

कहानी का कब्रिस्तान व्यक्ति की मृत आशाओं और असफलताओं का प्रतीक है । अपनी आशाओं और स्मृतियों के कब्रिस्तान में नायक इस प्रतीक्षा में पडा है कि किसी न किसी दिन इस कब्रिस्तान की सब कब्रें फट जाएँ, लेकिन उसी वक्त वह यह भी जानता है कि इसके साथ उसका दम भी निकल जाये - "किसी रोज़ अन्धेरी रात को इस कब्रिस्तान में दुनिया भर की बाकमाल तवायफों का मुजरा हो, मैं उस मुजरे का रहबर हूँ, ऐसा समाँ बँधे की आधी रात के करीब सब कब्रें फट जायें, सब मुर्दे उठ खडे हों, सारा जंगल गूँज उठे, और सुबह होते-होते जब बज़्म बेज़ाबता और बेहोश हो रही हो तो मैं लडखडाता हुआ अपने आखिरी बयान केलिए खडा हो जाऊँ और मेरे मुँह से जो आवाज़ या चीख निकले उसी के साथ मेरा दम भी निकल जाये ।"[3] इसका अस्तित्व इस कब्रिस्तान के फट जाने तक है, क्योंकि उसके जीवन की एकमात्र संपत्ति यही कब्रिस्तान है । वह उसके फट जाने के वक्त की प्रतीक्षा में है । इसप्रकार कहानी के "मैं" के मन में जो मृत्युबोध है उससे उत्पन्न पीडा और विसंगतिबोध पूरी कहानी में व्याप्त है । कहानी का नायक इस विसंगतिबोध से आक्रान्त है ।

---

1. "उसका कब्रिस्तान" - आलाप {1986} - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 255.
2. वही ।
3. वही - पृ: 257.

निर्मल वर्मा की कहानी, 'जलती झाडी' का 'मैं' एक पुल के नीचे की सुनसान जगह पर जाता है । वहाँ तीन घटनाएँ घटती हैं जिनके साथ वह आत्मसात कर नहीं पाता । पहले वह मछली पकडनेवाले जिस बूढे आदमी को देखता है, वह पहले शून्य में एक बिन्दु पर दृष्टि गडाए घूरता रहता है । फिर उसकी ओर देखकर हँसता है । तुरन्त ही उसकी ओर से लापरवाह हो जाता है । यह स्थिति उसे अधिक अशान्त और अकेला बनाती है । वह सोचता है - "मुझे अपने भीतर एक अजीब - सी बेचैनी महसूस होने लगी । उसे मेरे अस्तित्व का बिलकुल भी आभास नहीं, हालांकि मैं उसके इतने पास बैठा हूँ - यह मुझे अत्यन्त अस्वाभाविक-सा जान पडा । अजाने शहरों में कभी कभी आत्मीयता की भूख कितनी उत्कट हो जाती है, यह उस क्षण से पहले मैं नहीं जान पाया था ।"[1] उसके बाद वहाँ जो लडके आते हैं वे भी शून्य में उसी बिन्दु की ओर घूरते हैं जिस ओर वह बूढा आदमी घूर रहा था । वे उसे मछलीवाला बूढा आदमी समझकर बातें करने लगते हैं तो उसे अपने अस्तित्व पर ही सन्देह होने लगता है । उसके पश्चात वह उस झाडी के बीच में प्रेम-क्रीडाओं में व्यस्त प्रेमी-प्रेमिकाओं को देखता है । थोडे ही क्षणों के बाद झाडियों से बाहर आकर युवति प्रेमी से कहती है कि उधर उनके सिवा और कोई नहीं था । इसप्रकार कहानी में अयथार्थ-सी लगनेवाली तीन घटनाओं से जीवन की विसंगति का चित्रण किया गया है । तीन घटनाओं से संबद्ध पात्र-वह बूढा, वे लडके और प्रेमी-प्रेमिका और कहानी का मैं - एक ही व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैं । तीनों शून्य में किसी की ओर घूरते दिखायी देते हैं जो कि उस 'मैं' का मौलिक भाव है । "मैं भागने लगता हूँ और पीछे मुडकर नहीं देखता । मेरे पीछे झाडी है और उसकी बीभत्स भुतैली हँसी, जो देर तक मेरा पीछा करती रही है, लट्टू के कतरों की तरह मेरे भागते पैरों के पीछे टपकती रही है ।"[2] इस कहानी की व्याख्या करते हुए गार्डन चार्ल्स रोडरमल ने लिखा है-

---

1. "जलती झाडी" - मेरी प्रिय कहानियाँ - (1977) - निर्मलवर्मा - पृ: 155.
2. वही - पृ: 165.

"लगता है सारे लोग जैसे किसी रहस्य के बराबर के हिस्से हैं, मगर वह है कि उसके बारे में कुछ जानता ही नहीं। संत्रास और निरर्थकता के इस सन्दर्भ में दीनता, अकेलेपन और प्यार अथवा सार्थकता की भावनाएँ एकदम अप्रासंगिक हो जाती हैं।"[1] आत्मपरायेपन से उत्पन्न विसंगति का चित्रण ही निर्मल वर्मा ने इस कहानी में किया है। झाडी की प्रतीकात्मकता से जीवन में व्याप्त इस विसंगति की ओर इशारा किया गया है। इसलिए वह उस झाडी से दूर भाग जाना चाहता है, उसकी भुतैली हँसी से भयभीत होता है। वस्तुतः वह पात्र अपनी अस्मिता की खोज में लगा है। लेकिन उसे विसंगत जीवन-परिवेश में दर्शाया गया है ताकि उसकी खोज निरर्थक हो जाए।

श्रीकान्तवर्मा की कहानी, "घर" एक व्यक्ति की असुरक्षित अवस्था की विसंगति की कहानी है। अपने घर में रहते हुए भी वह अपने को बेघर, असुरक्षित ही समझता है। उसकी इस असुरक्षित अवस्था की विसंगति को कहानी में घटित एक सामान्य घटना के माध्यम से उजागर किया गया है। कहानी का मुख्य पात्र उस घटना को देखता है। "एक स्त्री और एक पुरुष मेरे अहाते में आये। मैं ने झाँककर देखा। . . . दो पीढियाँ चढ वह मेरे बरामदे पर आ पहुँची और गोद का एक-डेढ साल का बच्चा, जो एक लम्बी कमीज़ में करीब - करीब पूरी तरह खो गया था, फर्श पर सुला दिया।"[2] बनजारों के समान घूमनेवाले उस भिखारी-दम्पति के शारीरिक संबन्ध के दृश्य को ही कहानीकार ने दर्शाया है। जिस निस्संगता के साथ वे जीवन को जी ले लेते हैं वह उस संभोग दृश्य से स्पष्ट होता है। उस दृश्य का भी वह गवाह ही बनता है। विसंगति यह है कि अपने घर के बरामदे में पलते जीवन का वह गवाह अवश्य बनता है। लेकिन अपने जीवन की असुरक्षित अवस्था से

---

1. हिन्दी कहानी : अलगाव का दर्शन - §1982§ - गार्डन चार्ल्स रोडरमल - पृः 150-151.

2. "घर" - संवाद - §1969§ - श्रीकान्त वर्मा - पृः 22.

उसका बचाव असंभव होता है । "मैं अपने घर में अकेला हूँ । मैं ने ब्याह भी नहीं किया । कोई इरादा भी नहीं है । घर पर भी कम रहता हूँ । अपने पड़ोसियों से भी सरोकार मुझे लगभग नहीं है ।"[1] इस कहानी में समस्या का कारण ढूँढा नहीं गया है । कहानी में विसंगत स्थिति को गहराने का उपक्रम ही किया गया है ।

कृष्णबलदेव वैद की ही "आलाप" शीर्षक कहानी में बूढ़े स्त्री-पुरुष के यौन संबन्धों की विसंगतिपूर्ण स्थितियों का अंकन हुआ है । सेक्सगत सम्बन्धों में अपनी दुर्बलताओं, अपूर्णताओं और सीमाओं पर वे निराश होते हैं ।

"आदमी बोला - मेरा जी चाहता है खुदकुशी कर लूँ ।"
"औरत बोली" - मेरा जी चाहता है कोई ऐसा तरीका हो कि
मैं फिर से जवान हो जाऊँ ।"
. . . .
आदमी ने औरत की तरफ देखा, औरत ने आदमी की तरफ,
और दोनों की आँखें भीग गयीं ।"[2]

अपनी युवावस्था में भी वे दोनों यौन-सम्बन्धों में ठंडापन और नीरसता महसूस करते थे । एक दिन वह आदमी अपने बिस्तर पर नंगी गर्म लाश को देखकर वह बहुत खुश होता है । उसके साथ वह कई करतूतें करता है जो एक तन्दुरस्त पुरुष किसी नंगी लाश के साथ कर सकता है । विडम्बना यह है कि सुबह उठने पर वह लाश गायब हुई है और उसकी जगह एक बासी खूबसूरत औरत पड़ी है । वह पूछ रही है - "रात आपको क्या हो गया था, एक पल सोने नहीं दिया मुझे?"[3] उसके इन शब्दों से हैरानी और गुस्से के मारे पुरुष के मुँह से दाँत गायब हो जाते हैं ।

---

1. "घर" - संवाद - (1969) - श्रीकान्त वर्मा - पृ: 23
2. "आलाप" - आलाप - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 16.
3. वही - पृ: 15.

यह उस पुरुष की भ्रमात्मक और विसंगत कल्पना है । अपने साथ बिस्तर पर लेटनेवाली औरत को लाश समझना उनकी सेक्सगत निस्संगता और बुढ़ापे का द्योतक है । अपने बुढ़ापे के अवबोध होने पर, उसे मुँह दाँत गायब होने का-सा अनुभव होता है । इसीलिए अपने दुस्वप्नों में उसे झड़ते हुए दाँत दिखाई देते हैं । जब पुरुष मन से और तन से खाली हो जाता तब औरत उससे सहमत नहीं होती । उन दिनों दोनों एक साथ खाली नहीं होते थे । "और अब हम पड़े हैं - साथ-अलग-सीधे खामोश । उसकी आँखें बन्द हैं और चेहरा खाली है । मेरी आँखें खुली हैं और जिस्म खाली हैं । थोड़ी देर बाद हम सो जायेंगे ।"[1]

लेकिन जब वे अपनी युवावस्था की उस ठंडी और नीरस अनुभूतियों के बारे में सोचने लगे, तब "उन्हें महसूस हुआ जैसे ज़िन्दगी में पहली बार वे दोनों एक साथ खाली हुए हैं ।"[2] कभी न जुड़ पानेवाले संबन्धों को झेलने की मजबूरी जीवन की विसंगत अवस्था का द्योतक ही है । भारतीय कहानियों में ऐसी दर्जनों रचनाएँ उपलब्ध हो सकती हैं । या तो लगातार टूटते जाने या लगातार जुड़ न पाने की स्थिति संबन्धों के विघटन का उदाहरण न होकर जीवन की विसंगति का सूचक है । वैसे वैद ने संबन्धों के नए आयामों को ही अपनी कहानियों में ढूँढ़ा है । लेकिन इस खोज के दौरान विसंगति के अच्छे-खासे सन्दर्भों को भी उन्होंने ढूँढ़ा है ।

आधुनिक मलयालम के सशक्त कहानीकार, सेतु की अधिकतर कहानियाँ डरावने सपनों की कथाएँ हैं । इन कहानियों में मानवीय अस्तित्व की आकुलता और भीति से संबन्धित कई समस्याएँ अन्तर्निहित हैं । "जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी" शीर्षक कहानी अयथार्थ स्थितियों के सन्निवेश के माध्यम से जीवन की विसंगति को उजागर किया गया है । कहानी का "मैं" एकदिन जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी से मिलने केलिए

---

1. "आलाप" - आलाप - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 16.
2. वही ।

उसके बंगले में पहुँचता है । वह अनुभव करता है कि उस बंगले के चारों ओर एक विशेष प्रकार की रहस्यात्मकता है । "रहस्यात्मकता, निगूढता और दिव्यता आदि का मूर्त रूप है हाजियार । उस अहाते के हर एक पौधे और पत्ते में भी विशेष प्रकार की रहस्यात्मकता है । जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी उन सारे रहस्यों से निरंतर रूप से बह रहा है ।"[1] कहानी का "मैं" हाजी की प्रतीक्षा में बहुत देर तक बंगले में बैठता रहता है । लेकिन वह उससे मिल नहीं पाता । उसके बदले वह मिलता है, हसन, मुसलियार, सुलैमान, नंबियार आदि से । हाजी के अभाव में वे सब उसकी सहायता करने केलिए तैयार होते हैं । वह कहता है कि वह सिर्फ हाजियार से मिलना चाहता है । लेकिन विडम्बना तो यह है कि वस्तुतः उस बंगले में हाजियार नाम का कोई नहीं है । हसन, मुसलियार, सुलैमान, नंबियार आदि से अलग हाजियार का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं है । वे सब हाजी के विभिन्न रूप है या हाजी उनका मिला जुला रूप हैं।उनका कथन है - "सुनो, हम सब को ही हाजियार कहते हैं । हमारे सिवा इस देश में कोई हाजियार नहीं है । . . . हमने उसकी हत्या कर डाली है, समझे"[2]

जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी किसका प्रतिनिधित्व करता है, यह कहना उतना आसान नहीं है । शायद वह सत्य का हो, या स्वतन्त्रता का हो, या इसी तरह किसी का भी हो सकता है । हाजी से मिलना कहानी के "मैं" का एकमात्र लक्ष्य है । वह अपने इस उद्देश्य पर अडिग रहता है । मगर उसकी आस्था धीरे धीरे बिखर जाती है और उसे पता चलता है कि जिससे मिलने वह आया है वह सचमुच उधर नहीं है । यह जीवन की बहुत बडी विडंबना और विसंगति है । इस सन्दर्भ में उसकी पहचान एकदम निरर्थक और फिज़ूल हो जाती है । कहानी के अन्त

---

1. "जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी " - "सेतु की कहानियाँ" - (1984) - सेतु - पृ: 285.
2. वही - पृ: 289.

में यह सन्देह भी हो सकता है कि वह वास्तव में किसको खोज रहा था, किससे मिलने वह आया है । सबकुछ भ्रमपूर्ण, अर्थहीन और विसंगत हो जाते हैं ।

सेतु की एक और भ्रमात्मक कहानी है "मून्नु कुट्टिकल" [तीन बच्चे] जिसमें जीवन की दुरूहता और विसंगति का चित्रण हुआ है । कहानी के नन्दन और उसके दो साथी शाम को काजू के बाग में पहूँचते हैं । बिलकुल यथार्थवादी ढंग से आरंभ होनेवाली कहानी धीरे धीरे एक अयथार्थ और भ्रमात्मक माहौल में प्रवेश करती है । काजू लेने केलिए वृक्ष पर चढनेवाला नन्दन धीरे धीरे दृष्टि से ओझल हो जाता है । उसकी कोई आवाज़ भी सुनाई नहीं पडती । किन्तु ऊपर से काजू के फल गिरने लगते हैं । थोडे ही क्षणों में फलों का गिरना भी बन्द जाता है और अन्त में नन्दन का कपडा भी नीचे गिरता है । इसप्रकार बिलकुल अयथार्थ वातावरण में कहानी का अन्त हुआ है । लेकिन यह कहानी का वास्तविक अन्त नहीं है । कहानी का अन्तिम वाक्य देखिए - "उस बाग के निकट से होकर जाने वाले बच्चे आज भी कहा करते हैं - पुराने ज़माने में नन्दन नाम का एक लडका था ।"[1] नन्दन के गायब होने में जो दुरूहता, विसंगति है वह तर्कहीन और विसंगत जीवन-सन्दर्भों का द्योतक है । जीवन के परिचित और सीमित दायरों का उल्लंघन कर, जीवन में जो कुछ अज्ञेय, निगूढ और अप्राप्य है उन्हें जानने केलिए, हासिल करने केलिए जो तैयार होता है उसकी अपनी अनिवार्य नियति है । जीवन की विडम्बना यह है कि जो व्यक्ति परम-सत्य या स्वत्व का अन्वेषण करता है, उसका फल भलेही लोगों को मिले या न मिले, उस अन्वेषण में उसे अपना सब कुछ, अपने प्राणों को भी उत्सर्ग करना पडता है । कहानी के नन्दन को भी अपने अन्वेषण का मूल्य-अपना जीवन - चुकाना पडता है । यहाँ ईसा मसीह, गलीलियो, सुकरात आदि का जो मिथकीय परिवेश है वह नन्दन को प्राप्त होता है । इसप्रकार सेतु की इस कहानी में जीवन के अयथार्थ, निगूढ और विसंगत सन्दर्भों का ही अंकन हुआ है ।

---

1. "मून्नु कुट्टिकल" [तीन बच्चे] - सेतु की कहानियाँ - पृ: 363.

एम॰ मुकुन्दन की कहानी, "कुलिमुरी" {गुसलखाना} एक फैंटसी है जिसमें मानवीय अस्तित्व के संकट को एक नये दृष्टिकोण से देखने का उपक्रम हुआ है । कहानी का मुख्य पात्र है, पुरुषोत्तमन जिसके मन में अपनी प्रेमिका का नंगा शरीर देखने की तीव्र अभिलाषा है । उसकेलिए वह एक मक्खी बनना चाहता है और तभी वह उसके स्नान करते समय गुसलखाने में घुसकर उसका नंगा शरीर देख सकता है । अपनी प्रार्थना के अनुसार वह एक मक्खी बन जाता और मक्खी बनकर वह नहानेवाली प्रेमिका को देखता रहता है । "दीवार के एक कोने से आवाज़ किए बिना धीरे धीरे उसकी ओर आनेवाली छिपकली को पुरुषोत्तमन ने नहीं देखा । यह भी उसने नहीं जाना कि उस छिपकली ने अपने को निगाला है ।"[1] समय और इच्छा के साथ के द्वन्द्व में वर्तमान विसंगति के आधार पर यह कहानी रची गई है । मलयालम के एक आलोचक ने कहानी की उस छिपकली को मृत्यु के प्रतीक के रूप में लिया है[2] परन्तु समय और इच्छा के द्वन्द्व को मुकुन्दन ने एक सरल सन्दर्भ में जोडा है । एक कामुक व्यक्ति की जीवन-कामना के रूप में उसे देखा गया है । मक्खी का छिपकली द्वारा निगल जाना इत्यादि एकदम स्वाभाविक होते हुए, उक्त घटना में निहित विसंगति का सन्दर्भ इतना प्रखर एवं तीक्ष्ण है ।

एम. मुकुन्दन की एक और चर्चित कहानी है, "मुडंनम चेय्यप्पेट्टा जीवितम" {मुंडन किया हुआ जीवन} । कहानी में लक्ष्मणलाल प्यारीलाल पंडितजी नाम का एक व्यक्ति कहानी के "मैं" को उसके दफ्तर से बाहर बुला लाता है । वह उसका सिर-मुंडन कराता है और एक गधे की पीठ पर बिठाकर नगर की गलियों से उसे ले चलता है । उसके परिचित और अपरिचित लोगों की एक बडी भीड उसकी गाली-गलौज करते हुए, उसपर पत्थर फेंकते हुए उसके पीछे चल रहे हैं । वे लोग

---

1. "कुलिमुरी" {गुसलखाना} - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 268.
2. मुकुन्दन की कहानियाँ - भूमिका - वी. राजकृष्णन - पृ: 30.

उसके ही सामने बैठकर चाय पीते है, किन्तु उसे पानी तक नहीं देता है । किस अपराध केलिए उसे यह दण्ड दिया जा रहा है, वह यह नहीं जानता । उसके पूछने पर पंडितजी का उत्तर है – "एक दिन एक बूढा आदमी पीने का पानी माँगते हुए तेरे घर में आए थे न? तू ने क्यों उसे पानी दिया? प्यासे लोगों को पानी देनेवाला आखिर तुम कौन हो?"[1] कहानी का पंडितजी मनुष्य की नियति को नियन्त्रित करनेवाली अज्ञात, निगूढ शक्तियों का प्रतिनिधि है । कहानी में वह भगवद्गीता, बाइबिल, कुरान – तीनों एक दूसरे के बाद पढ रहा है । इससे हम स्पष्ट समझ सकते हैं कि उन निगूढ शक्तियों में व्यवस्थापित धर्म भी शामिल है । "उस निगूढ और अज्ञात शक्ति के आदेशों का पालन करना तुम्हारी नियति है । कोई तुम्हें पुकारता है । तुम सुनते हो, उसके आदेशों का पालन करते हो, व्यथा और पीडा का अनुभव करते हो । तुम्हारा अनुभव यद्यपि काफ्का के पात्र, "के" के अनुभवों से जटिल नहीं हो, तो भी दर्दनाक है ।"[2] इसी तरह उसके सिर मुंडन करने के साथ ही साथ उसकी अहं की भावना, उसकी आत्मा ही उससे छीन ली जाती है और उसे मनुष्य की आदिम अवस्था की ओर फेंक दिया जाता है । उसका कथन है – "उसने जो काट लिया, वह मेरे बाल नहीं, मेरी आत्मा थी ।"[3] इसप्रकार कहानी में आधुनिक काल की मानवीय अवस्था का विसंगति-पूर्ण चित्रण ही मिलता है । "मनुष्य के अकेलेपन और असुरक्षाबोध से संबन्धित एक दार्शनिक अवबोध को सृजित करने में कहानी सफल हुई है ।"[4]

---

1. "मुंडनम चेय्यप्पेट्ट जीवितम" {मुंडन किया हुआ जीवन} – मुकुन्दन की कहानियाँ – पृ: 255-256.
2. अहं के यथार्थ की तलाश करनेवाली कहानियाँ – के.एम.तरकन – मातृभूमि साप्ताहिक, सितम्बर 19-25, 1982
3. "मुंडनम चेय्यप्पेट्ट जीवितम" {मुंडन किया हुआ जीवन} – मुकुन्दन की कहानियाँ – पृ: 251.
4. ग्यारह कहानियाँ – सं. जोण सामुवल – भूमिका : के.पी.अप्पन – पृ: 33.

तुलनात्मक दिशाएँ

इस प्रकरण में चर्चित कहानियों की तुलना कथा स्थितियों के आधार पर अधिक समीचीन है । अतः इन कहानियों में प्राप्त विसंगति की कुछ स्थितियों की तुलना अनायास हो सकती है, जबकि ये कहानियाँ बहिरंग स्तर पर इतनी भिन्न और अलग-अलग हैं ।

अनस्तित्व की व्यथा से उत्पन्न विसंगत मानसिकता का आभास प्रायः इन कहानियों में मिलता है । इस प्रकरण में चर्चित तमाम कहानियों में ऐसी एक विसंगत मानसिकता को गहराने का कार्य किया गया है । सेतु की कहानी, "जनाव कुञ्जमूसा हाजी" और श्रीकान्त वर्मा की कहानी "घर" में प्राप्त विसंगत सन्दर्भ अनस्तित्व की व्यथा का परिणाम है । कहीं न पहुँचने की अवस्था इन दोनों कहानियों में संकेतित है ।

प्रायः ये कहानियाँ या तो फैंटसियों का रूप-शिल्प अपनाकर-या स्वतः अयथार्थ धरातल पर सृजित रचनाएँ हुआ करती हैं । सवाल यह है इनकेलिए अयथार्थ परिस्थितियों की क्या आवश्यकता है । फैंटसियाँ अपने आप में अयथार्थ हुआ करती हैं । लेकिन जीवन के विसंगत सन्दर्भ से युक्त कहानियाँ धीरे धीरे अयथार्थता का वरण करती नज़र आती हैं । यह प्रवृत्ति सेतु की कहानी, "तीन बच्चे" तथा निर्मल वर्मा की कहानी, "झाडियाँ" में देखी जा सकती है । तर्कसंगत जीवन-स्थितियाँ, सहज जीवन-दृष्टि, स्वाभाविक परिणाम इत्यादि इनमें से नष्ट होते हैं । उनके स्थान पर अस्वाभाविक, असहज और तर्कहीन सन्दर्भ प्रमुख हो उठते हैं ।

विसंगतिबोध से युक्त कहानियों में पात्र और स्थितियाँ तटस्थ या निस्संग दीखती हैं । "आलाप" के पात्रों की अवस्था इसकेलिए उदाहरण है । उसी प्रकार "मुंडन किया हुआ जीवन" का पात्र उन तमाम जुल्मों का सहन कर लेता है । यह बाहरी निस्संगता विसंगति का सीधा साक्षात्कार है । उनकी आन्तरिक टूटन विसंगति की चरम सीमा है ।

समय और इच्छा का द्वन्द्व ऐसी कहानियों में बार-बार संकेतित होता है । समय और इच्छा के द्वन्द्व का एक वस्तुवादी-स्तर नियतिमूलक-स्तर भी है । वैसे यह द्वन्द्व अनिवार्य है । लेकिन यह धीरे धीरे जीवन के ऐसे पक्षों का अनावरण करता है जो परिभाषेय अवस्था में नहीं रहते हैं । इस द्वन्द्व को एम. मुकुन्दन ने अपनी "गुसलखाना" शीर्षक कहानी में अच्छी तरह प्रस्तुत किया है । श्रीकान्त वर्मा की कहानी "घर" में इसी द्वन्द्व से उत्पन्न विसंगति का परिदृश्य मिल जाता है ।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ जीवन के अनिश्चित पक्षों की अभिव्यक्ति हैं जहाँ मनुष्य की आन्तरिक छटपटाहट, आन्तरिक टूटन इत्यादि उच्चस्तरीय स्थिति में संकेतित मिलती हैं ।

शून्यता बोध

मनुष्य के अस्तित्व-बोध या आत्म-बोध का और एक चरण है शून्यता का एहसास । अस्तित्वबोध या आत्मबोध अन्ततः स्वतन्त्रता का एहसास है जिसे वह अपने जीवन के द्वारा प्रकृति से हासिल कर लेता है । जब यह आत्मबोध या अहं का बोध मिथ्या बन जाता, तब शाश्वत स्वतन्त्रता की कल्पना भी निरर्थक बन जाती है । प्राचीन भारत के आचार्यों ने शाश्वत स्वतन्त्रता या मुक्ति को सागर (संसार रूपी सागर) पार करने की प्रक्रिया से उपमित किया है । किन्तु

यहाँ पार करनेवाला कौन है? वह अपने अस्तित्व को भी इस प्रयाण में विलीन कर लेता है । इसलिए पार करनेवाला नहीं, सिर्फ पार करने की प्रक्रिया है । अथवा पार करने के बीच में पार करनेवाला शून्य बन जाता है । कोई भी नदी के उस पार नहीं पहुँचता है । नदी का उस पार नहीं है । यही रिक्तता या शून्यता का एहसास है । रिक्तता का एहसास जीवन की निरर्थकता और विसंगति से भी जुड़ा हुआ है । अस्तित्व के संकट से जो आकुलता होती है उससे मनुष्य को अपना जीवन निरर्थक और विसंगत-सा लगता है । भविष्य के संबन्ध में वह आशाहीन बन जाता है । कैमू के शब्दों में, "विसंगति मुझे इस तथ्य से अवगत कराती है कि जीवन का कोई भविष्य नहीं ।"[1] इसी तरह मृत्यु के एहसास से भी मनुष्य के मन में निरर्थकता बोध पैदा होता है । ज़िन्दगी और जगत की निरर्थकता पर विचार करते हुए कैमू ने लिखा है - "यह ज़िन्दगी जीने योग्य है या नहीं, इसके निर्णय में दर्शन के मौलिक प्रश्नों का उत्तर निहित है । वस्तुतः सर्वाधिक गंभीर दार्शनिक समस्या एक ही है - आत्महत्या ।"[2] कैमू का यह चिन्तन निरर्थकता-बोध से उत्पन्न हुआ है । यह निरर्थकता बोध मनुष्य के मन में निराशा और शून्यता की भावना भर देता है ।

रिक्तता से आक्रान्त जीवन स्थितियाँ आधुनिक दौर में लिखी गई हिन्दी तथा मलयालम कहानियों में मिलती हैं । इस सन्दर्भ में यह सूचित करना आवश्यक है कि मलयालम में ऐसी कहानियाँ संख्या की दृष्टि से अधिक लिखी गई है ।

---

1. The absurd enlightens me on this point : There is no future - Albert Camus - The Myth of Sisyphus - p.57.

2. "There is but one truely serious philosophical problem and that is suicide. Judging whether life is or is not worth living amounts to answering the fundamental question of philosophy", Ibid. p.11.

नई परिस्थितियों से जनित संत्रास के कारण मनुष्य अपने जीवन में एक निरर्थकता और शून्यता का अनुभव कर रहा है। निर्मल वर्मा की कहानी, 'लन्दन की एक रात' महानगरीय सन्दर्भों में इस निरर्थकता बोध की अभिव्यक्ति करती है। कहानी का "मैं", विल्ली और जार्ज- तीनों अलग-अलग देशों से आए युवक हैं। उनका भय और संत्रास वास्तविक जीवन-सन्दर्भ से जुडा हुआ है और वहाँ की जीवन-पद्धति और व्यवस्था से उत्पन्न है। वे तीनों बेरोज़गार हैं। समाज से कटे हुए हैं और इसीलिए मन में एक तरह की शून्यता का अनुभव कर रहे हैं। वे अपने घर से बहुत दूर हैं, अपनी गृहातुरता के कारण "घर" के बारे में कहते समय उनके स्वर में एक सूना-सा खोखलापन उभर आता है। "नीग्रो छात्र, जार्ज के स्वर में एक सूना-सा खोखलापन उभर आया, मानों "घर" शब्द बहुत विचित्र हो, जैसे उसने पहलीबार उसे सुना हो।"[1] वे तीनों एक दूसरे के साथ रहकर भी अकेले पड गए हैं। और तीनों के मन में डर है, अपने से और एक दूसरे से। इसी डर के मारे वे सोचते हैं कि उनमें से कोई भी एक दूसरे को आपत्तियों से बचा नहीं सकता। कहानी का "मैं" यों सोचता है - "किन्तु अब हम दोनों एक संग होते हुए भी अचानक अकेले पड गए थे और वह रो रहा था और मैं कुछ भी नहीं कर सकता था . . . शायद इससे भयंकर और कोई चीज़ नहीं, जब दो व्यक्ति एक संग होते हुए भी यह अनुभव कर लें कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे को नहीं बचा सकता, जब यह अनुभव कर लें कि उनमें से कोई भी एक दूसरे को नहीं बचा सकता।"[2] इस संत्रास और भय के कारण वे अकेले पड गए हैं और उन्हें जीवन निरर्थक और शून्य-सा लगता है। देवीशंकर अवस्थी ने ठीक ही लिखा है -

---

1. "लन्दन की एक रात" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मलवर्मा - पृः 122.
2. वही - पृः 150.

"लन्दन की एक रात" में जीवन की अनिश्चितता, घुटन, चीख, भेद-भाव, बेगानापन आदि को अनेक सूत्रों में पिरोया गया है ।"[1] इन स्थितियों को निर्मल वर्मा ने वैश्विक स्तर पर उजागर करने का कार्य किया है । उनकी "परिन्दे", सितंबर की एक शाम" जैसी कहानियों में इसी अनिश्चितता का रेखांकन हुआ है । लेकिन "लन्दन की एक रात" का व्यापक सन्दर्भ उसे अधिक सार्थक बना देता है ।

वैवाहिक जीवन में होनेवाले अलगाव के फलस्वरूप दम्पतियों को अपने जीवन में एक अजीब-सी निरर्थकता और शून्यता का अनुभव होता है । श्रीकान्त वर्मा की कहानी, "ठण्ड" में वैवाहिक जीवन की ऊब और अलगाव से जनित शून्यता-बोध की अभिव्यक्ति हुई है । कहानी के पति और पत्नी एकदिन अपने बच्चों के साथ नगर के किसी हाटॅल में पहुँचते हैं । वे आपस में बातें नहीं करते । उन दोनों के मन में जो शून्यता व्याप्त है, वह उनके आचरण में लक्षित होता है । बच्चों के साथ के उनका व्यवहार भी कृत्रिम और यान्त्रिक हो गया है । हाॅटल में चाय पीते वक्त बडे लडके की असावधानी से जब पानी का गिलास नीचे गिरकर टूट जाता है, तब उसके मन में यह विचार होता है कि पिता से करारी डाँट और ज़ोर का तमाचा मिले । लेकिन वह पिता उससे उसके बारे में एक शब्द भी नहीं बताता है । मौन रहकर उसके गीले वस्त्रों को पोंछने केलिए वह रूमाल निकालकर उसकी ओर बढाता है । चलते समय "पुरुष का ठंडा हाथ आगे खडे छोटे लडके के कंधे पर पडा हुआ था जिससे छोटा लडका कुछ आत्मविश्वास और गौरव का अनुभव कर रहा है ।"[2] वस्तुतः उसका मन अधिक ठंड पड गया है । मन का यह ठण्डापन और ऊब उसके आचरण में व्याप्त है । वर्षों के वैवाहिक जीवन से वे दोनों ऊब गए हैं । यह ऊब किसकी देन है यह स्पष्ट कहा नहीं जा सकता । उन दोनों की जीवन-परिस्थितियाँ, जीवन की यान्त्रिकता, उनकी अपनी अपनी मानसिक ग्रन्थियाँ आदि से उनके जीवन में शून्यता का एहसास हुआ है ।

---

1. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 223.
2. "ठण्ड" - घर - (श्रीकान्तवर्मा की चुनी हुई कहानियाँ) - (1981)- पृ: 104.

निर्मलवर्मा की "मायादर्पण" एक ही घर में अपरिचितों के रूप में जीने के लिए अभिशाप्त एक पिता और उसकी बेटी की त्रासद कहानी है । पिता अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद अपने को किसी भी स्थिति में दूसरों से जुडा हुआ नहीं पाता । पिता से झगडकर पुत्र कहीं दूर चला गया है और मात्र पुत्री, तरन, घर में रह गयी है । वह सोचती है – "माँ एक कडी थीं परिवार और बाबु के बीच, उनके जाते ही वे एक घर में रहते हुए भी सहसा एक दूसरे केलिए अजनबी हो गए थे ।"[1] इस अजनबी अवस्था के कारण पिता और बेटी के बीच की दूरी बढ जाती है और दोनों के मन में शून्यता भर जाती है । "पहले बहुत दिन गुस्सा आता था . . . अब वह भी नहीं आता, केवल रूखी-सी रिक्तता मन में भर जाती है ।"[2] तरन अपने भाई के पास जाने का विचार तो करती है, किन्तु पिता को छोडकर वह अलग नहीं हो पाती । अनचाहा जीवन बिताने के कारण वह मन में शून्यता का अनुभव करती है । "बरामदे की आवाज़ नहीं सुनती, सुनती है उस निर्भेद्द मौन को, जो सारे घर में छाया है, जिसके भीतर ये आवाज़ें पराई, अपरिचित, भयावह सी जान पडती है ।"[3] दूसरी ओर पिता की आत्मनिर्वासित अवस्था का मुख्य कारण उसकी अहं की भावना है । अपने मित्रों के साथ हँसते हुए बातें करने के बावजूद वह उन्हें अपने से छोटा समझता है । वह अपने और इन मित्रों से हँस-बोल लेते हैं, यह बात और है । किन्तु मन में हमेशा उन्हें अपने से छोटा समझते हैं । इतनी घनिष्ठता के बावजूद उन्होंने अपने और दूसरों के बीच कहीं एक लकीर खींच रखी है, जिसे उल्लंघन करने का दुस्साहस कोई नहीं कर पाता ।"[4]

निर्मलवर्मा द्वारा लिखी हुई इस दौर की एक और कहानी है 'सितम्बर की एक शाम" । इस कहानी का प्रमुख पात्र, सत्ताईस वर्षीय युवक,

---

1. "माया दर्पण" – जलती झाडी – (1966) – निर्मल वर्मा – पृ: 28-29.
2. वही – पृ: 33.
3. वही – पृ: 25.
4. वही ।

अपने परिवार से संबन्ध तोड़कर एक अजनबी शहर आया है । वहाँ कोई उसे नहीं जानता, उसका कोई काम नहीं, और उसके पास कोई पैसा नहीं । उस अजनबी शहर में उसे ऐसा लगता है कि वहाँ की भीड से अलग उसका अपना कोई व्यक्तित्व या अस्तित्व नहीं है । "बहुत से आदमियों की भीड में वह भी एक भीड था । उसका चेहरा दूसरे आदमियों के चेहरे से अलग था, फिर भी उनसे मिलता जुलता था । वेश-भूषा, चाल-ढाल, आँखों का खोलना-झपकना, सांस लेना, फिर सहसा अनायास ढंग से सांस हवा में फैला देना - वह सब वही कर रहा था, जैसा साधारणतः सब लोग करते हैं । उसके व्यक्तित्व में कहीं भी कोई विशिष्टता, कोई चमत्कार नहीं था ।"[1] एक दिन वह अपनी विवाहिता बहन से मिलने जाता है । वह बहन उससे वापस घर जाने का आग्रह करती है, पर वह वहाँ से निकलकर सीधे एक वेश्या के घर चला जाता है । बहिन के दिये दो रुपया उसे देकर उस क्षण केलिए ही सही, स्वतन्त्रता का आनन्द महसूस करता है । "जीने का यह झिलमिला क्षण, जिसकी कोई अनुभूति नहीं, कोई परिणति नहीं । मुक्ति की उत्कट प्यास, जो सब नैतिक मान्यताओं को तोडती हुई, इन दीवारों के परे, इस रात के परे, समूची पृथ्वी की असीम व्यापकता को इस क्षण में समेट रही है, धूप, हवा पिघलते-फैलते आलोक में, पिघलती-मिटती छायाओं में, सब गलियों, चौराहों पर, जहाँ उसकी तृषार्त, स्तब्ध आँखें सदियों से विस्मित खुली है ।"[2] रास्ते के गंदले पानी के गढे में जब वह अपने चेहरे की छाया देखता है, वह उसे बिलकुल अपरिचित-सा लगता है । वह दूसरों से ही नहीं, अपने से भी अजनबी हो गया है । उसके आगे भविष्य नहीं, जीवन उसे निरर्थक और शून्य-सा लगता है ।

वैवाहिक जीवन की ऊब और एकरसता के कारण पति-पत्नी के मन में अजीब-सी निरर्थकता और रिक्तता का बोध होता है । रामकुमार की कहानी,

---

1. "सितम्बर की एक शाम" - जलती झाडी - निर्मल वर्मा - पृ: 126.
2. वही - पृ: 132.

"समुद्र" इसी ऊब की अभिव्यक्ति देती है । निरर्थकता के एहसास के कारण एक दूसरे केलिए वे अजनबी हो गए हैं । अपने कमरे में चारपाई पर सोनेवाले पति पर नज़र पडते ही पत्नी चौंक पडती है मानो किसी अन्य पुरुष को अचानक अपने कमरे में देख लिया हो । "चारपाई पर सोया व्यक्ति उसका पति है जिसके साथ उसने अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष बिताये हैं, इसपर सहसा उसे विश्वास नहीं हो सका ।"[1] एकदिन वे दोनों बच्चों को घर में छोडकर अकेले समुद्र के तट के होटल में पहुँच आते हैं । पति जब समुद्र में तैरने केलिए जाता, तो पत्नी कमरे में ही बैठी रहती है "होटल के कमरे में भी उसे बहुत परायापन-सा महसूस हुआ ।"[2] वहाँ जिस दम्पति से वह मिलती है उन्हें देखकर उसके मन की ऊब बढ जाती है और मन में एक बेचैनी और असन्तोष की भावना उभरने लगती है । पति सोचता है कि वापस लौटने के विचार से पत्नी को प्रसन्नता होगी । इसीलिए वह कभी घर की बातें करता है, कभी बच्चों की , लेकिन पत्नी उसपर कोई विशेष उत्साह नहीं दिखलाती है । पति को कुछ भी समझ में नहीं आता । किन्तु पत्नी उसे समझाने की न कोई आवश्यकता समझती है, न चेष्टा करती है । क्योंकि वह अपनी ही दुनियाँ में रहती है । पति-पत्नी के बीच के इस अलगाव के कारण उन दोनों के जीवन में ऊब और एकरसता व्याप्त होती है । शून्यता का यह पारिवारिक सन्दर्भ अस्तित्व-बोध के किंचित पक्षों में ही अधिक सार्थक हो सकता है ।

रामकुमार की एक और कहानी है "सेलर" जिसमें पिता और बच्चे के अलग होने के कारण पिता के जीवन की शून्यता का चित्रण हुआ है । पत्नी की मृत्यु के बाद सास-ससुर उसे घर और बच्चे से ज़्यादा-से ज़्यादा अलग रखते हैं और वह अकेला हो जाता है । यहाँ भी जीवन में उसी शून्यता का परिणाम है जो पूर्ण रूप से पारिवारिक सन्दर्भ में आँका गया है । अपने हृदय की इस अवस्था की झलक उसे अपने बच्चे के चेहरे में भी दिखाई पडती है । "खुली-खुली-सी शून्य-सी आँखें जैसे कोई

---

1. "समुद्र" - समुद्र - ﴾1968﴿ - रामकुमार - पृ: 120.
2. वही - पृ: 109.

बन्द दरवाज़ा खुल गया हो, जिसके बीच में से वह दूर-दूर तक झाँक सकता है ।"[1] यहाँ अपना ही मानसिक तनाव वह अपने बच्चे के चेहरे में देखता है ।

आनन्द की कहानी, "पूज्यम" {शून्य} का जानीबाप्पा एक साधारण मनुष्य है जिसकी अपनी, एक कथा नहीं है । साधारण मनुष्य के रूप में उसने जीवन बिताया, और साधारण मनुष्य के रूप में उसकी मृत्यु भी हुई ।इस दृष्टि से वह हज़ारों या करोडों व्यक्तियों का प्रतिनिधि है । असाधारण कहने केलिए उसके जीवन में कुछ भी नहीं है । वह किसी तेरमल स्टेशन का सूपरवैसर था । कहानी के 'मैं' जो उसी तेरमल स्टेशन का एक इंजनीयर है के साथ उसका परिचय होता है, वह जानीबाप्पा के घर भी हो आया है । अलावा इसके उन दोनों में कोई विशेष लगाव या संबन्ध नहीं है । तो भी उसकी मौत पर कहानी के मैं के मन में हल्का-सा दुख होता है । कोई किसी से भिन्न नहीं है । दूसरे शब्दों में सभी जीवियों में एक प्रकार की समानता है । प्रकृति की दृष्टि में सारे जीव सिर्फ कार्बन और हाइड्रजन हैं । "कार्बन और हाइड्रजन के विविध रूप - मांस, हड्डी, आँख, होंठ, तेल और गैस । बाकी सब निरी मूर्खता है - चील, मनुष्य, विज्ञान, औद्योगिक युग, कथा-रचना-सभी मूर्खता है ।"[2] मनुष्य या किसी भी जीव के अस्तित्व का अन्त उसकी मृत्यु के साथ नहीं होता । अपनी मृत्यु से वह दूसरों के काम में आता है - कार्बन और हाइड्रजन के रूप में, तेल या गैस के रूप में । लाखों वर्षों पहले जो छोटे छोटे जीव धरती में रहते आए थे वे सब वर्षों बाद तेल और गैस के रूप में अपने अस्तित्व का साक्षात्कार करते हैं । जानीबाप्पा या कोई भी व्यक्ति इससे भिन्न नहीं है । जानीबाप्पा ने अपनी मृत्यु से यह साबित किया है कि वह भी एक ऐसी वस्तु थी जिसका प्राण था ।

---

1. "सैलर" - एक चेहरा - पृ: १८.
2. "पूज्यम" - {शून्य} - घर और कैद - आनन्द - पृ: 10.

गणित का शून्य मूल्यहीन होने पर भी अमूल्य है । इसलिए "इन्फिनिटी" की भाँति वह भी एक विसंगति है । कहानी का जानीबाप्पा जीवन में कुछ भी नहीं कमाता, जीवन से कुछ नष्ट भी नहीं करता । वह किसी को कुछ देता नहीं, किसी से कुछ लेता नहीं । अर्थात वह अपना जीवन उसके प्राकृतिक अवस्थाओं में जी रहा है । इस स्थिति में केवल जानीबाप्पा का ही नहीं, हर किसी का जीवन एक विसंगति या शून्यता है । जीवन की रिक्तता के नैरन्तर्य को आनन्द ने इसमें उजागर किया है । जीवन की विरसता से उत्पन्न शून्यता ही इसमें मुख्य है ।[1]

आनन्द की 'वेलो' {बाडा} नामक कहानी में इस रिक्तता को उन्होंने आधुनिक जीवन की उस बाहरी क्रमबद्धता में देखा है जहाँ सब कुछ ठीक-ठाक लग रहा है । बाडा के भीतर कदम रखनेवाले पात्र की उत्कण्ठा के रूप में कहानी विन्यसित है । इस कहानी में शून्यता का बोझ तमाम अन्तर्विरोध का आभास प्रदान करता है । "बाडा" क्रमबद्धता का बाहरी आवरण है जिसका भीतरी भाग एकदम खोखला और शून्य हो चुका है ।

सेतु की कहानी, "मुप्पतु वयस्सुल्ला औराल" {तीस वर्षीय व्यक्ति} मानव जीवन की निरर्थकता और शून्यता की अनुभूतियों का गहरा बोध कराती है । इस कहानी के के.के., जिसका अपना पता नहीं, जात नहीं, नाम भी नहीं, की मृत्यु होती है किसी "लॉज" के कमरे में । अपना कहने केलिए उसका इस संसार में कोई भी नहीं है । उस अनाथ मृतदेह का दाह-संस्कार करने केलिए वहाँ कोई नहीं - पासवाले कमरों में रहनेवाले व्यक्ति , लॉज मालिक, कोई भी नहीं है । हालात ने उन सब को इतना निस्संग बना दिया है कि दूसरों के जीवन या मृत्यु उनकेलिए चिन्ता का

---

1. सृजन और स्वतन्त्रता - वी. राजकृष्णन का लेख - मातृभूमि साप्ताहिक - जनवरी, 1982.

विषय नहीं है । सभी जल्दी ही अपने काम में डूब जाते हैं । इस अवस्था में के.के. की व्यक्ति-सत्ता धीरे धीरे शून्य बन जाती है । "तीस वर्षीय के.के. उस भीड में एक सर्द शरीर बनकर, एक ऐसा व्यक्ति बनकर जिसका कोई नाम या पता नहीं, लेटा है । उसकी मृत्यु तो हुई, तो भी उस अवस्था में अपने चर्म के बन्धन में उसकी व्यक्ति-सत्ता का दम घुट रहा है । आवाज़ किए बगैर वह रो रहा था । मुझे बचाओ, अपने इस शरीर का नाश कर डालो ।"[1]

सेतु का यह पात्र अपने नाम से ही काफ्का के "कैसिल" के "के" का याद दिलाता है । इन दोनों रचनाओं में दुरूहता की अन्धियारी में फेंके हुए एकाकी मनुष्य की विडंबनापूर्ण स्थितियों का चित्रण हुआ है । यह विडंबना शून्यता को उत्पन्न ही नहीं करती, बल्कि उसको गहराती है ।

काक्कनाडन की एक सशक्त कहानी है, "कुमिलकल" ‡बुद्बुद‡ । आकांक्षाओं के बिखरने का दर्द प्रस्तुत कहानी को विषय वस्तु है । कहानी का "वह" लगातार अपने को गहन गह्वर में अनुभव करता है । भले-बुरे का वह निर्णय नहीं कर पा रहा है । उसका जीवन इतना कुत्सित हो गया है कि वह अपने पर दया करना चाहता है । एक वह अपने जीवन का अवलोकन करता है तो कुछ ठोस हासिल नहीं होता । उसे अपने एक प्रोफसर के शब्द याद आते हैं - "अरे, तुम तो इस शताब्दी के प्रतीक हो । हर ढंग से बिखरनेवाले आदमी का प्रतीक हो । युवावस्था में ही बूढा बनना तथा भले-बुरे पर अविश्वास करना तुम जैसों की अपनी विशिष्टता ही है ।"[2] जीवन का यह असंगत पक्ष उसे कहीं पहुँचाता नहीं है । प्रस्तुत कहानी अस्मिता के संकट से अपनी शून्यता और व्यर्थता को व्यक्त कर रही है ।

---

1. "मुप्पतु वयस्सुल्ला ओराल" ‡तीस वर्षीय व्यक्ति‡ - सेतु की कहानियाँ - पृ: 184.
2. "कुमिलकल" ‡बुद्बुद‡ - काक्कनाडन की कहानियाँ - ‡1984‡ - पृ: 81.

मूल्य-विघटित समाज में सब से पहले वह अपने को ढूँढ रहा था। ढूँढते ढूँढते वह मूल्य-विघटन का शिकार बन जाता है। अनिश्चित यौन-सम्बन्धों का जो चित्रण कहानी में मिलता है वह इस ओर ही संकेत कर रहा है। वह सोचता है - "दुनिया से कोई घृणा नहीं। फिर भी धन्यवाद देने योग्य कोई उपकार भी नहीं मिला।"[1] उसे लगता है कि उसके जीवन में दूसरों के समान कुछ नहीं है। कहीं पडे पडे मर जाना है। "क्योंकि मेरेलिए न कोई दुःख है और न कोई आनन्द ...। मेरी मृत्यु जैसी घटना आज या कल या कुछ दिन बाद घटित हो सकती है। उसके बारे में सोचकर समय बरबाद करने की आवश्यकता नहीं। वह अपने ढंग से चलते रहे, जैसे मेनन जी कक्षा में क्लास लेते हैं या जैसे गाडी स्टेशन छोडती है, शीला जैसे चित्र खींच लेती है, वसन्ता जैसे व्यभिचार करती है, जैसे लहरों में हड्डियों के टुकडे आ इकट्ठे होते हैं जैसे दूसरी घटनाएँ घटती हैं, उसी प्रकार वह भी अपना समय हो आने पर घटित होगी।"[2] इस प्रकार जीवन की अर्थहीनता के अनेकानेक प्रतीकों को कहानी में दृश्यबिंबों में परिणत करके शून्यताबोध को उजागर किया गया है।

काक्कनाडन की कहानी, "पुरत्तेक्कुल्ला वषि" (बाहर जाने का रास्ता) अपने व्यापक सन्दर्भ के कारण सार्थक प्रतीत होती है। यह आनन्द की कहानी "बाडा" के समान है। लेकिन आनन्द की कहानी में "वह" बाडा में घुसता है और आशंकित होता है। इसमें वह स्वयं अन्दर है और बाहर जाने का रास्ता खोज रहा है। उसे पता भी नहीं चलता कि वह किसको खोज रहा है।[3] वह यह अनुभव करता है कि इसके अन्दर के सभी इतने बीमार है कि उन्हें अपने बारे में भी कोई जानकारी नहीं है। कहानी का प्रथम पुरुष स्वप्न देखता है कि वह

---

1. "कुमिलकल" (बुद्बुद) - काक्कनाडन की कहानियाँ (1984) - पृ: 33.
2. वही।
3. पुरत्तेक्कुल्ला वषि" (बाहर जाने का रास्ता) - वही संकलन - पृ: 206.

अपनी माँ की कोख में है । कई उसे बाहर जाने का रास्ता दिखाने आते हैं । उनमें एक ऐसा आदमी भी है जिसके हाथ में जपमाला है और कमर पर कमरबन्द है । उनमें कई दार्शनिक भी हैं । अपनी खोज की यात्रा में उसे एक सहयात्री मिलती है - एक स्त्री जिसके शरीर पर मिट्टी की गन्ध है । वह प्रकृति है । किन्तु समय के परिवर्तन के साथ जब वह भी उससे अलग हो जाती, तब वह अपने बन्धन को तोड़कर कमरे से बाहर आता है । बाहर आने पर भी उसके मन में संबन्धों के बन्धन की स्मृतियाँ हैं । उसे मालूम है कि यह मुक्ति शाश्वत नहीं है । इसलिए शाश्वत मुक्ति की तलाश में, बाहर जाने का रास्ता ढूँढते हुए वह चल रहा है । वह नहीं जानता कि उसकी यह यात्रा कब समाप्त होगी । काक्कनाडन का यह पात्र बाहर जाने का, अपनी मुक्ति का रास्ता तलाशता है । सार्त्र की उक्ति है - "बाहर जाने का रास्ता नहीं है" (no exit) । किन्तु इस पात्र के मन में अब भी प्रतीक्षा है । इस कहानी पर विचार करते हुए एम.जी.शशिभूषन ने यों लिखा है - "मनुष्य-जीवन की व्यथा और उससे मुक्त होने के अन्वेषण की दिशाएँ ढूँढनेवाली यह कहानी इस युग की भीषण सन्देहग्रस्तता को ही प्रतिफलित करती है ।"[1] इस कहानी में व्याप्त शून्यता-बोध का संबन्ध युगीन स्थितियों से भी है तथा व्यक्ति सत्ता के बिखराव से भी ।

तुलनात्मक दिशाएँ

मानवीय जीवन की विडंबना से उद्भूत मानसिक अवस्था के रूप में कहानियों के पात्रों के शून्यताबोध को देखा जा सकता है । वस्तुतः यह विसंगतिबोध का ही विकसित चरण है । विसंगत अवस्था में संघर्ष का पक्ष है । उसके समापन के पश्चात् सब कहीं एक खास प्रकार की शून्यता फैली हुई दीखती है । निरन्तर शून्यता से परिचित होनेवाला व्यक्ति उसका एक अंग सा बन जाता है । तब शून्यता उसकी

---

1. काक्कनाडन की कहानियाँ - भूमिका - एम.जी.शशिभूषन - पृ: 24.

नियति हो जाती है । अभिशाप्त जीवन की अनिवार्यता के रूप में शून्यता अनेक आयामों का परिचय दे चलती है । शून्यता का यह एहसास अस्तित्वबोध का एक पहलू है । यहाँ परिवेश प्रमुख होते हुए भी व्यक्ति-सत्ता की प्रमुखता ही प्रकट होती है । व्यक्ति की स्वतन्त्रता, चुनाव जैसे अस्तित्ववादी-पक्ष शून्यता-बोध को प्रकट करनेवाली कहानियों में बार-बार मिलते रहते हैं ।

इस प्रकरण में विवेचित कहानियों में शून्यता की जिस विवृति की चर्चा हुई है उसके अनेक स्तर हैं । उदाहरण स्वरूप निर्मलवर्मा की - "माया-दर्पण", 'सितम्बर की एक शाम' तथा श्रीकान्त वर्मा की "ठंड" आदि कहानियों में प्रकटत: एक पारिवारिक परिदृश्य मिलता है । लेकिन ये कहानियाँ धीरे धीरे अपने इस परिवारिक सन्दर्भ को खो देती हैं और जीवन के दार्शनिक पक्ष को ग्रहण करने लगती हैं । यद्यपि सेतु की "तीस वर्षीय व्यक्ति" और आनन्द की 'शून्य' जैसी रचनाओं में पारिवारिक परिदृश्य उपलब्ध नहीं है, फिर भी इन कहानियों में जिन पात्रों की परिकल्पना हुई है वह प्रकटत: सामान्य है । इन दोनों कहानियों के पात्रों की मृत्यु होती है । मृत्यु के उपरान्त की घटनाओं के आधार पर ये कहानीकार जीवन मात्र में व्याप्त शून्यता का परिचय दे रहे हैं । इसी सन्दर्भ में इन कहानियों की तुलना समीचीन है । अर्थात अन्तत: से कहानियाँ जिस वांछित दिशा को प्रकट कर रही हैं उन्हीं दिशाओं के सन्दर्भ में तुलना संभव है । अगर हिन्दी की उपर्योक्त रचनाओं में संबन्धों की अर्थहीनता को वहन करने की मजबूरी के कारण उत्पन्न शून्यता का एहसास व्यंजित है तो मलयालम की इन कहानियों में मृत्यु की तह तक व्याप्त शून्यता गुंफित है । अत: इन कहानियों में पात्रों की स्थितियाँ अंतरंगहीनता या आनात्मीयता का परिचय दे रही हैं ।

अस्तित्वबोध के इस संकट को कहानीकारों ने कभी कभार व्यापक आयामों तक ले चलने का कार्य भी किया है । औद्योगिकीकरण एवं अन्य आधुनिकी-करणों के फलस्वरूप जिस यान्त्रिक सभ्यता का विकास संभव हुआ है उसमें प्रगति के अंश के होते हुए भी यह अनुभव किया जा सकता है कि मानवीय गरिमा का पतन हो गया है । यह आधुनिक युग की बहुत बड़ी त्रासदी भी है । इस भीषण सामाजिक

अवस्था को विषय के रूप में अपनाते हुए मूल्य-विघटन की कहानियाँ भी लिखी जा सकती हैं। परन्तु इसमें मानवीय सत्ता के नष्ट होने का भाव भी देखा जा सकता है। हमारे जीवन की इस अवांछित स्थिति को अस्तित्वबोध के संकट के साथ जोडकर कहानियाँ लिखनेवाले हिन्दी के निर्मल वर्मा, मलयालम के आनन्द, काक्कनाडन जैसे कहानीकारों ने इसमें दार्शनिक संकट का अनुभव किया है। निर्मल वर्मा की कहानी, "लंदन की एक रात" के विभिन्न पात्रों के आपसी-अलगाव को तथा आनन्द की कहानी, "बाडा" की आशंकित अवस्था की तुलना करें तो आधुनिक जीवन की रिक्तता का स्वर भली भाँति मुखरित हो सकता है। "लंदन की एक रात" में सभी पात्र आपस में परिचित होते हुए भी ऐसे एक बाडे के भीतर रहने केलिए अभिशाप्त तथा आपस में अपरिचित महसूस करने केलिए बाध्य दीखते हैं। आनन्द की "बाडा" शीर्षक कहानी में उसके भीतर फँसे हुए व्यक्ति की आशंकाओं और उत्कंठाओं का अच्छा बिंबीकरण हुआ है। इन कहानियों के केन्द्र में व्यक्ति-सत्ता प्रमुख होते हुए भी एक व्यापक जीवन सन्दर्भ का उसके साथ जोडने का उपक्रम भी देखा जा सकता है।

ऐसी कहानियाँ इस दौर में अधिकाधिक लिखी गयी हैं, जैसे काक्कनाडन की "कुमिलकल", (बुद्बुद), "वेरुते" (यों ही), सेतु की 'कष्कन' (गिद्ध) 'अरड्ङु' (रंगमंच), रामकुमार की 'समुद्र', उषा प्रियंवदा की 'छाया', कृष्णबलदेव वैद की 'उसका घोर दरवाज़ा', 'उसकी बू', मुकुन्दन की 'ञान' (मैं), 'अवर पाडुन्नु' (वे गा रहे हैं) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

कहानी में अस्तित्ववाद के प्रभाव को लेकर वाद-विवाद हो सकते हैं। लेकिन कालान्तर में सीधे प्रभाव से मुक्त होकर अस्तित्ववादी सन्दर्भ को - अस्मिता की खोज में, अस्तित्वबोध के संकट के रूप में, अजनबीपन की मजबूरी के रूप में - जिन कहानीकारों ने अपने परिवेश के अनुकूल अभिव्यक्त करने का कार्य किया है, उनकी मूल्यवत्ता को अस्वीकारा नहीं जा सकता। भारतीय कहानियों के अध्ययन से इस मानवीय स्थिति से परिचय हूबहू मिल सकते हैं। जहाँ तक हिन्दी और मलयालम कहानी का संबन्ध है, इस विशिष्ट भारतीय स्थिति की विभिन्न दिशाएँ बराबर मिलती रहती हैं।

अध्याय : पाँच

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानियों की शैल्पिक प्रवृत्तियाँ

शिल्प और कथ्य

कला में शिल्प का महत्व है । वह कथ्य का अनुगत तत्व है । कथ्य की अनगिनत संभावनाएँ शिल्प में लक्षित होती हैं । कथ्य ही शिल्प में परिणत हो सकता है । रचना प्रक्रिया के अंतरंग क्षण ही शिल्पगत संभावनाओं को अर्थवान बनाते हैं । अत: हम शिल्प को कथ्य से अलग नहीं कर सकते । कथ्य की आन्तरिक अन्वितियाँ शिल्प पक्ष में विवेचन के योग्य बन जाती हैं ।

एर्नस्ट फिशर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ, 'नेसेसिटी ऑफ आर्ट' में लिखा है - "संसार की सारी चीज़ें पदार्थ और रूप का समन्वय है । रूप जितना प्रबल हो जाता है उतना पदार्थ का प्रभाव घट जाता है - उतना ही वह पूर्ण बन जाता है ।"[1] इस पूर्णता में ही कला और साहित्य की उदात्तता है । अत: साहित्य का रूपात्मक या शैल्पिक अध्ययन महत्वपूर्ण और संगत है ।

आज का समूचा साहित्य इस तथ्य को उजागर करता है कि जीवन के बदलते मूल्यों ने भाव या कथ्य को प्रभावित किया है और कथ्यात्मक वैविध्य की अभिव्यक्ति ने रूप या शिल्प को । कथ्यानुरूप शैल्पिक बदलाव ने कहानी के क्षेत्र को अत्यधिक सृजनात्मक और गतिशील बनाया है ।

---

1. "Everything in this world is a compound of form and matter and the more form predominates the less it is encumbered by matter - the greater is the perfection achieved".
   - The Necessity of Art - (1964) - Ernst Fischer - p.116.

हिन्दी में प्रेमचन्द-युग के कहानी-साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि स्वयं प्रेमचन्द और उस युग के अन्य कहानीकार कहानी की शिल्पविधि के प्रति उतने सचेत नहीं रहे हैं । लक्ष्मीनारायण लाल ने सही लिखा है । प्रेमचन्द "कथानक निर्माण में क्रमबद्धता, इतिवृत्तात्मकता तथा संयोग घटनाओं की प्रेरणा, चरित्र-वातावरण में प्राय: यथार्थ और विरोधी तत्वों का समावेश, व्यक्तिगत प्रतिष्ठा में मनोवैज्ञानिकता"[1] आदि के प्रति सचेत हैं । प्रेमचन्दोत्तर युग की कहानी में शिल्प रचना का बदलाव स्पष्ट दिखाई पडता है । इस युग में आकर कहानियाँ सूक्ष्म और संकीर्ण बन गयीं । सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा व्यक्ति के अन्तर्मन की खोज करने के कारण कहानी में संश्लिष्ट चरित्रों एवं मन:स्थितियों का अंकन हुआ है । उदाहरणार्थ जैनेन्द्र और अज्ञेय की कहानियों के शिल्प-विधान को देखा जा सकता है । "अज्ञेय ने अपनी कहानियों में इतने गढे-गढाये, पूर्ण, परिष्कृत शिल्प का उदय दिया कि उन्हीं की कला में जैसे उसकी चरम-सीमा तय हो गयी ।"[2] इन कहानीकारों ने अनेक तरह की शैलियों का प्रयोग किया है – सांकेतिक, प्रतीकात्मक, आत्मकथात्मक आदि । इसप्रकार प्रेमचन्दोत्तर युग में कहानी के शिल्प का रचनात्मक विकास कई स्तरों पर हुआ है । आगे नयी कहानी में कहानीकार की दृष्टि और सृजनात्मक अवबोध के अनुरूप शिल्प में आन्दोलनात्मक परिवर्तन हुआ है । शिल्प की यह नवीनता बदले हुए सन्दर्भों, परिवर्तित मूल्यों एवं प्रतिमानों के फलस्वरूप आविर्भूत हुई है । लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का यह कथन है कि "पुरानी कहानियाँ जहाँ समाप्त होती हैं, वहीं से आज की कहानियाँ प्रारंभ होती हैं"[3] यह नई कहानी के बदले हुए स्वरूप एवं शिल्प की नवीनता को सूचित करता है । नई कहानी के शिल्प को उसकी

---

1. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास §तृतीय संस्करण, 1967§ – लक्ष्मीनारायण लाल – पृ: 158.
2. आधुनिक हिन्दी कहानी – §1962§ – लक्ष्मीनारायण लाल – पृ: 109.
3. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व – §1966§ – लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय – पृ: 124.

दिशा और दृष्टि से अलग करके देखा नहीं जा सकता जैसा कि प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और यशपाल के काल में होता था । नई कहानी का शिल्प उसकी रचना प्रक्रिया का अभिन्न अंग है । क्योंकि "कहानी के शिल्प का विकास लेखक की प्रयोग-बुद्धि पर उतना निर्भर नहीं करता, जितना उसके मैटर की आन्तरिक अपेक्षा पर ।"[1] कृष्ण-बलदेव वैद की दृष्टि में "फार्म" के माध्यम से कान्टेन्ट को पाया जा सकता है । उन्होंने लिखा है - "मैं 'कान्टेन्ट' और 'फार्म' को एक दूसरे से अलग नहीं कर रहा, बल्कि यह संकेत कर रहा हूँ कि 'फार्म' के माध्यम से ही 'कान्टेन्ट' को पाया जा सकता है, पाया जाना चाहिए, कान्टेन्ट के माध्यम से फार्म को नहीं ।"[2] वैद के इस कथन में एक दूसरे की पारस्परिकता का आभास ही नहीं मिल रहा है, अपितु आधुनिक युग में शिल्प-संबन्धी जो नई मान्यताएँ उभरकर आई हैं, उस ओर भी संकेत है । कहानी के विभिन्न तत्वों में विभाजित करके देखने की विश्लेषण-प्रणाली से यह मान्यता कोसों दूर दिखाई पड़ती है । आधुनिक शिल्पक्रम वस्तुतः आधुनिक साहित्यिक दृष्टि का परिचायक है ।

मलयालम के पूर्व-आधुनिक युग की कहानियों में आदि-मध्यान्त-वाला कथानक, विशेष व्यक्तित्व संपन्न चरित्र आदि मिलते हैं । यथार्थवादी युग के तकष़ी, देव, वर्की आदि रचनाकार कहानी के भावपक्ष को महत्व देते थे । साहित्य को जीवन की व्याख्या या आलोचना माननेवाले इन कहानीकारों ने अपने सृजनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति केलिए कहानी को माध्यम बनाया था । इनका शिल्पगत रुझान प्रेमचन्द और समकालीनों के बराबर ही है । कहानी का आन्तरिक विन्यास, जिसके कारण कला की पहचान संभव होती है, उनकेलिए महत्व की बात नहीं है ।

---

1. एक और जिन्दगी "- (1961) - भूमिका - मोहन राकेश - पृ: 16.
2. दूसरे रास्ते पर चलता हुआ गल्प - कृष्णबलदेव वैद से बातचीत - पूर्वग्रह-69 (जुलाई-अगस्त, 1985) - पृ: 49.

यथार्थवादी युग के दूसरे दौर के उरूब, पोट्टेक्काट्टु आदि कहानीकारों ने जीवन-यथार्थ के बाहरी पक्षों की अपेक्षा, आन्तरिक पक्षों पर ध्यान दिया है । इसके फलस्वरूप कथा-विधान में चरित्र के सूक्ष्म संकेतों, घटनाओं को संगुफित करने की प्रवृत्ति शुरू हुई है । साथ ही साथ आदि-मध्यान्त से युक्त कथानक, नाटकीय अन्त आदि मान्यताएँ टूटने लगीं हैं । आधुनिक युग में पद्मनाभन, वासुदेवन नायर आदि की कहानियों में शिल्प-संबन्धी ये पुरानी, परंपरागत मान्यताएँ एकदम टूटती दिखाई पड़ती हैं । उनकी कहानियाँ भावगीतों की भाँति सूक्ष्म एवं अनुभूत्यात्मक हैं । इनमें भाव और रूप पृथक नहीं है । एक ऐसी स्थिति जिसमें रूप को आन्तरिक शिल्प से पृथक करने को कुछ नहीं रहता - यह संवेदना की एक अव्याख्येय और अपूर्व स्थिति है । भाव या संवेदना भाषा की सृजनात्मक प्रक्रियाओं के दौरान स्वयं रूपायित होती है । प्रत्येक अनुभूति अपना रूप स्वयं निर्धारित करती है । कहानी का शिल्प कहानी की अन्तरात्मा में डूबकर एकाकार हो गया है । नयी संवेदना और नये भावबोध के अनुरूप रचना के रूप-पक्ष की अनिवार्यता पर एम. टी. वासुदेवन नायर ज़ोर देते है । "कलाकार को ऐसी शिल्प-विधि का प्रयोग करना है जो स्वानुभूतियों के चित्रण केलिए सब से उत्तम हो । उसको नये कथ्य, नई शैली और नये शब्दों की तलाश करनी है ।"[1] वासुदेवन नायर के इस कथन में कहानी के शिल्प-संबन्धी वैचारिक बदलाव की पर्याप्त सूचना है ।

हिन्दी और मलयालम कहानी के शैल्पिक विकास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आधुनिक जीवन की संकीर्णताओं और जटिलताओं के साथ कदम बढ़ाने में पुरानी कहानी असमर्थ सिद्ध हुई है । नये सन्दर्भों में मूल्य-बोध और सौन्दर्य-बोध में बदलाव आया है । पुराने मूल्य टूट गए हैं, उनके स्थान पर नये मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है । आधुनिक जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति पुराने शिल्प

---

1. कथाकार की कला - (1984) - एम. टी. वासुदेवन नायर - पृ: 33.

में संभव नहीं है । नया भावबोध और नया सौन्दर्य-बोध नए शिल्प की माँग करते हैं । निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी का शिल्प-परिवर्तन वस्तु परिवर्तन की अनिवार्यता है ।

कथानक का ह्रास

आधुनिक हिन्दी-मलयालम कहानी की शिल्पगत विशेषताओं में कथानक का ह्रास कथा-दृष्टि के सन्दर्भ में सब से उल्लेखनीय है । पूर्व-आधुनिक युग में जिस मनोरंजक, नाटकीय और कुतूहलपूर्ण घटना-संघटन को कथानक समझा जाता था वह नए सन्दर्भ में बिलकुल विघटित हो गया है । नए कहानीकारों ने कथानक की परंपरागत धारणाओं को तोड दिया है और उसके स्थान पर एक भाव, एक अनुभूति, संकेत की प्रतिष्ठा की है । जहाँ कथा का कोई स्वीकृत रूपाकार नहीं होता, वह कथानक के ह्रास का सूचक ही है । वर्तमान युग की संकीर्णताओं की अभिव्यक्ति केलिए यह बदलाव अनिवार्य है । क्योंकि आधुनिक तनावग्रस्त जीवन को सुसंगठित या ठोस कथानक में बाँधना आसान कार्य नहीं है । नयी कहानी ने इस तनाव को नई शैल्पिक आकांक्षाओं के साथ स्वीकार किया है । उसमें अनुभूति के धरातल पर व्यक्ति-मन से जुडे हुए परिवेश को साकार कर दिया है । "आज कथानक का विकास जैसी कोई चीज़ नहीं है । जीवन-खंड के रूप में जो कथानक है, आज उसे पेश किया जाता है ।"[1] कहानी में कथानक का ह्रास कहानी से उसका पूर्ण रूपेण गायब हो जाना नहीं, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होना है । नामवर सिंह के शब्दों में, "वास्तविकता यह है कि ह्रास कथानक का नहीं, बल्कि "कथा" का हुआ है और जीवन का एक लघु प्रसंग, प्रसंग-खंड, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति-चरित्र ही कथानक बन गया है, अथवा उन्हें कथानक की क्षमता मान ली गयी है ।"[2] मलयालम के कहानीकारों एवं आलोचकों ने

---

1. समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचर्चा - सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - (1975) - मोहन राकेश - पृ: 69.
2. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ: 14.

इसी से मिलती जुलती मान्यताएँ प्रकट की हैं । इन समानताओं के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि कथानक का ह्रास किसी विधा मात्र पर प्रतिफलित दृष्टि नहीं बल्कि नए युग की साहित्यिक दृष्टि है । मलयालम कहानीकार टी. पद्मनाभन ने लिखा है - "मेरे पूर्ववर्ती कहानीकारों में से अधिकांश अपनी कहानियों में घटनाओं पर ध्यान देते थे । उनमें या तो एक प्रमुख घटना, या प्रमुख घटना से जुड़ी हुई कई छोटी छोटी अन्य घटनाओं से संबन्धित कथाएँ हुआ करती थीं । उनकी कहानियों में "प्लॉट" प्रमुख था । उनके लिए कहानी एक मूर्तवस्तु-एक तरह से एक लघु उपन्यास-थी जिसका आदि, मध्य और अन्त होता था । . . . मलयालम कहानी में जिस तरह से मैं ने कहानियाँ लिखी हैं उसका प्रवर्तन तब तक किसी ने भी नहीं किया था ।"[1] अपनी पीढ़ी की कहानियों के इस "नए ढंग" की रचना-प्रक्रिया पर विचार करते हुए एम. टी. वासुदेवन नायर ने लिखा है - "बिना कथानक के कहानी की रचना संभव है । कहानी तो केवल एक सांकेतिक नाम है । एक अनुभूति, एक भाव, एक लहर, एक मार्मिक चित्र . . . कहानी में इन सब का (या इनमें से किसी एक का) चित्रण होता है । एम. आर. के. सी. की पीढ़ी में (मलयालम कहानी की प्रारंभिक पीढ़ी) कथा तो मुख्य थी । इसके बदले दूसरी पीढ़ी ने (तकषी, देव आदि की) मनुष्य को देखा । . . . पहले पहल कहानी में मनुष्य के पेट की समस्या प्रमुख थी । अब हृदय ही स्वयं बातें करता है ।"[2] नई कहानी में घटनाक्रम के विकास की पुरानी रूढ मान्यता के स्थान पर कालानुक्रम के विरुद्ध घटना सन्दर्भों का विन्यास किया गया है । उसमें काल की विभिन्न स्थितियों का सन्निवेश एक दूसरे के बाद होता है । इसलिए कहानी में परंपरागत आदि - मध्यान्तवाला कथानक का भी अन्त हुआ है । "कहानी के साथ समय का कुछ अजीब-सा सम्बन्ध है । कहानी शायद समय की कला है, समय के साथ कहानी अनेक प्रकार की कलाएँ दिखाती है । कभी वर्षों को समेटकर एक क्षण में बाँध देती है, कभी क्षण को खोलकर वर्षों में फैला देती है, कभी समय के दायरे को

---

1. टी. पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ " (1980) - भूमिका - पद्मनाभन - पृ: 14-15.

2. कथाकार की शिल्पशाला - (1983) - एम. टी. वासुदेवन नायर - पृ: 26-27.

तोडती है तो कभी टुकडों को जोडकर एक दायरा बनाती है ।"[1] मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक, एम.के.सानु ने भी इस विषय पर विचार किया है । "समय की एक बिन्दु से शुरू होकर, परिस्थितियों के दबाव में पडकर, दूसरी बिन्दु की ओर बढनेवाली बाहरी घटनाएँ नई कहानी में नहीं के बराबर हैं । यह आन्तरिक अवबोध जो भूत, वर्तमान और भविष्य के कालक्रम का या तर्कसंगत चिन्तन का अनुसरण नहीं करता । उसको अभिव्यक्ति में आदि-मध्यान्तवाले कथा-शिल्प का होना असंभव है ।"[2] लेकिन नई कहानी में समय एक विशेष भूमिका अदा करता है । कहानी में जो काल है उसमें तीनों कालों का समन्वय होता है । इसी को नई कहानी का त्रिकालत्व कहते हैं । कहानीकार-आलोचक, टी.आर.[3] के शब्दों में, "विभिन्न चित्रों को प्रतिनिधित्व करनेवाले समय के विभिन्न आयामों को कथाकार समय के साथ क्रमानुसार आगे बढनेवाले एककों से समन्वित करते हैं । फिर, गतिशील और प्रगतिशील भाषिक माध्यम से प्राकृतिक दृश्यों से युक्त सभी निश्चल दृश्यों की अभिव्यक्ति होती है । प्रतिपल आगे बढनेवाली, क्रमिक और एकायामी भाषिक माध्यम में वर्तमान और भूत का मिलन होता है । एकायामी काल में विभिन्न कालों का समन्वय होता है और उसके क्रमिक विकास में भूत, वर्तमान और भविष्य का समन्वय होता है । इसप्रकार अभिव्यंजित काल को भी त्रिकालीयता प्राप्त है ।"[4] समय के विभिन्न स्तरों का सन्निवेश अनुभूत-क्षण को व्यापक बनाने का एक ढंग भी है । भाषिक माध्यम में इस कारण से गतिशीलता आती है । काल के केन्द्रीकरण और उसकी विवृति से जीवन का एक व्यापक फलक अवतरित होता है । जो जीवन परिभाषेय स्थिति में नहीं है उसे एकरैखिक ढंग से अभिव्यंजित नहीं किया जा सकता । कथानक के ह्रास को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना समीचीन लगता है ।

---

1. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ: 93-94.
2. अवधारणा - (1984) - एम.के.सानु - पृ: 243.
3. इनका पूरा नाम टी.रामचन्द्रन है । लेकिन टी.आर के नाम से वे विख्यात हैं
4. चित्रकला और कहानी - (1985) - टी.आर. - पृ: 74.

निर्मल वर्मा की कहानी, "परिन्दे" आधुनिक सन्दर्भ में निरन्तर अकेले होते जा रहे व्यक्तियों के अन्तर्मन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति देती है। अन्तर्मन की अनुभूतियों के इस चित्रण में आदि - मध्यान्तवाले कथानक का न होना स्वाभाविक है। लतिका की स्मृतियों से ही कहानी विन्यस्त है।

"एक पगली-सी स्मृति . . . एक उद्भ्रान्त भावना - चैपल के शीशों के परे पहाड़ी सूखी हवा, हवा में झुकी हुई वीपिंग विलोज़ की काँपती टहनियाँ, पैरों तले चीड़ के पत्तों की धीमी-सी चिर-परिचित खड़ . . . खड़ . . . ।"[1]

इस प्रसंग केलिए स्वीकृत दृश्य-बिंब कहानी के पात्र की मानसिकता के अनुकूल है। लेकिन ये ही दृश्यबिंब समय के दो स्तरों का परिचय देते हैं। कहानी में भूत और वर्तमान सम्मिलित हो गया है कि उन दोनों के बीच कोई विभाजक रेखा ही नहीं। "अजनबीपन और अकेलेपन के संकेत जगह-जगह पर बिखरे पड़े हैं, लेकिन ये भीतर से जुड़े हुए हैं। बाह्य परिवेश के चित्रण भीतर के मानसिक चित्रण से घुल मिल जाते हैं। एक ओर घनी नीरवता है तो दूसरी ओर मन की मूकता, एक ओर पियानो की स्वर-लहरियाँ तो दूसरी ओर मन की विचार लहरियाँ आपस में मिल जाती हैं।"[2] मदान द्वारा संकेतित नीरवता और मूकता से जुड़े हुए दृश्य-बिंब कहानी की संवेदना के अभिन्न अंग है।

निर्मलवर्मा की "लन्दन की एक रात" तनाव और आतंक को व्यक्त करनेवाली कहानी है, जिसमें कथानक की पारंपरिक धारणा एकदम खंडित है। लन्दन की जगमगाती रात में अलग अलग देशों के युवकों को भयंकर रिक्तता का एहसास होता है।

---

1. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मलवर्मा - पृ: 36.
2. हिन्दी कहानी : एक नयी दृष्टि - (1978) - इन्द्रनाथ मदान - पृ: 131.

वे बेरोज़गार हैं, बेरोजगारी के कारण उनके जीवन में एक विचित्र-सा नशा आ गया है । उन्हें मालूम है कि वह नशा क्षणिक है, उनके मन में सन्देह, घृणा, आतंक और शून्यता का एहसास है ।

"शायद इससे भयंकर और कोई चीज़ नहीं, जब दो व्यक्ति एक संग होते हुए भी यह अनुभव कर लें कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे को नहीं बचा सकता, जब यह अनुभव कर लें कि बीती घड़ियों की एक भी स्मृति, एक भी क्षण उनके मौजूदा- इस गुज़रते हुए क्षण के निकट अकेलेपन में हाथ नहीं बंटा सकता, साझी नहीं हो सकता ।"[1]

"बाहर एकाएक कोलाहल बढ़ गया है . . . एक क्षण केलिए टेढ़ी-सी उमठन मेरी पीठ पर सरकने लगती है - बर्फ के डले की तरह । इसे मैं पहचानता हूँ । यह डर है . . . बहुत शुरू का डर, अपने में बिलकुल नंगा - बिलकुल नीरव ।"[2]

यह डर, यह आतंक समूची कहानी में व्याप्त है । "इस एक रात में कई विश्रृंखल रातें हैं, जो कथानक की सुश्रृंखल और संघटनात्मक धारणा को मुँह चिढ़ाती हैं । दृष्टि की नवीनता और नये बदले हुए जीवन-सन्दर्भ इसके मूल में हैं ।"[3]

"खोई हुई दिशाएँ" शीर्षक कमलेश्वर की कहानी में ऐसी खोई हुई अनेक दिशाओं के संकेत हैं जो एक दूसरे से संबन्धित होते हुए भी मात्र भटकन के सूचक हैं । कहानी में भटकने के बीच की स्थिति मात्र को उजागर किया गया है । इसी के मध्य में अपने कस्बे की स्मृतियों में वह डूबता है । यहाँ वह स्मृतिमात्र नहीं बल्कि अपने वर्तमान की वास्तविकता की भीषणता की पहचान है ।

---

1. "लन्दन की एक रात" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मलवर्मा - पृ:150-151.
2. वही - पृ: 141.
3. नई कहानी के विविध प्रयोग - §1974§ - पांडेय शशिभूषण "शीतांशु" - पृ:164.

"तमाम सडकें हैं जिधर वह जा सकता है, लेकिन वे सडकें कहीं नहीं पहुँचातीं। उन सडकों के किनारे घर हैं, बस्तियाँ हैं, पर किसी भी घर में वह नहीं जा सकता।"[1]

"और तब उसे अपना वह शहर याद आता है, जहाँ से तीन साल पहले वह चला आया था - गंगा के सुनसान किनारे पर भी अगर कोई अनजान मिल जाता तो नज़रों में पहचान की एक झलक तैर आती है।"[2]

समूची कहानी एक दिन की ऐसी व्यर्थताओं का आकलन है जिसकी ऐसी कोई क्रमबद्धता नहीं है।

कृष्णबलदेव वैद की कहानी "त्रिकोण" मात्र तीन प्रतिक्रियाओं को संकलित करके प्रस्तुत करने का प्रयास है। तीन अलग-अलग पात्रों की, एक अवांछित रिश्ते को लेकर, प्रतिक्रियाएँ हैं। प्रकटतः इस कहानी में कथा का कोई स्वीकृत क्रम नहीं है। उनकी प्रतिक्रियाओं में उनके रिश्तों के बिगडने तथा निरंतर टूटने की पर्याप्त सूचनाएँ भी मिलती हैं। यहाँ कहानी काल के एक क्षण की अपनी अभिव्यक्ति मात्र नहीं है, बल्कि काल के विभिन्न क्षणों की अभिव्यक्ति भी बन गई है।

पद्मनाभन की "मखनसिंगिन्टे मरणम" (मखनसिंह की मृत्यु) एक ऐसी कहानी है जिसमें मानवीय-संकट के एक क्षण का उद्घाटन हुआ है। कहानी में न तो कथानक का कोई क्रमिक विकास है, न घटनाओं का कोई कालक्रम। भूत और वर्तमान, प्रतिशोध और आर्द्रता, अंधेरा और रोशनी - आदि आडी-तिरछी रेखाओं के समान, अपनी अनगढता के साथ विन्यसित है। स्मृतियों, स्वप्नों तथा यथार्थ का सम्मिलन एक ओर मानवीय संकट की भीषणता को दर्शाने में सफल है तो दूसरी ओर प्रमुख पात्र के आर्द्र स्वर को पहचानने में भी सक्षम है।

---

1. 'खोई हुई दिशाएँ'- मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 40.
2. वही।

पद्मनाभन की "साक्षी" शीर्षक कहानी में भी कोई सुगठित कथानक नहीं है । कहानी में उस प्रमुख पात्र के जीवन के छोटे छोटे क्षणों का या एक मार्मिक अनुभव का चित्र महीन रेखाओं से खींचा गया है । वह कुछ भी नहीं करता, प्रत्युत् सब का साक्षी है - परिवर्तित गाँव का, माँ की स्मृतियों का , अपने अजनबीपन का । उसके सामने न भूत है, न भविष्य । दूसरों की भाँति वह उस यान्त्रिक व्यवस्था का एक पुर्जा बनना नहीं चाहता और वह मूल्यहीन स्थितियों में अकेला और अजनबी बन जाता है । कहानी में कथानक का बिखराव उस प्रमुख पात्र की मानसिकता और कहानी की मूल संवेदना के अनुरूप है ।

एम. टी. वासुदेवन नायर की "इरुट्टिन्टे आत्मावु" [अंधेरे की आत्मा] शीर्षक कहानी का वेलायुधन एक पागल युवक है । वह जन्म से पागल नहीं, अपने ही जीवनानुभव, अपनी ही मार्मिक परिस्थितियाँ जिसमें प्रेम और सहानुभूति एक मरीचिका है, उसे पागल बनाते हैं । जंजीरों में उसे जकड़कर रखा गया है । दो बार वह घर से बाहर आता है । कहानी में कथा का अंश यही है । पूरी कहानी उसकी यादों से विन्यसित है । कहानी में वेलायुधन के छः सात वर्षों के जीवनानुभवों को केवल दो-तीन घंटों के अन्तराल में प्रस्तुत किया गया है । सारी घटनाएँ बिना किसी काल-क्रम के उसके मन में एक चलचित्र की भाँति उभर आती हैं । भूत-वर्तमान के क्रम के अभाव में समय यहाँ एक जटिल समस्या बन गया है । "डरते डरते ही वह बाहर आया । बैठक में अच्युतननायर सो रहा है । . . . उस बड़ी हथेली और उन ऊँगलियों को देख उसे घृणा सी हो आई । . . . कल सन्ध्या समय क्या इसी हाथ से . . . ? . . . कल या और कभी ? वेलायुधन ने अपने गले पर हाथ रखकर देखा । अब भी दुःख रहा है ।"[1]

---

1. "इरुट्टिन्टे आत्मावु" [अंधेरे की आत्मा] - एम. टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृः 171.

कहानी में समय को जिस ढंग से विन्यसित किया गया है वह उस प्रमुख पात्र की विक्षुब्ध मानसिक अवस्था का द्योतन ही नहीं कर रहा है बल्कि भूत और वर्तमान का सन्निवेश भी कर रहा है ।

ओ. वी. विजयन की "पारकल" (चिड़ियाएँ) शीर्षक कहानी में भीषण मानवीय-संकट को अनगिनत प्रतीकों, बिम्बों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है । विविध सांकेतिक सन्दर्भों के समुचित विन्यास से यह दर्शाया गया है । वस्तुत: यह एक निर्णय की कहानी है - अगली पीढ़ी को जन्म न देने का निर्णय । कथा का कोई क्रम इसकेलिए अपनाया नहीं गया है । लेकिन पात्रों की परिकल्पना में, प्रतीक व्यवस्था में तथा विशिष्ट भाषिक क्रम में कहानी के स्वरूप को देखा गया है । समय का व्यापक फलक इसमें प्राप्त होता है ।

प्रथम पुरुष पात्र की परिकल्पना

नया कहानीकार व्यक्ति को उसकी समग्रता में, उसके सही परिवेश में देखने और अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है । जीवन के नए सन्दर्भों में व्यक्ति का मानस विविध प्रकार के दबावों, अभावों और दायित्वों को पूरा न कर पाने की विवशता के बोझ से झुका है । यह कथाकार का स्वानुभूत यथार्थ है । इसलिए वह रचना में श्रोता या द्रष्टा के रूप में ब्यौरा देने का पक्षधर नहीं है । पर वह अपने आदर्शों को थोपता भी नहीं है । रचना उसकेलिए एक सक्रिय जागरूकता है । कहानी का प्रथम पुरुष पात्र उसी जागरूकता का परिणाम है । "कहानीकार का आत्मकथ्य, उसका वैयक्तिक इन्वाल्वमेंट कहानी की संरचना में इस कदर प्रवेश कर गया है कि नामधारी पात्रों के स्थान पर "मैं" की प्रामाणिकता सिद्ध की गयी है ।"[1]

---

1. समकालीन कहानी : समान्तर कहानी - (1977)- डा. विनय - पृ: 15.

पुराने कथाकारों ने भी प्रथम पुरुष पात्रों का सृजन किया है। स्टीफन स्पोन्डर वाल्टेयरियन "मैं" और आधुनिक "मैं" की तुलना करते हुए लिखते हैं - "वाल्टयरियन "मैं" का लक्षण है - बुद्धिवाद, प्रगतिशील राजनीति आदि और इस ज़माने का लेखक अपने जगत को प्रभावित करना चाहता है जबकि आधुनिक "मैं" ग्रहणशीलता, पीडन और अकर्मण्यता से संसार को बदल देता है जिसमें वह रहता है।"[1] हिन्दी और मलयालम की प्रारंभकालीन कहानियों में भी "मैं" का प्रयोग यदा-कदा हुआ ही है, लेकिन एक खास सन्दर्भ में। पुराने कहानीकारों ने कहानी के यथार्थ को विश्वसनीय बनाने केलिए ही इस शिल्प-पद्धति का सहारा लिया है। किन्तु ऐसा करने के कारण उनकी कहानियों में इच्छित वातावरण और तज्जन्य संवेदना की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। नये कहानीकार इस शिल्प-पद्धति के प्रयोग से अपने स्वानुभूत तीक्ष्ण यथार्थ की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। "स्वानुभूति का आश्वासन ही है कि आज की कहानी का व्यक्ति और परिवेश इतने आत्मपरक {"सब्जेक्टीव"} और वैयक्तिक {पर्सनल} है कि अक्सर ही व्यक्ति के रूप में लेखक और परिवेश के रूप में उसके अपने आसपास का भ्रम होने लगता है। स्वानुभूति की सीमाएँ उसे व्यक्ति के रूप में "मैं" से और परिवेश के रूप में "मैं" के अपने ही वातावरण से बाँके रखती हैं।"[2] आज की कहानियों का "मैं" और "वह" एक तरह के दुहरे साक्षात्कार की प्रक्रिया का प्रतिफलन है। यह दुहरा साक्षात्कार कहानी की बाहरी दुनिया का निजी दुनिया से और निजी दुनिया का बाहरी दुनिया से है। "आज का समूचा युग एक अन्तर्बाह्य संघर्ष के दौर से गुज़र रहा है। इसकी सच्ची अभिव्यक्ति "मैं" और "वह" माध्यम से ही अधिक संभव है। ये उस निस्संग स्थिति के प्रतीक हैं,

---

1. "The voltarean 'I' has the characteristics - progressive politics etc. of the world the writer attempts to influence, where as the modern 'I' through receptiveness, suffering, passivity, transforms the world to which it is exposed". - The Modern as vision of the whole - Essay by Stephen Spendor - Literary Modernism (1967) - Ed. Irwing Howe - p.44.
2. राजेन्द्र यादव का लेख - कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 102-103.

जहाँ से अन्दर और बाहर की दुनिया का साक्षात्कार भली भाँति किया जा सकता है ।"[1]

हिन्दी में कमलेश्वर, मोहन राकेश, उषा प्रियंवदा, निर्मल वर्मा, मन्नूभंडारी, कृष्ण बलदेव वैद और मलयालम में पद्मनाभन, वासुदेवन नायर, काक्कनाटन, मुकुन्दन, पट्टत्तुविला करुणाकरन आदि ने ऐसी अनेकों कहानियों की रचना की है जो प्रथम पुरुष पात्र के माध्यम से विन्यसित हैं ।

कमलेश्वर की कहानी, "बयान" का पूरा स्वरूप एक बयान के रूप में है । कहानी का "मैं" जो एक फॉटोग्रैफर की पत्नी है अपने पति की आत्महत्या के सिलसिले में अदालत में अपना बयान प्रस्तुत करती है ।

"इससे ज़्यादा मैं क्या बता सकती हूँ । एक आदमी-औरत के बीच में जो कुछ होता है, वह होता है । उसके संबन्धों की बुनियाद सिर्फ उन्हीं में नहीं होती . . . "[2]

मोहन राकेश की कहानी, "मन्दी" का "मैं" किसी अनजान शहर में आकर रहने लगता है । उसके अनुभवों को स्वानुभव के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

"चेयरिंग क्रास पर पहुँचकर मैं ने देखा कि उस वक्त वहाँ मेरे सिवा एक भी आदमी नहीं है । एक बच्चा, जो अपनी आया के साथ वहाँ खेल खेल रहा था, अब उसके पीछे भागता हुआ ठंडी सड़क पर चला गया था । घाटी में एक जली हुई इमारत का ज़ीना इस तरह शून्य की तरफ झांक रहा था जैसे सारे विश्व को आत्महत्या की प्रेरणा और अपने ऊपर आकर कूद जाने का निमन्त्रण दे रहा हो ।"[3]

---

1. आज की कहानी : संरचना दृष्टि - गिरीश रस्तोगी का लेख-हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - (1970) - सं. रामदरश मिश्र और नरेन्द्र मोहन - पृ:237.
2. "बयान" - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 66.
3. "मन्दी" - वारिस (मोहन राकेश की कहानियाँ - 3) - पृ: 75.

मन्नूभंडारी की कहानी, "यही सच है" आधुनिक मध्यवर्गीय नारी के बदलते रूप-रंग का चित्र प्रस्तुत करती है । पूरी कहानी दीपा की ओर से प्रथम पुरुष पात्र के रूप में - कही गयी है जिससे कहानी की संवेदना बढ गयी है । दीपा सोचती है -

"मैं जानती हूँ, संजय का मन निशीथ को लेकर जब-तब सशंकित हो उठता है, पर मैं उसे कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मैं निशीथ से नफरत करती हूँ, उसकी याद-मात्र से मेरा मन घृणा से भर उठता है । . . . फिर अठारह वर्ष की आयु में किया हुआ प्यार भी कोई प्यार होता है भला ! निरा बचपन होता है, महज़ पागलपन ।"[1]

निर्मलवर्मा की "अंधेरे में", 'जलती झाडी', लन्दन की एक रात' जैसी कहानियों का मुख्य पात्र और नरेटर कहानी का 'मैं' है । 'अंधेरे में' नामक कहानी में अपने माता-पिता के साथ रहनेवाले एक बालक की एकाकिकता का रूपांकन हुआ है । उस बालक के अनुभवों को उसके अपने स्वानुभव के रूप में व्यक्त किया गया है जिससे उसमें तीव्रता आ गयी है । माँ का "फोटो" देखने पर वह सोचता है -

"क्या माँ कभी ऐसी थीं' मेरे भीतर कहीं एक गहरा-सा सांस उखड आया । . . . सहसा मुझे आभास हुआ कि इस चेहरे में कुछ ऐसा है, जिसका मुझसे कोई संबन्ध नहीं, बाबु से कोई संबन्ध नहीं ।"[2]

"और तब उस क्षण मुझे लगा कि मैं बहुत अकेला हूँ बाबु भी अपने में बहुत अकेले हैं । माँ के बिना हर कमरा सायं-सायं-सा करता प्रतीत होता है ।"[3]

---

1. "यही सच है" - मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ - पृ: 125.
2. "अंधेरे में" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मलवर्मा - पृ: 71.
2. वही - पृ: 78.

कृष्ण बलदेव वैद की बहुत सारी कहानियों का मुख्य पात्र और "नरेटर" कहानी का 'मैं' है । उनकी 'अपना मकान', 'एक कुतुबमीनार छोटा सा', 'अनात्मालाप' जैसी कहानियों में इसी शिल्प-पद्धति का प्रयोग हुआ है । 'अनात्मालाप' शीर्षक कहानी 'मैं' और 'वह' के सांकेतिक वार्तालापों से भरी हुई है । इस शिल्प-प्रयोग के द्वारा कहानी में एक बूढे आदमी के विसंगतिपूर्ण-जीवन का अंकन हुआ है, जो अपने अतीत की असफलताओं और वर्तमान की निष्क्रियता से पीड़ित है -

"मैं - पचास का हो गया हूँ और कहीं पहुँचा नहीं ।
वह - शिकायत कर रहे हो या शुक्रिया'
मैं - पचास का हो गया हूँ और मेरी आवाज़ शिकायत और
शुक्रिया में भी तमीज़ नहीं कर सकती ।"
वह - शिकायत कर रहे हो या शुक्रिया'
मैं - तुम नहीं बता सकते'
वह - तुम नहीं बताना चाहते '
मैं - पचास का हो गया हूँ और कहीं . . ."[1]

टी. पद्मनाभन की कहानी 'प्रकाशम परत्तुन्ना पेनकुट्टि' (रोशनी बिखेरनेवाली लडकी) का 'मैं' अपने निराशाग्रस्त जीवन से ऊबकर आत्महत्या करने का निश्चय कर लेता है । किन्तु नगर के सिनेमा - थियेटर में जिस खूबसूरत लडकी के साथ उसकी भेंट होती है उसका सामीप्य मृत्युबोध से जीवन की ओर उसे खींच लेता है । पूरी कहानी 'मैं' के अनुभवों के रूप में विन्यसित होने के कारण संवेदना में तीव्रता आ गयी है ।

---

1. "अनात्मालाप" - आलाप (1986) - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 202.

पद्मनाभन की कहानियाँ 'मनुष्य पुत्रन' §मनुष्य-पुत्र§ और 'ओरु कथाकृत्तु कुरिशिल' §सूली पर एक कहानीकार§ कलाकार की एकाकिता और अजनबीपन का चित्रण प्रस्तुत करती हैं । दोनों में पद्मनाभन की आत्माभिव्यक्ति की झलक मिलती है । प्रथम पुरुष पात्र की उपस्थिति ने कहानी-सन्दर्भ को तीव्र बना दिया है । 'ओरु कथा कृत्तु कुरिशिल' नामक कहानी के 'मैं' का नाम स्वयं कथाकार का नाम है । अपने मित्रों और अन्य लोगों के बीच में वह बिलकुल अकेला बन जाता है । सच्चे कलाकार की भाँति वह भी अपने समाज से भ्रष्ट है ।

"मेरी कहानी । उस कहानी के पीछे जो कहानी है वही मैं सुनाना चाहता हूँ । . . . इसलिए मैं ने सोचा - यह कहानी अगर प्रकाशित भी न हुई तो किसी का कुछ नहीं जाता है । मेरी मृत्यु के बाद इसे कोई भी संपादक प्रकाशित कर सकता है - अगले अंक में - पद्मनाभन की एक कहानी जो अभी तक प्रकाशित न हुई है । किन्तु, मित्र ने मजबूर किया- 'नहीं' । यह आपकी सब से महान रचना है । आपकी आत्मा का उज्वल प्रकाशन । जीवन की व्याख्या । लेकिन - यह मेरे मांस की कहानी है ।"[1]

इसमें स्वयं अपने ही आत्मपक्ष को तटस्थ ढंग से प्रस्तुत करके नरेटर शैली - कथा वाचक शैली - को अधिकाधिक सही बनाने का प्रयास भी किया गया है ।

काक्कनाडन की अनेकों कहानियों में मैं प्रमुख पात्र और नरेटर है । 'पतिनेषु' §सत्रह§, 'चितलुकल' §दीमकें§, कुमिलकल §बुदबुद§, 'मस्कीनासिन्टे मरणम' §मस्कीनास की मृत्यु§ जैसी कहानियों में प्रथम पुरुष पात्र विभिन्न रूपों में - बीमार आदमी के रूप में, वेश्या के दलाल के रूप में - दर्शित होते हैं । "पतिनेषु", के "मैं" का यह विचार है कि संसार एक नरक रूपी अस्पताल है और जीवन स्वयं बीमारी है ।

---

1. "ओरु कथाकृत्तु कुरिशिल" §सूली पर एक कहानीकार§ - टी.पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 208.

अस्पताल में सत्रह नामक जिस बीमार आदमी से वह परिचित होता है उसमें वह अपने ही व्यक्तित्व का अंश देखता है । कहानी में इन दोनों पात्रों के नाम नहीं, केवल संख्या है । "मस्क्रीनासिन्टे मरणम" का मस्क्रीनास जो वेश्याओं का दलाल है, एक असाधारण व्यक्तित्ववाला आदमी है । उसकी मृत्यु के बाद कहानी का "मैं" उसका काम करने को तैयार होता है । अपने लिए उसके सामने कोई दूसरा रास्ता दिखाई नहीं पड़ता ।

"मिस्टर मस्क्रीनास,मैं आपके बारे में शोक गीत लिख रहा हूँ । हम दोनों न तो शोक में न गीत में भरोसा रखते हैं । हम हँसी-मजाक में विश्वास रखनेवाले थे । आँसू से नफरत करनेवाले । तो भी आप चले गए । अब उस आदर्श को लेकर जीना मेरा कर्त्तव्य है । हाथ में आपका झंडा लेकर मैं चलता - फिरता हूँ ।"[1]

ओ. वी. विजयन की "इरिड्डोलक्कुडा" मुकुन्दन की "चिरकुकलुल्ला तीवंडि" (पंखोंवाली रेलगाडी), "तोट्टि एन्नाज्ञान" (मैं जो भंगी), सखरिया की 'कण्णडा, वाल एन्निवा' (चश्मा, पूँछ आदि) , 'कटल' (समुद्र) आदि कहानियों में भी प्रथम पुरुष पात्र ही कथावाचक है । विजयन, मुकुन्दन और सखरिया ने आधुनिक मनुष्य की अस्तित्व-संबन्धी समस्याओं और व्यक्ति-जीवन की विडंबनापूर्ण स्थितियों के चित्रण के लिए कहानी में प्रथम पुरुष पात्रों का पर्याप्त उपयोग किया है ।

यह निर्विवाद है कि आधुनिक कहानी का "मैं" प्रामाणिक अनुभवों का भोक्ता और परिवेश से जुडे जीवन्त व्यक्ति का परिचय देता है । यह नवीनता का परिचय शिल्पक्रम मात्र नहीं है । वह शिल्पगत प्रयास से बढकर कहानीकार की अस्मिता और उसकी तलाश से संबन्धित दृष्टि है । परंपरागत विवरणात्मक शिल्प से मुक्त होकर जब आधुनिक कहानी प्रथम पुरुष "मैं" का भरपूर उपयोग करते हुए दिखाई देती है तो वह वस्तुतः शिल्पगत रूढी को तोडकर नए शिल्प-बोध का ही सूत्रपात कर रही थी ।

---

1. "मस्क्रीनासिन्टे मरणम" (मस्क्रीनास की मृत्यु) - काक्कनाडन की कहानियाँ - पृ: 122.

आत्मालाप का आन्तरिक क्रम

आधुनिक कहानीकार केलिए रचना एक सक्रिय जागरूकता है । नामधारी पात्रों की जगह प्रथम पुरुष की परिकल्पना इसी सक्रियता का परिचायक है । आत्मालाप शैली में लिखी हुई कहानियाँ कथाकार की इसी जागरूकता को ही व्यक्त करती हैं । ऐसी कहानियों में प्रायः प्रथम पुरुष पात्र का आत्मालाप मुख्य होता है । आधुनिक कहानी में व्यक्ति के चरित्रोद्घाटन को अधिक संवेदन-शील बनाने केलिए उसकी भीतरी दुनिया से साक्षात्कार करना पड़ता है । इस शिल्प-प्रयोग की कहानियों में आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति पायी जाती है । आत्मविश्लेषण के द्वारा पात्रों के मनोवैज्ञानिक पक्ष व्यक्त करना आधुनिक कहानीकार का लक्ष्य नहीं है । वह परिवेश और उसके साथ के द्वन्द्व को प्रस्तुत करने का एक तरीका है । हिन्दी और मलयालम के प्रायः सभी कहानीकारों की रचनाओं में आत्मालाप के आन्तरिक क्षण को पकड़ने का कार्य देखा जा सकता है । कुछ कहानी-कारों की रचनाओं का समग्र रूप-शिल्प इसी के आधार पर परिकल्पित जान पड़ता है ।

कृष्णबलदेव वैद की कहानी, "उसका हौआ" में और मुकुन्दन की कहानी, "ञान" (मैं) में प्रथम पुरुष पात्र के अजनबीपन और रिक्तता बोध को आत्मालाप शैली में चित्रित किया गया है । "उसका हौआ" के प्रथम पुरुष पात्र की, आतंक से युक्त मानसिक स्थिति को व्यक्त करने केलिए आत्मालाप शैली पूर्णतः सक्षम हुई है ।

"आजकल जब कभी किसी काली सुबह या दूषित दोपहर या शून्यग्रस्त शाम को किसी सुनसान सड़क या परायी पगडंडी पर अकेला और अकारण चल रहा होता हूँ तो अक्सर अचानक इस वहम से विचलित हो जाता हूँ कि कोई मेरा पीछा कर रहा है - पाँव दबाए, साँस रोके, हर कदम के साथ मेरे करीब आता हुआ, हर

क्षण मेरे साथ मिलता हुआ, खामोश और खतरनाक ।"[1]

मुकुन्दन की कहानी, ज्ञान (मैं) के प्रथम पुरुष पात्र के मन में निरर्थकता और रिक्तता का एहसास होता है ।

"आँखें खुल गईं । मैं कहाँ हूँ? हडबडाकर चारों ओर देखा । न तो कुछ दिखायी पडा, न सुनाई पडा । फिर कैसे समझ पाऊँगा कि मैं कहाँ हूँ? . . . मैं धरती पर नहीं । सौरयूथ में नहीं । दूर . . . दूर . . . क्षीरपथ के बाहर एक मृत तारक में, अन्धियारी और सर्दी में मैं लेट रहा हूँ ।"[2]

जब इन कहानियों की ये विभ्रामक स्थितियाँ ही संवेदना का मुख्य अंश है तो वह एक शिल्प-प्रयोग न होकर उसकी आन्तरिक अन्विति है । एकालाप पात्रों की अनिश्चित अवस्था को सूचित ही नहीं कर रहा है, बल्कि कहानी की समग्र दृष्टि को भी व्यक्त कर रही है ।

एकालाप के द्वारा कहानी में "मैं" का ही नहीं, कहानी के दूसरे पात्रों का चरित्रोद्घाटन भी हुआ है । वैद की "खामोशी" शीर्षक कहानी का अंश है -

"मैं कुछ देर केलिए अपनी ओर लौट आता हूँ । इससे कुछ बेचैनी-सी होने लगती है । कुछ सिकुडने का आभास होता है । आस-पास दीवारें-सी खडी होने लगती हैं । मैं अपने दोस्त की ओर देखता हूँ । वह अनुपस्थित है । उसका चेहरा इस समय इतना कोरा-कोरा क्यों नज़र आ रहा है शायद वह बहुत थका हुआ है ।

---

1. "उसका हौआ" - आलाप - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 268.
2. "ज्ञान" (मैं) - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 162.

दिन भर काम करता रहा है । दिन भर उसने मुझसे कोई बात नहीं की । वह एकान्त प्रिय है । मैं भी हूँ । हम हमेशा से आपस में बातें बहुत कम करते हैं, लेकिन इस बार तो उसने कई पत्र लिखकर मुझे बुलाया है ।"[1]

काक्कनाडन की कहानी, "मस्क्रीनासिन्टे मरणम" (मस्क्रीनास की मृत्यु) में आत्मालाप शैली में मस्क्रीनास का चरित्रोद्घाटन हुआ है ।

"अनवारीस ने मस्क्रीनास को मुझसे परिचित कराया है । आपस में परिचित नहीं हो रहे थे । उसके बारे में मुझ से कह दिया । वह महान आदमी है । मुझ जैसा नहीं । यों कहने केलिए मैं योग्य नहीं हूँ कि मैं गोवा का हूँ । वही सचमुच गोवा का हैं । गोवा का ही नहीं, पुर्तगल का है । पुर्तगल का खून । पुर्तगल की आवाज़ । पुर्तगल का तेज ।"[2]

वैद की एक अन्य सशक्त कहानी है "रात" जो आत्मालाप शिल्प-प्रयोग का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है । कहानी के प्रथम पुरुष पात्र के अकेलेपन और संत्रस्त मानसिकता की अभिव्यक्ति केलिए आत्मालाप शैली अत्यधिक सक्षम हुई है ।

"मैं जाने कब तक इसी तरह । नहीं । मैं जाने क्यों कब तक इसी तरह । नहीं । मैं जाने क्यों कब से किसी तरह । नहीं । मैं न जाने क्यों इस तरह कब तक किसी से भी । नहीं । किसी से भी । नहीं । किसी से भी । नहीं । क्यों ने जाने मैं यहाँ कब से । नहीं । . . . मैं न जाने क्यों वहाँ और वहाँ यानी मेरा मतलब न जाने दर असल किसी भी तरीके से मैं वहाँ । नहीं । मैं शायद नहीं ।"[3]

---

1. "खामोशी" - खामोशी (1986) - वैद - पृ: 11.
2. "मस्क्रीनासिन्टे मरणम" (मस्क्रीनास की मृत्यु) - काक्कनाडन की कहानियाँ - पृ: 125.
3. "रात" - आलाप - वैद - पृ: 149.

काफ्कनाडन की कहानी "यूसफ़सरायिचिले चरसुव्यापारी" §यूसफ सरायी का चरस-व्यापारी§ की तुलना वैद की उपर्युक्त कहानी के साथ की जा सकती है । इस कहानी का "मैं" भाँग पीते हुए यूसफसरायी के चरस-व्यापारी की तलाश में निकल जाता है । कहानी के "मैं" की मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति एकालाप शैली में हुई है । –

"मैं मुसाफरखान से कब परिचित हुआ? तब मैं कौन था? प्रोमिथ्यूस? याज्ञवल्क्य? नोहा? या केवल एक मद्रासी बाबु? कॉनाट प्लेस के एक जीर्ण मकान के जीर्ण कमरे में, पुराने फाइलों के बीच बैठकर लेखन -कार्य में लगनेवाला । सौत एकस्टैन्शन के एक अच्छे-खासे मकान में साथियों के साथ रहनेवाला, शराब पीनेवाला, भाँग पीनेवाला मैं – मैं जो दार्शनिक हूँ?"[1]

आत्मालाप शैली में लिखी हुई कहानियों में प्रश्नोत्तरी रीति §डयलैक्टिकल मोड§ का भी प्रयोग हुआ है । कहानी का "मैं" उस अनुपस्थित व्यक्ति से प्रश्न पूछता जाता है । और उसके पूछे या अनपूछे प्रश्न का जवाब भी देता जाता है । निर्मलवर्मा की कहानी, "डेंढ इंच ऊपर" और पद्टत्तुविला की कहानी, 'विग्रहड्ड्ल' §मूर्तियाँ§ में में यह शैली अपनायी गयी है । निर्मल वर्मा की कहानी का "मैं" किसी शराबखाने में वैठकर शराब पी रहा है । वह किसी युवक का संबोधन करते हुए उसके अनपूछे प्रश्नों का जवाब देता है ।

"अगर आप चाहें तो इस मेज़ पर आ सकते हैं । जगह काफी है । आखिर एक आदमी को कितनी जगह चाहिए? नहीं . . . नहीं . . . मुझे कोई तकलीफ नहीं ।"[2]

---

1. "यूसफसरायिचिले चरसव्यापारी" §यूसफसरायी का चरस व्यापारी§ – काफ्कनाडन की कहानियाँ – पृ: 132.
2. "डेंढ इंच ऊपर"- मेरी प्रिय कहानियाँ – निर्मल वर्मा – पृ: 91.

यह आगे कहता है -

"क्या कहा आपने ? जी नहीं, मैं आपको पहले ही कह चुका हूँ, कि घर में मैं अकेला रहता हूँ ।"[1]

पद्‌टत्तुविला की कहानी का पिता (कहानी का "मैं") अपने बेटे से फोन पर बातें करता है । वस्तुतः वह अपने बेटे के प्रश्नों का जवाब देता है । किन्तु कहानी में केवल पिता की प्रतिक्रिया ही है ।

"हेलो, हेलो ... हाँ, मैं ही हूँ, तेरा बाप । तो क्या ? तेरा बाप ? नहीं । सोने का समय नहीं हो गया । क्या चाहते हो ? वह भी है । . . . वह बिस्तर पर है । यह नहीं मालूम कि वह सो गयी है कि नहीं । पुकारूँ ? क्या मुझसे ? पूछो । उसकेलिए किसी "फार्मालिटी" की ज़रूरत नहीं ।"[2]

अमरकान्त ने अपनी "घुड़सवार","गले की जंजीर" जैसी कहानी में इस शिल्प - पद्धति के द्वारा मध्यवर्गीय मानसिकता की कमज़ोरी को प्रस्तुत किया है । "गले की जंजीर" का "मैं" जिसके गले से जंजीर चुरा ली जाती है, वह अपनी कमज़ोर सोच का शिकार है ।

"लगभग दस बज रहे थे और मैं ने अभी तक मुँह में कुछ भी नहीं डाला था । मैं अब तंग आ गया था । और चुपचाप आकर कमरे में बैठ गया । मैं ने मन-ही-मन निश्चय किया कि प्रधान संपादक तथा जनरल मैनेज़र के आने पर उनसे ही सब कुछ कहूँगा । वे शरीफ आदमी हैं, जंजीर का पता लगाने में कुछ उठा नहीं रखेंगे ।"[3]

---

1. "डेढ इंच ऊपर" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - पृ:94.
2. विग्रहड्ड्ल" (मूर्तियाँ) - कथा - पद्‌टत्तुविला - पृ: 140.
3. "गले की जंजीर" - अमरकान्त की कहानियाँ (भाग - 1) पृ: 25

राजेन्द्र यादव की "पुराने नाले पर नया फ्लैट", "अभिमन्यु की आत्महत्या", सखरिया की "जोसफ नल्लबन्टे कुट्टसम्मतम" §शरीफ जोसफ का पछतावा§ जैसी कहानियों में भी इसी शिल्प पद्धति का सफल प्रयोग हुआ है ।

कथानक के ह्रास से लेकर प्रथम पुरुष पात्रों के आत्मालाप के आन्तरिक क्षणों तक की यह रीति आधुनिक युग की कहानियों की अपनी निजता और विशेषता है । इसी संबन्ध में कहानी का माध्यम §मीडियम§-संबन्धी पक्ष प्रमुख हो जाता है । कथाख्यान §स्टॉरी टेलिंग§ की पुरानी रीति से हटकर आधुनिक कहानीकार हमेशा एक नया कोण तलाशता रहता है । वे अपने कोण से ही अनुभूत क्षण को प्रस्तुत करते हैं । अतः कहानी का यह कोण सभी दृष्टियों से प्रमुख है । अनुभूत क्षण का [illegible] अनिवार्य है । कहानी कला का एक माध्यम है । संप्रेषण की समस्या उसकी अपनी है । कथाबाह्य का यह परिवर्तन उसकी आन्तरिक संभावनाओं के अनुकूल है । मलयालम और हिन्दी कहानी उस दिशा में अत्यधिक निकट जान पड़ती हैं ।

सांकेतिकता

सांकेतिकता कहानी की शिल्पविधि का एक ऐसा आन्तरिक तत्व है जिसकी, कहानी की संवेदना के संप्रेषण में महत्वपूर्ण भूमिका है । संकेत "कहानी" के मर्म को एक अपूर्व लाक्षणिकता से व्यंजित करने में सक्षम होता है । यद्यपि वह नए युग की कहानी की उपलब्धि है, तो भी पुरानी कहानी से ही इसकी नियोजना आरंभ हो गई है । पिछली पीढ़ी की अधिकतर कहानियाँ कहानी के "आधारभूत विचार" का केवल अन्त में संकेत करती थीं, बल्कि आधुनिक कहानी का समूचा रूप गठन §स्ट्रक्चर§ और शब्द-गठन §टेक्स्टर§ ही सांकेतिक है । हिन्दी की नई कहानी की चर्चा करते हुए मोहन राकेश ने जो लिखा है, वह मलयालम कहानी के सन्दर्भ में भी संगत है । "यह सांकेतिकता आज की कहानी की या किसी एक भाषा की ही उपलब्धि ही नहीं, कहानी मात्र की एक उपलब्धि है । पुरानी

कहानी से नई कहानी इस अर्थ में अ...ा होती है कि उसमें सांकेतिकता का विस्तार पहले से भिन्न स्तरों पर होता है । . . . कहानी का वास्तविक संकेत कहानी की सहज गठन से स्वत: उभर आता है ।"[1]

हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में प्रेमचन्द की "पूस की रात", "कफ़न", प्रसाद की "पुरस्कार", आकाशदीप" जैसी कहानियों में पहली बार सांकेतिकता की नियोजना हुई है । जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय ने भी यदा-कदा सांकेतिक कहानियाँ लिखी हैं । अज्ञेय की "रोज़" इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है । पर उस युग की अधिकतर कहानियों में सांकेतिकता संघनित (condensed) और सूक्ष्म नहीं है । "व्यतीत कथा में संकेत का उपयोग कथा के प्रसाधन में हुआ करता था, नई कहानी में वह उसकी - संश्लिष्ट परिवेश और व्यस्त-संकुल जीवन के कारण-नितान्त स्वाभाविक और अनिवार्य स्वीकृति है, बल्कि किसी स्तर पर वह संकेत का उपयोग न कर स्वयं संकेत होती है ।"[2] नई कहानी में लेखक जगह-जगह संकेत देता चलता है और ये सभी संकेत एक दूसरे से इतने जुडे रहते हैं कि एक संकेत प्राय: किसी पूर्ववर्ती तथा परवर्ती संकेत की ओर संकेत करता जाता है, इसप्रकार कहानी का आधारभूत विचार द्रवीभूत होकर संपूर्ण कहानी के शरीर में भर उठता है ।[3] श्रीपत राय की राय में कहानी के ये छोटे छोटे संकेत स्थिति को इतना उजागर करते हैं, जितना कि कई बडे बडे झूठी गरिमा से पूर्ण वाक्य कभी न कर पाते ।"[4]

मलयालम कहानी के सन्दर्भ में पोनकुन्नम वर्की, कारूर, बशीर आदि ने बहुत पहले कहानी केलिए सांकेतिकता का सार्थक प्रयोग किया है । वर्की की "शब्दिक्कुन्ना कलप्पा" (हल की आवाज़), कारूर की "पूवनपष्म" (केला) आदि

---

1. मोहन राकेश का लेख - नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रवृत्ति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 92-93.
2. नई कहानी : दशा, दिशा और संभावना - सं. सुरेन्द्र - पृ: 370.
3. नयी कहानी : नये प्रश्न - नामवर सिंह का लेख -"कहानी"- जनवरी, 1954.
4. श्रीपत राय का लेख - "कहानी" - मई, 1958 - पृ: 11.

सांकेतिक अर्थवत्ता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं । "पूवनपष्म" की युवा ब्राह्मण विधवा के मन में पडोस के अप्पु के प्रति जो अस्पष्ट और अव्याख्येय प्रेम-भाव उत्पन्न होता है वह वात्सल्य और यौन-भावना का मिला जुला रूप है । कहानी के कई कथा-सन्दर्भ, उस प्रमुख पात्र के अनेक वक्तव्य आदि इसी को संकेत कर देते हैं । यहाँ तक कि उस ब्राह्मण विधवा का मौन भी कहानी में स्वयं संकेत बन गया है । नई पीढी के कहानीकार अक्सर इसका सहारा लेते हैं । सांकेतिकता को संवेदनात्मक स्थिति को उभारने में सहायक तथ्य के रूप में लेने पर हिन्दी और मलयालम कहानी की सांकेतिक उपलब्धियों के आधार पर इसके कई प्रकार देखे जा सकते हैं । कभी कभी एक शब्द भी एक संकेत बन सकता है तो कभी कभी एक वाक्य या वाक्य की आवृत्ति । यही कभी कभी कहानी में सर्वत्र व्याप्त भी दिखता है । इसके अलग अलग रूप विचार करना आवश्यक है ।

सांकेतिकता - कथाक्रम के समग्र विन्यास में

मोहन राकेश की "एक और जिन्दगी" टूटते बिखरते पति-पत्नी संबन्ध की कहानी है । कहानी में प्रकाश और बीना के संबन्ध का बिखराव इतना तीव्र बन जाता है कि एक साथ जीना भी उन्हें मुश्किल हो जाता है । फिर प्रकाश पुनर्विवाह कर लेता है । लेकिन यह भी असफल सिद्ध होता है । प्रकाश और बीना दोनों अलग जीते हैं । किन्तु बीच में उनका बच्चा पप्पु है । अपने अपने अन्तर्मन में वे एक दूसरे से जुडना तो चाहते हैं, किन्तु अपनी ही मानसिक ग्रंथियों के कारण उन्हें अलग होना पडता है । यह स्वीकार और अस्वीकार का द्वन्द्व उनके जीवन में तनाव की स्थिति उत्पन्न करती है । समूची कहानी में छाया हुआ कुहरा कहानी के समग्र विकास में इस तनाव का संकेत करता है ।

"कोहरे का समुद्र अपनी गंभीरता में खामोश था, मगर उसकी अपनी खामोशी एक ऐसे तूफान की तरह थी जो हवा न मिलने से अपने अंदर ही घुमड़कर रह गया हो ।"[1]

"बच्चे की बड़ी-बड़ी आँखें उसकी तरफ घूम गईं-साथ ही उसकी माँ की आँखें भी । कोहरे में अचानक कई-कई बिजलियाँ कौंध गईं ।"[2]

"कोहरे के बादल कई-कई रूप लेकर हवा में इधर-उधर भटक रहे थे । अपनी गहराई में फैलते और सिमटते हुए वे अपनी थाह नहीं पा रहे थे । बीच में कहीं-कहीं देवदारों की फुनगियाँ एक लकीर की तरह बाहर निकली थीं - कुहरीले आकाश पर लिखी गई एक अनिश्चित-सी लिपि जैसी । देखते-देखते वह लकीर भी गुम हुई जा रही थी - कोहरे का उफान उसे भी रहने देना नहीं चाहता था । लकीर को मिटते देखकर प्रकाश के स्नायुओं में एक तनाव-सा भर रहा था - जैसे किसी भी तरह वह उस लकीर को मिटने से बचा लेना चाहता हो ।"[3]

कुहरा प्रकाश और बीना के मानसिक उलझन और अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट कर देता है । बच्चन सिंह ने सही लिखा है - "एक और जिन्दगी" जो आज के ट्रेजिक तनाव को पूरी गहराई में आँकती है । मनुष्य न तो छूटी हुई जिन्दगी को छोड़ पाता है न चुनी हुई जिन्दगी को अपना सकता है । दोनों ओर खींचा जाकर वह क्षत विक्षत हो जाता है । इसमें तनाव की स्थिति का संकेत नहीं है, बल्कि कहानी के भीतर से ही सांकेतिक हो जाती है जब कि पूर्ववर्ती पीढ़ी के कथाकार स्थिति स्पष्ट करने की ज़्यादा कोशिश करते हैं ।"[4] प्रस्तुत कहानी का बाहरी वातावरण ही सब कुछ संप्रेषित करता प्रतीत होता है ।

---

1. एक और जिन्दगी - वारिस - (मोहन राकेश की कहानियाँ-3)- (1972) पृ: 12.
2. वही - पृ: 13.
3. वही - पृ: 15.
4. बच्चन सिंह का लेख - नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 222.

निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' में भी इसी प्रकार का समग्र संकेत द्योतित हुआ है । कहानी लतिका के अकेलेपन से संबन्धित है । लेकिन इसमें प्रयुक्त बहुत सारे दृश्य बिंब अकेलेपन के उदाहरण हैं -

"लीड काइण्डली लाइट... संगीत के सुर मानो एक ऊंची पहाड़ी पर चढ़कर हांफती हुई सांसों को आकाश की अबाध शून्यता में बिखेरते हुए नीचे उतर रहे हैं । बारिश की मुलायम धूप चैपल के लम्बे चौकोर शीशों पर झलमला रही है, जिसकी एक महीन चमकीली रेखा ईसा मसीह की प्रतिमा पर तिरछी होकर गिर रही है । मोमबत्तियों का धुआं धूप में नीली-सी लकीर खींचता हुआ हवा में तिरने लगा है ।"[1]

"पक्षियों का एक बेड़ा धूमिल आकाश में त्रिकोण बनाता हुआ पहाड़ों के पीछे से उनकी ओर आ रहा था । लतिका और डाक्टर सिर उठाकर इन पक्षियों को देखते रहे । लतिका को याद आया, हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उड़ते हैं, कुछ दिनों के लिए बीच के इस पहाड़ी स्टेशन पर बसेरा करते हैं, प्रतीक्षा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड़ जाएंगे ..."[2]

रामकुमार की कहानी "समुद्र" में विघटन-जन्य अजनबीपन को उजागर करने केलिए कहानीकार सांकेतिक स्थिति की समग्रता के साथ उपयोग किया है । कहानी में शुरू से लेकर आखिर तक कुछ अटपटा-सा लगता है जो वस्तुतः उन पात्रों के अनबन को कलात्मक आयाम देने का तरीका है ।

"कमरे की खिड़की के सामने खड़ी वह बाहर ताकती रही । एक अजनबी शहर में किसी कमरे में अकेला व्यक्ति जो महसूस करता है वही उखड़ापन उसके भीतर भी छाया हुआ था । सामने दूर-दूर तक फैला समुद्र था, नीला और शान्त ।"[3]

---

1. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - पृ: 35.
2. वही - पृ: 45.
3. "समुद्र" - समुद्र §1968§ - रामकुमार - पृ: 107.

माधविक्कुट्टि के "पक्षियुडे गन्धम" (पक्षी की गन्ध) शीर्षक कहानी के उस प्रमुख पात्र के मन में जो मृत्युबोध है उसके सारे स्तर अनेक संकेतों द्वारा उद्घाटित हुए हैं। ये सारे संकेत एक दूसरे से जुडे हुए हैं और सब मिलकर पूरी कहानी में मृत्यु के सर्द स्पर्श का एहसास होता है। समाचार पत्र के विज्ञापन के अनुसार नौकरी की तलाश में वह उस बडी इमारत में आयी है। किन्तु अनेक मंजिलों और कमरोंवाली उस बडी इमारत की सांवली गहराइयों में वह बिलकुल अकेली हो जाती है।

"वह थी सात मंजिली इमारत। दो सौ से अधिक कमरे और बेशुमार विशाल ओसारे। उतरने और चढने केलिए चार लिफ्ट भी थीं। हरेक लिफ्ट के सामने लोगों का जमघट था। मोटे-ताजे व्यापारी और चमडे का बैग उठाये हुए कई नौकर-चाकर थे। मगर एक भी औरत वहाँ नहीं थी।"[1]

उस बडी इमारत की एकान्तता में वह जिस आदमी से मिलती है वह मृत्यु का समूर्त रूप है। यह पात्र स्वयं एक संकेत होने के बावजूद अन्य अनेक संकेतों द्वारा समूची कहानी में मृत्यु का परिवेश छाया हुआ है। उस आदमी का कहना है -

"बहुत पहले मेरे बेड्रूम में सर्दी के मौसम में एक नन्हीं-सी चिडिया आयी। पीला-भूरा रंग, ठीक तेरी साडी का-सा रंग। वह नन्हीं पंखी दरवाज़े को चोंच से काटती रही। काँच को तोडने केलिए पंखों से दे मारा। बहुत तक्लीफ बर्दाश्त की बेचारी ने। आखिर वह बेचारी नीचे फर्श पर गिर पडी। मैं ने उसे अपने चप्पल पहने पैरों से कुचल डाला।"[2]

थोडी देर की खामोशी के बाद वह फिर पूछता है -

---

1. "पक्षी की गन्ध - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 228.
   अनुवाद : पी. कृष्णन - समकालीन भारतीय साहित्य - अक्टूबर-दिसम्बर, 1987 - पृ: 73.

2. वही - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 231-232.
   अनु: समकालीन भारतीय साहित्य - पृ: 75.

"क्या तुम्हें मृत्यु की गन्ध का अहसास हुआ है? ... तुम्हें नहीं मालूम । भला मैं बता दूँगा । पक्षी के पंखों की गन्ध है मृत्यु की ... मैं कई दफा तुम्हारे यहाँ हो आया था । एक दफा जब तुम बीमारी की अवस्था में चारपाई पर पड़ी थीं । उस समय माँ के दरवाज़ा खोलते ही तुमने कहा था, "अम्मी, मैं पीले फूलों को देख रही हूँ । हर कहीं पीले - पीले फूल । क्या तुम्हें इस बात की याद नहीं है? "[1]

जब वह युवति उस आदमी के चंगुल से मुक्त हो जाने का हठ करती है।तब वह पूछता है -

"क्यों झूठ-मूठ बोलती हो तुम? कितनी बार तुमने इधर आना चाहा था? इतने सुखद अंत केलिए तुम्हारा जी नहीं ललचाया था? तुमने मृदु-तरंगों से भरे और ठंडी साँस लेने वाले समंदर के वक्ष में एक सरिता की तरह आलस्य के साथ मिलने की कामना जाहिर नहीं की थी? क्यों दुलारी ... तुम्हें क्या आखिरी दुलार पाने की ललक नहीं है, क्या? "[2]

उसका यह सवाल उस युवति के मृत्युबोध को संकेत कर देता है ।

माधविक्कुट्टि की कहानी, "मञ्ञु" {कुहरा} पति-पत्नी के संबन्ध-विघटन से संबन्धित है । इसमें संबन्ध-विघटन का मूल कारण अनमेल विवाह और तज्जन्य समस्याएँ हैं । कहानी की पत्नी बूढे पति की कामुकता का सहन नहीं कर पा रही है । समूची कहानी में छाया हुआ कुहरा उन दोनों के अलगाव का संकेत कर देता है ।

---

1. पक्षी की गन्ध - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 232-233.
   अनुवाद : पी.कृष्णन - समकालीन भारतीय साहित्य - अक्टूबर-दिसम्बर, 1987 - पृ: 76.

2. वही - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 233.
   अनु: समकालीन भारतीय साहित्य - अक्टूबर-दिसंबर, 1987 - पृ: 76.

"गिटार का संगीत सुनने लगा तो उसे बराम्दे में चलने की इच्छा हुई । किन्तु उठते ही पति ने कहा - "आज बाहर कुहरा है । बराम्दे में खडे रहने से तुम फिर खाँसना शुरू करेगी ।"[1]

यही बात वह दुहराता है ।

"इधर आओ लाली", उसके पति ने कहा, "कुहरे पर खडे रहे तो तुम फिर खाँसना शुरू करेगी ।"[2]

इसी तरह कहानी में सडक से जो संगीत सुनाई पड रहा है वह उस युवति की अतृप्त यौन-अभिलाषाओं का संकेत देता है ।

"मुझे बचा लो ... मैं प्यार के गर्त में गिर रहा हूँ"- उसने गाया ।"[3]

कुहरे की धुंध की समग्र सांकेतिकता का भरपूर प्रयोग प्रस्तुत कहानी में माधविक्कुट्टि ने किया जैसे मोहन राकेश ने "एक और जिन्दगी" में किया है । प्रायः ऐसी कहानियों में समग्र संकेत के अनेक अविभाज्य संकेत भी होते हैं । इनकी समग्रता से कहानी की संवेदना में तीव्रता आती है ।

पद्मनाभन की दुःखम {दुःख} शीर्षक कहानी के उस प्रमुख पात्र के अन्तर्मन का दुःख पूरी कहानी में छाया हुआ है । छुट्टियों के दिनों में वह नगर से घर पहुँचता है । दोपहर के भोजन के बाद कुत्ते को देनेकेलिए एक कौर हाथ में लेकर वह घर के बाहर आता है । तभी उसे पता चलता है कि उस कुत्ते की मृत्यु हो गयी है ।

---

1. "मञ्ञ्" {कुहरा} - सर्दी - माधविक्कुट्टि - पृ: 124.
2. वही - पृ: 126.
3. वही - पृ: 124.

उस फर्श पर कुत्ते की जंजीर और वह छोटा खंभा था जिसपर उसे बाँध दिया करता था। जंजीर मोरचा खायी है। खंभा जीर्ण हो गया है। उन्हें देखने पर उसे ऐसा लगा कि अपने ही जीवन का एक अंश टूटकर नीचे गिर पडा है। उसने पूछा -

"क्या' आगे इस घर में कुत्ते की ज़रूरत है नहीं' माँ ने कहा - कुत्ता ! क्या, बाकी सब ठीक ठाक है' वह स्तब्ध रह गया। उसने माँ की ओर देखा। वह माँ जो उस कुत्ते को अत्यधिक प्यार करती थी। वही माँ जो उसे रोज़ नहलाया करती थी। वही माँ जो उसे ... लेकिन ... अब ' ".[1]

वह कुत्ते की स्थिति में अपने ही अस्तित्व को देखता है। अभाव के दिनों में वे दोनों ही - वह और वह कुत्ता - घर की रखवाली करते थे। उनमें एक की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु घर में दुखदायी घटना नहीं है। यह जीवन की विडम्बना है कि लोग दूसरों को प्रयोजन की दृष्टि से देखते हैं। घरवालों के बीच में अपने को फालतू मानकर वह वापस जाने का निश्चय कर लेता है। प्रस्तुत कहानी में प्रयुक्त अन्य अनेक संकेत प्रमुख पात्र के अवसाद को सूचित करने केलिए सक्षम हैं।

<u>सांकेतिकता का आनुषंगिक प्रयोग</u>

आधुनिक हिन्दी और मलयालम में ऐसी बहुत सारी कहानियाँ हैं जिनमें सांकेतिकता का आनुषंगिक प्रयोग हुआ है। लेकिन ऐसे संकेतों की विशेषता यह है कि वे पूरी कहानी को तीव्रतर बनाने में सक्षम होते हैं। कहानी के अनेक अर्थ-स्तर उन्हीं संकेतों के माध्यम से ढूँढे जा सकते हैं। दोनों भाषाओं की कहानियों में इस प्रकार के अनेक संकेत मिल जाते हैं।

---

1. "दुःखम" (दुःख) - टी. पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 228.

कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" में "राजा निरबंसिया अस्पताल से लौट आए "[1] और "तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा ... न तेल, न ..."[2] जैसे साधारण वाक्य भी संकेत करनेवाले हैं। "वह मनुष्य हुआ, लम्बा-तगडा- तन्दुरुस्त पुरुष हुआ, उसकी शिराओं में कुछ फूट पडने केलिए व्याकुलता से खौल उठा। उसके हाथ शरीर के अनुपात से बहुत बडे, डरावने और भयानक हो गए, उनमें लम्बे - लम्बे नाखून निकल आए ... वह राक्षस हुआ, दैत्य हुआ ... आदिम बर्बर !"[3] - अयथार्थ-से लगनेवाले ये जगपति के मानसिक संघर्ष को व्यक्त कर देते हैं और समूची कहानी-सन्दर्भ को संकेत कर देते हैं। एक ओर "सामने का घना पेड स्तब्ध खडा था, उसकी काली परछाई की परिधि जैसे एक बार फैलकर उन्हें अपने वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर देती "[4] - जैसा वाक्य बच्चनसिंह के व्यक्तित्व और उसकी भूमिका की ओर संकेत करते हैं तो दूसरी ओर "उसे लग रहा था कि अब वह पंगु हो गया है, बिलकुल लंगडा, एक रेंगता कीडा, जिसके न आँख है, न कान, न मन, न इच्छा"[5] - जैसा वाक्य जगपति की स्थिति को तीव्रता के साथ संकेतित कर देता है। कथा-सन्दर्भ के मूल भाव को संकेतित करनेवाले इस तरह के बहुत-से वाक्य कहानी में होते है।

अमरकान्त की 'मौत का नगर' सांप्रदायिक दंगों की पृष्ठभूमि में लिखी हुई कहानी है। लेखक ने कहानी में कई संकेतों द्वारा वातावरण की भयावहता को उभारा है। कुछ संकेत ये हैं -

"वह पतली सडक विधवा की माँग की तरह सूनी थी।"[6]

इस वाक्य में मृत्यु का भय संकेतित है।

---

1. "राजा निरबंसिया" - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 21.
2. वही ।
3. वही ।
4. वही - पृ: 18.
5. वही - पृ: 33.
6. "मौत का नगर" - मौत का नगर - अमरकान्त - पृ: 25.

"उनके शरीर ताजिये की तरह हिल रहे थे ।"[1]

इस वाक्य में लेखक धार्मिक संकीर्णता की ओर संकेत करता है । इसप्रकार के कई संकेत कहानी में दिये गए हैं जो हिंसात्मक वातावरण की अन्दरूनी प्रतिक्रियाओं को उभारते हैं ।

निर्मल वर्मा की "सितम्बर की एक शाम" के युवक की बीमारी को, उसके संत्रास को गहराई में पैठकर उभारा गया है ।

"उसने आँखें उठायीं - सारी दुनिया उसके सामने पड़ी थी और उसकी उम्र सत्ताइस वर्ष की थी ।"[2]

इस एक वाक्य में युवक को अपनी अपूर्णता का बोध स्पष्ट होता है साथ ही उसका विस्तार मृत्युबोध के रूप में और शून्यता बोध के रूप में भी हो जाता है ।

"बाहर बारिश रूक चली थी, और बादलों के पीछे से नये, धुले हुए चमचमाते हुए तारे झांकने लगे थे -"[3] द्वारा उस युवक के मन की निराशा की जलन के कम होने का संकेत मिलता है ।

एम॰ टी॰ वासुदेवन नायर की "वारिक्कुषि" §गड्ढा§ पति-पत्नी के संबन्ध विघटन की कहानी है । शीर्षक और कथा सन्दर्भ, दोनों कहानी की मूल-संवेदना को संकेतित या व्यंजित करने में सक्षम है । कहानी में शंकरनकुट्टि की हालत जंगल के "वारिक्कुषि" में §गड्ढे में§ गिरे हुए हाथी की जैसी है । सपने में वह

---

1. "मौत का नगर" - मौत का नगर - अमरकान्त - पृ: 26.
2. "सितंबर की एक शाम" - परिन्दे - §1970§ - निर्मलवर्मा - पृ: 125.
3. वही - पृ: 131.

"वारिक्कुषि" के हाथी के स्थान पर अपने को और मालिक के रूप में अपनी पत्नी, सुभद्रा को देखता है । "हाथ में हैडलाइट और बन्दूक लेकर जंगल से चलते वक्त गड्ढे में गिर गया । तंग आकर चारों तरफ देखा । ऊपर गड्ढे के चारों ओर लोग नाच रहे हैं । वह वृत्ताकार चेहरा किसका है?"[1] अमीर घराने की सुभद्रा से शादी करने के बाद उसकी जो हालत हुई है वह गड्ढे में गिरे हुए हाथी की से बेहतर नहीं है । वह स्वातन्त्र्य केलिए छटपटा रहा है -

"इधर पहुँचने पर मन ऐसा कहा करता है - स्वातन्त्र्य की तरफ बढ़नेवाला रास्ता । इमारतों के बीच का तंग रास्ता यहाँ से खुले मैदानों से दूर की तरफ बढ़ रहा है ।"[2]

कहानी का यह प्रकरण उस पात्र की मूल मानसिकता का संकेत कर देता है ।

एम० मुकुन्दन की "प्रभातम मुतल प्रभातम वरे" (सुबह से सुबह तक) शीर्षक कहानी का "वह" बिलकुल अपरिचित-सी लगनेवाली जगत में अपनी अस्मिता की तलाश करता है । कहानी के कई वाक्य और प्रकरण उस पात्र की अजनबी और आत्मनिर्वासित अवस्था को व्यंजित करते हैं । कहानी का आरंभ इसप्रकार है -

"उस आदमी को स्टेशन पर उतारकर रेल गाडी उत्तर की तरफ भाग गयी । वह आँखों से ओझल हो गयी , पर उसका धुआँ अब भी वहाँ छाया हुआ है । वह धुआँ अपना रूप बदलकर सारे आसमान पर छा जाने लगा । उसको देखकर वह चकित खड़ा हो गया । वह धुआँ 'ऑक्टोपस' की भाँति अपने हजारों टाँगों से आसमान पर तैरने लगा ।"[3]

---

1. "वारिक्कुषि" (गड्ढा) - एम. टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 429.
2. वही - पृ: 413.
3. "प्रभातम मुतल प्रभातम वरे" (सुबह से सुबह तक) - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 227.

अस्तित्व की दुरूहता के धुए में व्यक्ति कैसे दृष्टिहीन बन जाता है, उपर्योक्त प्रकरण इसका संकेत करता है । हज़ारों टाँगोंवाला "ऑक्टोपस" - यह सूचित करता है कि दुरूहता की पीडा से मनुष्य कभी मुक्त हो नहीं सकता है । "उस "प्लाटफार्म" में वह अकेला खडा हो गया ।" - यह वाक्य उस दुखद सत्य का संकेत करता है कि इस संसार में मनुष्य अकेला है ।

एम. सुकुमारन की कहानी, "मनक्कणक्कु" {गिनती} की रमणि पुरुष की काम- चेष्टा की शिकार है । अपने बहनोई की प्रेमचेष्टाओं से वह तंग आती है । किन्तु उसे उसका सहन करना पडता है ।

"वह भाग गयी । आँखों में अंधेरा छाया है । पैर पत्थर पर लगने से ऊँगली से खून बहने लगा है ... सब कहीं धुआँ है । धुआँ लताओं की भाँति आसमान पर छा जाने लगा । कुछ भी याद नहीं है । खून बहनेवाली ऊँगली को उसने गन्दे पानी में डुबो दिया । पैर दुखने लगा ।"[1]

यह प्रकरण उसके अन्तर्मन की पीडा के मूक-सहन का संकेत है ।

एम. सुकुमारन की "आवरणम" {आवरण} शीर्षक कहानी में एक नौकरानी की दबी हुई अभिलाषाओं की भ्रम-कल्पना के द्वारा उसके जीवन की आशाहीन स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है । उसका जीवन भीख माँगनेवाले उस सुन्दर, लंगडे युवक के ही समान है । तो भी घरवालों के अभाव में वह उस युवक के सामने बडे घर की बेटी सा अभिनय करती है । वह उस युवक के साथ यौन-संबन्ध स्थापित करना भी चाहती है । किन्तु उसके सामने वह युवति अस्वाभाविक हो जाती है । वही उसकी कामवासनाओं की पूर्ति अडयन सिद्ध होती है । कहानी में ऐसा एक बिंब है जो कहानी की संवेदना के संप्रेषण में सहायक हो गया है - यह बिंब कटे हुए एक गुल्मोहर के पेड का है । इस बिंब के द्वारा उस युवति की दबी हुई

---

1. "मनक्कणक्कु" {गिनती} - एम. सुकुमारन की कहानियाँ - पृ: 82.

कामवासनाओं पर संकेत किया गया है । इसी तरह, "काली नदी की भाँति बहनेवाला रास्ता" कहानी का दूसरा बिंब है जो उस युवति की निराशाग्रस्त जीवन का संकेत है ।

अमूर्त बिम्बों के संकेत

सपाट वाक्यों का स्पष्ट दृश्य-बिम्बों के अलावा कभी कभी कहानियों में अमूर्त बिम्बों के संकेत भी प्राप्त होते हैं ।

शेखर जोशी की कहानी, "बदबू" की बदबू उस सामाजिक व्यवस्था की है जिसमें कारखाने के सारे मज़दूर फँसे हुए हैं । कहानी का प्रमुख पात्र कारखाने का एक सामान्य मज़दूर है । पर वह उन हज़ारों मजदूरों में से एक नहीं होना चाहता जो इस बदबू के आदी हो गए हों । वह उनसे अलग अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है । कहानी में बदबू एक अमूर्त बिंब है जो पूरे कहानी सन्दर्भ को संकेतित करता है ।

"दूसरी बार मिट्टी लगाने से पहले उसने हाथों को सूँघा और अनुभव किया कि हाथों की गन्ध मिट चुकी है । सहसा एक विचित्र आतंक से उसका समूचा शरीर सिहर उठा । उसे लगा आज वह भी घासी की तरह इस बदबू का आदी हो गया है । उसने चाहा कि वह एक बार फिर हाथों को सूँघ ले, लेकिन उसका साहस न हुआ मगर फिर बड़ी मुश्किल से वह धीरे धीरे हाथों को नाक तक ले गया और इस बार उसके हर्ष की सीमा न रही । ... पहली बार उसे भ्रम हुआ था । हाथों से कैरोसीन तेल की बदबू अब भी आ रही थी ।"[1]

निर्मलवर्मा की "अंधेरे में" एकाकिता के अन्धेरे में जीनेवाले एक बच्चे की कहानी है ।. कहानी का पूरा परिवेश ही कटा-कटा सा है । एक ओर कहानी का बच्चा, उसके पिता, उसकी माँ और कहानी का तीसरा आदमी है । संबन्ध की गतिहीनता के कारण संप्रेषण और रिश्ता टूटने लगता है, और ऐसा अन्धेरा सब कहीं छा जाता है जिससे मुक्त होना असंभव हो जाता है ।

---

1. "बदबू" - शेखर जोशी - एक दुनिया समानान्तर - सं: राजेन्द्र यादव - पृ:363.

"आज जब कभी मैं माँ की आँखों को देखता हूँ, तो न जाने क्यों मुझे उस रात जंगल के झुरमुट का घना-सा अंधेरा याद आ जाता है ।"[1]

"किन्तु उस दिन मेरे लिए उस पुस्तक का कोई महत्व नहीं था । उसे हाथ में लिए देर तक अंधेरे में खड़ा रहा - अपने घर से ऊपरवाले कमरे की ओर देखता रहा ।"[2]

सेतु की "यात्रा" शीर्षक कहानी का पात्र जीवन की ऊब तथा अस्तित्व के संकट के कारण "कंपनी एक्जिक्यूटिव" की नौकरी से इस्तीफा देकर अपनी दूसरी यात्रा शुरू करता है । वह यात्रा के पूर्व कंपनी के अफ्सरों, अन्य कर्मचारियों, यूनियनों के नेता, अपने बेटे, पत्नी और यहाँ तक कि अपनी पत्नी के पुराने प्रेमी से भी अनुमति माँगता है और सभी से बिदा लेकर वह ऐसे रास्ते से चलने लगता है जिसपर अपने पद चिह्न न पड़े ।

"वह सड़क से चलने लगा । गली हुई कोलटार पर अपने पद-चिह्नों को छोड़े बगैर वह आगे बढ़ा ।"[3]

यात्रा इस कहानी में अमूर्त बिंब है । यात्रा के पहले की विदाई के रूप में कहानी विन्यसित है । लेकिन यात्रा बिंबीकृत हुई है ।

पद्मनाभन की "भय" नामक कहानी में भय के चंगुल में फँसे एक मनुष्य के अन्तर्मन की विह्वलताओं का अंकन हुआ है । कहानी में पात्र, घटनाएँ और प्राकृतिक दृश्य आदि आभिचार तथा तंत्र-मंत्र से संबन्धित सूचनाओं से स्थापित अलौकिक धरातल से मिलकर कहानी की मूल संवेदना को गहराते हैं ।

---

1. "अंधेरे में" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - पृ: 65.
2. वही - पृ: 70.
3. "यात्रा" - सेतु की कहानियाँ - पृ: 153.

"मुझे सन्देह था । किन्तु मेरे किसी भी सवाल का तुमने जवाब नहीं दिया । तुम सिर्फ यही बक रहे थे - मुझे डर लगता है, मुझे डर लगता है ।"[1]

"सर्द छुअन का उसने अनुभव किया और भय के मारे वह कांपने लगा ।"[2]

प्रस्तुत कहानी में भय के अमूर्त बिंब को विकसित करने तथा भय के आसपास के वातावरण को मूर्त करने और उन विह्वलताओं के बीच पात्र की वास्तविकता को पहचानने का कार्य किया गया है ।

माधविक्कुट्टि की कहानी, "तणुप्पु" (सर्दी) की सर्दी कहानी की नायिका की दमित कामवासनाओं की है, अपने बूढे पति के साथ के उसके संबन्ध की है । शरीर और मन की उस सर्दी से मुक्त होने केलिए ही वह कभी कभी इन्द्रजीत के यहाँ जाती है । अपने बूढे पति के प्रति उसके मन में प्रेम की भावना तो है । वह यह भी जानती है कि इन्द्रजीत उसे प्यार नहीं करता । किन्तु वह बार बार उसके यहाँ जाती है, उसका सामीप्य चाहती है । यह बिंब पति-पत्नी संबन्ध को संकेतित करता है ।

रूपात्मक प्रयोग

सांकेतिक विन्यास का रूप जो भी हो, वह कहानी की अंतरंगता का स्पर्श करता है । इस कारण से यत्र-तत्र बिखरे सांकेतिक प्रयोगों के आधार पर, या समग्र संकेतों के आधार पर कहानी की संवेदना को रेखांकित किया जा सकता है । ऐसे संकेत कहानी की रचनात्मक अनिवार्यता के प्रमाण है । लेकिन आधुनिक युग में ऐसे अनेक रूपात्मक प्रयोग भी हुए, जिनका संबन्ध कहानी के बाह्याकार से है । रूप पर किए जाने वाले प्रयोग रूप को एकदम बदलते हैं । इसकेलिए हिन्दी और मलयालम कहानी में अनेक उदाहरण मिल सकते हैं ।

---

1. "भय" - टी. पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 161.
2. वही - पृ: 163.

पात्र-केन्द्रित कहानियाँ

आधुनिक हिन्दी और मलयालम में ऐसी कुछ कहानियाँ हैं जो किसी एक पात्र या चरित्र पर केन्द्रित हैं । ऐसी कहानियों की सारी घटनाओं और सारे कथा सन्दर्भों के केन्द्र में कोई एक पात्र रहता है । स्वानुभूतियों की सफल अभि-व्यक्ति केलिए कथाकार इस शिल्प-प्रयोग का सहारा लेता है । इसलिए अनुभव का एक नया स्वर उनमें मुखरित होता है । कभी कभी कुछ कहानियों के शीर्षक भी उन्हीं पात्रों के नाम हुआ करते हैं । नहीं तो कहानी का पूरा कथा-सन्दर्भ उस प्रमुख पात्र को केन्द्र बनाकर विकसित हुआ है । वी.एस.शर्मा ने यों लिखा है - "कहानी की आत्मा उसके पात्रों के जीवन्त अस्तित्व के कारण है । ... इनके सारे पात्र प्रमुख पात्र को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर भ्रमण करनेवाले उपग्रह है ।"[1]

उषा प्रियंवदा की कहानी "वापसी" के केन्द्र में गजाधर बाबू है -

"यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यही पड़े रहेंगे, अगर कहीं और डाल दी गयी, तो वहाँ चले जायेंगे । यदि बच्चों के जीवन में उनकेलिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेशी की तरह पड़े रहेंगे ...और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले ।"[2]

"किसी बात में हस्तक्षेप न करने के लिए निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका । उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी ।"[3]

---

1. "विश्लेषण" (1972) - वी.एस.शर्मा - पृ: 172.
2. "वापसी" - जिन्दगी और गुलाब के फूल - (1978) - उषा प्रियंवदा - पृ:139.
3. वही - पृ: 140.

शिवप्रसाद सिंह की "दादी माँ" में दादी माँ को स्नेह और त्याग की मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है । अपने पडोसियों के दुःख में वह आत्मीय ढंग से हिस्सा लेती है ।

"स्नेह और ममता की मूर्ति दादी माँ की एक-एक बात आज कैसी - कैसी मालूम होती है ।"[1]

"दिन रात चारपाई के पास बैठी रहतीं, कभी पंखा झलतीं, कभी जलते हुए हाथ-पैर कपडे से सहलातीं, सर पर दालचीनी का लेप करतीं, और बीसों बार सर छू-छूकर ज्वर का अनुमान करतीं ।"[2]

मार्कण्डेय की कहानी, "गुलरा के बाबा" का प्रमुख पात्र बाबा ही है । उसे अपनी शक्ति पर अभिमान था । पहले वह काफी बलिष्ठ था । लेकिन अब वह बूढा हो गया है । युवक पहलवान अहीर चैतू को वह अपना गद्‌ठा मढा करने केलिए ललकारता है । ललकारता ही नहीं वह उसे पराजित भी करता है । किन्तु वह इतना उदारशील है कि आवश्यकता आने पर अपनी बातों को न माननेवाले चैतू की सहायता करने को भी वह हिचकता नहीं । पूरी कहानी बाबा को केन्द्र बनाकर विकसित हुई है ।

"पूरे पचहत्थे जवान, भीट ऐसी छाती और हाथी की सूँड जैसे हाथ, बडी बडी तेज आँखें, लोग हनुमान कहते थे, बाबा को, हनुमान ! मेल-ठेले में अपने पिता गंजन सिंह केलिए रास्ता बनाने का काम बाबा ही करते थे । बडी भीड को पानी की काई की तरह इधर उधर कर देना उन केलिए कोई विशेष बात न थी । बखरी में खाने घुसते समय बिटियों-पतोहुओं को जता देना तो ज़रूरी होता न ! बाबा दलान ही में से खाँसते और सारी बसरियों के कुत्ते मारे डर के भाग कर बाहर हो जाते ।"[3]

---

1. "दादी माँ" - अन्धकूप - शिवप्रसाद सिंह - पृ: 26.
2. वही - पृ: 24.
3. "गुलरा के बाबा" - पान फूल (तृतीय संस्करण) - मार्कण्डेय - पृ: 11.

धर्मवीर भारती की 'गुल्की बन्नो' जीवन की तीखी यातनाओं का मूक सहन करनेवाली कुरूप युवति, गुल्की की कहानी है । उन यातनाओं से वह स्वयं टूट जाती है । उसकी टूटन की गूँज पूरी कहानी में मुखरित है ।

"गुलकी की उम्र ज़्यादा नहीं थी । यही हद से हद पचीस-छब्बीस । पर चेहरे पर झुर्रियाँ आने लगी थीं और कमर के पास से वह इस तरह दोहरी हो गयी थी जैसे अस्सी वर्ष की बुढ़िया हो ।"[1]

मन्नू भंडारी की कहानी , 'अकेली' का केन्द्र पात्र सोमा बुआ है जिसके अकेलेपन की व्यथा कहानी की मूल संवेदना है ।

"जब तक पति रहते उनका मन और भी मुरझाया हुआ रहता, क्योंकि पति के स्नेहहीन व्यवहार का अंकुश उनके रोज़मर्रा के जीवन की अबाध गति से बहती स्वच्छन्द धारा को कुंठित कर देता ।"[2]

अमरकान्त की कहानी, "नौकर" का मुख्य पात्र एक नौकर है और उसी को केन्द्र बनाकर कहानी की रचना हुई है । इस केन्द्र पात्र के माध्यम से कहानी में निम्न मध्यवर्गीय ओछेपन और टुच्ची मनोवृत्ति को रेखांकित किया गया है ।

"तडके ही उठकर जन्तू आंगन और बरामदे में सोनेवाले प्राणियों की बडी-बडी खाटों को भीतर करता । कुछ लोग उठने में लेट लतीफ थे और उनको भिनकती हुई मक्खियों के सहारे छोडकर वह घर को शुरू से आखिर तक झाडने-बहारने में लग जाता ।"[3]

---

1. "गुलकी बन्नो" - धर्मवीर भारती - एक दुनिया समानान्तर - सं. राजेन्द्र यादव - पृ: 153.
2. "अकेली- - मेरी प्रिय कहानियाँ - मन्नु भंडारी - पृ: 11.
3. "नौकर" - अमरकान्त की कहानियाँ - §भाग-एक§ - पृ: 79.

एम.टी.वासुदेवन नायर की कहानी, "कुट्टियेडत्ति" (कुट्टि दीदी) की सारी घटनाएँ और सारे कथा-सन्दर्भ कुट्टियेडत्ति को केन्द्र बनाकर विकसित हैं । घर में उसे चाहनेवाला कोई भी नहीं है । घृणा और निन्दा का पात्र होते हुए भी वह उस सीमित पारिवारिक वातावरण से मुक्त होना चाहती है । उसका छोटा भाई, वासु सोचता है -

"कुट्टिदीदी को चाहनेवाला कोई भी नहीं क्या? दादी माँ उसे गाली देती है । कभी कभार मारती है । माँ भी गाली देती है । जानु दीदी को उससे सख्त घृणा है । शायद इसलिए कि वह काली है । इसलिए कि उसके कान के पास एक मांस-पिंड उग गया है ।"[1]

वासुदेवन नायर की एक अन्य कहानी "ओप्पोल" (बडी बहन) भी एक पात्र-केन्द्रित कहानी है । इसमें कहानी के केन्द्र में अप्पु की बडी बहन है ।

" ओप्पोल रो रही थी । ओप्पोल की रुलाई वह सुनना चाहता ही नहीं है । खिडकी पर माथा टेककर वह रो रही थी । हमेशा यह रुलाई ।"[2]
इन वाक्यों से शुरू होनेवाली कहानी के अन्तिम वाक्य ये हैं -

"अगर ओप्पोल गेन्द और मिठायी लाएँ तो? तब क्या करूँगा? मुझे कहे बिना ओप्पोल कहाँ गयी? ओप्पोल भी अजीब है । ओप्पोल पागल है ।"[3]

अप्पु नामक छोटे लडके के विचारों से ही पूरी कहानी विन्यसित है । वस्तुतः वह उस लडके की बडी बहन नहीं है, बल्कि उसकी माँ है । किन्तु विडम्बना यह है कि वह बात उसे दूसरों से छिपानी भी पडती है । वह स्वयं माँ होने पर भी उसका पुत्र भी उसे माँ कहकर पुकारता नहीं है ।

---

1. "कुट्टियेडत्ति" (कुट्टि दीदी) - एम.टी. की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 145.
2. "ओप्पोल" (बडी बहन) - वही - पृ: 121.
3. वही - पृ: 137.

पद्मनाभन की "मक्खनसिंगिन्टे मरणम" (मक्खनसिंह की मृत्यु) मक्खनसिंह नामक पंजाबी ड्राइवर के जीवन की अन्तिम परीक्षा की कहानी है जिसकी सारी संपत्ति विभाजन से जुड़े हुए सांप्रदायिक दंगों में नष्ट हुई थी । कहानी का प्रमुख पात्र वह स्वयं है और उसके ही अनुभवों और विचारों के रूप में पूरी कहानी विन्यसित है ।

काक्कनाडन की "हरकिशनलाल सूद", "मस्क्रीनासिन्टे मरणम" (मस्क्रीनास की मृत्यु) आदि कहानियाँ भी पात्र-केन्द्रित हैं । "मस्क्रीनास की मृत्यु" का मस्क्रीनास एक असाधारण व्यक्तित्ववाला आदमी है । वह वेश्याओं को समाज का कलंक नहीं मानता । वह उनके ही साथ जीवन बिताता है । कहानी में उसकी उपस्थिति नहीं होती, किन्तु पूरी कहानी में उसके असाधारण व्यक्तित्व और असाधारण कार्य व्यापारों का चित्रण हुआ है ।

सेतु की "जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी", "राजगोपालन नायर, तथा मुक्तिबोध की "क्लाड इथरली" यद्यपि फैन्टसी-शैली में लिखी हुई कहानियाँ हैं, तो भी इन तीनों कहानियों के केन्द्र में यथाक्रम हाजी, राजगोपालननायर और क्लाड इथरली हैं ।

"रहस्यात्मकता, निगूढता और दिव्यता का मूर्त रूप है हाजियार । उस अहाते में हर एक पौधे और पत्ते में भी विशेष प्रकार की रहस्यात्मकता है । जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी उन सारे रहस्यों से बह रहा है ।"[1]

पात्र केन्द्रित कहानियाँ जीवनी का रूप ग्रहण करती हैं । जीवन्त व्यक्ति के रूप में ये पात्र अवतरित किए जाते हैं । अतः छोटी-छोटी बातों को कहानीकार प्रमुखता देकर चित्रित करते हैं और उसे साकार करते हैं । वस्तुतः ये व्यक्ति-पात्र-परिवेशगत वास्तविकताओं के जीवन्त प्रतीक होते हैं ।

---

1. "जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी" - सेतु की कहानियाँ - पृ: 285.

प्रतीकात्मक कहानियाँ

सभी युग के कहानीकारों ने प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी हैं । लेकिन आधुनिक युग में प्रतीकों की प्रचुरता देखने को मिलती है । प्रतीकों के द्वारा कहानी में बिखरे हुए प्रभावों को और बिखरी हुई अनुभूतियों को एक दूसरे से संबद्ध किया जा सकता है । पश्चिम साहित्य में ओ. हेन्री तथा चेखव की कई कहानियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी के कथा-शिल्प में भी इसके नये प्रयोग स्पष्ट परिलक्षित होते हैं । आधुनिक कहानी में यथार्थ के सूक्ष्म स्तरों के उद्घाटन केलिए प्रतीकों को साधन ही मान लिया गया है । वह कथात्मक यथार्थ की आन्तरिक सर्जना में सहायक है । अज्ञेय ने इसी को अनुभूति की गुणात्मकता कही है । "महत्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नहीं होता । वह उससे मिलनेवाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है ।"[1] पुरानी और आधुनिक कहानी की तुलना करते हुए और नई कहानी में प्रतीकों के महत्व पर विचार करते हुए उपेन्द्रनाथ अश्क ने यों लिखा है - "पहले कहानियों में उपमाओं का प्रयोग होता था, जिससे उनकी सरलता और सुगमता द्विगुणित हो जाती थी । अब उनमें स्पष्ट अथवा अस्पष्ट बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग होने लगा, जिससे उनकी जटिलता और संश्लिष्टता बढी । ...उपमाएँ प्राय: बाहर की स्थितियों को समझने में सहायता देती है, बिम्ब और प्रतीक मन की स्थितियों को समझने में सहायक होते हैं । कई बार जिस मानसिक स्थिति को समझने केलिए पैरे और पृष्ठ रंगने की आवश्यकता होती है, वह एक बिम्ब अथवा प्रतीक के माध्यम से समझा दी जाती है ।"[2]

हिन्दी और मलयालम की पुरानी कहानी के प्रतीक मुख्यत: फ्रोयडीय हैं । हिन्दी में अज्ञेय की "हीली बोन की बतखें"और"साँप" तथा मलयालम में उरूब की "चित्तुम मण्णुम" §धान आर मिट्टी§, एम. गोविन्दन की

---

1. "आत्मनेपद" - §1960§ - अज्ञेय - पृ: 256.
2. अश्क का लेख - हिन्दी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - पृ: 51-52.

"सर्पम" [साँप] जैसी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक तत्वों की अभिव्यक्ति में प्रतीकों का सहारा लेती हैं । इन दोनों भाषाओं की नई कहानी में समाजिक जीवन की जटिलताओं एवं व्यक्ति-मन की संकीर्णताओं की अभिव्यक्ति केलिए कई तरह के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है । इन्हीं प्रतीकों के द्वारा कहानीकार आन्तरिक यथार्थ को पूर्ण रूप से उपस्थित कर सकता है, जिसके कारण कहानी अधिक सार्थक बन जाती है । इसके बावजूद कहानी के अन्तर्जगत के "लक्ष्यहीन बहते यथार्थ को लक्ष्य और बहिर्जगत की लक्ष्योन्मुख दौडती वास्तविकता को गहराई मिली है ।"[1]

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी में प्रतीकात्मक शैली के विभिन्न पक्षों का जो उद्घाटन हुआ है उसका विश्लेषण यहाँ संगत प्रतीत होता है ।

कमलेश्वर की कहानी, "कितने पाकिस्तान" भारत-विभाजन की पृष्ठभूमि में लिखी हुई रचना है । विभाजन से जुडे हुए सांप्रदायिक दंगे में बन्नो के बच्चे की मृत्यु होती है । उसे बंबई के किसी होटल में वेश्या के रूप में देखकर उसके पुराने प्रेमी, मंगल के मन में यह प्रश्न उठता है - "अब कौन सा शहर है, जिसे छोडकर मैं भाग जाऊँ? कहाँ-कहाँ भागता हूँ, जहाँ पाकिस्तान न हो ।"[2] ... यहाँ पाकिस्तान निराशा और दुःखद सच्चाई का प्रतीक माना गया है । मंगल का विचार है - "यह पाकिस्तान हमारे बीच बार-बार आ जाता है । यह हमारे या तुम्हारे लिए कोई मुल्क नहीं है, पर दुःखद सच्चाई का नाम है ।"[3] पाकिस्तान शब्द कहानी में बार बार दोहराया गया है । नरेन्द्र मोहन ने उसे बंटवारे के पर्यायवाची शब्द के रूप में स्वीकारा है ।[4] हेमराज निर्मम उसे विभाजन के

---

1. एक दुनिया: समानान्तर [1974] - सं. राजेन्द्र यादव - पृ: 67.
2. "कितने पाकिस्तान" - कमलेश्वर - भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - सं. नरेन्द्र मोहन - पृ: 54.
3. वही - पृ: 34.
4. भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - भूमिका - नरेन्द्र मोहन [सं] - पृ: 7.

फलस्वरूप लोगों के मन में व्याप्त पी.ए.निराशा और दुःख का प्रतीक शब्द मानते हैं । "कितने पाकिस्तान" में कमलेश्वर ने राजनीतिक दृष्टि से बनाए गए स्वतन्त्र देश, पाकिस्तान के निर्माण की प्रक्रिया के फलस्वरूप लोगों के जीवन में बरबस आ जानेवाले दुःखों को ही पाकिस्तान की संज्ञा से अभिहित किया है ।"[1]

अमरकान्त ने 'जिन्दगी और ज़ोक' शीर्षक कहानी में "ज़ोक" के प्रतीकात्मक प्रयोग के द्वारा रजुआ की दयनीय हालत के बीच उसकी जिजीविषा के संबन्ध को उभारा है - "वह मरना न चाहता था, इसलिए ज़ोक की तरह जिन्दगी से चिपटा रहा । लेकिन लगता है जिन्दगी स्वयं ज़ोक सरीखी उससे चिपटी थी और धीरे-धीरे उसके रक्त की अंतिम बूँदें तक पी गई ।"[2]

अमरकान्त की एक अलग प्रतीकात्मक कहानी है "बस्ती" । कहानी की बस्ती भारत की प्रतीक है तथा रामलाल और बांकेलाल हमारे देश के स्वार्थी राजनैतिक नेताओं के प्रतीक हैं । दूसरी ओर आत्मानन्द राजनीतिक उत्पीडन का असली प्रतीक है । रामलाल और बांकेलाल जैसे धोखेबाज और अवसरवादी नेताओं के बीच में पडकर आत्मानन्द जैसे आम आदमी कैसे टूट जाते हैं, कहानी में इसका प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है । बस्ती के बनने तथा अन्त में उजडने में उन्हीं राजनीतिक नेताओं का हाथ है ।

निर्मलवर्मा की कहानी, "परिन्दे" के परिन्दे लतिका, डा.मुकर्जी, ह्यूबर्ट जैसे उन टूटे हुए व्यक्तियों के प्रतीक हैं जो उस पहाडी प्रदेश पर आकर जमे हुए है । "हर साल सर्दी की छुट्टियों से पहले ये परिन्दे मैदानों की ओर उडते हैं, कुछ दिनों केलिए बीच के इस पहाडी स्टेशन पर बसेरा करते हैं बर्फ के दिनों की, जब वे नीचे अजनबी, अनजाने देशों में उड जायेंगे ... क्या ये सब प्रतीक्षा कर रहे हैं'

---

1. हिन्दी कथा-साहित्य में भारत विभाजन - (1987) - हेमराज निर्मम - पृ: 126.
2. 'ज़िन्दगी और ज़ोक'- मौत का नगर - अमरकान्त - पृ: 213.

वह, डाक्टर मुकर्जी, मि. ह्यूबर्ट' लेकिन कहाँ केलिए, हम कहाँ जायेंगे' "[1] यह लतिका का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं, बल्कि इससे उन सब का - लतिका, डाक्टर मुकर्जी और ह्यूबर्ट का - संबन्ध है । परिन्दों के समान वे भी प्रतीक्षा कर रहे हैं - अपने अकेलेपन से मुक्ति की प्रतीक्षा । किन्तु चाहकर भी उन्हें मुक्ति नहीं मिलती । वे सब एकसाथ होते हुए भी अलग अलग रहने केलिए अभिशाप्त है ।

कमलेश्वर की कहानी, "नीली झील" की नीली झील कहानी में एक प्रतीक बन जाती है । कहानी के महेश पांडे की एक भूख है - सौन्दर्य की भूख और इसमें मानवीय ही नहीं, एक मानवेतर व्यापक करुणा का सौन्दर्य है । उसकी एक प्यास है - सौन्दर्य की अतृप्त प्यास , अपना सब कुछ देकर किसी अतीत के क्षणों में वर्तमान का तादात्म्य स्थापित कर रहने का मोह । नीली झील इसकी प्रतीक है । अपनी पत्नी, पारबती की मृत्यु के बाद पांडे उसकी अन्तिम अभिलाषा के अनुसार मन्दिर और धर्मशाला बनवाना चाहता था । उसकेलिए उसने पैसे भी इक्कट्ठे किए थे । किन्तु जब वह शिकारियों को झील की नरम पंखोंवाली चिड़ियों को लटकाए ले जाता देखता, तब उसके मन में अपनी मृत पत्नी की याद आती है । ज़मीन केलिए इक्कट्ठे पैसे से वह नीली झील खरीद लेता है । तब से वह वहाँ शिकार करना मना करता है । "फागुन आते-आते मेहमान पक्षी उड़ गए । सवनहंस चले गए, सफेद सुरखाब अपने पुराने घरों में लौट गए । मुअर, संद, करकरा और सरपच्छी भी चले गए । ... झील बहुत सूनी हो गई थी, पर महेश पांडे को विश्वास था कि ये फिर हमेशा की तरह अपने झुण्डों के साथ कातिक-अगहन तक वापस आएंगे ।"[2] कहानी में न तो वस्तु-सत्य की फिक्र है, न अनुभूति की वास्तविकता, बल्कि एक सौन्दर्यानुभूति है जो सारी कहानी में व्याप्त है । नीली झील इसी सौन्दर्यानुभूति का मूर्त रूप है ।

---

1. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - पृ: 54.
2. "नीली झील" - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 119.

राजेन्द्र यादव की कहानी, "छोटे छोटे ताजमहल" में ताजमहल प्रतीक के रूप में चित्रित किया है । ताजमहल अनश्वर प्रेम का प्रतीक है । राका और देव दम्पतियों के संबन्ध-विघटन का मीरा और विजय पर इतना प्रभाव डालता है कि वे दोनों शादी करने के निश्चय को बदल देते हैं । अपने भविष्य के बारे में अचानक ऐसा एक निर्णय ले लेना भावुकता का ही प्रतीक है । ताजमहल की छाया में ही राका और देव ने अपना सम्बन्ध-विच्छेद किया । ताजमहल को इसका प्रतीक बना दिया है । इसलिए तो विजय को ताजमहल कभी अच्छा नहीं लगता है । मीरा से विदा लेते समय विजय को लगा - "जैसे कोई मुर्दा-क्षण है जिसका एक सिरा मीरा पकडे है और दूसरा वह, और उसे चुपचाप दोनों रात के सन्नाटे में कहीं दफनाने लिए जा रहे हों... डरते हों कि किसी की निगाहें न पड जाएं ...कोई जान न ले कि वे हत्यारे हैं ...कहीं किसी झाडी के पीछे इस लाश को फेंक देंगे और खुशबूदार रूमालों से कसकर खून पोंछते हुए चले जायेंगे ... भीड में खो जायेंगे..।"[1] स्वयं मीरा और विजय छोटे छोटे ताजमहल हैं ।

एम. सुकुमारन की "भरणकूटम" (सत्ता) में प्रतीकों की प्रचुरता है । किन्तु मुख्य रूप से उसमें दो प्रतीक हैं - बन्दूक और बांसुरी । इनमें बन्दूक अधिकार का प्रतीक है तो बांसुरी स्वातन्त्र्य और शान्ति का । कहानी में गाँव का मुखिया लोगों को "घास और पानी का उपयोग करने की अनुमति"[2] देने के द्वारा उनपर अपना अधिकार स्थापित कर लेता है । फिर वह गाँव की पूजारी को न्यायाधीश बनाता है । सत्ता का धर्म के साथ जो अनैतिक संबन्ध है उसी को यह कार्रवाई सूचित करती है । किन्तु अपने ग्यारह बन्दूकों में से एक के नष्ट होने पर सत्ता (शासक-वर्ग) घबडाता है । कहानी का गोकुलन जनता का प्रतिनिधि है । वह अपनी बांसुरी मुखिये के बेटे, शशांकन को देकर उससे बन्दूक खरीद लेता है । इसके

---

1. "छोटे छोटे ताजमहल" - मेरी प्रिय कहानियाँ - राजेन्द्र यादव - पृ: 53.
2. "भरणकूटम" (सत्ता) - सुकुमारन की कहानियाँ - पृ: 198.

द्वारा वह अपनी शान्ति और स्वातंत्र्य के बदले अधिकार ही प्रतीकात्मक ढंग से हासिल कर लेता है। किन्तु वह 'अधिकार' जब जनता के हाथों में आ जाता है, तब वह भी अपना मौलिक-स्वभाव छोड़कर 'स्वातन्त्र्य' बन जाता है। कहानी के अन्त में शशांकन अपने सारे बन्दूक जनता को दे देता है और बाँसुरी के संगीत में लीन हो जाता है। कहानी का शशांकन शोषक शासक वर्ग का प्रतिनिधि नहीं है। वह स्वातन्त्र्य का महत्व समझता है और सच्चा अधिकार {या स्वातन्त्र्य} जनता को दे देता है। कहानी के बारे में विचार करते हुए कवि- आलोचक, सच्चिदानन्दन ने लिखा है - कहानी के शशांकन और गोकुलन, दोनों एक ही आत्मा के दो पहलू हैं। दूसरे शब्दों में शशांकन गोकुलन का "डबिल" है। क्रान्ति के क्षण में बन्दूक {अधिकार} और बाँसुरी {स्वातन्त्र्य} परस्पर विरुद्ध नहीं, परस्पर पूरक है। जब कभी बन्दूक जनता के खिलाफ सत्ता का औजार बन जाता है, तभी बाँसुरी भी उसके खिलाफ हो जाती है।"[1]

ओ. वी. विजयन की "पारकल" {शिलाएँ} युद्ध की विभीषिका से संबन्धित कहानी है। आणविक युद्ध की दूरव्यापी विकरालता की ओर कहानी में इशारा किया गया है। कहानी में शिलाएँ स्वच्छ प्रकृति की प्रतीक हैं। पहले प्रकृति और मनुष्य के बीच आपसी रिश्ता वर्तमान था। किन्तु उस स्वच्छ प्रकृति का स्वयं मनुष्य ने ध्वंस किया। कहानी के एक प्रसंग में शिला का कथन है - "जब तुमने अपने हाथ में हथियार लिया तब हमारा हृदय व्रणित भी हुआ था।"[2] प्रकृति को जीत लेने जो प्रयत्न मनुष्य ने किया उसके फलस्वरूप प्रकृति और मनुष्य के विरुद्ध भीषण युद्ध होने लगा और उसका परिणाम यह हुआ कि मनुष्य के वंश का नाश धीरे धीरे होने लगा है।

---

1. सुकुमारन की कहानियाँ - भूमिका - सच्चिदानन्दन - पृ: 33.
2. "पारकल" {शिलाएँ} - विजयन - नवीन कथा - सं. एम. एम. बशीर - पृ: 196.

आनन्द की कहानी 'वेली' {बाडा} आधुनिक समाज में व्याप्त अमानवीय स्थितियों की प्रतीक है। उसके भीतर कदम रखते ही कहानी का प्रमुख पात्र आशंकित होता है। वह देखता है कि उसकी घडी भी गायब है। क्योंकि उस अजीब संसार में - बाडे के भीतर - एक अजीब समय-व्यवस्था ही कायम है। कहानी के समग्र रूप में व्याप्त यह प्रतीक अमानवीकरण का है, हमारे समय का है।

माधविक्कुट्टि की "पट्टंगल" {पतंग} शीर्षक कहानी में पतंग अस्तित्व का प्रतीक है। स्वीकार और अस्वीकार का द्वन्द्व ही इस कहानी के पात्रों की नियति है। उनका अस्तित्व पतंग के समान है। स्मृतियाँ ही उनकेलिए सब कुछ हैं। स्मृतियों के धागे से ही उनका अस्तित्व रूपी पतंग जीवन की मिट्टी से जुडा हुआ है। नायिका का विचार है - "धीरे धीरे लुप्त हो जानेवाले गीत के समान एक दुपहर को मैं समाप्त हो जाऊँगी। यह मौत मामूली है। आप कुछ खोनेवाले नहीं। लेकिन, मैं' पतंग के पीछे पीछे उडनेवाले धागे के समान तेरी स्मृतियाँ मेरा पीछा नहीं करेंगी। इन सब को खोना पडेगा।"[1]

एम. मुकुन्दन की कहानी "तत्तकल" {तोते} का प्रमुख पात्र अपने सुनहले पिंजरे के तोते की मृत्यु पर बेहद दुःखी होता है। प्रायश्चित्त के रूप में वह उस इलाके के सारे के सारे तोतों को खरीदकर उन्हें पिंजडों से मुक्त करता है। "उसने तोतों को गिन लिया। एक सौ से ज़्यादा थे। ... जब तोतों का मालिक विस्मय से विस्फारित आँखों से देख रहा था, तो उन्होंने पिंजडों को एकाएक खोल दिया और सभी तोतों को उडा दिया।"[2] स्वतन्त्रता की इस अभिलाषा को प्रतीकात्मक ढंग से इसमें चित्रित किया गया है। किन्तु कहानी के अन्त में उस आदमी की मृत्यु होती है जिसने सारे तोतों को बन्धन-मुक्त कराया है। "स्वतन्त्रता

---

1. "पट्टंगल" {पतंग} - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 142.
2. "तत्तकल" {तोते} - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 131-132.
   अनु: प्रो. बालकृष्णन नायर - समकालीन भारतीय साहित्य अक्तूबर-दिसंबर, 1987 - पृ: 72.

एक अभिशाप है' – वाली उक्ति यहाँ सार्थक बन जाती है। पर विडंबना यह है कि मनुष्य उस "अभिशाप" का वरण करता है। कहानी में इस दार्शनिक समस्या का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है।

माधविक्कुट्टि की 'नरिच्चीरुकल' – ऊसर भूमि – कहानी के प्रमुख पात्रों की मानसिक अवस्था की प्रतीक है। यह कहानी के स्त्री और पुरुष की अतृप्त कामनाओं की प्रतीक है। वे दोनों सिर्फ प्रेम करना जानते हैं। किन्तु उन दोनों केलिए प्रेम भी एक बन्धन बन जाता है। उनका प्रेम ऊसर भूमि के समान है। कलरकोडु वासुदेवन नायर ने लिखा है "स्त्रीत्व के भावात्मक और आध्यात्मिक संकट को ऊसर भूमि के प्रतीक में व्यंजित किया गया है। भग्न प्रेम, अकेलापन, आत्मनिन्दा – और इस तरह के अनेक दुःख "[1] वे इस कहानी का ही नहीं, माधविक्कुट्टि के कथा संसार का केन्द्र भाव भी मानते हैं।

इन कहानियों की प्रतीक-व्यवस्था के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि दोनों भाषाओं के कहानीकारों ने सामाजिक एवं वैयक्तिक परिदृश्य से संबन्धित कहानियों केलिए विषयानुकूल प्रतीक अपनाए हैं।

समान्तर कहानी का शिल्प

समान्तर कहानी का शिल्प-प्रयोग आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी के सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी को संश्लेष शिल्प-पद्धति भी कहते हैं।[2] इस शिल्प-प्रयोग की कहानी में समानान्तर रूप से विकसित होनेवाली दो कथाओं का विन्यास है। इन दोनों कहानियों में से एक प्रायःकोई

---

1. ऊसर भूमि की कहानियाँ – (1974) – कलरकोडु वासुदेवन नायर – पृ: 71.
2. नयी कहानी के विविध प्रयोग – पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु" – पृ: 153.

पौराणिक ऐतिहासिक या लोक कथा होती है और दूसरी आधुनिक जीवन संबन्धी । इन दोनों कथाओं का संश्लेषण किया जाता है । यह संश्लेष न तो दोनों कथा-सन्दर्भों की समता मात्र से संभव है, न पात्रों की समता से । इसकेलिए समान शिल्प पद्धति की भी अनिवार्यता है । हिन्दी में शिवप्रसाद सिंह की "बरगद का पेड", कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" तथा मलयालम में पद्मनाभन की "सहृदयनाया ओरु पेरुप्पक्कारन्टे जीवितत्तिल निन्नु" (एक संवेदनशील युवक के जीवन से), पद्टत्तुविला की "अल्लोपनिषद्" जैसी कहानियों में इस शिल्प-पद्धति का प्रयोग हुआ है ।

शिवप्रसाद सिंह की "बरगद का पेड" की मुख्य कथा शीला और विनय की प्रेम-कहानी है । इसके साथ ही साथ कहानी में एक पुरानी कहानी भी चलती है । "देवीगढ में रामसिंह शकरवार का राज था । राजा के तीन बेटे थे । बडा बेटा वीरेन्द्र बडा सुन्दरथा ।"[1] कहानी के अन्त में, "राजकुमारी ने राज-कुमार को देखकर कहा - ओ, पापशंकी, तू ने मुझ पर सन्देहकिया । मेरे शाप से गढ मिट्टी में मिल जायेगा और आज से इस टूटे हुए गढ की छाँह में कभी भी दो प्रेमी हृदय मिलकर नहीं रह सकेंगे ।"[2] कहानी के "मैं" की संवेदना को राजकुमार और राजकुमारी की कहानी तीव्रता प्रदान करती है । शीला और विनय की प्रेम कहानी को ग्रामीण मिथक के सन्दर्भ में देखा गया है ।

कमलेश्वर की "राजा निरबंसिया" में एक लोक कथा की पृष्ठभूमि में आधुनिक निम्न मध्यवर्गीय परिवार की कहानी कही गयी है । कहानी में निरबंसिया राजा, उसकी रानी तथा उसके मंत्री की कहानी के समानान्तर जगपति, चन्दा और कम्पाउंडर की कहानी चलती है । दोनों कहानियों का आरंभ एक-सा होता है किन्तु अन्त अलग - अलग है । यह अन्तर दो युगों का, युगीन संवेदनाओं का है । रानी की तपस्या, राजा को रानी के सतीत्व को सबूत मिल जाना

---

1. "बरगद का पेड" - अन्धकूप - शिवप्रसाद सिंह - पृ: 28.
2. वही - पृ: 34.

और फिर उसके चरण पकड़कर उसे देवी कहकर उन लड़कों को अपने पुत्र मान लेना मध्ययुगीन संवेदना का परिचायक है । दूसरी ओर चन्दा का दूसरे के घर बैठ जाना, जगपति का अफीम-तेल पीकर मर जाना समकालीन संवेदना को व्यंजित करता है । "राजा ने दो बातें कीं, एक तो रानी के नाम से उन्होंने बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया और दूसरे राजा के नये सिक्कों पर बड़े राजकुमार का नाम खुदवाकर चालू किया, जिससे राज-भर में अगले उत्तराधिकारी की खबर हो जाए ।"[1] जगपति के सन्दर्भ में भी दो बातों का परामर्श किया गया है - "जगपति ने मरते वक्त दो परचे छोड़े, एक चन्दा के नाम, दूसरा कानून के नाम ।"[2] कहानी की यह लोक-कथा मुख्य कथा को और भी मार्मिकता प्रदान करने में सहायक हो गयी है ।

पद्मनाभन की "सहृदयनाया ओरु चेरुप्पक्कारन्टे जीवितत्तिल निन्नु" (एक संवेदनशील युवक के जीवन से) कहानी में मुख्य रूप से एक युवक के जीवन की एक मार्मिक घटना का अंकन हुआ है । वह मार्टिन तोमसन के जिस उपन्यास का अध्ययन करता है उसके नायक, लूक की कथा इस कहानी की पृष्ठभूमि के रूप में आती है । लूक में वह युवक अपना ही प्रतिरूप देखता है । एक दिन वह एक राजनीतिक नेता का भाषण अनुवाद करने को बाध्य होता है । किन्तु उसके अनात्मीय वक्तव्यों के अनुवाद करने में वह बिलकुल असमर्थ हो जाता है । उसके अनात्मीय शब्द और उस युवक के अन्तर्मन की मूक भाषा का द्वन्द्व कहानी में मुखरित है । छल और कपट से युक्त स्थितियों में वह बिलकुल आतंकित हो जाता है । मार्टिन तोमसन के उपन्यास का नायक, लूक जो अमरीका के एक छोटे शहर के एक साधारण व्यापारी का पुत्र है, कठिन और विपरीत परिस्थितियों का सामना करते हुए डाक्टर बनने का प्रयास करता है । मेडिकल कालेज में पढ़ते समय अपनी रोजी-रोटी केलिए उसे लाइब्ररी में झाड़दार का काम करना पड़ता है । कहानी के प्रमुख पात्र का लूक के साथ तादात्म्य प्राप्त करना कहानी की दुहरी स्थिति का एहसास भर नहीं है बल्कि उस अवस्था को गहराने केलिए भी है ।

---

1. राजा निरबंसिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 38.
2. वही ।

पट्टत्तुविला की "अल्गोपनिषद्" नामक कहानी के भी दो धरातल हैं । कहानी का पुरुष पात्र अक्टूबर क्रान्ति का इतिहास पढ रहा है । उसके और उसकी साली के बीच जो वार्तालाप चल रहा है उसमें केरल की सामाजिक क्रान्ति की वर्तमान स्थिति का जिक्र किया गया है । अक्टूबर क्रान्ति में लेनिन की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में वह पढता है । उसके बाद सीधे केरल की सामाजिक क्रान्ति में साम्यवादी दल और विशेषकर ई. एम. एस. नम्बूतिरिपाडु की भूमिका पर व्यंगय किया गया है । एक सच्ची घटना को ऐतिहासिक घटना के साथ मिलाकर दिखाया गया है ।

कहानियों के रचनाशिल्प की यह समान्तरता संवेदना को गहराने में सहायक है । समान्तरता प्राय: विश्लेषणात्मक रुख अपनाती है । इस कारण से कहानी में एक दूसरे को काटने, अलग होने फिर जुडने की प्रवृत्ति दिखाई देती है ।

फैंटसी

फैंटसी अपने आप जटिल है और जब इसे एक रचनाशिल्प के रूप में अपनाया जाता है तो कहानीकार केलिए यथार्थ और अयथार्थ के समन्वय करने का अवसर मिलता है । इस शिल्प-प्रयोग का मूल-रूप ऐन्द्रजालिक या जादूई दुनिया के कथा शिल्प से मिलता जुलता है । क्योंकि वह एक ऐसी दुनिया की कहानी है जिसमें इस दुनिया के कायदे-कानून लागू नहीं होते । दूसरे शब्दों में उसके कायदे अलग हैं । नामवर सिंह ने लिखा है - "ये कहानियाँ एक ख्वाब से जगाती हैं और दूसरे ख्वाब में आँखें खोल देती हैं, बल्कि यह एक ऐसा ख्वाब है जिससे जगाने के बाद हर चीज़ ख्वाब मालूम होती है । एक तरह का पागलपन है यह । दुनिया को बदलने केलिए लेखक अपनी कहानी की दुनिया बदल देता है , दुनिया के नियमों को तोडने केलिए लेखक अपनी दुनिया को दूसरे नियमों से बनाता है ।"[1] इसमें अनेकों

---

1. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृ: 93.

प्रतीकों, मिथकों एवं बिंबों का एक मिला-जुला संसार सृजित किया जाता है। मुक्तिबोध केलिए फैंटसी "अयथार्थ से छलांग नहीं, अनुभव की कन्या है।"[1] पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु" के शब्दों में, "स्वैर-कल्पना का शिल्प संवेदना से अधिक जुडा है। यह संवेदना ही मानवीय वास्तविकता को अस्तित्ववादी अन्तर्विरोधों में देखती हुई कहानी को नया बनाती है।"[2] कलाकार अपनी व्यावहारिक दुनिया के भीतर निहित उस वास्तविक दुनिया का चित्र प्रस्तुत करता है तो हम उसे अपरिचय-वश फैंटसी कहते हैं।

आधुनिक हिन्दी और मलयालम की ऐसी कुछ कहानियों की विवेचना इस सन्दर्भ में उचित प्रतीत होता है जिनमें फैंटसी शिल्प का सार्थक और सफल प्रयोग हुआ है।

मुक्तिबोध की "ब्रह्मराक्षस का शिष्य" शीर्षक कहानी में आधुनिक समाज के बुद्धिजीवी या कलाकार के अन्तर्मन का द्वन्द्व व्यक्त हुआ है। कहानी में जब शिष्य गुरु के साथ भोजन कर रहा था, तब गुरु ने अपना हाथ इतना बढा दिया कि वह कमरा पार जाता हुआ, अगले कमरे में प्रवेश कर क्षण के भीतर घी की लुटिया लेकर शिष्य की खिचडी में घी उंडेलने लगा। यह दृश्य देखकर शिष्य स्तब्ध रह जाता है, तब गुरु कहता है - "शिष्य, स्पष्ट कह दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ, किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव-जीवन में मैं न विश्व की समस्त ज्ञान दे पाता। इसलिए मेरी आत्मा इस संसार में अटकी रह गयी और मैं ब्रह्मराक्षस के रूप में विराजमान रहा। ... मैं ने अज्ञान से तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। ज्ञान का लाया हुआ उत्तरदायित्व मैं ने पूरा किया। अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुमपर आ गया। जब तक मेरा दिया तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नहीं।"[3] आधुनिक ईमानदार बुद्धि जीवी के मन में यह द्वन्द्व उठता है, करोडों

---

1. एक साहित्यिक डयरी - (1964) - मुक्तिबोध - पृ: 20.
2. नयी कहानी के विविध प्रयोग - (प्रथम संस्करण - 1974) - पाण्डेय शशि-भूषण "शीतांशु" - पृ: 174.
3. 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' - काठ का सपना - (1967) - मुक्तिबोध - पृ:63-64.

भुख-मरा, शोषण और व्यापक नर-संहारों के रहते आखिर लेखक क्या कर सकता है? या उसकी भूमिका क्या है? कलाकार या लेखक सब कुछ सोच-समझ सकता है किन्तु इस भ्रष्ट संसार में सामाजिक विसंगतियों का प्रतिरोध कर परिवर्तन कैसे उत्पन्न कर सकता है? यही उसका अभिशाप है। कहानी का ब्रह्मराक्षस एक कलाकार या बुद्धिजीवी है जिसे सिर्फ अभिव्यक्ति ही मुक्त कर सकती है। इस कहानी में फैंटसी का उपयोग इसी अर्थ-उद्घाटन केलिए किया गया है।[1]

मुक्तिबोध की एक अन्य फन्तासिक कहानी है "क्लाड ईथरली"। कहानी का "मैं" भारत के किसी पागलखाने में उस अमरीकी विमानचालक, क्लाड ईथरली से मिलता है जिसने हिरोशिमा में बम डाला था। कठिन आत्मपीडा और आन्तरिक संघर्ष के ही कारण वह पागल बन गया है। उस अमेरीकी विमान चालक को भारत में देखकर वह अपने साथी से पूछता है - "तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है? हम अमरीका में ही रह रहे हैं।"[2] उस मित्र का उत्तर यह है - "भारत के हर बडे नगर में एक एक अमरीका है ... तो मतलब यह है कि अगर उनकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका संकट हमारा संकट है - जैसा-कि सिद्ध है - ज़रा पढो अखबार, करो बातचीत अंग्रेज़ीदां फर्राटबाज लोगों से - तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमा पर बम गिरानेवाला विमानचालक क्यों नहीं हो सकता और यहाँ भी साम्राज्यवादी युद्धवादी क्यों नहीं हो सकता? मुख्तसर किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमरीका ही है।"[3] इस फैन्टसी के द्वारा मुक्तिबोध ने भारत की उपनिवेशवादी संस्कृति और साम्राज्यवादी दृष्टि के प्रभाव की ओर संकेत किया है। यही नहीं, ईथरली का स्वर आणविक युद्धों का विरोध करनेवाला स्वर है। इसी को भी कहानीकार ने इस फान्टसी के द्वारा सूचित किया है।

---

1. आज की कहानी - {1983} - विजयमोहन सिंह - पृ: 31.
2. "क्लाड ईथरली" - काठ का सपना - मुक्तिबोध - पृ: 9.
3. वही - पृ: 10-11.

निर्मलवर्मा की "जलती झाडी" नामक कहानी फैंटसी शिल्प के द्वारा आधुनिक जीवन की दुरूहता को बहुआयामी सन्दर्भों में व्यक्त करती है । हर रोज़ किसी की तलाश में निश्चित जगह आकर बैठनेवाला बूढा निराश होकर लौट जाता है । रोज़ाना उसी जगह पर बूढे की निराश मुद्रा को देखनेवाले दो लडके, उसी झाडी में संभोग में रत युवा प्रेमी, और कहानी का "मैं", एक ही जिन्दगी के अलग अलग पहलू हैं । ये लोग कहीं भी जिन्दगी से चिपके रहने का आनन्द नहीं ले सकते । कोई किसी के प्रति जवाबदेह नहीं है । इस संत्रास से किसी का छुटकारा नहीं हो सकता । इसी को फैंटसी के द्वारा कहानी में प्रस्तुत किया गया है ।

श्रीकान्तवर्मा की कहानी, "सोचनेवाला जानवर" का शुकूर जो पेशे से एक घोडेवाला है सपने में अपने को एक घोडे के रूप में और अपने बेटे को घोडेवाले के रूप में पाता है । कभी कभी उसकी पीठ पर चाबुक की मार पडती रहती है । भारी बोझ के कारण चलना दूभर हो जाता है और जब वह एक जगह गिर पडता है तब उसकी आँखें खुलती हैं । यह देखने पर वह स्तब्ध रह जाता है कि उसकी पीठ सचमुच छिली हुई है । तब भी उसकी पीठ पर दुखती है । यह दर्द चाबूक की मार की नहीं, अभावग्रस्त जीवन की है । कर्ज के रुपये से उसने घोडा खरीद लिया था । किस्त चुकाने में वह असमर्थ हो गया है । आर्थिक अभाव को यहाँ एक फैंटसी के माध्यम से व्यक्त किया गया है ।

मलयालम कहानी में सेतु, मुकुन्दन, काक्कनाडन आदि ने फैंटसी शिल्प की अनेकों कहानियों की रचना की है । इन्होंने आधुनिक विडंबनापूर्ण और विसंगतिपूर्ण जीवन-स्थितियों के अंकन केलिए इस शिल्प-प्रयोग का सहारा लिया है ।

जीवन में कितने ही ऐसे सन्दर्भ होते हैं जिनका विश्लेषण तर्क के आधार पर किया नहीं जा सकता । जीवन की इस तर्कहीनता, रहस्यात्मकता, दुरूहता और विसंगति को सेतु ने फैंटसी-शिल्प के द्वारा प्रस्तुत किया है । उनकी

"मून्नु कुट्टिकल" ﴾तीन बच्चे﴿ शीर्षक कहानी में इस शिल्प का प्रयोग हुआ है। कहानी का नन्दन नामक लडका जो किसी बडे वृक्ष पर चढकर फल तोड रहा था, धीरे धीरे दृष्टि से ओझल हो जाता है। थोडे ही क्षणों में फलों का गिरना भी रुक जाता है और अन्त में उसका कपडा भी नीचे गिर जाता है। तब तक नन्दन पूर्णतः गायब हो गया था। कहानी का अन्तिम वाक्य है - "पुराने ज़माने में नन्दन नामक एक लडका था।"[1] जीवन की सीमित दायरों का उल्लंघन कर, जो कुछ अज्ञेय, निगूढ और अप्राप्य है उन्हें हासिल करने केलिए जो तैयार होता है उसको अपने उस साहस-कर्म का मूल्य चुकाना पडता है। यह एक विडंबना है कि जो परम सत्य की तलाश करता है, उसका फल भले ही लोगों को मिले या न मिले, उस अन्वेषण की प्रक्रिया में उसे आत्मोत्सर्ग करना ही पडता है। नन्दन को भी अपने अनवेषण का मूल्य चुकाना पडता है।

सेतु की "जनाब कुञ्ञिमूसा हाजी" शीर्षक कहानी एक फैंटसी है। उससे मिलनेके लिए जानेवाला व्यक्ति अन्त में ही ऐसा अनुभव करता है कि कोई हाजी नहीं। बस वह एक वहम है। कहानी के तमाम संकेत फैंटसी के अनुरूप है।

मुकुन्दन की कहानी "कुलिमुरी" ﴾गुसलखाना﴿ के मुख्य पात्र के मन में अपनी प्रेमिका का नंगा शरीर देखने की इच्छा होती है और उसकेलिए वह मक्खी बनना चाहता है जिससे कि उसके स्नान करते समय गुसलखाने में छिप बैठकर उसका नंगा शरीर देख सके। अपनी प्रार्थना के अनुसार वह मक्खी तो बन जाता है। किन्तु जब वह गुसलखाने में छिपकर बैठते हुए प्रेमिका को देख रहा था तब एक छिपकली आकर उसे निगल लेता है। इस फैंटसी के द्वारा कहानीकार ने जीवन की दुरूहता, अज्ञेयता और अस्तित्व के संकट को रेखांकित किया है।

---

1. "मून्नु कुट्टिकल" ﴾तीन बच्चे﴿ - सेतु की कहानियाँ - पृः 363.

सेतु की एक औरचर्चित फैन्टसी - रचना है, "चेकुत्तान कोट्टयिले रहस्यम" ‡दुर्ग का रहस्य‡ । कहानी में एक भूत अपने अनेकों नौकरों के साथ दुर्ग में रहता है । वहाँ रहकर भी उनमें से कोई भी उस दुर्ग का रहस्य समझ नहीं पाता । एक नौकर जो रहस्य जानने को जाता है । वह रहस्य समझ पाता है । किन्तु वह बाहर नहीं आया । उसने देखा - सागर की हँसी, जंगल का रास्ता - ये सब स्वातन्त्र्य के मुग्ध चित्र हैं । यह ज्ञान एक अनुभूति है । जिसे स्वातन्त्र्य का एहसास होता है वह बन्धन के बदले मृत्यु को भी स्वीकारने केलिए तैयार होता है । या तो स्वातन्त्र्य की अनुभूति की ओर, या मृत्यु की खाई की ओर । अपनी प्रेमिका के पूछने पर भी वह भूत उसे दुर्ग का रहस्य बता नहीं देता । तब वह उसे छोडकर स्वतन्त्रता की तलाश में चली जाती है, किन्तु अन्त में वह फिर उसी दुर्ग में वापस आती है । जिस स्वातन्त्र्य का साक्षात्कार उसने किया वह स्वातन्त्र्य का असली रूप नहीं, बल्कि नकली रूप है ।

दोनों भाषाओं की इन फैंटसियों में कथा की एक पुरानी शैली अपनाई गई है । प्राचीन कहानियों में, जिनमें अधिकतर तंत्र-मंत्र, जादू-टोना आदि का उपयोग होता था, ऐसी ही फैंटसियों का सृजन होता था । लेकिन उनमें जो कथा चलती थी वह कोई धार्मिक आदर्श को प्रकट करनेकेलिए होती थी । आधुनिक कहानियों में भी, जो फैंटसी हैं, कथा की उस प्राचीन शैली को अपनाकर आधुनिक जीवन के विविध रूप को प्रस्तुत किया है ।

कहानी और भाषिक संरचना

भाषा वह माध्यम है जिसके सहारे मनुष्य अपनी पहचान करा लेता है । "सब से पहले भाषा अपने को पहचानने का साधन है । भाषा के बिना अस्मिता की पहचान नहीं होती और भाषा उसके साथ अनिवार्य रूप से जुडी हुई है ।"[1]

---

1. स्रोत और सेतु - अज्ञेय - ‡प्रथम संस्करण‡ - पृ: 80-81.

संवेदना के सही संप्रेषण केलिए सही भाषा एक अनिवार्यता है। इसलिए हर लेखक भाषा की खोज करता है। मोहन राकेश के शब्दों में, "हर अनुभूति का अपना एक आंतरिक शिल्प होता है, जिसकी खोज कलाकार को करनी होती है - उसी तरह यह भी कहा जा सकता है कि हर अनुभूति और संवेदना की अपनी अलग भाषा है, जिसकी कलाकार या साहित्यकार खोज करता है।"[1] राकेश के उपर्योक्त वक्तव्य से कमलेश्वर भी सहमत है। उन्होंने लिखा है - "सही अर्थ को कह सकने केलिए सही भाषा एक अनिवार्यता है। इसलिए हर लेखक भाषा को खोज करता है।"[2] रामस्वरूप चतुर्वेदी भाषा को भावों की अनुगामिनी नहीं, भावों और संवेदनाओंकी प्रकृति का भाषा द्वारा निर्धारित मानते हैं। "भाषा को भावों की अनुगामिनी न मानकर, भावों और संवेदनों की प्रकृति का भाषा द्वारा अनुशासित और निर्धारित माना जाये।"[3]

हिन्दी कहानी के सन्दर्भ में प्रेमचन्द और मलयालम में तकषी, केशवदेव, पोनकुन्नम वर्की आदि ने अपने सुधारवादी संस्कारों और अपने समय के परंपरागत विश्वासों के अनुरूप एक नयी भाषा का विकास किया है। उनकी कथा-भाषा के दायरे में अभिजात वर्ग के पात्र और अन्धविश्वासों से पीडित शोषण-ग्रस्त पात्र, दोनों का अंकन हुआ है। इस तरह परंपरा से चली आ रही भाषा-संबन्धी धारणा को उन्होंने तोड दिया है। किन्तु उनकी भाषा वह सब कुछ कहने में असमर्थ हुई है जो उन्होंने देखा था या संवेदना के स्तर पर महसूस किया था। शब्दों को नए प्रयोगों द्वारा अर्थ-विस्तार देने में और उन्हें अनुभूति बनाने में वे असमर्थ हुए है। किन्तु इनके सन्दर्भ में सब से उल्लेखनीय बात यह है कि उनकी भाषा उनके समय की भाषा भी थी।

---

1. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - (समकालीन हिन्दी कहानी : एक परिचर्या) - मोहन राकेश - पृ: 74.
2. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - पृ: 167.
3. भाषा और संवेदना - (1964) - रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ: 97.

हिन्दी में प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र और अज्ञेय ने और मलयालम में तकषी की पीढी के बाद उरूब और पोट्टेक्काट्टु ने अपनी अपनी कथा-भाषा की तलाश की है।इसलिए इस युग में समय की भाषा व्यक्तिगत भाषा में बदल गयी है । इस व्यक्तिगत भाषा में इसपर ज़ोर दिया गया है कि किसी बात को कैसे कहा जा रहा है । इस स्थिति में उनकी भाषा पूर्ववर्ती पीढी की जैसी समय की भाषा नहीं बन सकी । यशपाल ने अपने आदर्शों के प्रचार केलिए रचना और भाषा को एक माध्यम बनाया है । अतः उन्होंने भी परंपरा से प्राप्त भाषा को ही स्वीकार किया है ।

आधुनिक हिन्दी-मलयालम कहानी के सन्दर्भ में शिल्प के क्षेत्र में जो आन्दोलनात्मक परिवर्तन हुए, उनमें भाषा - संबन्धी परिवर्तन काफी महत्वपूर्ण है । आधुनिक कहानी ने पुरानी भाषा के सारे बाहरी अलंकार को नष्ट कर उसमें नया जीवन भरा है । उसने भाषा की जडता को तोडा है । उसने कहानी की भाषा को किताबी भाषा से अलग कर उसमें मनुष्य की बोली को भरा और इससे नये अर्थों की भी खोज की है । हिन्दी की नयी कहानी की चर्चा करते हुए कमलेश्वर ने यों लिखा है । - "भाषा मृत या किताबी रह गई और सारे जोखिमों को उठाती हुई वह मनुष्य की हर वृत्ति, हर संवेदन के साथ उसी में प्रस्फुटित हुई ।"[1] एम॰ टी॰ वासुदेवन नायर नयी संवेदना के संप्रेषण केलिए नई शैली और नये शब्दों की तलाश अनिवार्य मानते हैं । उन्होंने लिखा है - "कथाकार को ऐसी शिल्पविधि का प्रयोग करना है जो स्वानुभूतियों के चित्रण केलिए सब से उचित लगती है । उसे नये कथ्य, नई शैली, और नये शब्दों की भी तलाश करनी है ।"[2] कहने का मतलब यह हुआ कि हिन्दी और मलयालम की नई कहानी में भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम मात्र न रहकर अनुभव की सक्रियता का परिचायक है ।

---

1. कमलेश्वर का लेख - आधुनिक हिन्दी कहानी - सं. गंगाप्रसाद विमल -पृ: 113.
2. कथाकार की कला - एम. टी. वासुदेवन नायर - पृ: 33.

आधुनिक कहानी का यथार्थ मात्र कहानीकार के जीवनानुभवों या बाह्य प्रकृति पर निर्भर नहीं है । बल्कि वह अन्ततः कहानीकार की भाषा से जुडा हुआ है । कहानी की भाषा ही उसके यथार्थ को निर्धारित करती है ।[1] अज्ञेय की राय में भाषा यथार्थ को क्रम में बाँधती है । "भाषा यथार्थ को प्रस्तुत करने का माध्यम है, लेकिन उसके साथ साथ वह यथार्थ का नियोजन भी करती है और उस नियोजित रूप में ही यथार्थ हमारे सामने आ सकता है ।"[2] अज्ञेय के उपर्योक्त कथन से के.पी.अप्पन भी सहमत है । उन्होंने लिखा है - "यथार्थ का एहसास शब्द के अर्थ से नहीं, बल्कि शब्दों के क्रम और गठन से होता है ।"[3] हर एक कहानीकार का, भाषा का अपना एक क्रम होता है । इसलिए आधुनिक कहानी में कथा-भाषा के विभिन्न स्तर द्रष्टव्य हैं ।

भाषा की सपाटता से लेकर बिंबात्मकता तक

हिन्दी और मलयालम की आधुनिक कहानी में कथाभाषा अधिक सूक्ष्म और बिंबात्मक बन गयी है । नये कहानीकार कहानी के परिवेश-सृजन केलिए बिम्ब-विधान का सहारा लेते हैं । ये बिम्ब नयी संवेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम है । नामवर सिंह के शब्दों में, "नये बिंम्ब वस्तुतः नये कहानीकारों के विकसित ऐन्द्रियबोध के सूचक हैं और जो कहानीकार जितना ही संवेदनशील है, उसकी कहानी का वातावरण उतना ही मार्मिक और सजीव हुआ है ।"[4] राजेन्द्र यादव ने यों लिखा है : "कहानी मूलतः चित्रों की ही भाषा है - मनुष्य की

---

1. के.पी. शंकरन का लेख - देशाभिमानी - दिसंबर 25-31, 1988.
2. यथार्थ और भाषा का क्रम - अज्ञेय का लेख - नया प्रतीक - फरवरी, 1978 - पृः 30.
3. रियलिज़्म का नया सन्देश - के.पी.अप्पन का लेख - मातृभूमि ओणम विशेषांक -'86 (सितम्बर 14-20) - पृः 221.
4. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - पृः 37.

आदिम भाषा । पहले चित्र ठोस वस्तुओं के होते थे, आज बेहद संश्लिष्ट हो गए हैं । घटनाओं, स्थितियों, भावनाओं, संवेदनाओं, विचारों के सरल जटिल चित्र होते हैं । ... आज की कहानी में शब्दों से चित्र या बिम्ब बनते हैं ।"[1] प्रतीकात्मकता और बिम्बात्मकता के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण ही हिन्दी और मलयालम की नई कहानी की भाषा सरल होकर भी गहन अर्थ संकेत-युक्त है । हिन्दी में निर्मलवर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, धर्मवीर भारती, कृष्णा सोबती आदि की और मलयालम में पद्मनाभन, वासुदेवन नायर, माधविक्कुट्टि, नन्दनार आदि की कहानियों की भाषा इस सन्दर्भ में विचार करने योग्य हैं ।

हिन्दी की नई कहानी की भाषा धीरे धीरे अपनी पूर्ववर्ती कहानी की रूढिवादी भाषा से मुक्त होने लगी है । उसने भाषागत सजावट का बहिष्कार किया है तथा उसे यथार्थ रूप देने को जागरूक रही है । निर्मलवर्मा की कहानी में काव्य की भाषा अधिक दिखाई पडती है जहाँ भावों को बिम्बों एवं प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया गया है । "परिन्दे" की ये पंक्तियाँ काव्यात्मक और बिंबात्मक हैं -

"पियानो का हर नोट, चिरन्तन खामोशी की अंधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुंध को काटता, तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है । गिरता हुआ हर "पोज़" एक छोटी-सी मौत है, मानो घने छायादार वृक्षों की कांपती छायाओं में कोई पगडंडी गुम हो गई हो, एक छोटी मौत, जो आनेवाले सुरों को अपनी बची-खुची गूँजों की साँसें समर्पित कर जाती है ... जो मर जाती है, किन्तु मिट नहीं पाती, मिटती नहीं इसलिए मरकर भी जीवित है, दूसरे सुरों में लय हो जाती है ।"[2]

बिंबात्मक भाषा का सफल प्रयोग उनकी "लवर्स" कहानी में देखा जा सकता है -

---

1. एक दुनिया समानान्तर - राजेन्द्र यादव - पृ: 68.
2. "परिन्दे" - मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - पृ: 40.

"उस शाम पैवलियन के पीछे टैरेस पर बैठे थे। मेरे रूमाल में उसकी चप्पलें बंधी थी और उसके पांव नंगे थे। घास पर चलने से वे गीले हो गए थे और उनपर बजरी के दो-चार लाला दाने चिपक कर रह गए थे। अब वह शाम बहुत दूर लगती है। उस शाम एक धुंधली सी आकांक्षा आई थी और मैं डर गया था। लगता है आज वह डर हम दोनों का है, गेंद की तरह कभी उसके पास जाता है, कभी मेरे पास"।"[1]

बजरी के दो-चार लाल दाने, धुंधली सी आकांक्षा, गेंद की तरह का डर - इन बिम्बों से एक ही मानसिक-स्थिति की अभिव्यक्ति हुई है। एक में रूप की प्रत्यक्षता है तो दूसरे में रंग की सूक्ष्मतापर विलक्षण संबन्ध-भावना दिखाई देती है। निर्मल वर्मा की बिंबात्मक भाषा में कहीं कहीं भाव अत्यधिक सघन और अनुभूतियाँ सान्द्र हो जाती हैं। ऐसे शब्द-बिम्ब और ऐन्द्रिय-बिम्ब उनकी अनेकों कहानियों में द्रष्टव्य हैं।

"और तब अचानक वह चीख सुनाई दी थी। अन्तडियों को फाडती हुई मर्राहट फिर घुनघुनाता-सा दर्द, दर्द को काटती एक सांस, सांस पर उभडती हुई एक निहायत बेचैन सिसकी और सिसकी को रास्ते में ही तोडती वह चीख...।"[2]

मोहन राकेश की "एक और जिन्दगी" में अनेकों मूर्त और अमूर्त बिम्बों के सहारे ही प्रकाश और बीना के संबन्ध-विघटन की कहानी बतायी गयी है।

"कोहरे के बादलों में भटका हुआ मन सहसा बालकनी पर लौट आया। खिलनमर्ग की सडक पर बहुत - से लोग घोडे दौडाते जा रहे थे। - एक धुंधले चित्र की बुझी-बुझी आकृतियों जैसे। कुछ वैसी ही बुझी-बुझी आकृतियाँ क्लब से बाज़ार की तरफ आ रही थी। बाईं तरफ बर्फ से ढकी पहाडी की एक चोटी कोहरे से

---

1. "लवर्स" - जलतीझाडी - (1966) - निर्मल वर्मा - पृ: 14-15.
2. "कुत्ते की मौत" - जलती झाडी - निर्मलवर्मा - पृ: 58.

बाहर निकल आई थी, और जाने किधर से आती धूप की एक किरण ने उसे जगमगा दिया था । कोहरे में भटके कुछ पक्षी उड़ते हुए उस चोटी के सामने आ गए, तो सहसा उनके पंख सुनहरे हो उठे – मगर अगले ही क्षण वे फिर धुंधलके में खो गए ।"[1]

राजेन्द्र यादव की "अभिमन्यु की आत्महत्या" का यह भाग कहानी के प्रमुख पात्र की मनः स्थितियों को स्पष्ट व्यक्त कर देता है –

"अंधेरे के पार से दीखती रोशनी के इस गुच्छे को देख-देखकर जाने क्यों मुझे लगता है कि कोई जहाज़ है जो वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहा है । जाने किन किन किनारों को छूता हुआ आया है और यहाँ लंगर डाले खड़ा है कि मैं आऊँ और वह चल पड़े । यहाँ से दो-तीन मील तो होगा ही । कहीं उसी में जाने केलिए तो मैं अनजाने रूप से नहीं आ गया ।"[2]

अमरकान्त ने "मौत का नगर" शीर्षक कहानी में बिंबों का सार्थक प्रयोग किया है ।

"राम घर से बाहर निकला । उसने कौएँ की भाँति सिर घुमाकर शंका से दोनों ओर देखा । ऊपर आकाश एक स्वच्छ, नीले तम्बू की तरह तना था । सामने पार्क में तथा मकानों और वृक्षों के शिखरों पर एक सुहावनी धूप फैली थी । इस समय सारा मोहल्ला एक मीठे शोरगुल से गूँजने और चहचहाने लगता था, लेकिन अब कहीं भी औरतें और बच्चे दिखाई नहीं दे रहे थे । चारों ओर एक भयावह सन्नाटा कुण्डली मारकर बैठा था ।"[3]

इसमें दो सार्थक बिम्बों का प्रयोग हुआ है – जो कहानी की संवेदना से सीधे जुड़े हुए हैं । पहला है – "आकाश एक स्वच्छ नीले तम्बू की तरह तना था", दूसरा है – भयानक सन्नाटा कुंडली मारकर बैठा था ।

---

1. "एक और जिन्दगी" – वारिस-3 – (1972) – मोहन राकेश – पृ: 25.
2. "अभिमन्यु की आत्महत्या" – मेरी प्रिय कहानियाँ – (1976) राजेन्द्र यादव – पृ: 66.
3. "मौत का नगर" – मौत का नगर – (1973) – अमरकान्त – पृ: 22.

कमलेश्वर की "नीली झील" का यह भाग देखिए -

"नीली झील खामोश थी । किनारों पर गीली आँखों की तरह नमी थी । और घास की टहनियाँ हवा के साथ धीरे धीरे पानी को सहला रही थीं । नरकुल की लम्बी पत्तियाँ पक्षियों की कलंगी की तरह कांप रही थी और पानी में डूबी सिवार के सूतों से मछलियों के बच्चे कतरा-कतराकर निकल रहे थे । वह किनारे आकर बैठ गया । पानी के नन्हे-नन्हे बबूल नीचे से ऊपर सतह तक आए, तो लगा किसी मछली ने मोती उगल दिए हो । जल चरों की बारीक आवाज़ें झील के पानी में गूँज रही थीं और पेडों पर पक्षियों के पंखों की सरसराहट और सीटियों की मद्धम आवाज़ें थीं ।"[1]

इस कहानी में विभिन्न बिंबों के सहारे नीली-झील का वर्णन सजीवता एवं सूक्ष्म-निरीक्षणता के साथ किया गया है ।

मोहन राकेश की "जख्म" कहानी के कुछ वाक्य हैं -

"हाथ पर खून का लोंदा ... सूखे और चिपके हुए गुलाब की तरह । फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढा कोलतार ... सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ । एक दूसरे से चिपके पुराने कागज़ ... भीगकर सडक पर बिखरे हुए । खोदी हुई नाली का मल्बा ... झडकर नाली में गिरता हुआ । चिकने माथे पर गाढी काली भौंहें ... ऊंगली और अंगूठे से सहलाई जा रहीं ।"[2]

मलयालम में पद्मनाभन, वासुदेवन नायर, माधविक्कुट्टि आदि की कहानियों में बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है । भाषा की बिम्बात्मकता और काव्यात्मकता के कारण इनकी कहानियाँ भावगीत के नज़दीक आती हैं । माधविक्कुट्टि की "पट्टड्डल" (पतंग)" शीर्षक कहानी का एक भाग है -

---

1. नील झील - मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - पृ: 115.
2. "जख्म" - वारिस-3 - मोहन राकेश - पृ: 225.

"धीरे धीरे लुप्त हो जानेवाले गीत के समान एक दुपहर को मैं समाप्त हो जाऊँगी । यह मौत मामूली है । आप कुछ खोनेवाले नहीं । लेकिन मैं? पतंग के पीछे पीछे उडनेवाले धागे के समान तेरी स्मृतियाँ मेरा पीछा नहीं करेंगी । इन सब को खोना पडेगा । क्षितिज को जलानेवाला वह गुलमोहर का पेड, मृतों की आत्मा जैसी मूक सन्ध्याएँ - प्यार की खोज करनेवाले मानव के अनन्त प्रयास - सब, सबकुछ...।"[1]

धीरे धीरे लुप्त हो जानेवाले गीत, क्षितिज को जलानेवाला गुलमोहर का पेड, मृतों की आत्मा जैसी मूक सन्ध्या - इन दृश्य-श्रव्य बिम्बों के सहारे कहानी में नायिका के मृत्युबोध को व्यंजित किया गया है । उनकी "पक्षियुडे मणम" (पक्षी की गन्ध) शीर्षक कहानी में इसी बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है । इसकी नायिका को मृत्यु की गन्ध का एहसास इस तरह के कई बिम्बों से होता है ।

"मृत्यु की गन्ध? मृत्यु की गन्ध का अहसास भला मेरे सिवा और किसको होगा? घावों की बदबू । बगीचों के फलों की मधुर गन्ध, अगरबत्ती की खुशबू ... फिर बाबुजी । वे तो मधुमेह से पीडित थे । उनके अचानक बेहोश हो जाने पर उस कमरे में फल-फूलों के बगीचों से बहनेवाली हवा की प्रतीति हुई थी । मधुर थी उस कमरे की तब की गन्ध ... वह भी मृत्यु की ।"[2]

एम. टी. वासुदेवन नायर की अधिकतर कहानियों की भाषा काव्यात्मक और बिंबात्मक है -

"आंगन में हल्की चाँदनी दर्द से लिप्त हल्की मुस्कान की भाँति छाई हुई है । रानीगन्धा की सुखद महक ठण्डी हवा में एक पुलक की तरह व्याप्त है । ... झरोखे के नज़दीक जाकर बैठा । घूमते - फिरते घने धुएँ को देखने पर ऐसा महसूस हुआ कि

---

1. "पट्टंडूडल" (पतंग) - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 142.
2. "पक्षियुडे मणम" (पक्षी की गन्ध) - माधविक्कुट्टि की कहानियाँ - पृ: 232.
   अनु: पी. कृष्णन - समकालीन भारतीय साहित्य - अक्टूबर-दिसम्बर, 1987.

मैं अकेला हूँ । बाहर की ओर देखा । खेत नीले कुहरों से छाया हुआ है । पहाड की घाटियाँ अव्यक्त यादों की तरह दीखती हैं । कुहरे और बादलों से आश्लेषित घाटी से 'क्रॉस' दिखायी पडती है ।"[1]

पद्मनाभन ने भी अपनी कहानियों में बिम्बात्मक भाषा का प्रयोग किया है -

"वह कई बातें भूल जाने की कोशिश कर रहा था । पानी बरस रहा था, तो भी आसमान काला नहीं हुआ था । बादलों के बीच से सूरज दिखाई दे रहा था, सूरज की किरणों से पानी की बूँदें हीरे की तरह चमक रही थीं । आसमान के किनारे चिडियाँ सर्द से उड़ रही थीं । रेल के समानांतर जाने वाली सडक से होकर बच्चे सोत्साह स्कूल जा रहे थे । बूंदाबांदी की ओर उनका ध्यान नहीं था ।"[2]

उनकी "साक्षी" शीर्षक कहानी में भी इसी भाषा का प्रयोग हुआ है -

"दूर की जहाज़ों से आनेवाली प्रकाश की किरणें धीरे धीरे विलुप्त हो जाने लगीं । उसने उसाँसें भरीं । ... ग्रीष्म की निर्मल निर्झर । उसके किनारों पर फूले-फले पेडों की कतार, बाँसों की झाडियाँ । गीले कपडे पहनकर मन्दिर जानेवाली भोर के फूल जैसी लडकी ..."[3]

नन्दनार की "आकाशम तेलिञ्ञु" (आसमान स्वच्छ हुआ) का एक भाग इस प्रकार है -

"उसकी आँखों में तृप्ति की कलियाँ फूटीं । वह वासवन के नज़दीक खडी रही । वासवन ने उसे चूम लिया । बिस्तर पर लिटाया । झरोखे को खोलकर

---

1. "दुखत्तिन्टे ताष्वरकल" (दुःख की तराईयाँ) - एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 271.
2. यात्रा का अंत - टी.पद्मनाभन - अनु: पी.बालकृष्णन नायर - अक्षरा - अप्रैल-जून, 1989 - पृ: 105.
3. "साक्षी" - टी.पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ - पृ: 256.

उसने बाहर देखा । चाँदनी रात । ओस की बूँदों से सिक्त नारियल की पत्तियाँ चाँदनी में चमक रही थीं । वर्फ के टुकड़ों की भाँति आसमान पर बादल तैर रहे थे । वासवन अपने आप से बोला - आसमान स्वच्छ हुआ ।"[1]

हिन्दी और मलयालम कहानियों में सपाट और विवरणात्मक प्रसंगों को बिंबों के माध्यम से इस लिए प्रस्तुत किया गया है कि उक्त कहानियों की मूल दृष्टि की संश्लिष्टता का पूरा-पूरा आभास मिल सकें । भाषा की दोहरी वृत्ति में से सूक्ष्म स्तर को अपनाते हुए इस दौर के कहानीकारों ने भाषा के क्रम में अपनी सृजन-शीलता का परिचय दिया है ।

भाषा - सूक्ष्मता से स्थूलता तक

आधुनिक हिन्दी और मलयालम में ऐसे कुछ एक कहानीकार हैं जिन्होंने अपने युग की और परवर्ती युग की सूक्ष्म और बिंबात्मक भाषा के विद्रोह के रूप में स्थूल भाषा का प्रयोग किया है । ये कहानीकार अपने समय की तीक्ष्ण, जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति केलिए सधे शिल्प की कारीगरीयुक्त बिंबात्मक भाषा अपर्याप्त महसूस करते हैं । बिंबात्मक भाषा स्थिति को बड़े सधे हुए ढंग से व्यक्त करने में सक्षम तो है , किन्तु इससे उसकी परिवेशगत सक्रियता का कोई प्रमाण नहीं मिलता है । यही नहीं, वह पाठक और परिवेश के बीच-स्तरों को खोलने के बजाय उन्हें चमत्कृत करती है ।[2] इस दौर के कुछ एक कहानीकारों ने इस चमत्कृत बिंबात्मक भाषा की जगह जीवन के स्वाभाविक तेज से युक्त भाषा का प्रयोग किया है । इनके सन्दर्भ में सब से बड़ी सृजनात्मक समस्या अभिव्यक्ति की सच्चाई और पाठक के बीच विश्वास पैदा करने का है । हिन्दी में उषा प्रियंवदा, रामकुमार,

---

1. "आकाशम तेलिञ्ञु" (आसमान स्वच्छ हुआ) - आसमान स्वच्छ हुआ - (1981) नन्दनार - पृ: 94.
2. समकालीन कहानी : समांतर कहानी - (1977) - विनय - पृ: 127.

अमरकान्त, कृष्णबलदेव वैद और मलयालम में मुकुन्दन, सेतु, विजयन, काक्कनाटन आदि की भाषा ने परिवेशगत सक्रियता का जो प्रमाण प्रस्तुत किया है, वह और भी अधिक व्यापक सन्दर्भों से जुड़कर हिन्दी में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और मलयालम में पद्‌टत्तुविला और वी.के.एन. में यथाक्रम प्रकट हुआ है ।

हिन्दी में उषा प्रियंवदा, रामकुमार, अमरकान्त, भीष्मसाहनी, कृष्ण बलदेव वैद आदि ने इस तरह की स्थूल भाषा का प्रयोग किया है -

उषा प्रियंवदा की "जाले" शीर्षक कहानी का एक अंश है -

"कौमुदी उन आधुनिक युवतियों में थी, जो पुरुषों से शत-प्रतिशत समानता का दावा करती हैं । यूनिवर्सिटी से एम.ए. कर और एक प्रभावशाली संबन्धी के द्वारा पाँच सौ रुपये महीने की सरकारी नौकरी पा, अब वह माता-पिता से दूर अकेली रहती थी । अपने छोटे-से बंगले को उसने बडे श्रम और घण्टों विचार करने के बाद सजाया था । उसकी बैठक और शयन-कक्ष किसी अंग्रेज़ी मैगज़ीन के होम डेकोरेटिंग के अन्तर्गत दिये गए कमरों के चित्रों के आधार पर सजाये गये थे ।"[1]

आधुनिक बोध को भाषा के स्तर पर पकडने में तथा कहानी की आन्तरिक प्रक्रिया को समझने में रामकुमार को सफलता मिली है । चूँकि वे एक चित्रकार है, कहानी में कई गहरे रंग नहीं, सादे रंगो को वे पसन्द करते हैं, इसलिए कहानी में भी वे इसी सादगी को बनाए रखते हैं ।

"अचानक अपने सामने बेंच पर एक लडके को बैठ पढते देखकर वह चौंक-सा गया । उसे लगा, जैसे वह चोरी करता हुआ पकड लिया गया हो । यदि वह उस लडके को दूर से ही देख लेता तो चुपचाप पीछे मुड जाता या दाएँ-बाएँ निकल जाता । वह लडके को कुछ क्षण तक झुके पढते देखता रहा और धीरे धीरे उसके पास बेंच पर बैठने की उसकी इच्छा ज़ोर पकडती गयी । वह दबे पांव बेंच के दूसरे कोने पर जा बैठा ।"[2]

---

1. "जाले" - जिन्दगी और गुलाब के फूल - (1978) - उषा प्रियंवदा - पृ: 30.
2. "सेलर" - एक चेहरा - रामकुमार - पृ: 84.

भीष्मसाहनी की "अमृतसर आ गया है" का एक अंश है -

"थोडी देर तक वह खडा होता रहा, फिर उसने घूमकर दरवाज़ा बन्द कर दिया । उसने ध्यान से अपने कपडों की ओर देखा, अपने दोनों हाथों की ओर देखा, फिर एक एक करके अपने दोनों हाथों को नाक के पास ले जाकर उन्हें सूँघा, मानो जानना चाहता हो कि उसके हाथों से खून की बू तो नहीं आ रही है । फिर वह दबे पाँव चलता हुआ आया और मेरी बगल वाली सीट पर बैठ गया ।"[1]

विवरण को निस्संग ढंग से प्रस्तुत किया गया है ।

मन्नुभंडारी ने 'अकेली' में इस स्थूल भाषा का प्रयोग कियाहै -

"सोमा बुआ बुढिया है ।
सोमा बुआ परित्यक्ता है ।
सोमा बुआ अकेली है ।

सोमा बुआ का जवान बेटा क्या जाता रहा, उनकी अपनी जवानी चली गई । पति को पुत्र वियोग का ऐसा सदमा लगा कि वे पत्नी, घरबार को तजकर तीरथवासी हुए और परिवार में कोई एक सदस्य था नहीं जो उनके एकाकीपन को दूर करता । पिछले बीस बर्षों से उनके जीवन की इस एकरसता में किसी प्रकार का कोई व्यवधान उपस्थित नहीं हुआ, कोई परिवर्तन नहीं आया ।"[2]

अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' का भाग है -

"सिद्धेश्वरी ने खाना बनाने के बाद चुल्हे को बुझा दिया और दोनों घुटनों के बीच सिर रखकर शायद पैर की अंगुलियों या ज़मीन पर चलते चोंटे-चोंटियों को देखने लगी । अचानक उसे मालूम हुआ कि बहुत देर से उसे प्यास लगी है । वह

---

1. "अमृतसर आ गया है" - पटरियाँ - (1973) - भीष्म साहनी - पृ: 32.
2. "अकेली" - मन्नु भंडारी - अकेली - राजेन्द्रयादव और मन्नुभंडारी - पृ: 108.

मतवाले की तरह उठी और गगरे से लोटा भर पानी लेकर गटगट चढा गयी । खाली पानी उसके कलेजे में लग गया और वह "हाय राम" कहकर वहीं ज़मीन पर लेट गयी ।"[1]

उनकी 'नौकर' कहानी का यह भाग उनकी भाषा की सादगी और जीवन्तता को प्रकट करता है -

"तडके ही उठकर जन्तू आंगन और बरामदे में सोनेवाले प्राणियों की बडी-बडी खाटों को भीतर करता । कुछ लोग उठने में लेट लतीफ थे और उनको भिनकती हुई मक्खियों के सहारे छोडकर वह घर को शुरू से आखिर तक झाडने-बहारने में लग जाता ।"[2]

कृष्णा बलदेव वैद की "बीच का दरवाज़ा" नामक कहानी का एक प्रकरण द्रष्टव्य है -

"बाबु रामदास खन्ना और मैं पिछले नौ-दस महीनों से एक ही मकान में रहते आ रहे हैं । उनके पास एक कमरा और रसोईघर है और मेरे पास सिर्फ एक कमरा । मेरा कमरा उनके कमरे से ज़रा छोटा है । एक कमरा स्टोर का और है जिसे मालिक मकान ने बन्द कर रखा है ।"[3]

शेखर जोशी भी अपनी "बदबू" शीर्षक कहानी में भी स्थूल भाषा का प्रयोग किया है -

"शहर के बाहरी भाग में स्थित कारखाने की पहली सीटी पर प्रतिदिन कामगर लोग अपनी अपनी गृहस्थी छोडकर, हाथों में रोटी-चबैना की पोटली या डिब्बा लटकाए, अपनी सुध-बुध खोकर तेज़ कदमों से कारखाने की ओर चले आते ।

---

1. "दोपहर का भोजन" - मौत का नगर - §1973§ - अमरकान्त - पृ: 162.
2. नौकर - अमरकान्त की प्रतिनिधि कहानियाँ - §भाग-एक§ - पृ: 79.
3. "बीच का दरवाजा - खामोशी - §1986§ - कृष्णबलदेव वैद - पृ: 65.

दिन भर कारखाने की खटर-पटर में मशीनों और औजारों से जूझकर थको-लस्त देहवालों का यह काफला साँझ के धुधलके में अपने घरों की ओर चल देता । सर्दी, गर्मी, बरसात में कभी भी इस क्रम में कोई बाधा न पडती ।"[1]

फणीश्वर नाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह और मार्कण्डेय ग्रामीण जीवन की सहजता और अकृत्रिमता को व्यक्त करने केलिए कहानियों में सहज और सरल, स्थूल भाषा का प्रयोग किया है ।

"मिरदंगिया कमलपुर के बाबु लोगों के यहाँ जा रहा था । कमलपुर के नन्दबाबु के घराने में अब भी मिरदंगिया को चार मीठी बाते सुनने को मिल जाती है । एक-दो जून भोजन तो बंधा हुआ है ही, कभी कभी रस-चरचा भी यहीं आकर सुनता है वह । दो साल के बाद इस इलाके में आया है । दुनिया बहुत जल्दी-जल्दी बदल रही है ।"[2]

"एक कंकड वह भी था जो राह में गडा था और एक दिन मेरे पैर के अंगूठे को लहूलुआन कर गया । घाव तो भर गया है, मगर कंकड की याद से ही नाखून का निचला हिस्सा अजीब टीस से टकप उठता है । चोट लगी थी थोडी, मगर देहात की जडी-बूटियों की पट्टी इतनी भारी थी कि संभाले न संभली । एकदिन दर्द से परेशान होकर जब पट्टी खोली तो देखा सारा अंगूठा स्याह हो गया है : घाव पनपकर पूरे अंगूठे में उछल आया है ।"[3]

"रामशरण के पिता के तीन भाई थे । तीनों के एक एक लडका था । रामशरण सब से बडे भाई का, उम्र में सब से बडा लडका था, जीतू सब से छोटे भाई का इकलौता । जीतू जब माँ के पेट में आया, तभी उसके बाप की मृत्यु हो गयी और जब जीतू तीन महीने का हुआ, तो उसकी माँ भी चल बसी ।"[4]

---

1. "बदबू" - शेखर जोशी - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कोश (1988) - सं. महेश दर्पण - पृ: 528
2. "रसप्रिया - मेरी प्रिय कहानियाँ - फणीश्वर नाथ रेणु - पृ: 10.
3. "किसकी पाँखें" - एक यात्रा सहत के नीचे (सम्पूर्ण कहानियाँ-2) (प्रथम संस्करण, 1985) - शिवप्रसाद सिंह - पृ: 236.

एम. मुकुन्दन, सेतु, आनन्द जैसे कहानीकार भाषा के सपाट क्रम को अपनाते हैं ।

"मैं भूमि पर नहीं हूँ । सौरयूथ में नहीं हूँ । दूर ... बहुत दूर क्षीरपथ से भी बाहर, मरे हुए तारक में अन्धेरे और सर्दी में मैं लेट रहा हूँ । ... अंधेरा समय का पर्याय है और समय अन्धेरे का । अन्धेरा और समय, इन दोनों का पर्याय हूँ मैं । सारे युग में ही हूँ । ... अक्बर रोड कुत्तब रोड है । गुरुद्वारा रोड कुत्तब रोड है । मिन्टो रोड कुत्तब रोड है, रिंग रोड कुत्तब रोड है । रोड ही नहीं, नगर भी कुत्तब रोड है । दिल्ली कुत्तब रोड है । दिल्ली ही नहीं दुनिया कुत्तब रोड है । भूमि कुत्तब रोड है । सौरयूथ और क्षीरपथ भी कुत्तब रोड है ।"[1]

मुकुन्दन की "अवर पाडुन्नु" (वे गा रहे हैं) शीर्षक कहानी के पुरुष और स्त्री के मन में शून्यता का जो एहसास है, कहानी की भाषा उसको व्यक्त करती है -

"पथिकों ने हमें घूरकर देखा । लैंप पोस्ट के नीचे खड़े होकर मैं ने उसे चूम लिया । मैं उसके कमर पर हाथ रखकर चलने लगा । इंडिया गेट की विशालता में, कुतब मीनार की विजनता में, लाल किले की परछाई में, कुत्तब मीनार की विजनता में, इंडिया गेट की विशालता में । विशालता की परछाई में । विजनता की विशलता में । विशालता की विशालता में, विजनता की विजनता में और परछाई की परछाई में । लाल किले में । कुतब मीनार की कुतब मीनार में । इंडिया गेट के इंडिया गेट में । लाल किले के कुतब मीनार में । इंडिया गेट के लाल किले में ।"[2]

"तीस वर्षीय के.के. उस भीड में एक सर्द शरीर बनकर, अनाम आदमी के रूप में लेटा है । उसकी मृत्यु तो हुई, तो भी अपनी त्वचा के बन्धन में उसका दम घुट गया ।

---

1. "आन" (मैं) - मुकुन्दन की कहानियाँ - पृ: 163-164.
2. "अवर पाडुन्नु" (वे गा रहे हैं) - वही - पृ: 185.

बिना किसी आवाज़ के वह रो रहा था, - मुझे बचा दीजिए - मेरे इस शरीर का नाश कर डालिए - ।"[1]

सेतु की "मुप्पतु वयस्सुल्ला ओराल" (तीस वर्षीय व्यक्ति) नामक कहानी में उपर्युक्त वाक्य बार बार दुहराए गए हैं जो जीवन की ऊब और आवर्तन के वैरस्य को सूचित करते हैं ।

"कैदियों का समय वार्डेन ही है । घड़ियाल । उसके हाथ पेंडुलम की तरह एक ही ताल में आगे की ओर और पीछे की ओर झूम रहे हैं ... बूट ज़मीन पर छू रहे हैं - टिक, टिक, टिक ।"[2]

विजयन ने भी स्थूल और विवरणात्मक भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा मूलतः एक "कार्टूणिस्ट" की है । (वे स्वयं एक "कार्टूणिस्ट" हैं)

"पुराने ज़माने में एक छोटे घर में एक बूढा आदमी अपनी बीवी और बेटे के साथ रहता था । बूढा का नाम वृद्ध था । एकदिन बीवी की मृत्यु हुई । उसके बाद उसने एक ऊँटनी को पाला-पोसा । लोग इसके विरुद्ध थे । उन्होंने पूछा कि लोगों के रहते ऊँटनी की क्या ज़रूरत है । बूढे और बेटे को कोई उत्तर नहीं था । उनकी यह दुर्दशा देखकर ऊँटनी ने दुःख के साथ कहा - नेती, नेती ।"[3]

"पुराने ज़माने में एक परिवार में एक बूढा आदमी और उसके भतीजे रहते थे । बूढे का नाम गोविन्दमान था । गोविन्दमान ने अपने भतीजों को खूब पीटा । भतीजे जवान हो गए । वे बडे हो गए । बूढा डर गया । उसने समझ लिया कि दुनिया बदल रही है । तो भी उसने अपने अधिकार को बनाए रखने केलिए

---

1. "मुप्पतु वयस्सुल्ला ओराल" (तीस वर्षीय व्यक्ति) - सेतु की कहानियाँ - पृ: 183.
2. "वेलि" (बाड) - घर और कैद - आनन्द - पृ: 126-127.
3. "वृद्धनुम मकनुम कष्तयुम" (बूढा, बेटा और ऊँटनी) - विजयन की कहानियाँ - (1983) - पृ: 139.

भतीजों का सामना करने का निश्चय किया । बिना लडाई किए हार मानने को वह तैयार नहीं था ।"[1]

स्थूल भाषा का सब से विकसित रूप पट्टत्तुविला करुणाकरन, और वी.कै. एन. की कहानियों में द्रष्टव्य है । पट्टत्तुविला की "मुनि" शीर्षक कहानी में, छुट्टी के दिनों में विदेश से आए छोटे भाई के मन में अकेलेपन का एहसास होता है । वह मुनि की निर्ममता के साथ बडे भाई के सवालों के उत्तर देता है । उनका संवाद इस तरह है –

"तू कब आया ?"

समय ठीक ठीक बताया गया ।

"छुट्टि है, क्या ?"

"हाँ"

बडा भाई बैठ गया – "तू इतना दुबला क्यों दीखता है"

मैं ने जवाब नहीं दिया । क्योंकि सोलहवीं उम्र से मेरा बोझ 108 पाउँड है । अब भी वही है ।"[2]

"जो इस जगत को समझकर परम सत्य को दर्शाता हो, नदी और सागर को पारकर तादृशभाव को दर्शाता हो, सम्बन्धों की कडियों को तोडता हो और जो स्वयं आश्रित या दूसरों का आश्रय न हो, उसी को सज्जन मुनि कहते हैं ।"[3]

वी.के. एन की "इरुपत्तोन्नाम नूट्टांडु" (इक्कीसवीं शताब्दी) शीर्षक कहानी का एक अंश है –

---

1. "नालुकेट्टु" (चौशाला) – विजयन की कहानियाँ – पृ: 135.
2. "मुनि" – कथा – पट्टत्तुविला – पृ: 23-24.
3. वही – पृ: 21.

"पन्द्रह शताब्दियों के बाद इक्कीसवीं शताब्दी में चीनी पादरी, फाहियान और "पय्यन" दूसरी बार भारत आए । काश्मीर से कन्याकुमारी तक वे गए । लोगों से बातें कीं । इनका "यात्राविवरण" लंदन के एक प्रकाशक ने अभी अभी प्रकाशित किया है । यह कहने की आवश्यकता ही नहीं है कि इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक अत्यन्त कामयाबी है ।"[1]

स्थूल और विवरणात्मक भाषा के प्रयोग के द्वारा वे हास्य और व्यंग्य का सृजन करते है - उनकी "हंसम" {हंस} शीर्षक कहानी का विश्वन हवाई जहाज़ में यात्रा करते समय अंग्रेज़ दम्पति के साथ शराब पीता है । तदनन्तर वह उनके इच्छानुसार पौराणिक कथा "नलचरित"[2] के पात्र, हंस के रूप में अभिनय करता है -

"फिर वह सीधे जाकर "एमरजेन्सी एक्सिट" खोलकर एक पक्षी के समान आसमान से उडने लगता है । मेम साहब नल बनकर अपने सीट पर ही बैठकर अभिनय करती है । विश्वन किधर जाकर उतरेगा? उतरने केलिए अनुमति मिलेगी या नहीं? ये सब सोचकर मेमसाहब अपने पति से कहती है - "दिस ईस दि वेरी नेगेशन आफ दि ला आफ ग्राविटी" । {यह गुरुत्वाकर्षण नियम के विरुद्ध है । नहीं तो वह क्यों एक कटहल की भाँति नीचे नहीं गिरता? } साहब ने कहा - एलकहोल टू ईस एन एवियेशन फ्युवल, मै डियर ।"[3]

पुनत्तिल कुञ्ञब्दुला अपनी कहानियों में अयथार्थ धरातल को सृजित करने केलिए स्थूल भाषा का प्रयोग करते हैं -

"घर के अन्दर घुसते ही बाबु मेनन ने दरवाज़ा बन्द कर दिया । बडा-सा कमरा । दीवार में बनी अलमारियाँ, उनमें कई अनूठी वस्तुएँ, भूस भरे हुए कुछ पशु-पक्षी, सच पूछो तो वह कमरा एक छोटा-सा जंगल जैसा था ।"[4]

---

1. 'इक्कीसवीं शताब्दी"- पय्यन की कहानियाँ - {1983} वी.के.एन. - पृ: 473.
2. "नलचरित" जो कथकली केलिए रचित काव्य-कृति ।
3. "हंस" - पचास कहानियाँ - {1985} - वी.के.एन. - पृ: 13.
4. "कमरा जहाँ मुर्दे जाग रहे हैं" - पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला - अनु: पी.बालकृष्णन नायर अनुवाद {50} - जनवरी - मार्च, 1987 - पृ: 96-97.

भाषा की बिम्बग्राही वृत्ति जब रचना की मूल संवेदना का स्पर्श करती है तो सपाटवृत्ति उसका निषेध करती जान पड सकती है । लेकिन वह भी, निषेधात्मक ढंग से रचना के उसी पक्ष का स्पर्श कर रही है । एक में गहराई की प्रवृत्ति है तो दूसरे में विवृत होने की । भाषिक संरचना के इस दोहरे पक्ष का सफलतापूर्वक प्रयोग हिन्दी और मलयालम के कहानीकारों ने किया है ।

उपसंहार

कविता और नाटक की तुलना में कहानी भारतीय साहित्य की अधुनातन विधा है। अतः इसका इतिहास अतिप्राचीन नहीं है। भारतीय वाड्मय में कथा के विभिन्न स्वरूपों के होते हुए भी जिस साहित्यिक रूप को आज हम कहानी के रूप में स्वीकार करते हैं वह पश्चिमी साहित्य की देन है। यद्यपि प्राचीन भारतीय वाड्मय में कथा ढूँढी जा सकती है फिर भी कहानी अपनी माध्यमगत संभावनाओं के साथ उपलब्ध नहीं है। आधुनिक युग में गद्य के विकास के साथ कहानी का विकास हुआ है। लेकिन हमारे साहित्यकारों केलिए गद्य का यह नया रूप इसलिए आकर्षक हुआ है कि वे भारतीय कथा-परंपरा से अच्छी तरह परिचित थे। अतः प्रारंभकालीन कहानियों में प्राचीन कथा-परंपरा के बहुत सारे तत्व विद्यमान थे। भारतीय भाषाओं की प्रारंभकालीन कहानियाँ इसीलिए उपदेशात्मक बन गई थीं। उपदेशात्मक तथ्य को विकसित करने केलिए ही कहानी को विकसित किया गया था। इसलिए प्रारंभकालीन कहानियाँ अपने रूप के प्रति न्याय कर नहीं सकी हैं। एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रूप में कहानी का विकास हर भाषा में यथार्थवादी युग में ही संभव हुआ है।

हिन्दी और मलयालम की कहानियों को साथ साथ रखकर अध्ययन करते समय अनेक तथ्य उभरकर सामने आते हैं जो मुख्यतः भारतीय अस्मिता से संबन्धित हैं। भारतीय अस्मिता एक संकल्पित तथ्य नहीं है। भारतीय साहित्य एवं कला विभिन्न देश, काल, परिस्थितियों में अभिव्यक्त होने के पश्चात् भी

इसी भारतीय अस्मिता की तलाश में दत्तचित्त हैं । सब से पहले हमें यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय अस्मिता किसी भावुक दृष्टि का परिणाम नहीं है । भारतीय जनजीवन का हरएक पक्ष भारतीय अस्मिता से जुडा हुआ रहता है । जनजीवन के व्यापक परिदृश्य को अपनाने के कारण इन दो भाषाओं की कहानियों के अध्ययन के दौरान भारतीय अस्मिता के विभिन्न पहलू प्राप्त हुए हैं ।

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी जीवन और परिवेश के विभिन्न स्तरों को छूती हुई नज़र आ रही हैं, विशेषकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की कहानियाँ । स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले की कहानियों में सामाजिक परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं । अपने आस-पडोस के जीवन को यथावत् प्रस्तुत करना उनका लक्ष्य है । जीवन और परिस्थितियाँ आज जटिल हो गई हैं । जीवन की रफ्तार जब बदलती है तथा जीवन की आकांक्षाएँ जब बिलकुल परिवर्तित होती हैं तब ऐसे परिवेश का वर्णन यथार्थवादी शैली में असंभव जान पडता है । हमें यह भी मानना होगा कि आधुनिक युग तक आते आते साहित्यिक मान्यताएँ बदल गई हैं । अतः जटिल जीवन-परिस्थितियों को कहानियों केलिए स्वीकार करनेवाले आधुनिक कहानीकार एक ओर परिवेश में निहित विडंबना को भी पहचान लेते हैं तो दूसरी ओर अपने माध्यम की कलात्मकता पर भी ज़ोर देते हैं । अतः आधुनिक युग में जो नयी प्रकार की विधाएँ सामने आयी हैं उनमें सामान्यीकरणों एवं सरलीकरणों के स्थान पर जटिल जीवन का परिचय मिलने लगा । कहानियों की यह नयी दृष्टि प्राचीन कथा विश्लेषण की उस रीति में बँधनेवाली नहीं थी । आधुनिक जीवन का एक छोटा-सा अनुभव या लघु संकेत

कहानी में जीवन का समग्र रूप धारण करके अभिव्यक्त होने लगा। एक व्यक्ति की तडप प्रायः उस व्यक्ति की मानसिक तडप न रहकर परिवेश की बेचैनी के रूप में अभिव्यक्त होने लगी। हिन्दी और मलयालम में ऐसी बहुत सारी कहानियाँ लिखी हुई हैं। कहानियों की यह परिवेशगत समग्रता आधुनिक रचना की अपनी उपलब्धि तो है, साथ ही साथ आज के जीवन की तमाम बिडंबनाओं को दृष्टि देने का एक चुनौतीपूर्ण कार्य भी रहा है। इसलिए आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी में प्राप्त आधुनिक जीवन-परिवेश के केन्द्र में एक जीते-जागते व्यक्ति की उपस्थिति का अनुभव किया जा सकता है। कहानीकारों के इच्छित आदर्शों और उनकी वैचारिकताओं को वहन करनेवाले व्यक्ति के रूप में यह परिकल्पित नहीं है। यह व्यक्ति अपने परिवेश की उपज है और अपने संघर्षों को खुद झेलता भी है। अतः आधुनिक कहानी की सब से प्रमुख प्रवृत्ति मानवीय संकट की रही है। यहाँ हमें यह ध्यान देना होगा कि मानवीय संकट की यह स्थिति एकदम परिभाषेय नहीं है। उदाहरण स्वरूप ओ.वी. विजयन की कहानी "शिलाएँ" तथा मुक्तिबोध की कहानी "क्लाड ईथरली के बीच की दूरी कम है। लेकिन कमलेश्वर की कहानी, "बयान" और टी.पद्मनाभन की कहानी, "एक संवेदनशील युवक के जीवन से" के बीच की दूरी अधिक है। प्रथम दो कहानियों में आणविक समस्या का पहलू अपनी दुर्दान्त भीषणता के साथ उपस्थित है तो दूसरी कहानियों में राजनीतिक विसंगति के बीच में छटपटाते व्यक्ति-मन का आतंक है। परन्तु इन सब में मानवीयता को रौंदनेवाली उस दृष्टि को कहानीकारों ने लिया है जो निरन्तर हमारे जीवन को खोखला करती जा रही है। आधुनिक कहानिकारों का ध्येय इस भोथरेपन के विरुद्ध अपनी विद्रोही

दृष्टि का परिचय देना नहीं है। वे भोथरेपन को उसकी निजता में अपनी कहानियों में प्रस्तुत करते हैं । अतः हिन्दी और मलयालम कहानियाँ इस सन्दर्भ में अधिक निकट जान पडती हैं ।

जीवन के बदलते संबन्ध के अनुकूल हमारी मूल्यदृष्टि भी बदल गई है । व्यक्ति-व्यक्ति के संबन्धों - पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन - के बदले हुए सन्दर्भों को मूल्यदृष्टि के परिप्रेक्ष्य में आँकना उचित लगता है । कभी कभी समाज द्वारा स्वीकृत नैतिक आदर्श व्यक्ति-जीवन केलिए अनैतिक सिद्ध हो सकता है । तब व्यक्ति अपनी नैतिकता की खोज करता है । मन्नूभंडारी की "शायद" और माधविक्कुट्टि की "ऊसरभूमि" जैसी अनेकों कहानियों के विश्लेषण के दौरान इस मूल्य-दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है । दूसरी तरफ संबन्धों की ऊष्मलता पर आधुनिक जीवन ने जो प्रहार किया है उसको भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा गया है । अतः हिन्दी और मलयालम कहानी की ये समान स्थितियाँ मानवीय संकट के सही संकेत मात्र हैं । इस प्रकरण में चर्चित कहानियों के पात्रों की व्यथा, आतुरता एवं अकुलाहट मात्र हमारे समाज से संबन्धित हैं । इन भावों को किन्हीं पश्चिमी धारणाओं के तहत विश्लेषित नहीं किया जा सकता । अतः मानवीय संकट के इस भावगुंफन की वास्तविक पृष्ठभूमि भारतीय मानसिकता ही है ।

हिन्दी और मलयालम के यथार्थवादी युग की सामाजिक स्थिति समान रही है । प्रेमचन्द, केशवदेव जैसे कहानीकारों की रचनाओं की तुलना के अवसर पर यह तथ्य सामने आ गया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी और

मलयालम में लिखी हुई सामाजिक कहानियों में समानता की धारा तीव्र है । लेकिन अन्तर सिर्फ इतना है कि आधुनिक कहानीकारों की ये सामाजिक कहानियाँ सामाजिक आकांक्षाओं की नहीं हैं, जबकि वे सामाजिक विडंबनाओं की हैं । राजनीति का आधुनिक जीवन के साथ अभिन्न संबन्ध है । राजनीति को विषय के रूप में स्वीकार करनेवाले हिन्दी और मलयालम के कहानीकार सन्तुष्ट दिखाई नहीं पडते हैं । उनकी ऐसी कहानियों में एक प्रकार का क्षोभ या असन्तोष विद्यमान है जिसका कारण हमारी राजनीतिक दृष्टि की अवनति ही है । कहीं भी यह क्षोभ, क्षोभ के रूप में नहीं है, क्षोभ का स्थान विडंबना ने ले लिया है । यही बात सामाजिक कही जानेवाली कहानियों के सन्दर्भ में भी सही है । इन सामाजिक कहानियों में भी असन्तोष व्यक्त हुआ है । परन्तु असन्तोष से उत्पन्न विद्रोही दृष्टि कहीं भी अभिव्यंजित नहीं है । ऐसा एक सवाल पूछा जा सकता है कि दोनों भाषाओं की ऐसी कहानियों में असन्तोष, बेचैन का कारण क्या है । एक ओर समाज के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्रुतगामी है, अन्तर्देशीय संबन्धों का व्यापक परिदृश्य खुल गया है, हमारी महान परंपराओं के गीत सब कहीं गाये जा रहे हैं । ये सब सच होते हुए भी औसत आदमी के जीवन की वास्तविक प्रगति संदिग्ध क्यों है यह एक प्रदेश की सामाजिक या राजनीतिक अवस्था नहीं है । यह भारतीय अवस्था है । अतः मलयालम कहानीकार सुकुमारन की कहानियाँ, "संघगीत" या "पडोसी राजा" पढते समय या भीष्म साहनी की कहानियाँ "नौका परस्त" या "अमृतसर आ गया है" पढते समय भाषिक स्थितियों तथा रचनात्मक सुगढता की विभिन्नताओं के होते हुए भी भारतीय आदमी का चित्र स्पष्ट उभरता है । सुकुमारन, भीष्मसाहनी, अमरकान्त, वी. के. एन की कहानियों से गुज़रने का

मतलब है कि उन सवालों का सामना करना जो हमें अक्सर बेचैन करते हैं । भारतीय अवस्था का यह पक्ष इस दौर की हिन्दी और मलयालम कहानियों में अपनी व्यापकता में सन्निविष्ट है ।

हिन्दी और मलयालम कहानी के आधुनिक युग में मध्यवर्गीय जीवन प्रमुख रहा है । हिन्दी में प्रेमचन्द से लेकर और मलयालम में यथार्थवादी युग से लेकर या उसके पहले ही मध्यवर्गीय जीवन की कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं । आधुनिक युग के कहानीकारों ने मध्यवर्गीय जीवन के चित्रण के माध्यम से सामाजिक जीवन की असंख्य विडंबनाओं का चित्रण भी किया है । जीवन का वास्तविक भोक्ता होने के कारण कई प्रकार के लोग तथा उनकी प्रतिक्रियाएँ कहानीकार केलिए कथासामग्री बन जाती है । इस विषय वस्तु में इतनी विविधता है और इन विविधताओं में निहित विडंबनाओं का चित्रण, भारतीय समाज की विडंबनाओं का चित्रण ही है । रीति-रिवाज़, संस्कार, रहन-सहन, बाहरी परिस्थितियाँ, मौसम आदि के कारण हिन्दी प्रदेश और केरल की मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियाँ अलग-अलग हैं । लेकिन मध्यवर्गीय मानसिकता की जड़ें वस्तुतः समान दीखती हैं ।

इसीप्रकार पारिवारिक जीवन के चित्रण के अवसर पर भी भारतीय समाज के बदलते स्वरूप को ही कहानीकारों ने चित्रित किया है । उदाहरणार्थ प्रेमचन्द की "बडे घर की बेटी", कौशिक की "ताई" जैसी कहानियों में जो आदर्शवादिता है वह कहानीकारों की वैचारिकता की अभिव्यक्ति मात्र है । वहाँ उसके माध्यम से बदलते हुए सामाजिक स्वरूप को पकड पाना मुश्किल है । लेकिन

पद्मनाभन की कहानी, "दुःख", उषा प्रियंवदा की "वापसी", एम.टी.वासुदेवन नायर की "गड्ढा", कृष्णा सोबती की "कुछ नहीं, कोई नहीं" जैसी कहानियाँ न वैचारिकता की अभिव्यक्ति केलिए रचित है न आदर्श के प्रक्षेपण केलिए । इनमें एक बदली हुई सामाजिक दृष्टि मिल जाती है । पारिवारिक कहानियों का कोई भी तथ्य आधुनिक युग में सामाजिक परिदृश्य के किसी न किसी परिदृश्य से जुडा रहता है । हिन्दी और मलयालम की इन कहानियों की तुलना करते समय इसीबात पर ज़ोर दिया गया है ।

सामाजिक स्थितियों में निहित विडंबनाओं को आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानीकारों ने अपनी व्यंग्य-विद्रूप दृष्टि से भी देखा है । सब कुछ उनकेलिए हल्का-सा पड रहा है । परन्तु यह हल्कापन वज़नदार अवश्य है । अपनी इस व्यंग्य-विद्रूप दृष्टि से कहानीकार जीवन के तमाम पक्षों में व्याप्त भ्रष्टाचार को ही उभार रहे हैं । व्यंग्य की जितनी संभावनाएँ हैं उन सभी रूपों का उपयोग अपनी रचना में करते हुए गहन सामाजिक अवबोध का परिचय इन्होंने दिया है ।

प्रादेशिक विभिन्नताएँ कुछ ऐसी खास परिस्थितियों को अवश्य जन्म देती हैं । हिन्दी और मलयालम कहानियों में ऐसी कुछ प्रवृत्तियाँ दृष्टि-गोचर होती हैं जो मूलतः सामाजिक होते हुए भी प्रादेशिकता की उपज मात्र हैं । उदाहरण स्वरूप हिन्दी में प्रवर्तित एवं विकसित आँचलिक कहानी मलयालम केलिए पूरी तरह से अपरिचित न होते हुए भी मलयालम कथा साहित्य में इसका उतना विकास नहीं हुआ । शायद इसका कारण भिन्न भौगोलिक स्थितियाँ ही हैं ।

उसी प्रकार केरल के कुछ कहानीकारों ने जब अपने फौजी जीवन को कहानी की विषयवस्तु के रूप में परिवर्तित किया तो उसके पीछे केरलीय सामाजिक जीवन का अपना एक सन्दर्भ है । उसी प्रकार भारतीय विभाजन का सीधा असर उत्तरी क्षेत्र में अधिक पडा । मलयालम के कहानीकारों ने भी इसे अपनी रचनाओं केलिए विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया है, फिर भी उतनी व्यापकता के साथ ग्रहण नहीं कर पाए हैं । जबकि उत्तर के कहानीकारों केलिए, खासकर हिन्दी के कहानीकारों केलिए यह अपने जीवन का एक खंड है । अत: यह सिद्ध होता है कि सामाजिक जीवन कभी कभी सामाजिक परिस्थितियों से भी जुडा रहता है और बाहरी परिस्थितियों के प्रभाव से भी परिवर्तित होता है । लेकिन यह तथ्य प्रमुख हो उठता है कि मलयालम और हिन्दी कहानी की अपनी अपनी स्थितियों के अनुरूप अभिव्यंजित इन रचनाओं में कुल मिलाकर भारतीय सामाजिक अवस्था की ही प्रतिष्ठा हुई है ।

आधुनिक हिन्दी और मलयालम कहानी में व्यक्ति-जीवन का सन्दर्भ अत्यधिक मूल्यवान है । व्यक्ति-जीवन के अनगिनत पक्ष इस युग की कहानियों में आए हुए हैं । उनमें से एक प्रमुख पक्ष अस्तित्वबोध से संबन्धित है । अस्तित्व-संकट एक शाश्वत समस्या है । आधुनिक युग में पश्चिमी अस्तित्ववादी दर्शन ने इसे नये सिरे से उठाया । अत: अस्तित्वबोध की कहानियों में प्राय: एक दार्शनिक कोण मिलता है । परन्तु हिन्दी और मलयालम कहानी ने इस शाश्वत समस्या को अस्तित्ववादी दर्शन के सन्दर्भ में भी देखा है तथा भारतीय परिवेश में भी पहचाना है । जो भी हो ऐसी कहानियों की अन्तर्धारा अस्तित्व-व्यथा और तज्जन्य अजनबीपन की स्थिति है ।

तुलनात्मक अध्ययन का एक प्रमुख पक्ष रचनाओं की संरचनात्मक दिशा है । इस प्रकरण में संरचनात्मक स्तर पर दिखाई पडनेवाली तुलनात्मक दिशाएँ दो भाषाओं की कलात्मक पहचान से संबन्धित हैं । यह बताया जा चुका है कि इन दो भाषाओं में कहानी अत्यधिक लोकप्रिय और कलात्मक विधा है । इस संरचनात्मक पक्ष में हिन्दी और मलयालम कहानियों की तुलना इसलिए आसान है कि ये दोनों समान गति से आगे बढती दिखाई पडती हैं ।

तुलनात्मक अध्ययन के अवसर पर दो अलग-अलग भाषाओं की रचनाओं का, रचनाओं के रूप में भी महत्व है और सामाजिक अवस्था की अनुकृति के रूप में भी उनका महत्व है । इस अध्ययन के दौरान कहानियों के इन दोनों प्रकारों की सत्ता को महत्व दिया गया है ।

तुलनात्मक अध्ययन भारतीय साहित्य के आपसी संबन्ध को बढाने तथा भावात्मक एकता की सही पहचान केलिए आवश्यक है । भारत की दो प्रमुख भाषाओं में लिखी गई कहानी जैसी लोकप्रिय विधा के तुलनात्मक अध्ययन के केन्द्र में भारतीय अस्मिता के विविध पक्षों को पहचानने की दृष्टि ही प्रमुख रही है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

आधार ग्रन्थ

1. अकेली - राजेन्द्र यादव और मन्नु भंडारी - हिन्द पाकट बुक्स ।
2. अन्धकूप - शिवप्रसाद सिंह - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली,- 1985.
3. अश्क की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ - उपेन्द्रनाथ अश्क - नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, 1960.
4. अभिशप्त - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1962.
5. अमरकान्त की कहानियाँ - (भाग-1) - अमरकान्त - संभावना प्रकाशन, इलाहाबाद ।
6. आलाप - कृष्ण बलदेव वैद - राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली,- 1986.
7. एक और जिन्दगी - मोहन राकेश - राजपाल एण्ड सन्ज़ - प्रथम संस्करण ।
8. एक चेहरा - रामकुमार - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली ।
9. एक यात्रा सतह के नीचे - शिवप्रसाद सिंह - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
10. ऐसी होली खेलो, लाल - पाण्डेय बेचैन शर्मा "उग्र" - रामलाल पुरी, 1964.
11. कथाक्रम -(स्वाधीनता के बाद)- सं. देवेश ठाकुर - मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1978.
12. कथाक्रम - (स्वाधीनता के पहले) - सं. देवेश ठाकुर - मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1978.
13. कथा तरंगिणी - सं. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर - विश्वविद्यालय प्रकाशन, ग्वालियर ।
14. काठ का सपना - मुक्तिबोध - ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1967.
15. किनारे से किनारे तक - राजेन्द्र यादव - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1963.
16. खामोशी - कृष्ण बलदेव वैद - राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1986.
17. चित्र का शीर्षक - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1962.

18. जलती झाड़ी - निर्मल वर्मा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966.
19. जिन्दगी और गुलाब के फूल - उषा प्रियंवदा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1978.
20. जिन्दा मुर्दे - कमलेश्वर - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, छठा संस्करण ।
21. जैनेन्द्र की कहानियाँ - (आठवाँ भाग) - जैनेन्द्र कुमार - पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली ।
22. जैसे उनके दिन फिरे - हरिशंकर परसाई - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1969.
23. तीर्थयात्रा - सुदर्शन - वोरा एण्ड कंपनी, पब्लिशर्स प्रा. लि, बम्बई, 1961.
24. दो नाकवाले लोग - हरिशंकर परसाई - वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1983.
25. धर्मयुद्ध - यशपाल - विप्लव कार्यालय, लखनऊ, 1961.
26. नये बादल - मोहन राकेश - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्रथम संस्करण ।
27. पटरियाँ - भीष्म साहनी - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1973.
28. परिन्दे - निर्मल वर्मा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1970.
29. पहला पाठ - भीष्म साहनी - शीर्षक प्रकाशन, हापुड़, 1986.
30. पहली कहानी - सं. कमलेश्वर - राजपाल एण्ड सन्ज़, 1985.
31. पान फूल - मार्कण्डेय - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण ।
32. पोट्टेक्काट्टु की श्रेष्ठ कहानियाँ - एस.के. पोट्टेक्काट्टु - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1981.
33. बन्द गली का आखिरी मकान - धर्मवीर भारती - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, काशी, 1969.
34. बयान - कमलेश्वर - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972.
35. बहुरंगी मधुपुरी - राहुल सांकृत्यायन - राहुल प्रकाशन, मसूरी, 1954.
36. बादलों के घेरे - कृष्णा सोबती - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985.
37. भारत विभाजन : हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ - सं. नरेन्द्र मोहन - निधि प्रकाशन, दिल्ली ।

38. भारतीय श्रेष्ठ कहानियाँ - प्रबन्ध सं. कन्हैयालाल ओझा - भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता, 1987.

39. भूदान - मार्कण्डेय - नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1961.

40. मन्नु भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ - मन्नु भंडारी - अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1975.

41. मलयालम की श्रेष्ठ कहानियाँ - सं. सुधांशु चतुर्वेदी - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1970.

42. महुए का पेड़ - मार्कण्डेय - लहर प्रकाशन, इलाहाबाद, 1955.

43. मानसरोवर -(भाग-7) - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, 1965.

44. मित्र-मिलन तथा अन्य कहानियाँ - (भाग-1) - अमरकान्त - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद ।

45. मेरी प्रिय कहानियाँ - इलाचन्द्र जोशी - राजपाल एण्ड सन्ज़, 1978.

46. मेरी प्रिय कहानियाँ - उषा प्रियंवदा - राजपाल एण्ड सन्ज़, पहला संस्करण ।

47. मेरी प्रिय कहानियाँ - कमलेश्वर - राजपाल एण्ड सन्ज़, पहला संस्करण ।

48. मेरी प्रिय कहानियाँ - निर्मल वर्मा - राजपाल एण्ड सन्ज़, तीसरा संस्करण ।

49. मेरी प्रिय कहानियाँ - फणीश्वर नाथ रेणु - राजपाल एण्ड सन्ज़, 1977.

50. मेरी प्रिय कहानियाँ - मन्नु भंडारी - राजपाल एण्ड सन्ज़, दूसरा संस्करण ।

51. मेरी प्रिय कहानियाँ - मोहन राकेश - राजपाल एण्ड सन्ज़, 1976.

52. मेरी प्रिय कहानियाँ - राजेन्द्र यादव - राजपाल एण्ड सन्ज़, 1976.

53. मौत का नगर - अमरकान्त - रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1973.

54. राजा निरबंसिया - कमलेश्वर - शब्दकार, 1982.

55. राजेन्द्र यादव की श्रेष्ठ कहानियाँ - राजेन्द्र यादव - अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1983.

56. वारिस - (मोहन राकेश की कहानियाँ-3) - मोहन राकेश - राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, पहला संस्करण ।

57. विपथगा - अज्ञेय - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1982.

58. श्रेष्ठ आँचलिक कहानियाँ - सं. राजेन्द्र अवस्थी - पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।

59. संवाद - श्रीकान्त वर्मा - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1969.

आधार ग्रन्थ : मलयालम

60. "अप्फन्टे मकलुम मट्टु कृतिकलुम" - (चाचा की बेटी और अन्य कृतियाँ) - मुत्तिरिंकोड्डु भवत्रातन नंबूतिरी - लिट्टिल प्रिन्स, कोट्टयम, 1984.

61. "अम्बतु कथकल" - (पचास कहानियाँ) - वी.के.एन.-लिट्टिल प्रिन्स, कोट्टयम, 1985.

62. "आकाशत्तिन्टे मरुपुरम" - (आसमान के उस पार) - पुनत्तिल कुञ्ञब्दुल्ला - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1982.

63. "आकाशम तेलिञ्ञु" - (आसमान स्वच्छ हुआ) - नन्दनार - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1981.

64. "उच्चयुडे निष्ल" - (दुपहरी की छाया) - पी.वत्सला, एस.पी.सी.एस, कोट्टयम, 1982.

65. "उरूबिन्टे तिरञ्ञेडुत्ता कथकल - उरूब - मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग हाउस, 1982.

66. "ओर्मक्कुरिप्पु" - (संस्मरण) - बशीर - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1972.

67. "एम.टी.युडे तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" -(एम.टी.की चुनी हुई कहानियाँ) - एम.टी.वासुदेवन नायर - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1978.

68. "एम.सुकुमारन्टे कथकल" - (एम.सुकुमारन की कहानियाँ) - एम.सुकुमारन - करन्ट बुक्स, कोट्टयम, 1984.

69. "एस.के.पोट्टेक्काट्टिन्टे कथकल" - (एस.के.पोट्टेक्काट्टु की कहानियाँ) - एस.के.पोट्टेक्काट्टु - मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी लि., कोषिक्कोड्डु, 1978.

70. "एस.के.पोट्टेक्काट्टिन्टे कथकल" - §भागम: ओन्नु§" - एस.के.पोट्टेक्काट्टु की कहानियाँ - §खण्ड:।§ - एस.के.पोट्टेक्काट्टु - मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी, कोषिक्काडु, 1981.

71. "ओरिडत्तु" - §किसी जगह पर§ - सखरिया - एस.पी.सी.एस.कोट्टयम, 1982.

72. "कथा" - §कथा§ - पट्टत्तुविला करुणाकरन - शिखा पब्लिकेशन्स, गुरुवायूर, 1984.

73. "काक्कनाटन्टे कथकल" - §काक्कनाटन की कहानियाँ§ - काक्कनाटन - करन्ट बुक्स, तृशूर, 1984.

74. "केसरी नायनारुडे कृतिकल" - §केसरी नायनार की कृतियाँ§ - सं. के. गोपालकृष्णन - मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी लि.कोषिक्कोडु, 1987.

75. "टी.पद्मनाभन्टे तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §टी.पद्मनाभन की चुनी हुई कहानियाँ§ - टी.पद्मनाभन - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1980.

76. "तणुप्पु" - §सर्दी§ - माधविक्कुट्टि - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम

77. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - ललिताम्बिका अन्तर्जनम - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1966.

78. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - कारूर नीलकण्ठ पिल्लै - एस.पी.सी.एस, कोट्टयम, 1972.

79. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - कोविलन - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1980.

80. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - तकषी शिवशंकर पिल्लै - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1965.

81. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - नन्तनार - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1981.

82. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - §चुनी हुई कहानियाँ§ - पारप्पुरत्तु - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1968.

83. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - (चुनी हुई कहानियाँ) - एस. के. पोट्टक्काट्टु -
मातृभूमि प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी, कोषिक्कोडु, 1981.

84. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - (चुनी हुई कहानियाँ) - पोनकुन्नम वर्की -
एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1968.

85. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - (रंडाम भागम)"- चुनी हुई कहानियाँ (दूसरा भाग) -
कारूर नीलकण्ठ पिल्लै - एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1970.

86. "तेरञ्ञेडुत्ता कथकल" - (रंडाम भागम)" - चुनी हुई कहानियाँ (दूसरा भाग) -
केशवदेव - एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1969.

87. "पतिनोन्नु कथकल" - (ग्यारह कहानियाँ) - सं. जॉन सामुवल -
डी. सी. बुक्स, कोट्टयम, 1976.

88. "पतिनोन्नु कथकल तन्ने" - (ग्यारह कहानियाँ ही) - सं. एम. तोमस मात्यु -
डी. सी. बुक्स, कोट्टयम, 1979.

89. "पय्यन कथकल" - (पय्यन की कहानियाँ) - वी. के. एन. -
एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1983.

90. "पावप्पेट्टवरुडे वेश्या" - (गरीबों की वेश्या) - बशीर -
डी. सी. बुक्स, कोट्टयम, 1985.

91. "मतिलुकल" - (दीवारें) - माधविक्कुट्टि - करन्ट बुक्स, तृशूर, 1967.

92. "मरप्पावकल" - (कठपुतलियाँ) - कारूर नीलकण्ठ पिल्लै -
एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1963.

93. "माधविक्कुट्टियुडे कथकल" - (माधविक्कुट्टि की कहानियाँ)- माधविक्कुट्टि -
डी. सी. बुक्स, कोट्टयम, 1982.

94. "मुकुन्दन्टे कथकल" - (मुकुन्दन की कहानियाँ) - एम. मुकुन्दन -
करन्ट बुक्स, कोट्टयम, 1982.

95. "विजयन्टे कथकल" - (विजयन की कहानियाँ) - ओ. वी. विजयन -
एस. पी. सी. एस. कोट्टयम, 1983.

96. "विड्डिकलुडे स्वर्गम" - {मूर्खों का स्वर्ग} - बशीर - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1975.

97. "विश्वविख्यातमाया मूक्कु" - {विश्वविख्यात नाक} - बशीर - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1970.

98. "वी.के.एन. कथकल {ओन्नाम भागम} - {वी.के.एन. कहानियाँ{पहला भाग} वी.के.एन.-एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1982.

99. "वीडुम तडवुम" - {घर और कैद} - आनन्द - एस.पी.सी.एस, कोट्टयम, 1983.

100. "शब्दिक्कुन्ना कलप्पा" - {आवाज़ करती हल} - पोनकुन्नम वर्की - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1962.

101. "सेतुविन्टे कथकल" - {सेतु की कहानियाँ} - सेतु - करन्ट बुक्स, कोट्टयम, 1984

सहायक ग्रन्थ : हिन्दी

102. अज्ञेय का कथा साहित्य - ओम प्रभाकर- नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966.

103. अस्तित्ववाद और नयी कहानी - लालचन्द गुप्त "मंगल" - शोध प्रबन्ध प्रकाशन, दिल्ली, 1975.

104. अस्तित्ववाद : कीर्कगार्ड से कामू तक - योगेन्द्र शाही - दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटड, 1975.

105. आज का हिन्दी साहित्य - रामदरश मिश्र - अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण।

106. आज की कहानी - विजयमोहन सिंह - राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण।

107. आज की हिन्दी कहानी : विचार और प्रतिक्रिया - मधुरेश - ग्रन्थ निकेतन, पटना, 1971.

108. आत्मनेपद - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960.
109. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1966.
110. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - इन्द्रनाथ मदान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
111. आधुनिकता के सन्दर्भ में हिन्दी कहानी - नरेन्द्र मोहन - जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
112. आधुनिकता : साहित्य के सन्दर्भ में - गंगाप्रसाद विमल - दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटड, 1978.
113. आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद - शिवप्रसाद सिंह - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
114. आधुनिक साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेयी - भारती भण्डार, इलाहाबाद, 1974.
115. आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य : मूल्यों से प्रयाण - रघुवीर सिन्हा और शकुंतला सिन्हा - दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया, 1980.
116. आधुनिक हिन्दी कहानी - सं. गंगाप्रसाद विमल - दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटड, प्रथम संस्करण ।
117. आधुनिक हिन्दी कहानी - लक्ष्मीनारायण लाल - हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1962.
118. आधुनिक हिन्दी कहानी : समाजशास्त्रीय दृष्टि - रघुवीर सिन्हा - अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
119. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - बच्चन सिंह - साहित्य भवन, - इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।
120. इतिहास, विचारधारा और साहित्य - राजेश्वर सक्सेना - कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, 1983.

121. एक दुनिया : समानान्तर - सं. राजेन्द्र यादव - अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, 1974.
122. एक साहित्यिक डायरी - मुक्तिबोध - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता, 1964.
123. औरों के बहाने - राजेन्द्र यादव - अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1981.
124. कथाकार प्रेमचन्द - सं. रामदरश मिश्र और ज्ञानचन्द गुप्त - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
125. कमलेश्वर - सं. मधुकर सिंह - शब्दकार, - 1977.
126. कहानी : नयी कहानी - नामवर सिंह - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, तृतीय संस्करण।
127. कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - सं. देवीशंकर अवस्थी - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
128. कहानी : स्वरूप और संवेदना - राजेन्द्र यादव - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, द्वितीय संस्करण।
129. कुछ विचार - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, बनारस, 1965.
130. नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर - शब्दकार, दिल्ली, 1973.
131. नई कहानी के विविध प्रयोग - पाण्डेय शशिभूषण "शीतांशु" - लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1974.
132. नई कहानी : दशा, दिशा, संभावना - सं. सुरेन्द्र - अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर, प्रथम संस्करण।
133. प्रश्नों के घेरे - राजेन्द्र अवस्थी - सरस्वती विहार, दिल्ली, 1982.
134. प्रसंग - श्रीकान्त वर्मा - संभावना प्रकाशन, हापुड, 1981.
135. प्रेमचन्द : आज के सन्दर्भ में - गंगाप्रसाद विमल - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
136. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही - अमृतराय - हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981.

137. प्रेमचन्द प्रतिभा - इन्द्रनाथ मदान - सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1967.
138. भाषा और संवेदना - रामस्वरूप चतुर्वेदी - भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता, 1964.
139. भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना - सं. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण।
140. मानवमूल्य और साहित्य - धर्मवीर भारती - ज्ञानपीठ, वाराणसी, प्रथम संस्करण।
141. मुक्तिबोध का गद्य साहित्य - मोतीराम वर्मा - विद्यार्थी प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
142. मैला आँचल - फणीश्वर नाथ रेणु - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण।
143. विश्व इतिहास की झलक - जवहर लाल नेहरू (अनु: चन्द्रभूषण वार्ष्णेय) - सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1962.
144. शेखर : एक जीवनी -(प्रथम खंड) - अज्ञेय - सरस्वती प्रेस, बनारस, 1961.
145. समकालीन कहानी की पहचान - नरेन्द्र मोहन - प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978.
146. समकालीन कहानी की भूमिका - विश्वंभरनाथ उपाध्याय - स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977.
147. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि - सं. धनंजय - अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970.
148. समकालीन कहानी : समान्तर कहानी - डा. विनय - दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटड, 1977.
149. समकालीन सिद्धान्त और साहित्य - विश्वंभरनाथ उपाध्याय - दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटड, 1976.
150. समानान्तर - रमेशचन्द्र शाह - सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

151. साहित्य और सामाजिक मूल्य - हरदयाल - विभूति प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
152. सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि - मोहन राकेश - राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1974.
153. साहित्य का उद्देश्य - प्रेमचन्द - सरस्वती प्रेस, बनारस, 1954.
154. स्रोत और सेतु - अज्ञेय - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
155. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी - कृष्णा अग्निहोत्री - इन्द्र प्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
156. हस्तक्षेप - धनञ्जय वर्मा - विद्याप्रकाशन, दिल्ली, 1979.
157. हिन्दी कथा साहित्य में भारत विभाजन - हेमराज "निर्मम" - संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1987.
158. हिन्दी कहानियों की शिल्पविधि का विकास - लक्ष्मीनारायण लाल - साहित्य भवन प्राइवट लिमिटड, इलाहाबाद, 1967.
159. हिन्दी कहानी : अंतरंग पहचान - रामदरश मिश्र - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
160. हिन्दी कहानी : एक अंतरंग पहचान - उपेन्द्रनाथ अश्क - नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।
161. हिन्दी कहानी : अपनी जबानी - इन्द्रनाथ मदान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण ।
162. हिन्दी कहानी : अलगाव का दर्शन - चार्ल्स रोडरमल - अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1982.
163. हिन्दी कहानी : एक नयी दृष्टि - इन्द्रनाथ मदान - संभावना प्रकाशन, हापुड, 1978.
164. हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया - परमानन्द श्रीवास्तव - ग्रन्थम, कानपुर, 1965.

165. हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा - सं. रामदरश मिश्र और नरेन्द्र मोहन - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1970.

166. हिन्दी कहानी : पहचान और परख - सं. इन्द्रनाथ मदान - लिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1973.

167. हिन्दी कहानी : बदलते प्रतिमान - रघुवर दयाल वार्ष्णेय - पांडुलिपी प्रकाशन, दिल्ली, 1975.

168. हिन्दी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प-विधि - आदर्श सक्सेना - सूर्य प्रकाशन, बिकानेर, 1971.

169. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य - अज्ञेय - राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1967.

170. हिन्दी साहित्य का आदिकाल - हजारी प्रसाद द्विवेदी - बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, तृतीय संस्करण ।

171. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, 1962.

172. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डा. नगेन्द्र - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973.

173. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (नवम भाग) - सं. सुधाकर पाण्डेय - नागरी प्रचारिणी सभा, 1977.

174. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी - नन्ददुलारे वाजपेयी - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1963.

सहायक ग्रन्थ : मलयालम

175. "अन्तर्जनम : ओरु पठनम" - (अन्तर्जनम : एक अध्ययन) - अन्तर्जनम षष्टिपूर्ति समारोह कमटि, रामपुरम, (सं.) 1969.

176. "अपग्रथनम" (विश्लेषण) - वी. एस. शर्मा - वी. एस. शर्मा (प्रकाशक), 1972.

177. "अय्यप्पप्पणिक्करुडे लेखनङ्ङल" {अय्यप्पपनिक्कर के लेख} - अय्यप्पपनिक्कर - डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1985.
178. "अवधारणम" {अवधारणा} - एम.के.सानु - डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1984.
179. "आधुनिकतयुडे मध्याह्नम" {आधुनिकता का मध्याह्न} - नरेन्द्र प्रसाद पूर्णा पब्लिकेशन्स, कोषिक्कोडु, 1984.
180. "एन्ताणु आधुनिकता" {आधुनिकता क्या है} - एम.मुकुन्दन - पूर्णा पब्लिकेशन्स, कोषिक्कोडु, 1976.
181. "ओरमयुडे तीरङ्ङलिल" {यादों के किनारों पर} - तकषी - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1985.
182. "कथयुडे पिन्निले कथा" - {कहानी की कहानी} - टी.एन.जयचन्द्रन - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1975.
183. "कलहवुम विश्वासवुम" {विद्रोह और आस्था} - के.पी.अप्पन - लिट्टिल प्रिन्स पब्लिकेशन्स, कोट्टयम, 1984.
184. "काथिकन्टे कला" {कथाकार की कला} - एम.टी.वासुदेवन नायर - डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1984.
185. "काथिकन्टे पणिप्पुरा" {कथाकार की शिल्पशाला} - एम.टी.वासुदेवन नायर - करन्ट बुक्स, कोट्टयम, 1983.
186. "कारूरिन्टे कथालोकम" -{कारूर का कथा संसार} - सं. समीक्षा - एन.बी.एस. कोट्टयम, 1968.
187. "केरला साहित्या चरित्रम" - {केरल साहित्य का इतिहास} - भाग-5 - उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर - केरल विश्वविद्यालय, 1965.
188. "केशवदेव : कालनूट्टांडु मुम्बु" {केशवदेव : पच्चीस वर्ष पहले} - पी. केशवदेव - मंजुषा पब्लिकेशन्स, कोल्लम, 1967.

189. "केसरियुडे साहित्या विमर्शनड्.ड.ल" {केसरी की साहित्यिक आलोचनाएँ}
केसरी बालकृष्ण पिल्लै - एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1984.

190. "कैरलियुडे कथा" {कैरली की कथा} - एन.कृष्ण पिल्लै -
एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1982.

191. "चित्रकलयुम चेरु कथयुम" {चित्रकला और कहानी} - टी.आर. -
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1985.

192. "चेरुकथा : इन्नले, इन्नु" {कहानी : कल और आज} - एम.अच्युतन -
एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1973.

193. "चेरुकथाप्रस्थानम" {कहानी आन्दोलन} - एम.पी.पॉल -
एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1984.

194. "जी.कुमारपिल्लयुडे तेरञ्ञेडुत्ता लेखनड्.ड.ल" {जी.कुमारपिल्लै के चुने हुए
लेख} - जी.कुमार पिल्लै - रंजिमा पब्लिकेशन्स, चड्.ड.नाशेरी, 1984.

195. "तरिशुनिलत्तिन्टे कथकल" {ऊसर भूमि की कहानियाँ} -
कलरकोडु वासुदेवन नायर - कलरकोडु वासुदेवन नायर {प्रकाशन}, 1974.

196. "तेरञ्ञेडुत्ता लेखनड्.ड.ल" {चुने हुए लेख} - सच्चिदानन्दन -
लिट्टिल प्रिन्स पब्लिकेशन्स, कोट्टयम, 1985.

197. "नवीन कथा" {नवीन कथा} - सं. एम.एम.बशीर -
एस.पी.सी.एस. कोट्टयम, 1977.

198. "नोवल:नोवलिस्टिन्टै काष्चपाडिल" {उपन्यास : उपन्यासकार की दृष्टि में}
केशवदेव - केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम, 1976.

199. "पोनकुन्नम वर्कियुडे कथकल" {पोनकुन्नम वर्की की कहानियाँ} -
वी. रमेशचन्द्रन - एस.पी.सी.एस, कोट्टयम, 1969.

200. "बषीरिन्टे लोकम" {बशीर का संसार} - सं. एम.एम.बशीर -
डी.सी.बुक्स, कोट्टयम, 1985.

201. "भाषा गद्यसाहित्या चरित्रम" (भाषा (मलयालम) गद्य साहित्य का इतिहास) - टी. एम. चुम्मार - टी. एम. चुम्मार (प्रकाशन), 1969.

202. "मलयाला साहित्या चरित्रम" (मलयालम साहित्य का इतिहास) - पी. के. परमेश्वरन नायर - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1969.

203. "मार्क्सिसवुम मलयाला साहित्यवुम" (मार्क्सवाद और मलयालम साहित्य) - ई. एम. एस. नंबूतिरिप्पाडु - चिन्ता पब्लिषर्स, तिरुवनन्तपुरम, 1974.

204. "साहित्यनिरूपणम" (साहित्यिक आलोचना) - के. दामोदरन - प्रभातम प्रिन्टिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी प्र. लि., तिरुवनन्तपुरम, 1982.

205. "साहित्य विचारम" (साहित्य विचार) - एम. पी. पॉल - एस. पी. सी. एस., कोट्टयम, 1979.

सहायक ग्रन्थ : अंग्रेज़ी

206. A History of Malayalam Literature - Krishna Chaitanya - Orient Longman Ltd., Delhi, 1971.

207. Alienation - Richard Schactt - George Allen and Unwin Ltd., London, 1971.

208. Being and Nothingness - Sartre - Mathuen And Co., Ltd., London, 1957.

209. Comparative Indian Literature - (Vol.II) - Ed. Dr.K.M.George Kerala Sahitya Academy and Macmillan India Ltd., 1985.

210. Concluding Unscientific post script - Soren Kierkegaurd - Princeton University Press, 1941.

211. Existentialism - Jean Paul Sartre - The Philosophical Library, New York, 1947.

212. Existentialism and Humanism - Jean Paul Sartre - Mathuen And Co., Ltd., London, 1960.

213. History of Malayalam Literature - P.K.Parameswaran Nair - Sahitya Academy, New Delhi, 1967.

214. Indian Literature since Independence - Ed. K.R. Sreenivasa Iyengar - Sahitya Academy, New Delhi, 1973.

215. Literary Modernism - Ed. Irwing Howe, Fawcett Publications, Greenwich, 1967.

216. Malayalam Short Story : An Anthology - Ed: Sukumar Azheekodu - Kerala Sahitya Academy, 1976.

217. Modern Hindi Short Story - Editor Maheendrakulesrestha - National Publishing House, Delhi, 1974.

218. Modernity and Contemporary Indian Literature - Indian Institute of Advanced Study, Simla, 1968.

219. On Alienation - Arnold Kaufmann, 1965.

220. Philosephie - II - Karl Jaspers - Routledge and Kegan, London, 1956.

221. The necessity of Art - Ernst Fischer - Penguin Books Ltd., England, 1964.

222. The Republic of Silence - Jean Paul Sartre - Har Courd Brace and Co., New York, 1947.

223. Encyclopaedia Britanica - Vol.7.

224. Encyclopaedia Britanica - Vol.8.

225. Encyclopaedia of religion and ethics - James Hastings, Vol.II.

226. The Dictionary of Philosophy - D.D.Runes.

पत्र-पत्रिकाएँ : हिन्दी

1. अनुवाद (50) - जनवरी-मार्च, 1987.

2. अनुशीलन - 1980-81.

3. अक्षरा - अप्रैल-जून, 1989.

4. आजकल - दिसम्बर, 1969.

5. आजकल - अक्टूबर, 1980.

6. आजकल - सितम्बर, 1982.
7. आलोचना - जुलाई, 1965.
8. आलोचना - जनवरी-मार्च, 1984.
9. आलोचना - अप्रैल-जून, 1987.
10. कल्पना - नवम्बर, 1957.
11. कल्पना - मार्च, 1965.
12. कहानी - जनवरी, 1954.
13. कहानी - वार्षिकांक, 1955.
14. कहानी - मई, 1958.
15. जागरण - फरवरी, 1933.
16. दस्तावेज़ - जनवरी, 1985.
17. धर्मयुग - जून, 1968.
18. नया प्रतीक - फरवरी, 1978.
19. पूर्वग्रह {69} - जुलाई-अगस्त, 1985.
20. भाषा - दिसम्बर, 1982.
21. लहर - अप्रैल, 1970.
22. वार्षिकी - 1976-77.
23. समकालीन भारतीय साहित्य - अक्तूबर-दिसम्बर, 1987.
24. साक्षात्कार - मार्च-मई, 1978.
25. सारिका - अक्तूबर, 1961.
26. सारिका - फरवरी, 1968.
27. सारिका - मई, 1968.
28. सारिका - दिसंबर, 1970.
29. सारिका - मार्च, 1982.
30. साहित्य सन्देश - जनवरी-फरवरी, 1958.
31. ज्ञानोदय - अगस्त, 1969.

पत्र-पत्रिकाएँ : मलयालम

32. कला कौमुदी - नवबंर, 1988.

33. जनयुगम - मई, 1988.

34. तिलकम - अक्तूबर, 1962.

35. देशाभिमानी - दिसंबर, 1988.

36. भाषापोषिणी - अप्रैल-मई, 1984.

37. मलयालनाडु - अप्रैल, 1970.

38. मलयालनाडु - अगस्त, 1982.

39. मातृभूमि - अप्रैल, 1967.

40. मातृभूमि - जनवरी, 1974.

41. मातृभूमि - अक्तूबर, 1975.

42. मातृभूमि - मई, 1976.

43. मातृभूमि - अगस्त, 1979.

44. मातृभूमि - अक्तूबर, 1981.

45. मातृभूमि - जनवरी, 1982.

46. मातृभूमि - अगस्त, 1982.

47. मातृभूमि - दिसम्बर, 1983.

48. मातृभूमि - दिसंबर, 1984.

49. मातृभूमि (ओणम विशेषांक), 1986.

50. साहित्यलोकम - जुलाई-दिसंबर, 1985.

पत्र-पत्रिकाएँ : अंग्रेज़ी

51. Indian Literature - Vol.XI, No.2, 1968.

52. Malayalam Literary Survey - January-March 1979.

53. Malayalam Literary Survey - October-December 1979.

54. Malayalam Literary Survey - October December 1988.